आर्षम्

लघु रामायणम्

वाल्मीकीयम्

त्रि-मातृकी संहिता

आदि-काव्य-वचनं

मान्द्राज प्रदेशस्थ-ब्रह्मपुर-कलेज-पूर्वतनाध्यक्ष-
कलिकाता सिटि-कलेज-भूतपूर्वाध्यापक-
संस्कृतभाषानादि व्याकरण-प्रणेतृ-
श्रीगोविन्दनाथ-गुह-एम् ए-प्रोक्तम्

'यावत स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च मही-तले,
तावद् रामायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति'
—ब्रह्म-वाक्यम् (पृ. ७)

कलिकातायाम्
२५ रायबागान-ष्ट्रीट भारत-मिहिर-यन्त्रे श्री-महेश्वर-भट्टाचार्य्येण
मुद्रितम्
३९ ह्यारिसन्-रोडे श्रीगोविन्दनाथ-गुहेन
प्रकाशितं च

Publisher :
Govindanath Guha, M.A.
39, Harrison Road, Calcutta

Agents :
Bhattacharya & Son
65, College Street, Calcutta

এই গ্রন্থকারের

১। সংস্কৃত সোপান (৪র্থ সংস্করণ)—প্রথমশিক্ষার্থীর সংস্কৃত-ব্যাকরণ। সহজ সংস্কৃত সূত্র, তাহার বাঙ্গালা ব্যাখ্যা, যথেষ্ট উদাহরণ, অনেক অনুশীলনী, রচনা ও অনুবাদের প্রচুর উপকরণ এবং সূত্রসূচী, শব্দরূপসূচী ও ধাতুরূপসূচী সম্বলিত।

মূল্য দশ আনা।

২। সংস্কৃতপ্রবেশ or A Junior Sanskrit Grammar. In Anglo-Sanskrit. For Matriculation and Intermediate candidates. Written on scientific method. *In the Press.*

৩। সংস্কৃতপ্রবোধ—ইণ্টারমিডিয়েট, বি এ এবং এম্ এ পরীক্ষার্থী ছাত্রগণের উপযোগি সংস্কৃত ব্যাকরণ। লেখা শেষ।

৪। সংস্কৃত ব্যাকরণের উপক্রমণিকা—৺ঈশ্বরচন্দ্র বিদ্যাসাগর সঙ্কলিত। কলিকাতা বিশ্ববিদ্যালয়ের নূতন নিয়মাবলীর অনুরূপে আবার পাণিনির মতানুসারে সংশোধিত। অনেক বিদ্যালয়ে পরিগৃহীত। পঞ্চম সংস্করণ। মূল্য আট আনা।

৫। সচিত্র সীতার বনবাস—৺ঈশ্বরচন্দ্র বিদ্যাসাগর সঙ্কলিত। এই সংস্করণে দুরূহ শব্দগুলির ব্যাখ্যা, টীকা-সূচী ও বিষয়-সূচী, প্রয়োজনীয় পাঠভেদ, পরিচ্ছেদের ব্যাখ্যা ও পত্রের শীর্ষ-টীকা, গ্রন্থকারের সংক্ষিপ্ত জীবন-চরিত, ইহার ভাষার সমালোচনা, উক্ত গ্রন্থাবলীর পরিচয়, সীতার বনবাসের প্রকৃতি ও মূল নির্দ্দেশ এবং রাম, লক্ষ্মণ ও সীতার চরিত্র-সমালোচনা আছে।

চিত্রগুলিতে ধর্ম্মপরায়ণ গৃহস্থ জীবনের বিভিন্ন বিষাদপূর্ণ অবস্থা—প্রেমে বদ্ধ স্বামিস্ত্রীর মধুর গৃহবাস, মহারণ্যে বিরহী পত্নীর দারুণ মর্ম্মবেদনা এবং দীর্ঘ বিরহের পরে মহতী রাজসভায় সিংহাসনে উপবিষ্ট একপত্নীক-সম্রাট এবং সম্মুখে করজোড়ে দণ্ডায়মানা, পুত্র ও অভিভাবক সঙ্গে প্রতীক্ষমাণা তপস্বিনী মহারাণীর শেষ দেখা অতি সুন্দর চিত্রিত হইয়াছে; দ্বিতীয় সংস্করণ। পুরু ও মসৃণ কাগজ, বড় অক্ষর, শুদ্ধ ছাপা।

মূল্য বার আনা।

৬। ভারতকুসুম, ১ম ভাগ—কাশীরাম দাসের মহাভারত হইতে সঙ্কলিত, সংস্কৃত এবং বিরামচিহ্নে চিহ্নিত। সটীক। বিদ্যালয়ে পঠিত। মূল্য পাঁচ আনা।

৭। শুশ্রূষা—রোগীর শুশ্রূষা বিষয়ক। শ্যামাচরণ দে প্রণীত। ইহাতে রোগের মোটামুটি চিকিৎসা, দুর্ঘটনার (accidentsর) প্রতিকার এবং কিরূপে শুশ্রূষা করিতে হয়, ঔষধ সেবন করাইতে হয়, পথ্য দিতে হয় এবং পথ্য প্রস্তুত করিতে হয় তাহা সুন্দররূপে বিবৃত হইয়াছে।

রঙ্গিণ কাপড়ে বাঁধান। সোণার জলে নাম লেখা। মূল্য ১।০।

अनुक्रमणी।

लघु-रामायणे

आदि-काण्डे

अयोध्या-काण्डे

अरण्य-काण्डे

आलोचनम् ।

वाल्मीकिः खलु कवीनां प्रथमः सम्बभूव। तदुक्तं बुद्धचरित-प्रथम-सर्गान्त्यायामश्वघोषेण,—

'वाल्मीकि-रादौ च ससर्ज पद्यं जग्रन्थ यन्न च्यवनो महर्षिः' (१) इति। स वै रामायणं सर्व काव्यानामादि विरचयामास। तमेव सम्बोध्य ब्रह्म-मुखेन भवभूतिरुवाच,—'तद् ब्रूहि राम-चरितम्,… आद्यः कविरसि' (२) इति। भवभूतेः प्रागेव कालिदासो ऽब्रवीत्,—'प्राचेतसोपज्ञं रामायणम्' (३) इति। क्षेमेन्द्रो ऽनुजगौ,—

'स वः पुनातु वाल्मीकेः सूक्तामृत-महोदधिः।
ओङ्कार इव वर्णानां, कवीनां प्रथमो मुनिः' (४) इति।

रामायणमेवाश्रित्य विश्व विश्रुतं रघु वंशं निर्ममे। तदुक्तम्,—

'अथवा कृत वाग् द्वारे वंशे ऽस्मिन् पूर्व-सूरिभिः
मणौ वज्र समुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः' (५) इति।

भोज-राजो ऽपि चम्पू-रामायणं कुर्वन्

'वाल्मीकि गीत-रघु पुङ्गव-कीर्ति-लेशैस्
तृप्तिं करोमि कथमप्यधुना बुधानाम् ?' (६)

(१) बुद्ध चरितम् (काउएल्-संस्कृतम्), १।४८। (२) उत्तर-चरितम्, २। महावीरचरितस्य प्रारम्भो ऽपि द्रष्टव्यताम्। (३) रघु-वंशम्, १५।६३। प्राचेतसस्य (वाल्मीकेः) उपज्ञा (आद्य ज्ञानम्, वाल्मीकिना आदौ ज्ञातम् इत्यर्थः) रामायणम्। (४) रामायण-कथा सार-मञ्जरी, परिशिष्टम्, २। (५) रघु-वंशम्, १।४। [कवेर्मन्दत्वात् रघु-वंश-कीर्तनं दुष्करमेव।] अथवा (पक्षान्तरे) पूर्व-सूरिभिः (वाल्मीकि-प्रभृतिभिः कविभिः) कृत-वाग् द्वारे (कृतरामायणादि-रूप प्रवेश-मार्गे) अस्मिन् वंशे वज्र-समुत्कीर्णे (सूची-विद्धे) मणौ सूत्रस्येव मे गतिः (प्रवेशः) अस्ति। (६) चम्पू-रामायणम्, १।४।

इति रामायणं वाल्मीकेरेवेत्यवदन्। तस्याद्यत्वं कविषु राज शेखरोऽपि कीर्तयामास,—

'बभूव वल्मीक भवः कविः पुरा' (७) इत्यादिना।

गोवर्धनः 'श्रीरामायण भारत बृहत्कथानां कवीन् नमस्कुर्मः' (८) इत्यनेन कविषु नमस्कार्येषु वाल्मीकिरेव प्रथमः इति विज्ञाप्य मतम्स्वपि कालिदास भवभूति-बाणभट्ट-प्रभृतिष्वब्रवीत्,—

'सति काकुत्स्थ-कुलोन्नति-कारिणि रामायणे किमन्य काव्येन ?' (९)

इति। तमेव त्रि-विक्रम-भट्टः कथा-प्रारम्भे

'नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा' (१०)

इति भक्ति निर्भरं प्रणनाम। आद्यत्वेनैव, शार्ङ्गधरः संग्रहे—

'कवीन्दुं नौमि वाल्मीकिं यस्य रामायणीं कथाम्
चन्द्रिकामिव चिन्वन्ति चकोरा इव साधवः' (११) इति

स्व-कृत-श्लोकेन कविषु तमेव प्रथमं नमश्चकार।

रामायणस्यानुष्टुभमुद्दिश्य वन देवता-मुखेन भवभूतिरुवाच,—

'चित्रम्, आम्नायादन्यो नूतनश्छन्दसामवतारः!' (१२) इति।

वेदेऽपि तु रामायण प्रयुक्तानुष्टुबस्ति। तथा हि ऋक् संहितायां,—

'आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण यक्षतु।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो' (१३)।

(७) बाल-रामायणम् (गोविन्ददेव संस्करणम्, १८६५), १।१६। (८) सप्त-शती (सोमनाथ-संस्कृता, १८६४), १।३२। (९) सैव, १।३३। (१०) दमयन्ती-कथा (ए सो. बे. लिपिः), प. १। (११) पद्धतिः (पीटर्सन-संस्कृता, १८८८), १७२। (१२) उत्तर-चरितम्, २। (१३) ऋग् वेद-संहिता, ८।२४।२। चा, सोमी (सोमवान्)

ये तु वदन्ति मन्त्र-द्रष्टारोऽपि कवय इति, तेषां मते आदि-द्रष्टा ब्रह्मा आदि-कविः, न वाल्मीकिः। तदुक्तम्,—

'तेने ब्रह्म हृदा य आदि-कवये' (१४) इति।

'अग्निर् होता कवि-क्रतुः सत्यश्चित्र-श्रवस्तमः
देवो देवेभिरागमत्' (१५),

'कवी नो मित्रा-वरुणा तुवि-जाता उरु-क्षया
दक्षं दधाते अपसम्' (१६),

इत्यादिषु वेद-मन्त्रेषु कवि-शब्दो बहुधा प्रयुक्तोऽपि द्रष्टेत्येकमेवार्थं द्योतयति।

'अध्यापयामास पितॄन् शिशुराङ्गिरसः कविः' (१७),
'इयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः,
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ' (१८).

ग्रावा (पाषाणः) वदन् (शब्दकुर्वन्) घोषेण (शब्देन) [मह त्वा इह यज्ञे] गच्छतु [इति]। दिवा-वसो (देवस-हविष्क), अमृत्य दिवः (स्वर्गस्य) आमतः इन्द्रस्य। दिव (स्वर्गे) यय (गच्छत)। सम्भ्रमार्थं बहु-वचनम्। (१४) श्रीमद्भागवतम्, १।१।१। यः (परमेश्वरः) आदि-कवये (आदि-[मन्त्र-]द्रष्टे, ब्रह्मणे इत्यर्थः) ब्रह्म (वेदम्) हृदा (मनसैव) तेने (विस्तृतवान्, प्रकाशितवान् इत्यर्थः)। (१५) ऋग्-वेद-संहिता, १।१।५। होता (होम-निष्पादकः) कवि-क्रतुः (द्रष्टृ-प्रज्ञानवान्) सत्यः (असत्य-रहितः) चित्र श्रवस्तमः (अतिशयेन विविध कीर्ति-युक्तः) अग्निर् देवो देवेभिः ([अन्यैः] देवैः) आगमत् ([अस्मिन् यज्ञे] समागच्छतु)। (१६) सैव, १।२।९। कवी (द्रष्टारौ) तुवि-जाता (तुवि जातौ, उग्र कुल-सम्भूतौ) उरु-क्षया (उरु-क्षयौ, पृथु-निवासौ) मित्रा-वरुणा (मित्रा-वरुणौ) नः (अस्माकम्) दक्षम् (बलम्) अपसम् (स-फलम्) दधाते (कुर्वाते)। (१७) मनुः, २।१५१। (१८) स एव,

'सोमपास्तु कवेः पुत्राः' (१९),

'चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान् प्रशस्तान् कवयो विदुः' (२०)

इति मनु वचनेषु

'कवीनामुशनाः कविः' (२१),

'कविं पुराणमनुशासितारम् अणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः' (२२)

इति गीता-वचनयोश्च वैदिकार्थ एवोपलभ्यते। मध्य-युग-साहित्ये तु कवि-शब्दः प्रायः 'काव्यकार'-वाचको दृश्यते। तथा हि, 'मन्दः कवि-यशः प्रार्थी' (२३) इति कालिदासः, 'इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो नमो-वाकं प्रशास्महे' (२४) इति, 'आद्यः कविरसि' (२५) इति च भवभूतिः।

वस्तुतस्तु वैदिके युगे य एव हृदा निगूढमपि तत्त्वमपश्यन् स एव कविरित्याख्यामलभत। रामायण युगे तु यो वै तत्त्वं हृदा दृष्ट्वा आख्यान-मुखेन वर्णयामास प्राधान्येन स एव कविरुक्तः। 'श्रुत्वा पूर्वं काव्य-वीजं देवर्षेर्नारदादृ, ऋषिः' इत्यादि, 'धर्म-कामार्थ-संयुक्तं पुण्यं श्रवण-कीर्त्तनम्' इत्यन्तं च (२६) रामायणोत्पत्ति विवरणमत्र प्रमाणम्।

'आदि काव्यं महत्त्वेतत् पुरा वाल्मीकिना कृतम्' (२७)

इति रामायण-वाक्येनैव रामायणस्य महा काव्यत्वमादि-काव्यत्वं च सूच्येते।

न खलु महाजनस्याविर्भाव आकस्मिको भवति। तद् वक्तव्यम्, प्रागपि कवयो ऽभवन्निति। ते तु सूर्य्योदये तारका इव

७।४९। सर्वाः—कामज-क्रोधज-व्यसनवर्गाः। (१९) स एव, ३।१९८। (२०) स एव, ३।२४। (२१) गीता, १०।३७। उशनाः—शुक्राचार्यः। (२२) सैव, ८।९। (२३) रघु-वंशम्, १।३। (२४) उत्तर चरितम्, १।१। नमो-वाकम्—नमः शब्दोच्चारण-पूर्वकम्। प्रशास्महे—प्रार्थयामहे। (२५) तत्रैव, २। (२६) प्रथमसर्ग अनुक्रमणिका, ५९—६२। (२७) लघु रामायणम्, ६।१२३।८।

वाल्मीकेराविर्भावं व्यलीयन्त। स्रोतांसि महा-नदीमिव प्राक्-सम्भूतानि आख्यानमयानि काव्यान्यपि स्वल्पानि महा-काव्यं रामायणं विविशुः। ततः प्रभृति वाल्मीकिरेवादि-कविरिति नाम्ना प्रसिद्धिमगमत्। एवमेवेदानीं सत्स्वपि शून्य-पुराणादिषु राम-मोहनो वाङ्गाला-गद्य साहित्यस्य पितोच्यते। तदुक्तं कालिदासेन वाल्मीकिमुद्दिश्य,

'स्व कृतिं गापयामास कवि-प्रथम पद्धतिम्' (२८) इति।

यथार्थमेवोक्तं भवभूतिनात्रेयी-मुखेन,

'अथ भगवान् प्राचेतसः प्रथमं मनुष्येषु शब्द-ब्रह्मणस्
ताट्टशं विवर्तमितिहासं रामायणं प्रणिनाय' (२९) इति।

रामायणोत्पत्तेः परमेव केनचिदपर-कविना ग्रन्थोत्पत्तिविवरणमुपनिबद्धम्। 'वृत्तं कथय रामस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम्' इति ब्रह्मोपदेशेन 'तमेवं गुण सम्पन्नं रामं सत्य-पराक्रमम्' इत्यादि 'पालयामास चैवमाः पितृवत् मुदिताः प्रजाः' इत्यन्तं च (३०) नारदोक्तं रामोपाख्यानमेवावलम्ब्य रामायणं निर्ममे इति स्थितेः, रामायणं वाल्मीकीयमादावयोध्याकाण्डादि युद्ध काण्डान्तं चासीदित्यवगम्यते। महा-विभाषा केवलं सीता हरणं तदुद्धरणं राम-प्रत्यागमनं च रामायण-विषयत्वेनोल्लिखन्ती आद्युत्तर-काण्डे परिहरत्येव (३१)। तथा च, रामो भरद्वाजाय आत्मानं निवेदयन् (३२), सीता रावणाय स्व-चरितं विवृण्वती (३३), लक्ष्मणो हनुमते राम चरितं कथयन् (३४), हनुमांश्च सीता-संश्रवणे राम-विवरणं व्याहरन् (३५) सिद्धाश्रम-गमन-धनुर्भङ्ग-

(२८) रघु-वंशम्, १५।३३। प्रथम-पद्धतिः—आदि रीतिः। (२९) उत्तर-चरितम्, २। विवर्तम्—रूपान्तरितम्। (३०) चयसादनुक्रमणिका, ५४, १२, २६ (३१) ज. र. ए. सो., १९०७, पृ. ९९। (३२) लघु रामायणम्, २।१८।२०—२१। (३३) तदेव, ३।१४।४—१६। (३४) तदेव, ४।१।१७—२१। (३५) तदेव, ५।३।२—६।

विवाहादि-प्रकरणानि विहाय अयोध्याकाण्ड-प्रारम्भ एव कथां प्रस्तुवन्ति। एतदपि रामायणस्य अयोध्याकाण्डादित्वं दर्शयति। युद्धकाण्डस्यान्त्ये सर्गे स्थितम्

'आदि काव्यं महत्त्वेतत् पुरा वाल्मीकिना कृतम्' (३६)

इति श्लोकार्धमपि प्रमाणम् युद्ध-काण्डान्तत्वे रामायणस्य। महा॰ ऽ॰ तृतीयं रामोपाख्यानं युद्धकाण्डान्तमेव (३७)।

स्वल्पायतनं चामीरादि-रामायणम्, काण्ड द्वयाभावात्, क्षेप राहित्याच्च। महा विभाषा काले ऽपि तद् द्वादश सहस्र श्लोकात्मकम् अवर्तत (३८)। अधुना तत्र पञ्च-विंशति सहस्राधिकाः श्लोकाः सन्ति

अथ गच्छति काले को ऽप्युत्तर-काण्डं रचयित्वा रामायणेन योजयामास। तद्दर्शयति प्राचीनं मन्तव्यम्,

'रामोऽपि, कृत्वा सौवर्णां सीतां पत्नीं यशस्विनीम्,
ईजे यज्ञैर् बहुविधैः सह वै भ्रातृभिर् युतः' (३९)

इति साम यज्ञ परिशिष्ट-वचनस्य तन्मूलकत्वात्। तस्मिन्नेव काण्डे सीताया अनघत्वं प्रतिपादयितुं रामेणोक्तं मन्त्र भवनं लक्ष्मणं प्रति

'प्रत्यक्षं तव, सौमित्रे, देवानां च हुताशनः
अपापां मैथिलीं प्राह, वायुश्चाकाश-गोचरः' (४०) इति,

शपथ-सभायां वाल्मीकिं प्रति

'प्रत्ययश्च पुरा दत्तो वैदेह्या सुर सन्निधौ,
शपथश्च कृतस्तत्र, तेन वेश्म प्रवेशिता' (४१) इति च।

(३६) लघु रामायणम्, ६।१२१।८। (३७) वन पर्व, २७३—२९०, द्रोण-पर्व, ५९। (३८) ३१-संख्याका पाद-टीका द्रष्टव्या। (३९) कर्म-प्रदीपः (ए. सो. बं. लिपिः, आइ. ह्वि ७८), ३४०। सह वै भ्रातृभिर्युतः—'सह भ्रातृभिरर्चितः' 'सह भ्रातृभिर्युतः' इति वेबर-धृत पाठान्तरं। (४०) लघु रामायणम्, ७।४।१६। (४१) तत्रैव, ७।११।१८।

वैदेह्या अग्नि-प्रवेशस्यानुल्लेखात् प्रतीयते, उत्तरकाण्डोत्पत्तेः परमेव युद्ध काण्डे अग्नि-प्रवेश-विवरणं प्रक्षिप्तमिति। प्रक्षिप्तमपि तत् सुप्राचीनं ज्ञेयं, 'जानकीमिव ज्वलन-वेश्म पत्युः पुरः प्रवेक्ष्यन्तीं ...मातरं ददर्श' (४२) इति सप्तम शताब्दी-सम्भूत बाण विरचिते हर्ष-चरिते दर्शनात्। धर्म-शास्त्रेषु सतीत्व-परीक्षणाय नारीणामग्नि-प्रवेशस्य विधानाभावात् बौद्ध-जातके च तस्य दर्शनात् (४३) सीताग्नि-परीक्षायाः पर-समाज-भवोपाख्यान-मूलकत्वमनुमीयते।

'देवेष ये त्वया प्रोक्ता गुणाः पुरुष-दुर्लभाः,
तेषामेव समवायः साम्प्रतं राममाश्रितः' (४४)

इति नारदोक्तेः राम-काल एव रामायणं रचितमिति स्थितम्। उत्तर-काण्डमनेन सिद्धान्तेन सङ्गच्छते।

'अयोध्या नाम तत्रासीन्नगरी लोक विश्रुता' (४५)

इति तु आदि-काण्ड-विरचन काले अयोध्याया नाम-मात्र-शेषत्वं दर्शयति। अतो वक्तव्यमुत्तरकाण्डात् परमेवादिकाण्डमुदपद्यतेति। तदपि प्राचीनं मन्तव्यम्, 'दशरथश्च राजा परिणत-वया विभाण्डक-महा मुनि-सुतस्य ऋष्यशृङ्गस्य प्रसादात् ... अवाप चतुरः पुत्रान्' (४६) इति बाण-रचितायां कादम्बर्यां दर्शनात्। बहु-कवि कृतित्वं रामायणस्य वचन-विसंवादेनाप्युपलभ्यते।

'इक्ष्वाकूणामिदं तेषां वंशे, कीर्त्ति विवर्धनम्,
निबद्धं पुण्यमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम्' (४७)

(४२) हर्षचरितम् (ईश्वरचन्द्रविद्यासागर-सम्पादितम्, १८८३), पृ. १३७-३८।
(४३) चन्दभूत-जातक। 'सा माणविका...इतरस्स पुरिसस्स हत्थ-सम्फस्सम् न जानामि इमिना सच्चेन अयम् अग्गि मा मं झापेसीति अग्गिं पविसितुं आरद्धा'।
(४४) अधचादनकमालिका, १०। (४५) लघु रामायणम्, १।१।२। (४६) कादम्बरी (काशी-संस्कृता), पृ. १०५। (४७) वङ्गीय रामायणम्, १।५।२।

इति प्रस्तावनोक्तिः इक्ष्वाकु-कुल एव रामायणमजनीति घोषयति, उत्तरकाण्डं तथानुक्रमणिका तु तपो वन एवेति।

इदं हि महा-काव्यं स्व-महिम्नालङ्कार-शास्त्रमधितिष्ठत्येव। यदा इदमद्भुतोपमम् आदि-कवेर्हृदयात् प्रावर्तत, तदालङ्कारशास्त्रं नासीत्। नानेन काव्येन समं किञ्चित् पुरस्तात् परस्ताद् वा प्रादुर्बभूव। महा-काव्येषु प्रथम-पाठार्हत्वेन ये सर्व-जन-समादृते, ते द्वे एव रघुवंश-भट्टिकाव्ये रामायण-प्रसूते; नाटकेष्वपि रामायण-प्रसूते वीरचरितो-त्तरचरिते सर्व-जन-मनो-हरे। असंख्येया खलु इतरे ग्रन्था रामायण-सम्भूताः।

स्वभाव-वर्णने, चरित्राङ्कने, मानव-चित्त-सागर-भाव विलास-प्रदर्शने, व्यक्तीनां गृहाणां समाजानां च परमादर्श-निदर्शने, सार्वजनीन सनातन धर्माभिव्यञ्जने च वाल्मीकिः पूर्वेषामपि कवीनां गुरुः। अनु वाल्मीकिं खलु कवयो वाचि भावे च। निर्मल वायु-कोष-परि-रक्षितमादिम-वन-राजि मण्डितं शैल-शिखरमिव रामायणं शोभनं पावनमुज्जीवनं च। सत्यमेवात्रावलम्बनम्, सुन्दरमत्रोपभोगः शिवं चात्र परिणामः। भाव-प्रवाहा दुर्दर्शा दुस्तराश्च। सङ्घर्षाश्च तेषां भयावहा एव। फलं तु दुर्लक्ष्यमप्यवश्यम्भावि—यतो धर्मस्ततो जय इति। न दैवा अकाण्ड आविर्भूय मानवस्य चरित्र-बलं स्वेच्छा-प्रणोदितं कर्म-प्रवाहं वा व्यर्थीकरोति, न चादृष्टं नाम कश्चिद् दानवः पूर्व-जन्म-सम्भवः कर्म यत्नो वा पुरुषकारं निष्फलतां नयति। यत् किञ्चन असत्यमशुभं च, तत् सर्वं परिहर्तव्यमित्याख्यान-मुखेन निन्द्यते, यत्तु सत्यं शुभं च तदेवाश्रयणीय-मिति प्रशस्यते। हत्या निष्ठुरता च जयमात्र-प्रयोजना। युद्धे चैव ऽप्ययुध्यमानाः पलायमानाश्च नाहन्यन्ते। न च बहुमता निहता अपि बहुमानेन वियोज्यन्ते। न विजयो ऽधिकार-हरणाय। शौर्यं यथा विक्रमे तथा बाह्याभ्यन्तर-क्लेश-सहने ऽपि। यथोक्तलक्षणास्तथा सुकुमारा

अपि गुणाः सममेव प्रकाशन्ते। आदि-कविः वागर्थ-शिल्पिनामपि गुरुः। न तस्याति-सूक्ष्मे ऽपि चित्रे दुर्निरीक्ष्यो ऽपि मर्मो-विन्दुरुपलभ्यते। मधुरा सरला च वाल्मीकेर् भारती। स्वभाव-जः सनातनश्चास्य भावः। स्थान एव कवि हृदि तयोः सङ्गमो ऽभूत्।

इह खलु वर्षे रामायणं न केवलं काव्यं, प्रत्युतेतिवृत्तम्। जन-कोटयस्तस्यानुवादमपि यथार्थं मत्वा श्रावं श्रावं मुहुर्मुहुः हृष्यन्ति। हिमाचल-क्रोड़-लालिता नेपालिनी परिचारिका कथं कथमपि वर्ण-परिचयमुपलभ्य नेपालि-रामायणं सु-स्वरं पठित्वा अवसर-कालं नयति। आय-मेनिकाः प्रत्यहमभिनिर्याणान्ते गोष्ठ्यां गोष्ठ्यां भक्ति-पूर्वं हिन्दि-रामायणं गायन्ति च शृण्वन्ति च। द्वार-पाला आपणिकाश्च स्वल्पे-ऽप्यवसरे तथैव कुर्वन्ति। वङ्ग पल्लीषु पुरुषा रमण्यश्च वङ्गानुवादं केचित् पठित्वा केचित् पाठयित्वा केचिद् गीत्वा केचिद् गापयित्वा केचित् श्रुत्वा केचित् श्रावयित्वा परमानन्दं लभन्ते। आसाम वन-प्रस्थे उत्कल-प्रान्तर-पल्ल्यां तैलिङ्ग-भूमौ तामिलके कर्णाटे मालावारे महा-राष्ट्रे गुर्जरे पञ्च-नद-प्रदेशे च रामायणस्यानुवादो यथा काव्यं तथेतिवृत्तमपीति सादरं पठ्यते।

अतीतानि राम-कालात् परं कानिचिद् वर्ष-सहस्राणि। अद्यापि रामायण-वृत्तान्तं यथार्थ इति मनसिकृत्य सीता-राम-चरण-स्पृष्ट-भूमि-सन्दर्शनाय वर्षे वर्षे विंशति-कल्पानि लक्षाणि भारतानां चित्रकूटमभि-गच्छन्ति (४८)। सहस्राणि च अयोध्यातो निर्गत्य राम-भ्रमण-मार्गेण सिंहलं यान्ति (४९)। यान्ति यति नराश्चित्रकूटं, न तति मक्कां जरुजलेमं वा।

वस्तुतस्तु काव्यमपि रामायणमितिवृत्तम्। तद्धि नाम युग-

---

(४८) सिलम् राम् एण्ड् होमार्, पृ. ११२, पाद टीका। (४९) तदेव, पृ. ९१।

विशेषमाश्रितं वर्षविशेषस्य गृह-समाज-राष्ट्राणां यथार्थं विवरणम्। तत्र पितुः शासनं, दुहितुः कौमार्यं, पत्न्याः पातिव्रत्यं, पत्युः समादरः, पित्रोर्भक्तिः, अपत्ये स्नेहो, भ्रात्रोः सौहार्दं, विवाहादयः संस्काराः, दाय-विभागो, विधिर्, व्यवहारो, व्यवस्था, राजवंशाः, शासन-प्रणाली, राज्ञोर् वैरम्, अभिनियोगो विग्रहः सन्धिः, कुमन्त्रो, विद्रोह, उत्सवश्चेत्यादयो विषयाः पूर्वापर-सम्बद्धतया साङ्गं सहेतुकं च काल-निर्देश-पूर्वं वर्ण्यन्ते। आदिममितिवृत्तमुपन्यास-मिश्रम्, आदिम उपन्यासश्च इतिवृत्तमिश्रो भवति। यथा हि यत्नस्तथा जातेरपि शैशवे प्रत्यक्षस्य स्वल्पत्वात्, विचार-बुद्धेः स्थौल्यात्, कौतूहलस्य चानिवार्यत्वात्, प्रत्यक्षानुमितयोः सम्भृत-सम्भाव्ययोः, भूताभाविनयोः, सुपरिज्ञात-कल्पितयोश्च विवेकः प्रायेण न घटते। इत्थमन्याश्च संस्काराः पुरुष-परम्परया प्राप्ताः। तन्नैतच्चित्रं यद् रामायणमितिवृत्तमपि काव्यं, काव्यमपीतिवृत्तमिति।

इदमेवेतिवृत्तं रामायणादुपलभ्यते। आसन्नार्यावर्ते कोशल-केकय-विदेहादयो जनपदाः। अयोध्या-राजगृह-मिथिलादयस्तेषां राजधान्यो बभूवुः। राजसु तेषामार्येषु कोशलाधिपः श्रेष्ठ आसीत्। राज्यं चासीत् तस्य पितृ-तन्त्रम् अमात्य-चक्र-नियमितं प्रजाभिमत-निर्दिष्ट-गति। स उद्यन्तं सूर्यं विष्णुं चोपासाञ्चक्रे, देवेभ्यो हविर्जुहाव, पितॄन् देवांश्च तर्पयामास (५०)। क्षत्रियो विना पुरोहितं—विनेव ब्राह्मणमपि—देवेभ्यः पितृभ्यश्च मामिषं भोज्यं निवेदयामास (५१), विना च पुरोहितं क्षत्रियाण्यपि विष्णु-प्रभृतीन् देवानर्चयाञ्चक्रे (५२)। राजा महर्षीणां पादाभिवन्दनं चकार (५३)। ऋषयो ब्राह्मणा अपि क्षत्रिय-जातीयान् नृपान् पूजयाञ्चक्रिरे (५४)। नार्यो ऽनार्य

---

(५०) लघुरामायणम्, १।१।१, १।१८।३७, १।८।२७। (५१) तत्रैव, १।१८।११ १८।
(५२) तत्रैव, २।२।३२ ; १।८।१-२ ; १।१८।५-७। (५३) तत्रैव, १।१८।१८, ३।१।१९, १।४।१४। (५४) तत्रैव, १।१८।१९, १।१।७, १।४।१६।

सामाजिकं धर्मं सम्यगाचरति स्म (५५)। कदाचिद् राज्ञो बहु-पत्नीकत्वाद् युव-राजस्याभिषेके उपद्रवः समजनि। धनुर्बाण-खड्ग-चर्माणि चास-न्नार्याणामायुधानि। बाणस्तु विस्फोटो बाणास्त्रमूर्च्छः अङ्गुलि-त्रं तनु त्राणं चास्ताम्। 'दुर्गा', 'महा-शाला-वृता' 'दुर्ग-गम्भीर-परिखाश्च' (५६) 'चयाट्टालक-पर्यन्ताश्च' (५७) च राजधान्यो बभूवुः। दुर्ग-प्राकारे शत-घ्नी नाम अयः-कण्टक-संकुला, चतुस्ताला यष्टिः महती शिला वा न्यविश्यत (५८)।

आसांश्च दक्षिणापथे वानर-राज्यम्। वानराः खलु ते मानवा विभिन्न-जातयो वर्षस्यादिमाधिवासिनो ऽनार्या बहु-वर्णाश्च ये महा-वनानां वृक्षेषु गिरि गुहासु च न्यवसन्। प्रभूतं शारीर बलं सारल्यम् आर्याणामानुगत्यं राक्षस-द्वेषः प्रभु-भक्तिश्चासन् तेषां लक्षणानि। प्रस्तर खण्डानि वृक्षाश्च बभूवुस्तेषामायुधानि।

आसं श्चार्यावर्तस्य महा-वनेषु दण्डकायां च नर-भक्षका लिङ्गोपास-काश्च (५९) नरा राक्षसा नाम। न परिजग्रहुस्त आर्याणामेकमपि देवम्। न केवलं ते ऽकर्माणो ऽदेवयवो ऽव्रतो ऽव्रता अ-ब्रह्माणो ऽयज्वान-श्चासन् (६०), प्रत्युत यज्ञ वेदीस्तरसाभ्युपेत्य रुधिरेणाभिवर्षुः (६१), महर्षीन् भक्षयामासुः (६२), रूपवतीश्च रमणीः बलात्कारेण गृहीत्वो-पयेमिरे। गदा शूलः शक्तिः परश्वधः परिघः पट्टिशः प्रासो ऽसिर्मुद्गरो धनुर्बाणौ मुषलः कूट मुद्गरो भिन्दिपालः शतघ्नी चासन् तेषामायुधानि।

(५५) तदेव, ४।४।२९—३२। (५६) तदेव, १।१।५,६। (५७) तदेव, १।८।३। (५८) वङ्गीय रामायणम्, १।५।१२। (५९) ऋग् वेद-संहिता, ७।२१।५, १०।९९।३, रामायणम् (वङ्गीयम्), ७।२०।४२—४४। (६०) ऋग्-वेद-संहिता। अ-कर्माणः—यज्ञशून्याः। अ-देवयवः—अ-देव-पूजकाः। अव्रतः—शौच-रहिताः। अ-ब्रह्माणः—पुरोहित-हीनाः। अ-यज्वानः—यज्ञ-रहिताः। मुम्बयी रामायणम्, ७।१६।२२—२५, ७।२७, ७।२०।१४। (६१) लघुरामायणम्, १।३।६। (६२) तदेव, ३।२।१८, ३।३।२२।

राक्षस-नेतार आर्यैर्विजिताः सानुचरा भारत-वर्षान्निर्गत्य द्वीपान्त्य-ध्युषुः (६३)। ये तु राक्षसा भारतवर्षे न्यवसन्, तेऽपि, स-जातित्वात्, लङ्काधिपं राक्षस-राजं शरण्यं मेनिरे। बलवन्तो राक्षसा नाम आर्यावर्तं तदुत्तर प्रदेशं चाभ्युपगम्य क्वचित् प्रणयेन क्वचिद् युद्धेन क्वचिच्चौर्येण रूपवतीर्नारीर्भार्यात्वेन परिजगृहुः (६४)। द्वीप वासिना कुब्जिना शठेन रूप-मुग्धेन आर्यावर्ताद् राजभार्या-हरणं जातक-कथायामपि स्मर्यते (६५)। राक्षसाद्यपहरण-कलङ्क-भयेनार्येषु कन्या-हत्या प्रचचार। 'तस्मात् स्त्रियं जातां परास्यन्ति, न पुमांसम्' (६६) इत्यनुमोदनं चात्र श्रूयते। कश्चिदार्यो ऽपि प्रार्थना परितुष्टो राक्षसीं भार्यात्वेन परिजग्राह (६७)। राक्षसादार्यायामार्याद् राक्षस्यां वा यो ऽजायत सो ऽपि राक्षसो ऽभवत्। एवमार्य शोणित संमिश्रणेन उपरितनो राक्षस वंशः शोणितोन्नतिमापद्यत, उपरितनो राक्षस-समाजस्य शिष्टाचार मसुन्नतिम् (६८)। ततः केचिद् यागेनाग्नि-मूर्त्तिं लिङ्गमुपासाञ्चक्रिरे, लिङ्ग-रुद्रयो रुद्राग्न्योश्चाभेदोपलम्भात् (६९)। एवमेव क्रमेण वैदिक धर्मो ऽपि तान् आर्य राक्षसानाशिश्रिये।

आर्य-प्रभाव-विस्तार एव दक्षिणापथ-लङ्कयोः रामायणेतिवृत्तमिति मन्वानो भद्र-वेबरो (७०) भ्रान्त एव। न हि रामस्तत्र आर्य राज्यं स्थापयाञ्चकार, न चार्याननुपनिवेशयामास, न च वानर-राक्षसानार्य भावं ग्राहयितुं प्रयेतिरे। केचिद् रामादि नाम्नां याथार्थ्यं अनिच्छन्तो आकाश-

(६३) रामायणम्, ७।६।८। (६४) तत्रैव, ७।१--३२। (६५) सुश्रोन्दि-जातक। (६६) वेबर-धृत काठक-वचनम् (२७।४)। (६७) रामायणम्, ७।९। (६८) लघु रामायणम्, ३।७।१७, ६।९।१३, ६।१०।२५ २६। (६९) 'शिपिविकद्रः'—शतपथ-ब्राह्मणम्, ६।१।३।१०। लिङ्ग-पुराणस्य १।१७।५—५० तथा १।१९।८-प्रभृतीनि वचनानि पठितव्यानि। (७०) माकडनेलम् हि. स. लि. पृ. २११।

प्रसूतं मन्यन्ते रामायणम्। तन्न साधु। न हि शास्त्रां कृत्रिमत्वेन लोक-वृत्तम् अ-यथार्थं भवति।

राम-सीता-लक्ष्मण-हनुमदादीनां देश-काल-निरपेक्षतया आदर्श-चरित्रतया रामायणं काव्यमपि शास्त्रमभूत्। तस्य पाठे चित्त-शुद्धी यत्र उत्पद्यते, गृह्येषु, सामाजिकेषु, राष्ट्रीयेषु च कृत्येषु प्रवृत्तिर्जायते, स्वार्थपरता-सम्भूतेभ्यो ऽपराधेभ्यो निवृत्तिश्च भवति। स्मर्यते च तस्य योजना वेद-भारत पाञ्चरात्रैः। तथा हि स्कान्दे,—

'ऋग्-यजुः-सामाथर्वा च भारतं पाञ्चरात्रकम्
मूल-रामायणं चैव शास्त्रमित्यभिधीयते ;
यच्चानुकूलमेतस्य तच्च शास्त्रं प्रकीर्तितम्' (७१) इति।

यच्चानुकूलमेतस्येत्यादिना प्राकृत-रामायणानामपि शास्त्रत्वम्। ब्रह्मवैवर्त-पुराणं पुराणानां नामान्युक्त्वा

'इतिहासो भारतं च वाल्मीकि-काव्यमेव च' (७२)

इति रामायणं पुराणैर्भारतेन च योजयति। शास्त्रत्वादेव पुराणेषु संक्षेपेण रामायणं प्रोच्यते। तथा हि, स्कन्द-पुराणे निर्वाण-खण्डे ऽस्ति राम-गीता (७३)। अग्नि-पुराणे विष्णु-पुराणे च सप्त-काण्डात्मकस्यैव रामायणस्य संक्षेपो दृश्यते (७४)। पद्म-पुराणे ऽपि रामोपाख्यानमस्ति (७५)। ब्रह्माण्ड-पुराणे अध्यात्म रामायणं वर्तते (७६), यतोक्तं रामायणं सर्व-पुराण-सम्मतमिति। पुराणोक्तं रामोपाख्यानं गाथेत्याख्यामलब्ध। तदुक्तं हरि वंशे, राम-कथान्ते,—

(७१) सर्व दर्शन-संग्रह-धृतं स्कान्द पुराण-वचनम्। सर्व दर्शन-संग्रहः (जीवानन्द-सम्कृत:), पृ. ७१। (७२) ब्रह्मवैवर्त-पुराणम्, ४।१३३।२१। (७३) ए. एस्. बे. लिपि:। (७४) अग्नि-पुराणम्, ५-११। विष्णु-पुराणम्, ४।४।४०—५०। (७५) पद्म पुराणम्, १।२५—३८, ५।१—६९। (७६) ए. एस्. बे. लिपि:।

'गाथा अप्यत्र गायन्ति ये पुराण-विदो जना:
रामे निबद्ध-तत्त्वार्था—माहात्म्यं तस्य धीमत:' (७७) इति।

यथैशाख्येषु नव-नियमस्य प्रभावस्तथैव वेद-वादिषु—उदीच्येषु ततो ऽधिक एव (७८)—रामायणस्य। एतत् खल्वद्यापि भारत-वर्षे जागरूकं जन-कोटीनां चरितानि नियमयदास्ते। वर्णनीयत्त लोक-प्रतीतिश्चोपकरणीकृत्य जन-हृदो ऽपरिस्फुटमज्ञातं दुर्बोधं चाकाङ्क्षित-मारण्यीकृत्य च प्रावर्ततेति रामायणं जन्म-प्रभृत्येव सर्व-जन-समादृत-मभूत्। प्राकृतानां जन्तुपासन-परत्वाद् अति-बला वानराख्या वन्या मानवा देवांशा:, बलवन्तो युद्ध-चौर्य-क्रौर्यादि-कुशला राक्षसाश्च देव-प्रभावाम्, तथा प्रकृति-समीक्षणाभावात् यत्र कुत्रचित् स्थितानि शैल-खण्डानि, जन-सहस्रैरपि चालयितुमशक्यानि, देव-देवांश-मानव-निक्षिप्तानि चेति लोक-प्रतीतिरासीत्। राज्ञां सत्य प्रतिज्ञत्वं, दृष्टान्तेन दण्डेन च धर्म-रक्षणम्, आश्रित-जन-संरक्षणं च, पितुराज्ञ शासनम् अनुजस्याग्रजानुगत्वं, पत्न्या: सतीत्वं पातिव्रत्यं च, पत्यु: प्रेमा रक्षण-सामर्थ्यं चेत्यादीन्याकाङ्क्षितान्यासन्।

स्व-प्रभावेणैव रामायणे शास्त्रत्वमापन्ने नायको रामो ऽपि देवत्व-मवाप। तत्रादाविन्द्र एव प्रधानो देव आसीत्, विष्णुर्द्वितीय:। विष्णोर् इन्द्रानुगत्य

'छत्र-चामर-पाणिस्तं प्रयान्तं लक्ष्मणस्तदा
अन्वारुरोह देवेन्द्रमुपेन्द्र इव हर्षयन्, (७९)

इत्यादि प्रमाणम्। कालात्यये देव-राष्ट्र-विप्लवे सति पुरस्तात् ब्रह्मा पश्चाद् विष्णु: प्रधानो बभूव, रामश्च प्रथमं विष्णुपासकस्ततो देवत्व-प्राप्तौ

(७७) हरि-वंश: (मुम्बय्यां मुद्रित:, १८८५), १।४१।४९। (७८) यौषिद्रस् रामायण, इन्ट्रोडाक्शन, पृ. २८। (७९) लघु रामायणम्, २।७।२५।

स्वयमेव विष्णुः । यदा नारदो वाल्मीकये रामोपाख्यानमवदत् तदा ब्रह्मा प्रधानो देव आसीत् (८०), रामश्च मानुषः । राममेव हि मनसिकृत्य स प्रोवाच,

'श्रूयतां तु गुणैरेभिर्यो युक्तो नर-चन्द्रमाः' (८१) इति ।

'कौशल्याजनयद् रामं विष्णु तुल्य-पराक्रमम्' (८२)

इति जन्म-विवरणे,

'स-पत्न्या सेव्यमानं श्रियेव मधु-सूदनम्......

ववन्दे राममभ्येत्य सुमन्त्रो, विनयान्वितः' (८३)

इति राम-सुमन्त्र-समागम-वर्णने,

'तस्थौ भर्त्तारमासाद्य श्रीर्विष्णुमिव रूपिणी' (८४)

इति रावण-वधोत्तर-सीता-राम-समागमाख्याने च रामो मानुष एव । न हि कश्चिदात्मनोपमीयते, उपमायाः सादृश्य-मूलकत्वादभिन्नत्वे सति सादृश्य-कल्पनाया अनौचित्याच्च ।

'अपश्यदाश्रमे रामं स्वर्ग-च्युतमिवामरम्' (८५)

इति साधारण देवेन,

'न्यवसत् सहितो वीरः सीतया लक्ष्मणेन च

कश्चित् कालं स धर्मात्मा, स्वर्गे इन्द्र इवापरः', (८६)

इतीन्द्रेण,

'स विलोक्य मुहूर्त्तं तु ददर्श भरतो गुरुम्,... ...

महात्मानं, महा-भागं, ब्रह्माणमिव शाश्वतम्' (८७)

(८०) तदेव, १।२।८, २।२१।२९—३१ ; पश्चादनुक्रमणिका, ४८ । (८१) तैव, १० । (८२) लघु रामायणम्, १।२।३ । (८३) तदेव, २।७२२-२३ । (८४) तदेव, ६।१६।१८ । (८५) तदेव, २।९२।४५ । (८६) तदेव, ३।५।२८ । (८७) तदेव, २।२१।२९—३१ ।

इति अन्यथा,

'प्रासाद-स्थो रथ-स्थं तं ददर्शायान्तमात्मजम्,
गन्धर्व-राज-प्रतिमं, लोके विख्यात-पौरुषम्' (८८)

इति चित्रयन्नोपमापि अवतार-वादं बाधते, प्रधानस्य सत्त्व-प्राप्ति-प्रसङ्गात्। न रामे विष्णुत्व-कल्पना कथमपि सम्भवति। स हि महाभागो मानव-साधारणतामभिसन्धित्सुर्योगं नैव चिन्तां भार्ये च साधारणीचकार। यदि रामो याथार्थ्येन सर्वज्ञस्य विष्णोरवतारो ऽभविष्यत्, तर्हि मृते दशरथे,

'क नु, तात, पिता ते ऽभूद् यदरण्यं त्वमागतः' (८९)

इति स भरतं नावदिष्यत्, अपहृतायां च वैदेह्यां

'पर्वतं बहु-कूटं च, नाना-धातु-समावृतं,
स-कानन-वनं, रामो ऽचिनोत् सह लक्ष्मणः' (९०)

इति वाल्मीकिर्नावक्ष्यत्, लक्ष्मणश्च

'तत् तु न ज्ञायते रक्षो येनास्यापहृता प्रिया' (९१)

इति हनूमन्तं नाकथयिष्यत्।

नापत्रायते राम-चरितम् अवतारत्व-प्रतिपादकानां श्लोकानां वर्जने ऽपि, न चाख्यान-वस्तु तथा-विधानां सर्गाणाम्। न हि ते श्लोकाः सर्गाश्च ग्रन्थस्याङ्गत्वमापद्यन्ते, समन्वयाभावात्।

'तौ तु प्रज्वलितैर्बाणैरर्दितौ मर्म-भेदिभिः
निपेततुर् महेष्वासौ जगत्यां जगती-पती' (९२)

इति चावतार-वादेन विरुध्यते। न हि राक्षस-शर-घातेन सर्व-शक्तेर्विष्णोः प्राकृतस्येव समरे चेतो मृत-कल्पो भूत्वा पतनं कथमपि प्रत्ययमर्हति। अनन्य-सहाय एव रामो रावणं जघानेति (९३) च तस्य

(८८) तदेव, २।३।१६। (८९) तदेव, २।७२।१। (९०) तदेव, ४।१।३। (९१) तदेव, ४।१।७०। (९२) तदेव, ६।२।३०। (९३) तदेव, ६।१३४,२८।

प्रधान-देवत्वं निरस्यति। सीता च घोर-वने विललाप, श्रुवतो भर्तुर् दुर्निवार-शस्त्र-सहायत्वम् अ-मोघ-शस्त्रत्वं च दृष्ट-शत्रु-जये, दुरतिक्रमत्वं कृतान्तस्य, सामर्थ्यं च कालस्य कर्म-फल-प्रदाने, न सत्त्वादपि पत्युर्विष्णुत्वम्। सीतापि रामं मानुष इति बुबुधे।

'कौसल्यायतने विष्णोः शिश्ये नर वरात्मजः',

'तुष्टाव प्रयतश्चैव प्रणम्य मधु सूदनम्' (६४)

इति विष्णुम्,

'उपास्त मानुजः सर्यमुद्यन्तं सह सीतया' (६५)

इति सूर्यस्योपासीनो रामो मनुष्य एव। न हि विष्णुर्विष्णुमुपासीत सूर्यं वा।

'हविर्हुत्वा च देवेभ्यः पितृभ्यस्तदनन्तरम्' (६६) इत्यादि

'तर्पयित्वा तु विधिवत् पितॄन् देवांश्च राघवः' (६७) इत्यादि च रामस्य जन-साधारणत्वं ख्यापयति, हवनस्य तर्पणस्य चामरेष्वनुपपत्तेः।

श्लोकं जग्धोः पूर्वं परं वा रामोऽवतारो बभूव। यदुक्तं भासेन तदुत्तर-द्वितीय-शताब्द्यां,

'शङ्ख-क्षीर-वपुः पुरा कृत युगे नाम्ना तु नारायणस्,
त्रेतायां त्रि-पदार्पित-त्रि-भुवनो विष्णुः सुवर्ण-प्रभः,
दूर्वा श्याम-निभः स रावण-वधे रामो युगे द्वापरे,
नित्यं यो ऽञ्जन-सन्निभः कलि-युगे वः पातु दामोदरः' (६८)

इति। प्राकृत-वचनानि समालोक्य कवेरस्य कनिष्क-समकालीनाद् अश्वघोषात् श्लोकं कनीयस्त्वं वक्तुमर्हामः।

नन्वमरेण विष्णु-नामसु यथा कृष्णः, न तथा राम उदलेखीति, उच्यते,

---

(९४) तदेव, २।३।१,४। (९५) तदेव, २।६।२७। (९६) तदेव, २।१९।२७। (९७) तदेव, २।६।२७। (९८) बाल-चरितम् (अनन्तशयन संस्कृतम्), पृ. १।
शङ्ख-क्षीर-वपुः—श्वेत-कायः।

नाप्युल्लेखो ऽस्मात्तिस्थे प्रमाणम्। सत्यपि ह्यवतारे उपासक-विरलत्वेन प्रसिद्ध-ग्रन्थाभिधाने नाम्नो ऽनुल्लेखः सम्भवति।

चरितानि रामायणस्य भारतीयान्येव। इहैव तानि सम्भूय प्रावर्धिषत। तदिक्ष्वाकुमधिकृत्याभ्युक्ता ऋक्

'यस्येक्ष्वाकुरुप व्रते रेवान् मराय्येधते
दिवीव पञ्च कृष्टयः' (९९)

इति। दशरथमधिकृत्य चाभ्युक्ता

'चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति' (१००)

इत्यादिः। रामञ्चाधिकृत्य

'प्र तद् दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु' (१०१)

इत्यादिः। न त्वेते त्रयो राजानः सकुलाः श्रूयन्ते। वाल्मीकिरेव तानेकवंश्यानकार्षीत्। सीता चादौ कृषेरधिदेवतासीत्। तदेते ऋचावभ्युक्ते—

(९९) ऋग्-वेद-संहिता, १०।६०।४। यस्य [जनपदस्य] इक्ष्वाकुः [राजा] रेवान् (रयिमान्, धनवान्) मरायी (मारकः) [च सन्] व्रते (रक्षण-व्रते) उपैधते (प्रवर्धते), [यस्य भूमौ] दिवि (स्वर्ग-लोके) इव पञ्च कृष्टयः (जनपदाः) [सन्ति]।

(१००) सैव, १।१२६।४। दशरथस्य चत्वारिंशत् शोणाः (रक्त-वर्णाः) [अश्वाः] [गो-यूथ-] सहस्रस्य अग्रे [रथ-] श्रेणिं नयन्ति।

(१०१) सैव, १०।९३।१४। दुःशीमे पृथवाने वेने असुरे (बलवति) रामे मघवत्सु (धनवत्सु) [च] तत् [स्तोत्रं] प्रवोचम् (प्र-ब्रवाणि)।

'अर्वाची सु-भगे, भव, सीते ; वन्दामहे त्वा,

यथा नः सुभगाससि, यथा नः सुफलाससि' इति,

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु ;

मा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्' इति च (१०२)।

मेव गच्छति काले प्रजापतेर् दुहिता भूत्वा सोमं पतित्वेन वव्रे । तथा हि,—

'अथ ह सीता सावित्री सोमं राजानं चकमे । श्रद्धामु स चकमे । सा ह पितरं प्रजापतिमुपससार । तं होवाच, "नमस्ते अस्तु, भगवः । उप त्वा यामि । प्र त्वा पद्ये । सोमं वै राजानं कामये । श्रद्धामु स कामयत" इति । तस्या उ ह स्थागरमलङ्कारं कल्पयित्वा, दश-होतारं पुरस्ताद् व्याख्याय, चतुर्होतारं दक्षिणतः, पञ्च-होतारं पश्चात्, षड्-होतारमुत्तरतः, सप्त-होतारमुपरिष्टात्, सम्भारैश्च पत्निभिश्च मुखे ऽलङ्कृत्य आस्यार्धं, वव्राज । तां होदीक्ष्योवाच, उप मा वर्तस्वेति । तं होवाच, भोगन्तु म आचक्ष्व । एतन्म आचक्ष्व यत्ते पाण्याविति । तस्या उ ह त्रीन् वेदान् प्रददौ । तस्माद् ह स्त्रियो भोगमेव हारयन्ते । इति ।' (१०३)

(१०२) तैव, ४।५७।६, ७ । [हे] सु भगे सीते, त्वम् अर्वाची (अभिमुखी) भव । यथा नः (अस्मभ्यम्) सुभगाससि (सु-भगा भवसि, सौभाग्य-दायिनी भवसि) यथा नः सुफलाससि (सु-फल-दायिनी भवसि) तथा त्वा वन्दामहे । इन्द्रः सीतां निगृह्णातु (गृह्णातु), पूषा तां अनुयच्छतु (नियमयतु, परिचालयतु) । सा पयस्वती (उदकवती) [सती] उत्तरामुत्तरां समाम् (उत्तरमुत्तरं संवत्सरम्) नः (अस्मभ्यम्) [शस्यम्] दुहाम (दुह्यात्, दोग्धु) । (१०३) तैत्तिरीय-ब्राह्मणम्, २।३।१० ।

अत्र स्थागर-पिष्टेनालङ्करणं रामायणे ऽनसूया-दत्तेनाङ्ग-रागेण यत् भूषणं वर्ण्यते (१०४) तस्य पूर्वाभास एव। यज्ञ-सूत्रेष्वियमेव सीता इन्द्र-पत्नी भूत्वा नारी-जनोचित-कल्याण-गुण-गणालङ्कृतेति पत्या सह पूज्यते; तस्या गोप्तारश्च प्रधर्षण-सम्भावनया सर्वास्वेव दिक्षु समाहूयन्ते। तथा हि,—

'पृथिवी द्यौः प्र-दिशो दिशो यस्मै द्युभिरावृताः,
तमिहेन्द्रमुपह्वये—शिवा नः सन्तु हेतयः—स्वाहा!
यन्मे किञ्चिदुपेप्सितमस्मिन् कर्मणि, वृत्रहन्,
तन्मे सर्वं समृध्यतां जीवतः शरदः शतं—स्वाहा!
सम्पत्तिर्भूतिर्भूमिर्वृष्टिर्ज्यैष्ठ्यं श्रैष्ठ्यं श्रीः प्रजामिहावतु—स्वाहा!'
यस्या भावे वैदिक-लौकिकानां भूतिर्भवति कर्मणाम्,
इन्द्र-पत्नीमुपह्वये सीतां—
सा मे त्वनपायिनी भूयात् कर्मणि कर्मणि—स्वाहा!
अश्वावती गोमती सूनृतावती बिभर्ति या प्राण-भृतो अ-तन्द्रिता,
खलमालिनीमुर्वरामस्मिन् कर्मण्युपह्वये—
सा मे त्वनपायिनी भूयात्—स्वाहा!' इति ॥ १२ ॥
'पुरस्ताद् ये त आसते सु-धन्वानो निषङ्गिणः,
ते त्वा पुरस्ताद् गोपायन्त्व-प्रमत्ता अनपायिनो!—
नम एषां करोम्यहं, बलिमेभ्यो हरामीमम्' इति ॥ १३ ॥

स्थागरः—कश्चित् सुरभि-द्रव्य-विशेषः। दश होतारं पुरस्तात् व्याख्याय &c.—पूर्वादि-दिक्षु दश होत्रादि मन्त्रान् पठित्वा &c. सम्भारेय पतिभिश्च—सम्भार-मन्त्रैः देव-पत्नीमन्त्रैश्च अभिमन्त्रितेन स्थागर-पिष्टेन। भोगन्तु मा भायच्च—सर्वदा भोग करिष्यामीति मे प्रतिज्ञामांडि।

(१०४) सत्र रामायणम्, २।११२१—२५।

'अथ दक्षिणतो ऽनिमिषा वर्मिण आसते,
ते त्वा दक्षिणतो गोपायन्त्व-प्रमत्ता अनपायिनो !—
नम एषां करोम्यहं, बलिमेभ्यो हरामीमम्' इति ॥ १४ ॥
'अथ पश्चाद् आभुव: प्रभुवो भूतिर्भूमि: पार्ष्णि: शुनङ्कुरि:,
ते त्वा पश्चाद् गोपायन्त्व-प्रमत्ता अनपायिनो !—
नम एषां करोम्यहं, बलिमेभ्यो हरामीमम्' इति ॥ १५ ॥
'अथोत्तरतो भीमा वायु-समा जवे,
ते त्वोत्तरत: क्षेत्रे खले गृहे ऽध्वनि गोपायन्त्व-प्रमत्ता अनपायिनो !—
नम एषां करोम्यहं, बलिमेभ्यो हरामीमम्' इति ॥ १६ ॥ (१०५)

इह खल्विन्द्रो रामस्य, इन्द्र-पत्नी च राम-पत्न्या: प्रथम-रूपमेव भाति, सीता-प्रावो राक्षसानां च। इन्द्र-प्रसङ्गेनात्र इन्द्र-प्रावृरिति नाम्ना प्रसिद्धो वृत्र: स्मर्यते (१०६), रामायण-बीजमिव सरमोपाख्यानं

(१०५) पारस्कर-गृह्य-सूत्रम्, २।१७।९, १३—१६। द्युभि:—कान्तिभि:। केतय: —वर्णादीनि आयुधानि। उपेप्सितम्—प्रार्थितम्। समृध्यताम्—समृद्धिं प्राप्नोतु। सम्पत्ति:—धनाद्युपचय:। भूति:—ऐश्वर्यम्। भूमि:—आश्रय:। हृष्टि:—[धर्म-]हर्षणम्। ज्यैष्ठ्यम्—ज्येष्ठत्वम्। श्रैष्ठ्यम्—सर्वोपकारित्वम्। श्री:—प्रतिष्ठा-सम्पत्त्यादि। प्रजाम्—सन्ततिम, पुत्रादिकम्। भावे—सद्-भावे। अनपायिनी—स्वाद्यादि-वृद्धि-कारिणी।।अश्वावती—अश्वा विद्यन्ते अस्याम् (दैर्घ्यंश्छान्दस:)। सूनृताम्—मधुर-वाक्याम्। खल-मालिनी—खले (धान्य-राशि-स्थाने) मालते (शोभते) इति। ध्रुवा—स्थिरा। अनपायिनी—दु:ख-ध्वंसिनी। १२। [हे सीते]। सु-धन्वान:—शोभन-धनुष्मन्त:। निषङ्गिण:—स-तूणीरा:। पुरस्तात्—पूर्व-भागे। आसते—तिष्ठन्ति। पुरस्तात्—प्राच्यां दिशि। गोपायन्तु—रक्षन्तु। अ-प्रमत्ता:—सावधाना:। अनपायिन: —कष्ट-हरा:। अ-निमिषा:—निमेषम-कुर्वाणा:। १५। पश्चाद्—पश्चिमायां दिशि। आ-भुव:—समन्ताद् भवा:। प्र-भुव:—प्रकर्षेण भवा:। भूति: &c.—भूत्यादि-नामान:। (१०६) ऋग्-वेद-संहिता, १।१२१।६, लघु-रामायणम्, ६।५।४६, ६।७५।

च (१०७), पणय इन्द्रस्य गा अपहृत्याति-दूरे गिरि-दुर्गे बध्नन्ति, सरमा नाम शुनी चेन्द्राज्ञया रसासुत्तीर्य दुर्गमधिगम्य पणीन् गाः प्रार्थयते, विफल-मनोरथा सती प्रतिनिवर्त्तते च ; तत इन्द्रः स-बलो ऽभिनिर्याय पणि-दुर्गं दारयित्वा गा उद्धरतीति। किञ्च, इन्द्र-पत्नी भू-तल-स्था भवति, राम-पत्न्यपि भू-तलादुत्थिता (१०८) भू-तलमेव प्रविशति (१०९)। अपरञ्च, सन्ति मरुत इन्द्रस्य सहायाः, मारुतिरपि भवति सहायो रामस्य।

अथ कदा रामायणं चरतीति आलोच्यते। आर्याः खलु *रामायण-काले* वैदिक-देव-प्रधान-बहु-देव-वादिन आसन् (११०), न यथा वैष्णव-युगे शैव-युगे वा, एकेश्वर-वादिनः। इदं खलु रामायणस्य अति-प्राचीनत्वे प्रमाणम्। शाखा-बाहुल्यादपि रामायणस्याति-प्राचीनत्वमनुमीयते। गच्छति महत्येव काले देशे देशे प्रचरतो ग्रन्थस्य पाठ-भेद-बाहुल्येन शाखासु विभागः सम्पद्यते। रामो वै अयोध्यातो लङ्कां गच्छन् न कश्चिज्जन-पदं ग्रहं वापश्यत्। तदायोध्यां लङ्कां चान्तरा सु-विस्तृतो देशो ऽ प्रहत आसीत्। अतो ऽप्यवगम्यते रामायणमति-प्राचीनमिति। कात्यायनी-पुत्रः खलु ज्ञान-प्रस्थानं विरचयामास। तस्य हि महा-विभाषा नाम टीका जेष्ठूतर-द्वितीय शताब्द्याः प्रागेव प्रणिन्ये इति पुरा-विदो मन्यन्ते (१११)। सा सीता-हरण-तदुद्धरण-राम-प्रत्यागमनात्मक-द्वादश-सहस्र-श्लोकमयं रामायणम् उल्लिखति। तस्मात् जेष्ठूतर-प्रथम शताब्द्यां तदासीदिति गम्यते। तस्यामेव शताब्द्याम् अश्वघोषः

'वाल्मीकि नादश्च ससर्ज पद्यं जग्रन्थ यन्न च्यवनो महर्षिः' (११२)

(१०७) सैव, १०।१०८। (१०८) लघु रामायणम्, १।४।१२। (१०९) तदेव, ७।११।११। (११०) तदेव, ६।७।६, २।११।२९—३१, २।१८।३०; २।३।१, ४; २।६।३०। (१११) जा. र. ए. सो., १९०७, पृ. ९९। (११२) बुद्ध-चरितम्, १।४८।

'त्वामरण्ये परित्यज्य सुमित्र इव राघवम्' (११३)

'सुमोच वाष्पं पथि नागरो जनः पुरा रथे दाशरथेरिवागते' (११४)

'यथा वन-स्थः सह-वामदेवो रामं दिदृक्षुर्मुनिरौर्वशेयः' (११५)

'तथा महर्षी विप्रकृतामनार्यैस्तपो-वनादेत्य ररक्ष रामः' (११६)

इति वदन् वाल्मीकेरादि-कवित्वं रामायण-तदितर-रामोपाख्यानयोरस्तित्वं च कीर्तयति। खेस्तूत्तर-द्वितीय-शताब्द्यां भासो नाम कविः अवततार इति रामं (११७) 'सङ्क सत्यम्' इति च रामायणमुल्लिलेख (११८)। प्राचीनत्वं गत एव रामायणे रामस्यावतारत्व-प्राप्तेः खेस्तू-त्तर-प्रथम-शताब्द्यामपि रामायणं प्राचीनमवर्ततेति मन्तव्यम्। रामायणस्य नाटकी-करणं सुप्राचीने महा-भारत-परिशिष्टे ऽपि स्मर्यते। तदुक्तम्.

'रामायणं महा-काव्यमुद्दिश्यं नाटकी-कृतम्—

जन्म विष्णोरमेयस्य राक्षसेन्द्र-वधेप्सया' '(११९) इति।

बौद्ध-जैन-यवन-साहित्येषु तथा पातञ्जले महा भाष्ये अयोध्या साकेत-मुच्यते (१२०)। रामायणे तु अयोध्येति प्राचीनतरं नामैव दृश्यते (१२१)। महा भाष्यं लेशु-पूर्व-द्वितीय-शताब्द्यां व्यलेखीति पुराविदो वदन्ति (१२२)। तस्मात् ततः पूर्वं रामायणमासीदिति निश्चयः सङ्ग-

(११३) तदेव, ६।२६। सु-मित्रः—[रामायणे] सु-मन्त्रः। (११४) तदेव, ८।८। (११५) तदेव, ८।९। (११६) तदेव, ८।५९। और्वशेयः—अगस्त्यः। (११७) उपरिष्टात् १।८० पृष्ठ द्रष्टव्यम्। (११८) अविमारकम् (अनन्तशयन-संस्कृतम्), पृ. १६-१७। (११९) हरि-वंशः (मुम्बय्यां मुद्रितं, १८९५), २।९३।६। (१२०) माक्डोनेल्स् हिष्टरि अव् सान्स्क्रिट् लिटारेचार्, पृ. ३०८। (१२१) 'रामे राजीव-ताम्राक्षे साकेतं पुनरागते' (लघुरामायणम्, २।१४।२४) इति श्लोकार्धं प्रक्षिप्तमेवेति बोध्यं, साकेत शब्दस्य रामायणे ऽव्यवहारदर्शनात्। (१२२) माक्डोनेल्स्

स्कृते। जेष्ठ-पूर्व-चतुर्थ-शताब्द्यां सिकेन्दर-साहस्य सिन्धु-सञ्चरण-काले भारत वर्षे नार्या म्रत-भर्तुरनुगमनं प्राचीनाचार एवासीदिति यवन लिपिभ्यो ऽवगम्यते (१२३)। रामायणे तु म्रतेष्वपि बहुषु आर्य वानर राक्षसेषु नैकापि भार्या पतिमनुगच्छतीति सेकेन्दर-काले रामायणं प्राचीनमेवासीदिति गम्यते। रामायण-काले आर्यावर्तमपि कोशल-केकय-वैशाल विदेहादिषु बहुषु क्षुद्र-राज्येषु विभक्तमासीत्, का कथा दक्षिणापथस्य। जेष्ठ-पूर्व-चतुर्थ शताब्द्यां यत् मग्ध साम्राज्यं पाटली-पुत्रमाश्रित्योद्भव, रामायणे तस्याभासो ऽपि नास्ति। अतो ऽपि निश्चीयते, रामायणं जेष्ठ पूर्व चतुर्थ शताब्द्याः प्रागेवोदपद्यतेति। यदा सुगतः परिनिर्वाणं प्र-विवेश, तदैव विजयो नाम राढ़ राज कुमारो लङ्कां विजिग्ये। ततः प्रभृत्येव च सा विजेतुः कुल-नाम्नः 'सिंहला' इति भूमि-स्पर्शमागन्तुक पाणिस्ताम्र वर्णत्वात् 'ताम्रपर्णि' इति चाख्यया भुवि पप्रथे (१२४)। रामायणे तु सा सर्वत्र लङ्केव कथ्यते, न कुत्रचित् 'सिंहलं' 'ताम्रपर्णी' वा। अतो ऽनुमीयते जेष्ठ-पूर्व-पञ्चम-शताब्द्याः प्रागेव तत् मह्ा-काव्यं अरचीति।

जेष्ठ पूर्व-तृतीय-शताब्द्यां पाटलिपुत्रं भारत-वर्षस्य राजधानी बभूव, चतुर्थ्यामार्यावर्तस्य। पञ्चम्यामुदयाश्वो नाम भू-पतिस्तन्निर्ममे। ततः प्रागेव सौगत काले अजात शत्रुः वृजीनाम् अभिनिर्याण-प्रतिरोधाय सुनीध वर्षकाराभ्यां तत्र दुर्गं कारयामास (१२५)। यदा रामः स-लक्ष्मणो विश्वामित्रं पुरस्कृत्य शोण-नदं पद्भ्यामेवोत्तीर्य दिनैनैकेन गङ्गां प्राप्य, नौकया तामुत्तीर्य वैशालीमगच्छत्, तदा न केवलं पाटलिपुत्र-भूमिः. प्रत्युत शोणं च गङ्गां चान्तरा कृतस्न एव देशो

हि. मा. लि. पृ ४३१। (१२३) ग्रिफिथ्स् रामायण, १, इन्ट्रोडाक्शन् पृ २२।
(१२४) दीप-वंस, ९; ३।१९, ४।२७, ५।७७, ११।८-९। मह्ा-वंस, ६-७।
(१२५) महापरिनिब्बाण-सुत्त, १।२६।

ऽप्रख्यत आसीत्। पाटलिपुत्र-नगरं पाटलि-ग्राम-दुर्गं वा दूरं आस्ताम्, तथा-गत-चरण स्पृष्ट: पाटलि-ग्रामो ऽपि तदा नासीदेव। यः खलु कविः कथा-प्रसङ्गेन कौशाम्बी-काम्पिल्य-प्राग्ज्योतिषपुरादीनि दूर-वर्त्तीनि नगराण्यपि उल्लिखति (१२६), स एव कथं नाम राम-चरण-रेणु पूतं (१२७) विश्व-विश्रुतं नगरं ग्रामं वोपेक्षेत? अतो जश-पूर्व-पञ्चम-शताब्द्याः प्रागेव रामायणस्य नवतमो ऽंश आदि काण्डमप्युदपद्यतेति स्थितम्। वैशालीतः कतिचित् पदान्येव गत्वा रामो मिथिलां ददर्श। आदि काण्ड काले इदानीन्तने विहृत-प्रदेशे प्रमति राज्यं जनक राज्यं चेति द्वे एव राज्ये आस्ताम्। वैशाली प्रमतेर् मिथिला च जनकस्य राजधानी बभूव। सौगत काले तु तत्स्थानमेव तं प्रदेशं व्याप्य एकमेव वृजि राज्यं स्व-तन्त्रं रेजे। तदेव विजितमगात-शरणा गच्छता कालेन वर्धमाने मगध-साम्राज्ये विलिल्ये। अतः सौगत-कालात् प्रागेव रामायणमजायतेति निर्णीयते। सौगत काले प्रसेनजिन्नाम कोशल-राजः श्रावस्त्यां राज्यं चकार। रामायणे तु केवलमुत्तर काण्ड एव श्रावस्त्या नामास्ति, तत्रापि च नव नगर्या इव। राम पुत्रो लव एव तां राजधानीं चक्रे। अतो ऽपि तथागतात् प्रागेव रामायणमजायतेति स्फुटम्। राम-परिदृष्टा आश्रमाः खलु सर्व एव वैदिका आसन्, नैको ऽपि बौद्धः, याग-स्वाध्यायादि-लक्षणत्वात्। अतो ऽपि सौगत-कालात् पूर्वमेव रामायणं प्रादुरासीदिति प्रतिपद्यते।

सर्व-जन-सम्मतं जन्मान्तर-वादमाश्रित्यैव तथागतो धर्म-चक्रं प्रवर्तयामास, स-फल-कामो बभूव च। रामायणे तु जन्मान्तर-वादस्या-भासो ऽपि नानुभूयते (१२८)। तस्मात् सौगतकालात् प्रागपि चिरमेव

---

(१२६) रामायणं (वङ्गीया शाखा), १।२५। (१२७) तदेव, १।२७, ४६।

(१२८) वेदवदुपाख्याने युगपत् सह-मरणं पुनर्जन्म प्रेम-धर्मो ऽवतार वादश्च उल्लिख्यासे। तत् तु मध्य-युगे केनचिद् राम-भक्तेनोत्तरकाण्डे ऽधिक्षिप्यतेति वक्तुमर्हामः,

रामायणं प्रचरदासीदिति वक्तुमर्हामः। न हि स्वल्पेन कालेन आगतो वा समुद्भूतो वा संस्कारो जन-मनसि बद्ध-मूलो भवति। ननु यवन-ग्रन्थेषु, प्राचीन-बौद्ध-शास्त्रेषु, परिव्राजः फाहियान: प्रबन्धे च रामायणं नोल्लेखीति, अत्रोच्यते, नानुल्लेखो ऽनास्तित्वे प्रमाणम्। न यवना भारतीय-साहित्यानि चचारिषुः, ज्ञानाभावात्। तथा चाहौ शास्त्र-त्वाभावात् रामायणं नामंसत बौद्धाः। फाहियानं च बौद्धानि विहार-चैत्य-पुरोहित-स्मृति-मत-नास्तिक्यानि वर्णयन् रामायणं नोल्लेखीत्, सम्बन्धाभावात्। प्रथमे युगे गायनस्य परे च लिपि-करस्येच्छया काले काले ऽभिनवा विषया रामायणं विविशुः। ग्रन्थे प्रक्षेप-बहुले पर-युग सम्भव-विषयोल्लेख एव न तस्य पर-युग-सम्भूतत्वे प्रमाणम्। उक्तेनैव बौद्ध-विद्वेष एव रामायणस्य प्रयोजनमित्युक्तिः प्रत्युक्ता, बौद्ध-धर्म-तत्त्वमेव रामायणस्य सार इति यदुच्यते तदपि निरस्तम्।

'राक्षसानां विना वैरं वधो, वीर, न युज्यते;
अपराधाद्दते नापि हन्तव्या राक्षसास्त्वया' (१२८)

इति सीता-वाक्यं प्रतिपक्षावलम्बनं वैदिक-धर्मं विवृणोति, न तथा-गतस्योपदेशं, सुगत मते अहिंसायाः सार्वभौम-महा-व्रतत्वात्।

केचिदाहुः, दशरथ-जातकं नाम सरलं स्वल्पायतनं च बौद्धम् आख्यानमाद्ययोध्या-काण्डयोर्मूलं, हर्मीरम इलियाट् च प्रोक्तेति। प्रथमं तावद् दशरथ-जातकमधिकृत्य पृच्छामः, कथं नाम प्राचीनम् अर्वाचीनादुत्पद्येत? रामायणस्य सौगत-कालात् प्राग्-भवत्वं पूर्वमेव प्रादर्शि; उत्तर-काल-भवत्वं च जातकानां शाक्य-सिंहस्य बुद्धत्व-

सम्यव सहमरण-प्रेमधर्म-पुनर्जन्मनामनुल्लेखात्। 'तमेवाह' इदयेन समुद्वहे' इति मुच्छयो-माद्रास-शाखा-दृष्टौ वैष्णवै-रनोचित-सहन्तौ गौडीय शाखायां न दृश्यते।

(१२८) वाल्मी-रामायणम्, ३।१।१५।

ग्रन्थेषु तैरेव वर्ण्यते। रामायणादर्वाचीनत्वे दशरथ-जातकस्य, आभ्यन्तराण्यपि प्रमाणानि सन्ति। तथा हि, रामायणस्य रामो लक्ष्मणः सीता भरतश्च जातके क्रमेण राम-पण्डितो लक्ष्मण-कुमारः सीता-देवी भरत-कुमारश्च बभूव। एक-शब्दात्मकात् नाम्नो द्वि-शब्दात्मकस्य पराचीनत्वं साहित्ये वंशानुक्रमे च दृश्यते। एवमेव रामः पुराणादिषु (१३०) रघु-पतिः, राम-भद्रो राम-चन्द्रः श्रीरामः, श्री-राम-चन्द्रः, रघु-नाथः, रघु-वीरश्च सञ्जातः, सीता च नाटके (१३१) सीता-देवी। अपरं च, रामायणे रामो 'दशवर्षीयूपचा मातृणां सार्ध-सप्त-शतानि' (१३२), दशरथजातके तु राम-पण्डितस्य माता 'सोलससम् इत्थि सहस्सनाम् जेट्ठिका अग्ग-महेसि' आसीत्। अतीत युग भारत साहित्येषु अति वृत्तिर्यथोत्तरं वर्धमाना दृश्यते। अन्यच्च, रामायणस्य वङ्गीया शाखा राम-राज्य-काल-परिमाणं न निर्दिशति। प्रतीची उदीची च तं दश वर्ष-सहस्राणि (१३३), अवाची च दश वर्ष-सहस्राणि (१३४) एकादश-वर्ष-सहस्राणि च (१३५) राज्यं कारयति। जातक-मते तु राम-पण्डितः 'सोलस वस्स-सहस्सानि धम्मेन रज्जं कारेत्वा सग्ग-पदं पूरेसि'। अनयाति-वृत्त्यानिर्णीते दशरथ-जातकं रामायणस्य सर्वा अपि शाखाः। अन्यच्च, रामायणे चरम-राज-कुमारः पितुरङ्गीकारमवितथं कर्तुम् अविक्षत-मना एव वनं जगाम; जातके तु स एव अग्नि-स्कन्धमिव ज्वलन्नपि जीवत्यपि सतां रक्षितरि महा-राजे पितरि विमातुरात्मनो

(१३०) पद्म-पुराणम्, ५।१।२, ९, १०, २१. अध्यात्म-रामायणम्; महा-वीर-चरितम्, १; उत्तर-चरितम्, १ : हेम-चन्द्र-कृत योग-शास्त्रम्, &c.. (१३१) उत्तर-चरितम्, २।

(१३२) लघु-रामायणम्, २।१३।४१।

(१३३) मुम्बयी-रामायणम्, ६।१२८।९५, १०४। काशी रामायणम्, १।१।९०।
(१३४) माद्रास-रामायणम्, ६।१३१।९१। (१३५) तदेव, ६।१३१।१०२।

जीवित-हानिमाशङ्क्य वनं प्रस्थास्यमानो भ्राता भगिन्या च सहैव प्रासादान्निश्चक्राम। दिग्विजयिनः शत-राज कुमारस्य क्रमेण नारी-भावापत्तिरुत्तर-चरितादिभ्यो ऽप्युपलभ्यते। अन्यच्च, जातके कूट-पतेण अग्र-महिष्याः स्वार्थ-सिद्धिराशङ्क्यते, रामायणे तु सत्यपि प्रयोजने पत्र-शवच्चारो न दृश्यते। वस्तुतस्तु केचिदाचार्या बौद्ध धर्म तत्त्वानि आख्यातु-कामा यथान्यतो ऽन्याः कथास्तथा रामायणादपि आम-हेमचन्द्रादिवत् राम-कथाम् अग्रहीषुः। भिक्षु-धर्म प्रभावेणैव स्वभाव-चञ्चलस्यापि जनस्य स्थित प्रज्ञत्वमुत्पद्यते इत्यनेन जातकेनोपदिश्यते। रामायण वर्णितानामवाचामाश्रमाणामार्यत्वाद् राम-पण्डितो हिमवन्तं प्रास्थाप्यत। स-स्त्रीकस्य भिक्षु धर्मे ऽधिकाराभावाच्च सीता देवी प्रथमं भगिन्यक्रियत, पश्चाद्, असम्पाद्यैव विवाहमन्तरा, अभिषेक-काले, आदिन एव पत्नीति, अग्र-महिषी। श्लोको ऽपि रामायणादुद्धृतः। रामायणाज्जातके जातकाद् रामायणे इति संशये भ्रमः,--आर्या वृत्तमादिमे बौद्ध-साहित्ये दृश्यते, न रामायण भारतयोः। अनुष्टुप् तु रामायण-भारतयोर्वृत्तमस्ति, न पालि-साहित्यस्य। श्लोक साम्ये रामा-यणादेव जातकस्य ग्रहणमनुमानयम्, न विपर्ययः, जातकस्याप्यनुष्टुभः संस्कृत-वृत्त नियमानुवर्तनात्, अव्ययानां च भाषान्तर-प्राप्ति पाठ-विकृति कारणत्वाच्च (१३६)।

दार-हरणं तदुद्धरणं च अरण्य-काण्डादौ युद्ध काण्डान्ते रामायणे प्राधान्येन वर्ण्यते। हृत-दारोद्धरणार्थं युद्धमेवेलियाडो विषयः। अयोध्या-स्पार्टयोर्, लङ्का-ट्रयोः, राम-मेनेलाअसोः, सीता-हेलेन्योर्, एगामेम्नो-सुग्रीवयोर्, लक्ष्मण-पाट्रक्लसोर्, हेक्टोर-इन्द्रजितोर्, हनु-मद्-आइआसोर्, आगिटनोर् विभीषणयोर्, नेष्टोर् जाम्बवतोश्च

(१३६) माक्डोनेल्स् हि' स' लि', पृ.३०७।

माम्यमस्ति। अथ-स्याय प्रियामसे हेलेनो, प्रेलाग्र-गताय रामाय च विभीषणा विपक्ष-सेनापतीन् दर्शयति (१३७)। ग्रुव-सेना-पर्यवेक्षण-मुभयोरेव काव्ययोरेक-विधमेव (१३८)। उभयत्रैव मोहिनी तदर्थ-त्यक्त जीवित-सेना-समक्षमाविर्भवति (१३९)। युयुत्सुना यथा समागमो यथाक्रमाख्यातस्तथा मन्दोदर्या अपि दृश्यते (१४०)। वर्णन-रीतिरपि एक-विधैव। भगवद्द्वार-देव दिवा-रात्रि-वन-पर्वत-नदी-वाचि पदानाम् उभयत्र बाहुल्यमस्ति। उभयत्रैव महत्प्रमा विपुलं ग्रन्थ-चित्रं समुज्ज्वल-यति। तस्मात् केचिद् (१४१) ब्रुवन्ति इलियाडो रामायणमुदपादीति, केचिच्च (१४२) रामायणादिलियाडिति।

अत्र ब्रूमः,—जेशु पूर्वायामष्टम-शताब्द्यामिलियाट् समग्रावर्त-तेति पुराविदो वदन्ति (१४३)। रामायणमपि षष्ठ-शताब्द्या अति-पूर्वमप्यासीदित्यवोचाम। अतो द्वयोरेतयोः कतरत् पूर्वतनमिति निश्चेतुं न शक्यते। पौर्वापर्य-निर्णयाभावे कार्य-कारण-सम्बन्धः कथं निर्णीयेत? न चात्र नाशङ्कनीयः, सारूप्यस्याकिञ्चित्-करत्वात्। दार-हरणं तदुद्धरणार्थं युद्धं चादिमे समाजे साधारणमेव। स्थान साम्यं वा किम्? नायोध्या स्पार्टेव वर्ण्यते, न च लङ्का प्राचीर-वेष्टितापि ट्रयिव लक्ष्यते। चारित्र साम्यं न गभीरम्। यदस्ति तत् मानव चित्त-साम्यादेवोद्भवति। न रावणः पारिस इवाभियोक्तारं दृष्ट्वैव पलायाञ्चक्रे, न च प्रवृत्ते युद्धे रणात्: पुरं प्रविश्य प्रियया रेमे। राज-सभामागतामपि समरात् निवृत्तये ऽनुनयन्तीं भार्यां प्रति तस्योक्तिर् लाघविकेव,

(१३७) इलियाड् (डार्बस्मान वाद.), ३।२१०—२०२, लघु रामायणम्, ६।५।१—१७। (१३८) तदेव, ६।१।८—११, इलियाड् (डार्बेः), ३।१७५—१८५। (१३९) सैव, ३।१७५—२०३ : लघु रामायणम्, ६।१६।१—१७। (१४०) इलियाड् (डार्बेः), ६।४६०—५०१, लघु रामायणम्, ६।४।१५—२१। (१४१) भट वेबरादयः। (१४२) डिचन् क्रिसष्टोमस्, फौसे, लिशे च। (१४३) सेल् मन् स्, एन्साइक्लोपिडिया—होमार्।

'अहं यास्ये रणाजिरम् ;
अन्तःपुराय गच्छ त्वं—सुखिनी भव, मत्स्नुषा' (१४४) इति।

न मेनेलाओ राम इव समरेऽपराङ्मुखोऽपराजयो धर्म्य-युद्ध-परायणः सती-पत्नीको भ्रष्ट-पत्नी विमुखश्च। सत्यपि समाने सीता-हेलेन्योः रूपे अस्ति तयोर् महदन्तरम्। हेलेना रूप-मुग्धा स्वेच्छयैव पत्युरावासं हित्वा पर-पुरुषमनुससार, भार्येव च तेन उवास; भर्तुः स्मरणेऽभिष्यन्दमानापि उपपति-सहतायां ननन्द (१४५)। सीता तु बलात्-कारेण हृता बलवता हर्तुर् वशमननुमन्यमाना लङ्कायामपि पति-विरह-दुःखेनावसन्ना तपसा कालं निनाय। सा सती, धुरि स्थिता च पति-देवतानाम्। हेलेना, चरित्र-बल-हीना, रूपेणैव—यस्याः प्रभावात् सोऽहन्त्याः—चरित्र-दोषं द्विषतः प्रशान्त-मनसो ज्ञान-वृद्धान् नायकान् सत्त्रिणश्चापि मोहयामास चकार च—निन्दितापि नरनिकृतिः प्राशस्त्यम् (१४६)। आत्मसात्वो न हेलेनाव विजय-भागिनी। सा सीतेव निर्मला च निरवद्या च मधुर-प्रकृतिश्च कृत्य-परायणा च पत्नी। नारी-जनोचित-कल्याण-गुण-गण एव तस्या आभरणम्। एतादृश्येव गृह-राज्ञीति पूज्यते। सापि सीता-समत्वं न प्रकाशते। अपरिमेया खलु वैदेह्याः परार्थ-परता अहैतुकः प्रणयः, विश्व-व्यापिनी प्रीतिः, पवित्रो भावः, अपराजेयं निर्भीकत्वमविचलो विश्वासो, दुरतिक्रमा तेजस्विता च! एगामेम्नो समर-भूमौ सुग्रीव इव नाचचार। स हि स्वत्व-मद-मत्तात्मा विजिगीषुरप्यनेकशः समरात् पलायितुमियेष। लक्ष्मणोऽयोध्यायां राममनुगतो वनवासे तस्य परिचारको लङ्कायां च प्रधान एव सहायो बभूव। न तथा पाट्रोक्लो मेनेलाअसः। हेक्टोर्-इन्द्रजितौ द्वावेव प्रधानौ

(१४४) अध्य रामायणम्, ६।८।३१। (१४५) इलियाड् (डार्बि:), ३।४६४—५०७, ५१८—५३०। (१४६) तत्र, ३।१८३—१६१।

प्रतिपक्ष-नायकौ। समाहूत एव हत्वा, अ-समाप्त ऽपि यद्ध विजय-हेतो, यथोचितं युयुधे इन्द्र-जित् ; हेक्टोस्तु, दुर्बल-चेता विस्रस्त-भीतश्च, एकाक्येव योद्धुं नगराद् वहि: स्थितोऽपि, प्रतिपक्षं दृष्ट्वैव, श्येनमालोक्य कपोत इव, भीत-भीतः, प्रतिबद्धे ऽपि नगर-प्रवेशे, आखिलेउष: पलायमानम्, त्रिर् द्राराय नगरं परितो वेगेन दधाव (१४७)। यवन-बल-भञ्जन आइआ दुर्जय-बलेन दानवानामपि सेनानीत्वम् आनह। हनुमां स्तु तं वृद्धातिशिशय्य। आगटीनो: परदाराणां प्रत्यर्पणमुपदिशन्नपि न विभीषणवत् (१४८) विपक्षं शरणमगच्छत्, न च तमाश्रित्य स्व-जन ध्वंसाय युयुधे। नास्ति रामायणे ट्रयीश्वर: प्रिआमा:, यवन-बल-परित्राता आखिलेउ:, चतुरो जम्बुक वृत्ति: क्षिप्र-हस्तो महा भुजो अडीसेउस्च, न चेलिआडि धर्म प्राणो भरत:, कुमन्त्रिणी कुब्जा, चञ्चल चित्ता कैकेयी, पितृ-वत्सलो यज्ञ दत्तो वन्य-नर पतिर्गुहो वा। मन्थरा-कैकयीभ्यां विना न रामायणं सम्भवेत्, विना चाखिले-उषा नेलिआड्। मति स्वतन्त्रे मेरु-दण्ड काव्यस्य सम्भव स्वातन्त्र्यं विभाव्यम्। वर्णन-माहात्म्यादीन्यपि मानव-चित्तकत्व सम्भूतानि।

अन्यदप्यस्ति महदन्तरमिलिआड् रामायणयो: पारिवारिक: सामाजिक: सामरिकश्च धर्म: संस्थाप्यते रामायणेन, इलिआडा तु जाति-धर्मो देश धर्म: समर-शास्त्रं च। पातिव्रत्यमेव रामायणे प्राधान्येन कीर्त्यते, तत्त्विलिआडि धर्म इति नास्त्येव। विवाह-विधि: पवित्रो ऽलङ्घनीयश्चेति मन्यमानोऽपि होमीरा व्यभिचारं पातित्य-हेतुं नावोचत्। हेलेनो प्रकाश्यं पर-यमनिन्यपि ट्रोजानेषु वा यवनेषु वा निन्दार्हा न बभूव। तां मेनेलाओ निर्विचारं निन्यायश्चिरं

---

(१४७) सव. २२। १४२—२४७। (१४८) लघु रामायणम्, ५।८।३३, ६।२।१६, ६।११।२३।

च पुनर्ग्रहीतुमाजग्राह। अत्र यावनिकमाख्यानमपि इलिआडा संवदति, थ्राकी-प्रदेशाधिपो द्वि-भार्यः पोल्टिर, अनुरुद्धोऽपि योद्धुमनिच्छन्, युद्धं मा भूदिति एकां भार्यां पारिसे ऽपरां च मेनेलाआसे दातुमुत्सहे इति। रामायणे देवोऽपि अभिचरन् दृश्यते (१४९)। पारिवारिक-बन्धनं त्विलिआडि दृढमित्युपलभ्यते। रामायणे तत् काष्ठां प्राप्तम्। सौभ्रात्रं पत्नी-प्रेम अपत्य-स्नेहश्च यथा रामायणे तथैलिआड्यपि। कृपा-समुत्था भ्रातृ-प्रणयिनी-दोषोपेक्षा दुष्टं भ्रातरं प्रति घृणा-संमिश्रा दया चेलिआड्यस्ति, रामायणे तु प्रायशो न सम्भवति। पितृ-भक्तिः सत्य-परायणता च रामायणस्य वैशेषिकौ। आतिथ्यं बन्धुत्वं च रामायणे दृश्यते, यथा गुह-भरद्वाजादि-संवादेषु। इलिआडि तु ते बन्धने दृढे एव। पितामहं प्रति पितामहस्यातिथ्य-बन्धुत्वं च संस्मृत्य यवन-सेना-पती रणाङ्गन एव युद्धं हित्वा वर्मणी वर्म प्रत्ययच्छत (१५०)। सख्यार्थं पाट्रक्लसं निहतं श्रुत्वा आखिलिउस भूमौ न्यपतत्, केशानुत्पाटयामास, शिरसि रेणु-राशीन् निचिक्षेप, क्रन्दन च भस्मना महार्हाम्बराणि विवर्णानि निनाय (१५१); यावच्च बन्धु-घातकं न जघान, न पस्पर्श तावदन्न-जलम्। विकत्थनया रमते होमीरसो वीराणां राक्षसानां च, मनाक् रामादीनामपि। रामादयः करुण-हृदयाः, शारीर-क्लेश-सहा, मृत्यु-भय-विहीनाश्च। शारीर-क्लेशस्यासहत्वं, दर्पः कातरोक्त्या तस्य प्रकाशनं, शत्रुं प्रति निष्ठुरता बर्बरता च यथा होमीरसो वीरेषु, न तथा राक्षसेष्वपि दृश्यते। तेषां मृत्यु-भयं राक्षसेषु नास्त्येव। ट्रोजान-सेना पतिः हेक्टोर्, महा-वीरोऽपि, आखिलिउसं दृष्ट्वैव पलायाञ्चक्रे। न हि होमीरसो वीरेषु बलवत्तरं शत्रुं दृष्ट्वा महा-वीरस्यापि पलायनम् अयशस्करमासीत्।

(१४९) रामायणम् (वङ्गीयम्), १।४९।७५—७८।

(१५०) इलियाड् (६ सर्गः), ६।२१२ – २३६। (१५१) तत्र, १८।२२—३०।

निर्भीकास्तु युद्ध-वीरा वाल्मीकेः। न हि कश्चित् चमू-सेना-नीः प्रधान-वानर-सेना-नीर् वा बलवदाहतोऽपि पलायामास। रावणो, रामेण हृत-मान-दर्पो, युद्धान्त एव समराङ्गनादपससार। इन्द्रजितं, समरेऽदृश्यमानं, प्रहर्तुं वारयितुं चाशक्तेन लक्ष्मणेन, 'ब्राह्ममस्त्रं प्रयोक्ष्यामि वधार्थं सर्व-रक्षसाम्' इत्युक्ते रामस्तं विग्रहवान् धर्म इवोवाच,—

'एकस्य रक्षसो हेतोः पृथिव्यां सर्व-राक्षसान्—
अयुध्यमानान् प्रच्छन्नान् प्राञ्जलीन् समुपस्थितान्
पलायमानान् मत्तांश्च—न त्वं तान् हन्तुमर्हसि' (१५२) इति।

ततोऽचिरात् समर-धर्म-परत्वादेव भ्रातरौ, शर-बन्ध-बद्धौ, मेदिन्यां शश्याताम्। शक्ति-निर्भिन्ने लक्ष्मणे रामो रावणं, स्व-शर-घातेन हत-मान-दर्पं, परिश्रान्तमिवोपलभ्य निजगाद,—

'कृतं त्वया कर्म महत् सुदुष्करं हत-प्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम्।
तस्मात् परिश्रान्तमिव प्रपश्यन् न त्वां शरैर् मृत्यु-पथं नयामि' (१५३) इति।

ततो रामानुज्ञयैव रावणः समराङ्गनादपससार। निहते च रावणे,

'सत्कारः क्रियतां भ्रातुः स्त्री-गणः परिसान्त्व्यताम्' (१५४) इति रामादेशेनैव तस्य सत्कारः प्रवर्तते। ऐतिहासिक-युगेऽपि रामाद्वत् धर्म्यमेव युद्धं समाद्रियन्त। मेगास्थनीज्-विवरणमत्र प्रमाणं, (१५५) सोमनाथ-युद्धादि च। इलियाडे तु सर्वं विपरीतं वर्तते। पाट्रक्लसस्य द्वारात् प्रतिनिवर्तमानस्य शिरस्त्राणं वर्म चोन्मोच्य शक्तिं च यष्ट्रगात् माययापलोः, पृष्ठतश्चाजघान तम् एउफर्बाः। ततस्तं हेक्टोरः शक्त्या निर्भिद्य भूमौ पातयामास सोल्लासमुवाच च,—

(१५२) लघु रामायणम्, ६।२।२४—२६। (१५३) तत्रैव, ६।५।४८।
(१५४) तत्रैव (२य संस्करणम्), ६।१५।१ (वङ्गीय-रामायणम्, ६।८५।४५)।
(१५५) रजनीकान्तेर मेगास्थेनीस, पृ. १२८,१२२।

'से डे ट्' एन्थाडे गुपेस् एडग्राटाइ' (१५६)—

'त्वां खादेयुरत्र गृध्रास्तु'

इति। निहते च पाट्रक्लसि सखा आखिलेउ: समर-भूमाववततार। तिर् हेक्टोरस्तस्मात् पलायमानो नगरं परितो दधाव, त्रिरेव आखिलेउस् तं दाराद् यवन-सेनाभिमुखं विद्रावयामास। हेक्टोरः भ्रातृ-रूपिण्या आथीन्या स्वया समाश्वासितः, प्रत्यावृत्याखिलेउसमुवाच, 'आवयोरेकतरः खलु मरिष्यति ; तत् समयः क्रियताम्, हतस्य देहः सत्काराय स्व-जनेभ्यो दास्यते' इति। आखिलेउः प्रत्युवाच, 'मेवं वद —

'होस् आउक एष्टि लेग्रोउसि काइ आन्ड्रासिन् हर्किआ पिस्टा,

आउडे लूकइ टे काइ आर्नेस् हमफ्रणा थुमन् एखाउसिन्' (१५७)—

'समयो हि न सिंहस्य समं नरेण तिष्ठति ;

न वृकाणां च मेषाणां प्रावर्तेऽस्ति वन्धुता' इति।

अथ हेक्टोरं प्रासेन निर्भिद्य भूमौ पातयित्वाखिलेउरूचे ;सोऽपि सं प्रतिजल्प ,—　　'से सेन् कूनेस् इड्' आइश्रोनह

हेल्कोसाउस्' आइकोस्' (१५८) —

'त्वां न श्वानश्च गृध्राश्च कृत्वान्त्यपमानं खलु' इति।

(१५६) इलियाडस १६।८३६। से (त्वाम्) डे (च) ट् (तु) गुपेस (गृध्रा) एन्थाडे (अत्र स्थाने) एडग्राउइ (भक्षयिष्यन्ति)। ग्रीक-वचनानि प्रदर्शितानुवाद-सन्तानि श्रमादनुरोधात् अनुवाद इ मया ग्रजन'-कालेन मूलानुरोधाद्धा निष्कृष्टानि। (१५७) इलियाडस, २२।२६२ ३। होस् (यथा) लेयाउसि (सिंहेभ्यः) आन्ड्रासिन् (नरेभ्यः) काइ (च) (नर-सिंहयोरित्यर्थः) पिस्टा (विश्वस्ताः) हर्किआ (समयः, सन्धिः) आउक् (न) एष्टि (अस्ति), आउडे (न चापि) लूकइ (वृकाः) टे (च) आर्नेस् (मेष शावकाः) काइ (च) हमफ्रणा (सम प्राणं) थुमन् (चित्तं) (सख्यमित्यर्थः) एखाउसिन् (रक्षन्ति)। (१५८) इलियाडस, २२।३४५-६। से (त्वां) सेन् (नु) कूनेस् (श्वानः, श्वकाः, कक्कुराः) आइश्रोनह

यवना भू-पतितम-चेतनं च वीरं परित्यज्यायुधैर् भेत्तुमारेभिरे। ततस्तमाखिलेउ: पार्ष्णि-रन्ध्र-गतेन रज्जुना रथे बद्ध्वा, बलवता घर्षणेन रण-मेघमुत्क्षिपन्स्, नगर-प्राकारात् प्रोच्चतो: पित्रो: समक्षमेव, वेगेन नौ-साधनं चकर्ष, प्राप्य च तत् पाट्रक्लस: खट्वाया: पुरो रण-ध्वंस प्रानक-गृध्रेभ्यो निचिक्षेप; पाट्रक्लसस्तूपे च द्वादश बन्धन-स्थान् ट्रोजान-युवकान् हत्वा तस्य चितायां स्थापयामास। द्वादश दिवसां स्वाखिलेउ: अहन्यहनि प्रातरुत्थाय हेक्टोर: शवं रथे बद्ध्वा त्रि: पाट्रक्लसस्थितां परितो वेगेन चकर्ष। अहह! दुर्लभा खल्वीदृशी निष्ठुर-बर्बरता बर्बराधमेष्वपि! देवा रामायणस्य हितैषिण ऋद्धि-दातारो धर्माधानाश्च, प्रायेण सत्य परायणा धर्म-गोप्तारश्चापि। न ते ह्यामोरसा इव पान-भोजन-वशा अनुगत-जन-सर्वस्वा नर-क्लेश-दर्शन ज-सुख-परायणा वा। हमारो-देवानामीर्ष्या, क्रोध:, प्रतिहिंसा, न्याय विमुखत्वं, प्रवञ्चना, अनुगत जन-प्रियत्वेन रण-यतोद्धारश्च नैव सन्ति तेषु। इन्द्र: 'प्रेषयामास रामाय रथं मातलि-सारथिम्' १५९। साधनां परित्राणं दुष्कृतां विनाशश्चात्र प्रयोजनं बभूवतु। इलियाडि धर्माधर्म निरपेक्ष आश्रित-जनोपकार एव देवानां प्रयोजनत्वेनोपलभ्यते। पारिसं, इन्द्र-युद्धे विजित्य मेनेलाआसा नीयमानं, माययापहृत्य, आफ्रडिटा ट्रोजान यवनयोर् नियमं वितथमकरोत्, प्रवर्तयामास च तद् वाधिकं लोम-हर्षणं 'सब-लोक-भयङ्करं' महा युद्धं येन राजधानी स-बल वाहना भस्मी बभूव मम्रु स्वाखिलेउ:-प्रमुखा दिग्विजयिनो यवन-वीरा:। वरुणो महति तृतीये युद्धे आहत-पराजित-पलायित-विध्वस्तान् यवनान् समाहृत्योज्जीवयन् पुनर्जयाय समरे प्रवर्तयामास। ट्रोजान रथान् प्रवेशयितुमापलोर्यवनानां स्दुर्ग-

(ग्रथा:) हेड (च) फाइकास् (चपमत, सापमान) हेल्कोसाउास (कलुषन्ति)।

(१५९) लघु रामायणम्, ६।१२।४।

प्राचोरं पङ्क्तां बभञ्ज, चिच्छेद च टेउकारो धनुर्गुणं, हेक्टोरं त्रातं, जुपिता। स, पाट्क्लसं वहमानम्, आइआसं परितो भूमिं तमसा समावृणोत् येन निर्गम-मार्गमदृष्ट्वा आइआ मह्वा वाक्यं व्याजहार,

'जेउ पाटेर् आला सु रुसाइ हाइप्' इएरम् हाइआस् आखाइओन्,
पइइसन् ड्' आइथ्रीन्—डस् ड' अफथालमइसिन् इडेस्थाइ ;
एन् डे फाएइ काइ अलेस्सन्, एपेइ नु टइ एउआडेन् हाउटोस्' (१८०)—

'जुपिनस्तमसः पाहि ; दिश ज्योतिः प्रचोदय—
नेतं पश्यत् ; ज्योतिषि जहि नो, यदि रोचते' इति।

आखिलेउषो युद्धे देवा इव, पञ्च पञ्च भूत्वा, ट्रोजानानां यवनानां चोपचक्रिरे। इतिक्रमं खल्वदृष्टमित्यवधाय आपलोर विपदि महा-घोरं हेक्टोरं तत्याज, आथीनो च मायया भ्राता भूत्वा अहमपि योत्स्य इति मिथ्या-वचनेन तं पलायमानं हत्वा योधयामास। इन्द्रो वे वेदस्य ह्र्मीरसो देवानां पितेव भाति। 'स होवाच, "त्रि-शीर्षाणं त्वाष्ट्रमहनम्, अ-रुन्मुखान् यतीन् साला-वृकेभ्यः प्रायच्छं ; बह्वीः सन्धा अतिक्रम्य दिवि प्रह्लादीयानतृणमहम्, अन्तरीक्ष पौलोमान्, पृथिव्यां कालखाञ्जान्। तस्य मे तत्र न लोम च मा मीयते। स यो मां विजानीयात्, नास्य केन च कर्मणा लोको मीयते—न मातृ-वधेन, न पितृ-वधेन, न स्तेयेन, न भ्रूण-हत्यया।

(१८०) इलिआडस्, १७।६४५ ७। [हे] जेउ (द्यौः) पाटेर् (पितर्, पितः), आला (अनन्तः) सु (त्वम्) आखाइओन् (यवनानां) हाइआस् (आत्मजान्, पुत्रान्) हाइप् इएरस् (अन्धकारात्) रुसाइ (मोचय), आइथ्रीन् (दिव-मध्यमम आलोकमय) पइइसन् (कुरु) ड् (च), अफथालमइसिन (चक्षुभिः) इडेस्थाइ (द्रष्टुम्), डस् (देहि) ड (च); एन् डे फाएइ (ज्योतिषि च) काइ (वर) अलेस्सन (संहर) एपेइ (यदि) नु (इदानीं) हाउटोस (एवं संहरं) टइ (तव) एउआडेन् (रोचते)।

नास्य पापं च न चक्षुषो मुखान्नीलं वेति" इति' (१६१)। स्थाने खलु यवनराजः सेकेन्दरो भारतवर्ष-सीमान्ते नगरमवरुध्य प्रथमं रक्षिभ्योऽभयं दत्त्वा पुरं जग्राह, पश्चात् तान् गृहं गच्छतो विश्वास-घातेन पथि तरसाक्रम्य निःशेषं विनाशयामास (१६२)! वक्र-त्वेन तु इन्द्रमप्यतिशेरते हमीरो देवाः। तथा हि, देव-राजो जुपिता, बालिशतमो मानव इव रमणी-रूप-पर-वशोऽपि, नराधम इव, काम-रूपिण्या भार्यया विवदते. कुप्यंश्च तां, चरणयोर्लोह-पिण्डं बद्ध्वा, हस्त-नद्धेन सुवर्ण-शृङ्खलेनाकाशे लम्बयति (१६३)। न सम्भवत्येतद् देवेषु मानवेषु वा रामायणस्य।

यवनाः श्रेणी-बद्धा घन-सन्निविष्टा दृढ-निश्चयाश्च सेना-पतेरादेशमनु-सृत्य निःशब्दं जयायाभिनिर्यान्ति, समरे च प्रवर्तन्ते। ट्रोजाना वानरा राक्षसाश्च नदन्तोऽभियान्ति, उद्यच्छमाना योद्धुं, नदन्ति च। ईदृशं युद्धं युगपदाक्रमणं युगपत् प्रत्यावर्तनं च यथा ट्रयि तथा प्रायेण लङ्कायामपि दृश्यते। इलिआडि तु युद्ध-विद्यास्ति। आदिमापि विद्यैव सा। न सा स्फुरति रामायणे। न हि बाणेन बाणः शूलः शक्तिर्वा शक्यते छेत्तुं वारयितुं च। कथं नाम महा-वीरोऽपि तेन शिलां वृक्षं च छिन्द्यात् पथि पातयेद् वा? ब्रह्मास्त्रमेकमेव युगपद् बहून् हन्ति (१६४) रावण-वधे च

'धूम-पूर्ण प्र-जज्वाल प्राप्य वायु पथं महत्, ...

रावणस्याहरत् प्राणान्, भित्त्वा चैव क्षितिं गतः' (१६५)।

(१६१) ऋग्वेदीया कौषीतकी उपनिषत्, ३।१। त्वाष्ट्रम्—त्वष्टृ-पुत्रम्। अरुन्मुखान्—वेद-पाठ-विमुखान्। सालावृकेभ्यः—कुक्कुरेभ्यः। सन्धाः—सन्धीन्। प्रह्लादीयान्—प्रह्लादानुगान्। अतृणम्—अभक्षयम्, अहनम्। मा—न। मीयते—हिंस्यते, विनाश्यते। स्तेयेन—चौर्येण। चिकीर्षतः—चिकीर्षोः, कर्तुमिच्छोः। नीलम्—कान्तिः। वेति—व्येति, अपैति। निषेध-द्वयम् पक्षान्तर प्रतिषेधं द्योतयति। (१६२) प्लूटार्क'स लाईफ् अव् आलेग्जाण्डार्। (१६३) इलियाड् (डार्बि:), १५।२०-२४। (१६४) लघु रामायणम्, ६।२।२४—२६। (१६५) तदेव, ६।१३।२१—२२।

तस्य विस्फोटत्वं स्फुटम्। अस्त्रं तूपकरणमात्रं युद्धस्य, न विद्या। शक्ति-निर्भेदे शारीर-बलमात्रमनुभूयते रामायणे, न कौशलम्। एकदा, 'विवेश शक्तिर् भुजान्तरं दाशरथेर् विशाला' (१६६) ; अन्यदापि 'शक्त्या विभिन्न-हृदयः पपात भुवि लक्ष्मणः' (१६७)। न वर्माभेदे प्रक्षेप्तुराहतस्य वा रण-कौशलमुपलभ्यते। इलियाडे तु सैव क्वचित् चर्म उरस्त्राणं कार्पासमावरणं च भित्त्वा शरीरं स्पृशति क्वचिच्छिरस्त्राणं भित्त्वा ललाटास्थि प[illegible]ति, क्वचिद् वक्षः प्रविश्य स्कन्धमाक्रामति, क्वचिल्ललाटं भिनत्ति, क्वचिन्नेत्र-गोलकादधस्तु मुख-विवरं प्रविश्य रसनां भित्त्वा [illegible] स्नायूनतिक्रम्य पृष्ठ-[illegible] करोति, क्वचिच्चर्मणा प्रतिहता प्रतिनिवर्तते, क्वचिद् गल-शिरः-सन्धौ कण्ठकम् आहत्य धमनी-द्वयं छित्त्वा जीवनं निर्वापयति, क्वचिच्च चर्म-सन्धिं भित्त्वा गल-मूलं प्रविश्य प्राणान् हरति। सत्यपि चर्मणि रामायणे, काले तस्य व्यवहारो न दृश्यते। इलियाडे तु आक्रमण-वारणयोश्चर्मैव योद्धारं रक्षति, प्रत्यावर्तने हताहतानामाहरणं च याज्ञ-[illegible] चर्म-प्राप्योग्यम्। ततश्चित्रं यत् सेकेन्दर इलियाडाद् दिशो विजिग्ये।

ट्रयोश्वर पुत्रेण पारिसातिथि-रूपिणा हृतायामन्यतम-यवन-राज्याधिपतेर्भार्यायां यवन-नृपतयः सानुचराः स्व-जाति-सम्मान-संरक्षणाय एकीभूय ता साधनेन सागरमुत्तीर्य ट्रयमभिजग्मुः। ट्रोजानाश्च स्व-देश-संरक्षणाय युवराज-हेक्टोर-प्रणोदितास्तान् निष्कासयितुं यत्नचेष्टन्त। एकतः स्व-जाति-प्रीतिरन्यतश्च स्व-देश-प्रेमा युद्ध-प्रवर्तको बभूव। धन्या खलु हेक्टोरः स्व-देश-प्रीतिः! स हि, यवन-दुर्ग-प्रवेश-मार्गे वलयदशुभं शकुनं दृष्ट्वा देव-ज्ञेन प्रतिनिवृत्तये स-निर्बन्धमनुरुद्धः सन्, स-कोपमुवाच,—

'हेइस् अइऑनस आरिस्टस्—आमूनेस्थाइ पेरि पाट्रीस' (१६८)—

(१६६) तत्रैव, ६।५।२८ । (१६७) तत्रैव, ६।११।२५ । (१६८) इलियाडस्, १२।२४३ ।

'एकं हि शकुनं श्रेष्ठं—देश-पितुः कृते रणम्' इति।

अन्यदा, समर-भूमौ द्वितीयं महा-कालमिवाखिलेउषं दृष्ट्वा दुर्गं प्रविष्टेषु ट्रोजानेषु, एकाकी मा बहिस्तिष्ठेति पितरावह्वालकात् भृशं चक्रुशतुः। हेक्टोरस्तु दृढमुवाच,—

'एमइ डे टट्' आन् पलु केडिअन् आइइ
आएटोन् इ आखिलोआ काटाकटइनागटा नेएस्थाइ,
इए केन् आउटो अलेस्थाइ एउक्लेइओस प्र पलीओस' (१६६)—

'श्रेयो हि मे रणे हत्वाखिलेउषं पुरः स्थितम्
प्रतिनिवर्तितुं, मर्तुं गौरवेण पुराय वा' इति।

किं नाम रामं समरे प्रवर्तयामास? स स्वयमेव सीतां तद्वादीत्,

'विदितं चास्तु ते, भद्रे, यो ऽयं रण-परिश्रमः
तीर्णः स सुहृदामर्षात्, न त्वदर्थं कृतो मया।
रक्षता तु मया वृत्तम्, अपवादं च सर्वशः
प्रख्यातस्यात्म-वंशस्य निन्दां च परिमार्जता,
निर्जितासि मया, भद्रे, शत्रु-हस्तादमर्षिणा' (१७०) इति।

नात पत्नी-प्रेमा लङ्काभियाने प्रवर्तकः, न च भारतानाम् आर्याणां स्त्रियाणां वा सम्मानः। सत्स्वपि बहुषु भारत-राज्येषु—सत्सु बहुषु भत-राज्येष्वपि—न को ऽपि केवलं सम्मान-बुद्ध्या विदेश-राज हत-

ऋइस (एक) अइओनस् (शकुन) आरिस्टस् (श्रेष्ठम्) पाट्रेस् (देश पित.) पेरि (कृते) आमूनेस्थाइ (योधनम्)। (१६९) इलिआडस, २२।१०८-१।

आएट्रोन् (रणे पुरः [स्थितम्]) आखिलेआ (आखिलेउषं) काटाकेइनागटा (हत्वा]) नेएस्थाइ (प्रतिनिवर्तितुम्) एमइ (मम, मे) डे टटे (ततश्च) आन् (हि, वृथम्) पलु (नितरां) केडिअन् (प्रशस्यम्) श्रेयः इत्यर्थः, आइइ (स्यात्), प्र पलीओस (नगराय) एउक्लेइओस (गौरवेण) आउटो (स्वयम्) अलेस्थाइ (मर्तुम्) इए केन् (वा)। (१७०) लघु रामायणम्, ६।१४६—८।

दारस्य रामस्योपचकार। मन्दे प्र-हरणं नासम्भवमासीत्। वानरा हि सीतामन्विष्यन्तो दिशो वि-दिशश्च विचेरुः। लङ्का-पक्षे रावणस्यादाव-जेय-रमणी-रूप-लालसा पश्चादहमहमिका युद्धं प्रावर्तयत्। सीतां प्रति

'त्वां तु काञ्चन-गर्भाभां, पीत-कौषेय-वासिनीम्,

रतिं स्वकेषु दारेषु नाधिगच्छामि, चिन्तयन्' (१७१)

इत्युक्तिर् दुर्जय-रमणी-रूप-लालसां व्यनक्ति। ततः, मतो धर्मज्ञात् परं च मन्त्रि-सभायां

'को हि नाम, महा सत्त्वः, पूर्वमाधर्षितः परैः,

दीनं वचनमादद्याद्, वर्जयित्वा विभीषणम्?' (१७२) इति,

पश्चात्, प्रवर्तमाने युद्धे, निवृत्तये ऽनुनयन्तीं मन्दोदरीं प्रति

'देवान् जित्वा रणे पूर्वमसुरोरग-दानवान्,

प्रणमे मानुषं कस्माद्, वानरं यः समाश्रितः?' इति,

'हनिष्ये राघवं चैव, लक्ष्मणं वानरांश्च तान्—

वैदेहीं नार्पयिष्यामि राघवस्य भयादहम्' (१७३) इति च

प्रकाशयति दुर्निवारामहमहमिकाम्। तद् वक्तव्यम्, रावण-पक्षे ऽपि नासीत् स्व-जाति-प्रीतिः स्व-देश-प्रेमा वेति। एतावत्, न रामायणमिलियाडो ऽजनि न च इलियाड रामायणादिति निश्चितम्।

तदेतत् रामायणं, वाल्मीकीयं, एकमपि युगपत् काव्य-निवृत्त-शास्त्र-लक्षणोपेतं, भारत-वर्ष-महा-देशस्य सर्वेष्वपि देशेषु प्रदेशेषु च प्रचरत्, काले काले बहु-कवि-वचन-प्रक्षेपणाति-प्रवृद्ध-कायं, देश-काल-भेदेन प्रक्षेप-भेदाद् इदानीं स्वत एव चतसृषु शाखासु विभक्तमास्ते, प्राची प्रतीची उदीची अवाची चेति। तासु प्राची प्राचीनतमेति आदि-कवि-कृतेः सन्निहिततमा भाति, प्रतीच्यादिषु प्रक्षेप-विस्तरोराधिक्यात्। तद् यथा,—रामायणस्य प्राच्यां शाखायां राशि-चक्रस्य तत्र ग्रह-

(१७१) तदेव, ३।१५।२। (१७२) तदेव, ५।८।२। (१७३) तदेव, ६।४।२६, २८

संख्यानानां चोल्लेखो ऽपि नास्ति। प्रतीच्यादिषु निरूपेषु तु राम-जन्म-काले दृष्टानि ग्रहाणां राशि-चक्रे संख्यानानि वर्ण्यन्ते (१७४)। विदितं चास्ति विदुषां सु-प्राचीनेषु संस्कृत-ग्रन्थेषु राशि-चक्रं सु-व्यक्तं नोल्लेखीति (१७५)। अपरं च, प्राच्या मते गुहो नाम शृङ्गवेराधिपः

'तत्र राजा निषादानां, रामस्य दयितः सखा,

धार्मिकः सत्यवादी च, गुहो नाम, महा-बलः' (१७६)

इति निषाद-राज एव, न जात्या निषादश्च। स निषाद-जात्यो ऽप्यासीदिति प्रतीच्यादीनां मतम् (१७७)। य आदौ निषाद-राज आसीत् स एव काले कवि-प्रतिभया जात्या निषादः कृत इति स्फुटम्। अन्यच्च, यत्र प्राची शाखा 'आसीद् वर्ष-शतायुश्च' (१७८) इति पुरुषं शतायुषं वदन्ती वेदैः संवदति (१७९) तत्रैव प्रतीच्यवाची च तं सहस्रायुषं कथयति (१८०) उदीची च दश-सहस्रायुषम् (१८१)। आदौ यः शतायुरासीत् स एव काले कवीनां वर्धमानेनात्युक्ति-प्रियत्वेन सहस्रायुः दश-सहस्रायुश्चाप्यभवत्। अन्यच्च, गङ्गा-तीर-तपो-वने सीतां लक्ष्मण-विसृष्टाम दृष्ट-पूर्वापि तप-श्चक्षुर्विज्ञानेनेति समभाषि वाल्मीकिः। सीतापि मुनेर्वचनम-ज्ञात-पूर्वस्येव 'परमसद्भुतं' मेने। तस्मात् प्रतीच्यादिषु निरूपेषु शाखासु चित्रकूटाश्रमे वाल्मीकिना राम-सीता-लक्ष्मणानां यः समागमो वर्ण्यते (१८२) सः,

(१७४) मुम्बयी-रामायणम्, १।१८।८—१०, माद्रास-रामायणम्, १।१८।८-९। काशी-रामायणम् (अङ्ग्लानुवादः), १।१६। (१७५) श्राइट्स् एनसीक्ल्, क्लासिकल्स्, पृ ०—१११। (१७६) लघु रामायणम्, २।१७।१२। (१७७) मुम्बयी-रामायणम्, २।५०।३३। माद्रास रामायणम्, २।५०।३२। काशी-रामायणम्, २।५०। (१७८) लघु रामायणम्, ६।२२।५। (१७९) ऋग्वेद-संहिता, २।२०।१०। ईशोपनिषत्, २। कठोपनिषत्, १।१।२३। (१८०) मुम्बयी-रामायणम्, ६।१२८।१०१। माद्रास-रामायणम्, ६।१३१।९७। (१८१) काशी-रामायणम्, ६।१३०। (१८२) मुम्बयी-रामायणम्, २।५६।१५-१६। माद्रास-रामायणम्, २।५६।१६। काशी-रामायणम्, २।५६।

प्राच्यामदृश्यमानः, उत्तर-काण्डोत्पत्तेः परमेव तासां मूले प्रक्षिप्ततेति मन्तव्यम्। अन्यच्च, प्राच्यां शाखायां यत्र रामः केवलं विष्णु-तुल्य पराक्रमोऽस्ति (१८३) प्रतीच्यादिषु तिसृषु तत्र स स्वयमेव जगन्नाथः सर्वलोक नमस्कृतो भवति (१८४)। विष्णोः राम रूपेण पृथिव्यामवतरणमादि-रामायणोत्पत्तेः परमेव जातं इत्युपरिष्टादुक्तम्। अन्यच्च, वशिष्ठादयो रामं पुण्योदकैरभ्यषिञ्चन्निति प्राच्या उदीच्या अवाच्याश्च शाखानां स्वारस्यं (१८५), प्रतीच्यां वशिष्ठेन रामशिरसि किरीट स्थापनमपि वर्णयति (१८६)। अनेन वङ्गेतर-मूलस्य प्रतीच्यादिषु शाखासु विभागात् परमेव प्रतीच्यां किरीट स्थापन वृत्तान्तः प्रक्षिप्ततेति ज्ञायते। अन्यच्च, यौ द्वौ श्लोकौ भवभूतिना आदिकाण्डात् कुश-लवेनोत्तर-चरितस्य षष्ठेऽङ्के उद्धृतौ तावविकलौ प्राच्यां शाखायां वर्त्तेते (१८७), केवलं 'त्व'-स्थाने 'च' पठ्यते इति विशेषः। प्रतीच्याम-वाच्यां चानयोस्तात्पर्यमात्रं दृश्यते (१८८)। पाठ-विकार एवात्र कारणम्। अन्यच्च, प्राच्यां न कुत्रापि तथागतस्य तद्धर्मस्य चोल्लेखोऽस्ति। प्रतीच्यादिषु तु तिसृषु लोकायतिक-मत दूषण-प्रसङ्गेन बुद्धस्यैषां नास्तिकत्व कथ्यते (१८९)। धर्मचक्र प्रवर्त्तकस्य सुगतस्य लोकायतिकैनैकीकरणं चौर इत्युपालम्भश्च कस्यचित् मन्द मतेः विद्वेषः साहसमेव। रामायणस्य सौगत काल

---

(१८३) प्राच्य रामायणम्, १।७।४। (१८४) मुम्बय्य-रामायणम्, १।१८।१०, ११। माद्राज-रामायणम्, १।१८।१०। काश्मी-रामायणम्, १।१८। (१८५) वङ्गीय रामायणम्, ६।११२। काश्मी-रामायणम्, ६।१३०। माद्राज-रामायणम्, ६।१३१।३४, ३५। (१८६) मुम्बय्य-रामायणम्, ६।१२८।६०। (१८७) प्राच्य रामायणम्, २।११।१५, १६। उत्तर-चरितम् (जीवानन्द मुद्रितम्)। (१८८) मुम्बय्य-रामायणम्, १।७७।२६-२८। माद्राज रामायणम्, १।७७।२७, २८। (१८९) मुम्बय्य-रामायणम्, २।१०८।३४। माद्राज-रामायणम्, २।१०८।३४। काश्मी-रामायणम्, २।१०८।

पूर्वत्वमुपरिष्टादेवोक्तम्। अन्यच्च, अरण्यकाण्डे सीतोक्तोपाख्याने येन तापसाय 'निशितं खड्गम्' न्यास विधिना दीयते स प्राच्यां शाखायाम् अ-निश्चितो ऽपि (१६०) प्रतीच्यादिषु इन्द्रो भवति (१६१)। गच्छति काले अज्ञाता ज्ञातः सम्पद्यते, न विपर्ययः। अन्यच्च, राम राज्य-काल परिमाणमधिकृत्य यत् पूर्वमुक्तं तदपि शाखाम् प्राच्याः प्राचीनतमत्वं दर्शयति। रचना-रीति-पर्यालोचनया गौड़-साहित्य-स्यापि प्राचीनत्वमनुमीयते। आदौ हि गौड़ी वैदर्भी चेति द्वे एव रीती आस्ताम्, ततः क्रमेणापरा आविर्बभूवुः। सत्यव्रत साहित्य रीतिविचार्यते। प्रक्षेप-बहुलत्वं च रामायणस्य, काले काले प्रवर्धमानं, तिलक कारादिभिरपि प्रदर्शितम् (१६२)।

सा प्राची शाखापि, पञ्च विंशति-सहस्राधिक श्लोकमयी (१६३) इति-आदृष्टतुः-पञ्च गुणा, प्रक्षेप-बाहुल्यादति विस्तृता, अप्रासङ्गिकत्वाति-रिक्त पुनरुक्ति प्रभृति-दोषैर् दूषिता च महा-पण्डितेनापि प्रायेण समग्रा सम्यक् न पठ्यते, किं पुनर् विद्यार्थिना। आस्तामपरो बुधः, विद्या सागरो ऽपि, संस्कृत साहित्यं विवृण्वन्, रामायणं नाजीगणत् (१६४)। संस्कृत-विदः स्वल्पायतनेषु रघुवंश भट्टिकाव्योत्तरचरितादिष्वेव सादरन्ते, प्राकृत रामायणेष्वपरे। मूलानुवादयोस्तु महदन्तरम्। किन्तु त्वेव आदि-कवेः कालिदासो ऽपि, का कथापरेषाम्। मूल-रामायणं संक्षिप्य स्व कृत-वचनैः क्षेमेन्द्रो रामायण कथा-सार-मञ्जरीं भोज-राजश्च चम्पू-

---

(१६०) लघु रामायणम्, ३।३।१८। (१६१) मुम्बय-रामायणम् ३।१८।१७। माद्राज रामायणम्, ३।१८।१७। काशी-रामायणम्, ३९। (१६२) रामायण तिलकम्, ४।४३।४६, ५।२३ (पर्व), ६।३७ (पर्व), ७।५८ (पर्व) (निर्णय सागर-प्रेस्)। (१६३) बङ्गीय-रामायणम् (गारसियो संस्कृतम्), ७।१०।१२५। (१६४) बन्द्योपाध्यायेर विद्यासागर-चरित, पृ. १७०।

रामायणमकार्षीत्। न विद्यते तयोर् वाल्मीकेः शब्द-जालम्, अद्भु-तोपमं भाव-विस्फुरणं च। तस्मात् सु-कवि-कृते अपि ते न समादृते।

एतत्सर्वं मनसि-कृत्य, समालोच्य च चतस्रो ऽपि शाखा रामायणस्य, आदि-कवि-कृतेः स्मरणाय, पण्डित-प्रवर-गोरेसियो सम्पादितां सार्डिनिया-राजस्य चार्ल्स्-आल्बार्टो व्ययेन प्रकाशितां च प्राचीं शाखाम् प्राचीनतमामवलम्ब्य, अत्युक्तिं पुनरुक्तिमवान्तर-विस्तृतिं च विहाय, त्रिभिरादि-काव्य-वचन-सहस्रैर् सीता-राम-कथेह प्रोच्यते। यत्र यत्र गोरेसियो धृतः पाठो ऽसभ्यं दूरत्वेन नारोचिष्ट, तत्र तत्र कलिकाता-राजकीय-संस्कृत-विद्यालय-सन्ध्याधान-लिपीर् आशिश्रियाम। नेह विस्तर-भिया शब्द-चित्रम-स्पष्टी-कृतं भाव-विस्फुरणं प्रतिबद्धं वा। स्वच्छन्दनात कवि-गुरोर् भारती विलसति। किमधिकं ब्रूमः?

'पाप्मभ्यश्च पुनातु वर्धयतु च श्रेयांसि सेयं कथा,
मङ्गल्या च मनो-हरा च, जगतो मातेव च गङ्गेव च' (१६५)।

(१६५) उत्तर-चरितम्, ७।२०। पाप्मभ्य—पापेभ्यः। पुनातु—पवित्री-करोतु, रक्षतु इत्यर्थः। श्रेयांसि—मङ्गलानि। मङ्गल्या—मङ्गल-कारिणी।

निवेदनम्।

मुद्रक-मुद्रायोजकयोरज्ञानात् निपुण-नागर-मुद्रा-योजना-संशोधकाभावाच्च मुद्रण-जा भ्रमा बहवो ऽजनिषत। सुधीभिरपि आभ्यन्तरैरपि अपरैरपि सुसमुद्धरणीयाः। पत्रेण ते निर्दिश्यन्ते चेत्, नितरामुपकरिष्यामहे।

अनुक्रमणिका ।

तपः-स्वाध्याय-निरतस्तपस्वी, वाग्-विदां वरः,
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनि-सत्तमः,— १

“को ह्यस्मिन् प्रथितो लोके सद्-गुणैर्गुणवत्तरः,
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्य-वाक्यो, दृढ़-व्रतः ? २

उदाराचार-सम्पन्नः, सर्व-भूत-हिते रतः,
वीर्यवांश्च वदान्यश्च कस्यापि प्रिय-दर्शनः ? ३

जित-क्रोधो महान् कश्च ? धृतिमान् कोऽनसूयकः ?
सञ्जात-रोषात् कस्माच्च देवता अपि बिभ्यति ? ४

क उदारः, समर्थश्च त्रैलोक्यस्यापि रक्षणे ?
कः प्रजानुग्रह-रतः ? को निधिर्गुण-सम्पदाम् ? ५

समग्रा रूपिणी लक्ष्मीः कमेकं संश्रिता नरम् ?
अनिलानल-सूर्येन्दु-शक्रोपेन्द्र-समश्च कः ? ६

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं त्वत्तो, नारद, तत्त्वतः ।
देवर्षे, त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवं-विधं नरम् ।” ७

१। स्वाध्यायः—वेदाध्ययनम्। वाग्-विदाम्—शब्द-ब्रह्म-तत्त्व-विदाम्, वेद-विदाम्; वरः—श्रेष्ठः। २। कृतज्ञः—यः बह्वीमपि अपकृतिमुपेक्ष्य एकामपि उपकृतिं बहु मन्यते सः। सत्य-वाक्यः—यः सर्वास्वपि अवस्थासु यथा-श्रुतं यथा-दृष्टं यथा-तत्त्वं च भाषते सः। दृढ-व्रतः—यः आपद्यपि गृहीतं व्रतं न त्यजति सः। ३। उदाराचारः—सदाचारः। वीर्यम्—पराभिभव-सामर्थ्यम्। वदान्यः—दान-शीलः। ४। धृतिमान्—धीरः, सम्पत्तौ च विपत्तौ च एकरूपः। अनसूयकः—परोन्नति-सहन-शीलः। ५। उदारः—महात्मा, गम्भीरो वा। ६। शक्रः—इन्द्रः; उपेन्द्रः—विष्णुः।

काल-त्रयज्ञस्तच्छ्रुत्वा वाल्मीकेर्नारदो वचः,
श्रूयतामित्युपामन्त्र्य तमृषिं प्रत्यभाषत,— ८
"बहवो दुर्लभाश्चैव त्वयैते कीर्तिता गुणाः।
एकेन हि नृ-लोकेऽस्मिन् गुणा एते सु-दुर्लभाः। ९
देवेष्वपि न पश्यामि कश्चिदेभिर्गुणैर्युतम्—
श्रूयतां तु गुणैरेभिर्यो युक्तो नर-चन्द्रमाः। १०
इक्ष्वाकु-वंश-प्रभवो, रामो नाम, गुणाकरः,
एभिरप्यधिकैश्चैव गुणैर्युक्तो, महा-द्युतिः। ११
तमेवं गुण-सम्पन्नं रामं, सत्य-पराक्रमम्,
ज्येष्ठं, श्रेष्ठ-गुणैर्युक्तं, पिता दशरथः सुतम् १२
यौव-राज्येन संयोक्तुमियेष, स महा-द्युतिः।
तस्याभिषेक-सम्भारं दृष्ट्वा, कैकय-वंशजा, १३
पूर्वं दत्त-वरा राज्ञा, वरमेनमयाचत—
विवासनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम्। १४
स, सत्य-वचनात्, राजा, धर्म-पाशेन संयतः,
विवासयामास सुतं—राजा दशरथः, प्रियम्। १५
तं यान्तम्, अनुजो धीमान्, भ्रातरं राममग्रजम्,
लक्ष्मणो नाम, विनयादनुवव्राज, वीर्यवान्। १६

८। उपामन्त्र्य—एकाग्रतामित्य; अभिमुखीकृत्य। ११। द्युतिः—दीप्तिः, कान्तिः। १३। सम्भारः—उपकरण-समूहः। कैकय-वंशजा—कैकय-राज-पुत्री; कैकयी, कैकेयी। कैकयाः—जनपद-विशेषः, तद्-वासिनश्च। १५। सत्य-वचनात्—सत्य-प्रतिज्ञत्वात्। संयतः—बद्धः।

सर्व-लक्षण-सम्पन्ना, नारीणामुत्तमा, सती,
अनुवव्राज वैदेही, सीता नाम, पति-व्रता । १७

चित्र-कूटं गते रामे, पुत्र-शोकार्दितस्तदा
राजा दशरथः स्वर्गमगमद्, विलपन् सुतम् । १८

राम-प्रवासनं श्रुत्वा, पितुश्च निधनं तथा,
भरतो विललापार्त्तो, मातृकादागतो गृहम् । १९

राज्य-लोभं परित्यज्य, रामं द्रष्टुमुपागतः,
अयाचद् भ्रातरं रामम्, आर्य्य-भाव-पुरस्कृतः । २०

न चैच्छत्, पितुरादेशाद्, राज्यं रामो महा-यशाः ;
निवर्त्तयामास तदा भरतं भरताग्रजः । २१

स, काममनवाप्यैव, गृहीत्वा राम-पादुके,
नन्दि-ग्रामेऽकरोद् राज्यं रामागमन-काङ्क्षया । २२

रामोऽपि, हित्वा तं शैलं, प्रययौ दण्डकं वनम् ;
देशः पञ्चवटी नाम, तत्र वासमकल्पयत् । २३

रक्षोभ्यः काम-रूपिभ्य ऋषयोऽभ्यागमन् भयात्
रामं कमल-पत्राक्षं शरण्यं, शरणैषिणः । २४

तेन तत्र, सह भ्रात्रा जन-स्थान-निवासिनी,
विरूपिता शूर्प-णखा, राक्षसी काम-रूपिणी । २५

१८। अर्द्दितः—पीडितः। १९। मातृकात्—मातृ सम्बन्धिनः [गृहात्], मातामहालयात्। २०। आर्य्य भाव-पुरस्कृतः—विनीत वेशः। २२। कामः—काम्य-वस्तु [राम प्रतिनिवृत्ति रूपम्]। २४। काम रूपिणः—इच्छया नाना रूप धारिणः। शरण्यः—रक्षण समर्थः। शरणैषिणः—शरणार्थिनः, रक्षा प्रार्थिनः। २५। काम रूपिणी—इच्छया नाना रूप धारिणी, यद्वा पुंसां काम्यमान रूप दधती।

राक्षसाधिपतिः शूरो रावणः, क्रोध-मूर्च्छितः,
जगाम, सह-मारीचो, रामाश्रम-पदं, ततः ; २६

तेन मायाविना दूरमपवाह्य नृपात्मजौ,
जहार भार्यां रामस्य, हत्वा गृध्रं जटायुषम् । २७

सु-ग्रीवस्तस्य रामस्य श्रुत्वा वाक्यं, महा मनाः,
चक्रे वानर-राजेन वैरानुकथनं महत् । २८

समयं तौ ततः कृत्वा, नर वानर पुङ्गवौ,
किष्किन्ध्यां राम सुग्रीवौ जग्मतुस्तौ, गुहां, तदा । २९

तत्र, सुग्रीव वचनाद् हत्वा वालिनमाहवे,
सुग्रीवायैव तद् राज्यं राघवः प्रत्यपादयत् ; ३०

ततः, सुग्रीव सहितो, गत्वा तीरं महोदधेः,
समुद्रं क्षोभयामास शरैरादित्य सन्निभैः । ३१

दर्शयामास चात्मानं समुद्रो राघवस्य तु,
समुद्रवचनाच्चैव नलः सेतुमकारयत् । ३२

तेन गत्वा पुरीं लङ्कां, हत्वा तं राक्षसेश्वरम्,
अभ्यषिञ्चत् स लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् । ३३

२६। शूरः—वीरः। मूर्च्छितः—व्याप्त चित्तः। २७। अपवाह्य—अपसार्य। २८। वानर राजेन—वालिना। वैरानुकथनम्—कृतस्य वैरस्य (शत्रुतायाः) अनुकथनम् (वर्णनम्)। २९। समयः—प्रतिज्ञा। किष्किन्ध्याम्—किष्किन्ध्याख्याम्। ३०। प्रत्यपादयत्—समर्पयामास, प्रापयामास, ददौ इत्यर्थः। ३२। राघवः—रघोः सन्तानः। अकारयत्—अकरोत्। चुरादेः कृ धातोः स्वार्थे णिच्। ३३। द्वितीया पंक्तिः—'रामः सीतामनुप्राप्य परां व्रीडामुपागमत्', इति पाठान्तरम्।

तामुवाच ततो रामः परुषं तत्र संसदि ;
अमृष्यमाणा तं, सीता विवेश ज्वलनं, ततः । ३४
स चाग्नि-वचनात् सीतां, ज्ञात्वा विगत-कल्मषाम्,
अगृह्णीदमलां रामो, वचनाच्च गुरोस्तदा । ३५
पुष्पकं च समारुह्य नन्दिग्राममुपागमत्,
पालयामास चैवेमाः पितृवत् मुदिताः प्रजाः । ३६
देवर्षे, ये त्वया प्रोक्ता गुणाः पुरुष-दुर्लभाः,
तेषामेव समवायः साम्प्रतं राममाश्रितः ।" ३७

स, मुहूर्तं, गते तस्मिन् देव लोकाय नारदे,
जगाम तमसा-तीरं, वाल्मीकिर्मुनि-सत्तमः । ३८
अवगाह्य जलं, स्नात्वा, जप्त्वा जप्यं च वाग्-यतः,
निरीक्षमाणो व्यचरत् सर्वतस्तमसा-वनम् । ३९
ततः, स, तमसा-तीरे विचरन्तम-भीतवत्,
ददर्श क्रौञ्चयोस्तत्र मिथुनं, चारु-दर्शनम् । ४०
तस्माच्च मिथुनादेकमागत्यानुपलक्षितः,
जघान, बद्धानुशयो निषादो, मुनि सन्निधौ । ४१

---

३४ । ताम्—सीताम् इति शेषः । परुषम्—कर्कशम्, निष्ठुरम्, मर्मस्पृक् वाक्यम् । संसदि—सभायां, जनतायाम् । अमृष्यमाणा—असहमाना । ज्वलनम्—अग्निः । । वि ३५ गतकल्मषा—निष्पापा । ३६ । मुदिता—हृष्टा । ३७ । समवायः—समूहः । साम्प्रतम्—अधुना, इदानीम् । ३८ । मुहूर्तम्—आश्रमे स्थित्वा इति शेषः । ३९ । वाग्-यतः—यत वाक्, मितवाक् इत्यर्थः । आहिताग्न्यादित्वात् निष्ठान्तस्य वैकल्पिकः पर-निपातः । ४० । विचरन्तम्—विचरत् । पुंस्त्वमार्षम् । अ-भीतवत्—भय रहितम् । मिथुनम्—द्वन्द्वम्, a pair, a couple. ४१ । अनुपलक्षितः—अ-लक्षितः, अननुमितः । बद्धानुशयः—बद्ध वैरः । निषादः—चण्डालः ।

तं, शोणित-परीताङ्गं, चेष्टमानं महीतले,
दृष्ट्वा, क्रौञ्ची रुरोदार्त्ता, करुणं, खे परिभ्रमा। ४२

तं तथा निहतं दृष्ट्वा निषादेनाण्डजं वने,
मुनेः शिष्य-सहायस्य कारुण्यं समजायत। ४३

ततः, करुण-वेदित्वाद्, धर्मात्मा स द्विजोत्तमः,
निशम्य करुणं क्रौञ्चीं रुदतीं तां, जगाविदम्,— ४४

"मा, निषाद, प्रतिष्ठां त्वमगमः, शाश्वतीः समाः;
यत् क्रौञ्च-मिथुनादेकमवधीः, काम-मोहितम्"। ४५

तस्येदमुक्त्वा वचनं, चिन्ताभूत् तदनन्तरम्,
शकुनं शोचतो ह्येवं,—'किमेतद् व्याहृतं मया'। ४६

तमेवं चिन्तयन्नर्थमुपायादाश्रमं मुनिः;
उपविष्टस्ततस्तस्मिन् बभूव ध्यानमास्थितः। ४७

आजगाम ततो ब्रह्मा, लोक-कर्ता, स्वयं प्रभुः,
स्वयम्भूर्भगवान्, द्रष्टुं स्वयं तमृषि-सत्तमम्। ४८

४२। चेष्टमानम्—इतस्ततः पतन्तम्। खे—आकाशे। परिभ्रमा—समन्तात् विचरन्ती। ४३। अण्डजम्—पक्षिणम्। शिष्य-सहायस्य—शिष्य-सहितस्य। ४४। करुण-वेदित्वात्—करुण-स्वभावत्वात्। करुणम् (करुणाम्) वेदितुं (अनुभवितुम्) शीलं यस्य स करुणवेदी। ४५। प्रतिष्ठाम्—स्थायित्वम्, कीर्तिम्। मा अगमः—मा गमः, न प्राप्नुहि। माङ्योगेऽपि अडागम आर्षः। शाश्वतीः—नित्याः। शाश्वतीः समाः—अनेकान् संवत्सरान्। अवधीः—हतवान् असि। ४६। शकुनम्—पक्षिणम्। व्याहृतम्—उक्तम्। ४७। उपायात्—उपागच्छत्। ४८। लोक-कर्ता—भुवनादि त्रिलोक-निर्माता। स्वयं प्रभुः—स्वतन्त्रः ईशिता, स्वाधीनो नेता। स्वयम्भूः—आत्मभूः, self-existent. भगवान्—षडैश्वर्य-सम्पन्नः। 'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः, ज्ञान-वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इति स्मृतम्'।

वाल्मीकिरपि, तं दृष्ट्वा, सहसोत्थाय, वाग्-यतः,
प्राञ्जलिः, प्रणतो भूत्वा, तस्थौ, परम-विस्मितः । ४९

उपविष्टे तु तस्मिंस्तु साक्षाल्लोक-पितामहे,
तद्-गतेनैव मनसा, वाल्मीकिर्ध्यानमास्थितः, ५०

शोचन्निव मुहुः क्रौञ्चीं, ततः, श्लोकमिमं पुनः
जगादान्तर्गत-मना भूत्वा, शोक-परायणः,— ५१

"कृतं पापात्मना कष्टं व्याधेनानार्य-बुद्धिना,
यत् सु-चारु-रवं क्रौञ्चमवधीत् तमकारणात्" । ५२

तमुवाच ततो ब्रह्मा, प्रहसन्, मुनि-सत्तमम्,—
"महर्षे, यदयं प्रोक्तस्त्वया क्रौञ्च-वधाश्रयः,—
श्लोक एवास्त्वयं बद्धस्तव वाक्यस्य, शोचतः । ५३

स्वच्छन्दादेव ते, ब्रह्मन्, प्रवृत्तेयं सरस्वती—
वृत्तं प्रथय रामस्य, यथा ते नारदाच्छ्रुतम् । ५४

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च मही-तले,
तावद् रामायण-कथा लोकेषु प्रचरिष्यति ।" ५५

४९ । वाग्-यतः—(अति सम्भ्रम-वशात्, वाक्य-हीनः) । ५० । लोक-पितामहः—ब्रह्मा । 'ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव' । तद्-गतेन—क्रौञ्च-गतेन । ५१ । जगाद—उवाच । अन्तर्गत-मनाः—अन्तर्गत-शोकार्थे एव दत्त-चित्तः । ५२ । कष्टम्—(क्रौञ्च-वध-रूपम्) । अनार्य-बुद्धिना—म्लेच्छ-बुद्धिना, दुष्ट-बुद्धिना । सु-चारु-रवम्—सु-मधुर-स्वनम् । अवधीत्—हतवान् । ५३ । श्लोकः—छन्दो-बद्ध-चतुष्पाद-वाक्यम्, पद्यम्, कविता । ५४ । स्वच्छन्दात्—स्वेच्छया, अनायासेन, स्व-भावतः । सरस्वती—वाणी, वाक्यम् । वृत्तम्—चरितम् । प्रथय—प्रकाशय । ५५ । सरित्—नदी ।

इत्युक्त्वा भगवान् ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ।
ततः स-शिष्यो वाल्मीकिर्विस्मयं परमं ययौ । ५६

तस्य बुद्धिरभूत् तत्र वाल्मीकेरथ, धीमतः,—
"कृत्स्नं रामायणं श्लोकैरीदृशैः करवाण्यहम्, ५७
धर्म-कामार्थ-सम्बद्धं, बहु-चित्रार्थ-विस्तरम्,
समुद्रमिव रत्नाढ्यं, लोक-श्रुति-परायणम्" । ५८
श्रुत्वा पूर्वं काव्य-बीजं देवर्षेर्नारदाद्, ऋषिः,
लोकादन्विष्य भूयश्च चरितं, चरित-व्रतः, ५९
उपस्पृश्योदकं सम्यङ्, मुनिः, स्थित्वा कृताञ्जलिः
प्राचीनाग्रेषु दर्भेषु, काव्यस्यान्वेषते गतिम् ; ६०
तपो बलेन चान्विष्य, चरितं भूरि-तेजसः
ददर्श तत्र प्रत्यक्षं, पाणावामलकं यथा ; ६१
दृष्ट्वा चानन्तरं चक्रे रामस्य चरितं महत्,
धर्म-कामार्थ-संयुक्तं, पुण्य-श्रवण-कीर्तनम् । ६२

५६ । अन्तरधीयत—अन्तर्हितोऽभवत, आत्मानम् अन्तरधात्त, अन्तर्दधे । ५७ । कृत्स्नम—समग्रम । ईदृशैः—मा निषादेत्यादिवत् करुणरसप्रधानैः अनुष्टुब्वृत्तमयैः । ५८ । लोक—संसार । श्रुति—वेदः । लोक-श्रुति-परायणम—सांसारिक जीवनोपयोगि वेदार्थ प्रकाशकं च । ६० । उपस्पृश्योदकम—आचमनादि कृत्वा इत्यर्थः । प्राचीनाग्रेषु—प्रागग्रेषु (having the points turned towards the east). दर्भेषु—कुशेषु । अन्वेषते—अनुगच्छति, अति यत्नेन पश्यति । कथायाम अतीतार्थे वर्तमान प्रयोगः । ६१ । भूरि तेजसः—तेजस्विनः (रामस्य) ।

अथ

श्री-लघु-रामायणे

आदि-काण्डम्।

प्रथमः सर्गः।

अयोध्या।

कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जन-पदो, महान्,
निविष्टः सरयू-तीरे, पशु-धान्य धनर्द्धिमान्। १

अयोध्या नाम तत्रासीन्नगरी लोक-विश्रुता,
मनुना मानवेन्द्रेण पूर्वं परिनिर्मिता। २

आयता दश च द्वे च योजनानि महा-पुरी,
श्रीमती, त्रीणि विस्तीर्णा, नव संस्थान-शोभिता, ३

सुविभक्तान्तर-द्वारा, सुविस्तीर्ण-महा पथा,
शोभिता राज-मार्गेण जल-संशान्त-रेणुना, ४

नाना-वणिग्-जनोपेता, नाना रत्न-विभूषिता,
महा-शालावृता, दुर्गा, उद्यान-वन-शोभिता, ५

१। मुदितः—(राज्ञा धर्मतः परिपाल्यमानत्) सन्तुष्टः। स्फीतः—उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्तः। निविष्टः—संस्थापितः। ऋद्धिमान्—सम्पन्नः। आसीत् इति शेषः।

३। आयता—दीर्घा। दश च द्वे च—द्वादश। संस्थानानि—आकृतयः (forms).

४। महा पथः—बहिर्मार्गः। राज मार्गः—राज द्वारात् पुरः प्रवृत्तः सर्व पथ्य शोभितो मार्गः। ५ : महाशालावृता—महता शालेन (प्राकारेण) आवृता (वेष्टिता)।

दुर्ग गम्भीर परिखा, नानायुध-समन्विता,
कपाट-तोरण-युता, उपेता धन्विभिः सदा । ६

पुर्यां तस्यामयोध्यायां वेद-वेदाङ्ग-वित्तमः,
दीर्घ-दर्शी, महा-तेजाः, पौर जानपद प्रियः, ७
इक्ष्वाकूणामति-रथो, यज्वा, धर्म भृतां वरः,
महर्षिकल्पो, राजर्षिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः, ८
बलवान्, विजितामित्रो, नीतिमान्, नियतेन्द्रियः,
धन धान्यर्द्धि विभवैः शक्र वैश्रवणोपमः, ९
आदि राजा मनुरिव प्रजानां परिरक्षिता,
राजा, दश रथो नाम, बभूव, त्रि दशोपमः । १०

तेन सत्याभिसन्धेन, त्रि वर्गमनुपश्यता,
पालिताऽभूत् पुरी सा तु, शक्रेणेवामरावती । ११
हृष्ट पुष्ट-जने तस्मिन् पुरे नैवाबहु श्रुतः
कश्चिदासीन्नरो, नापि कश्चिदन्याय वृत्तिमान् । १२

दुर्गा—अगम्या । उद्यानानि—क्रीडार्थं पुष्पवाटिका । ६ । दुर्ग गम्भीर परिखा—दुर्गा (अगम्या) गम्भीरा (अगाधा) च परिखा (गड्खाई, a moat or ditch) यस्याः सा । यद्वा दुर्गेण (जलदुर्गेण) गम्भीरा &c. तोरणम्—बहिर्द्वारस्य अलङ्कारभूतो दारुस्तम्भः (a decoration of the gate post). ७ । तेजः प्रतापः । ८ । अतिरथः—दश सहस्र महारथेभ्योऽपि । 'एको दश सहस्राणि योधयेद् यस्तु धन्विनाम्, शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च स महारथ उच्यते ।' यज्वा—सोमयाजी । ९ । अमित्रः—शत्रुः । ऋद्धिः सम्पद् । वैश्रवण—कुबेरः । १० । त्रिदशः—देवः । ११ । सत्याभिसन्धः—सत्यप्रतिज्ञः । त्रि-वर्गः—धर्मकामार्थाः । १२ । अबहुश्रुत—अल्पविद्यः ।

न चाल्प-निचयः कश्चिदासीत्तत्र पुरे नरः ;
न चाप्यासीदसन्तुष्टः कुटुम्बी तत्र कश्चन। १३

न कदर्यः कश्चिदासीन्, नानृतो, न शठोऽपि वा ;
न मानी, न च संरम्भी, न नृ-शंसो, न कत्थनः। १४

नराः स्व-दार निरता, नार्यश्चासन् पति-व्रताः ;
सु-व्रता धृतिमन्तश्च नरा आसंस्तथा स्त्रियः। १५

नाकुण्डली, नामुकुटी, नास्रग्वी, नाविलेपनी,
तत्रैव प्राकृतो नासीद्, दरिद्रो वा, पुरोत्तमे। १६

नामृष्ट-भूषण-धरो, न चाप्यासीदनिष्क-धृक्,
नाहस्ताभरणार्पितो, नानृजुर्, न च नास्तिकः। १७

नानाहिताग्निर्नायज्वा विप्रो ; नाप्य-सहस्रदः
कश्चिदासीदयोध्यायां—सद्-वृत्त-रहितो जनः। १८

स्व-कर्म-निरताश्चासन् सर्वे तत्र द्विजातयः,
यज्ञाध्ययन-निष्ठाश्च, विरताश्च प्रतिग्रहात्। १९

१३। कुटुम्बी—गृही, गृहस्थ। १४। कदर्य—कृपण। 'आत्मानं धर्मकृत्यं च पुत्रदारांश्च पीडयेत्, लोभाद् यः पितरौ भ्रातॄन् स कदर्य इति स्मृतः'। अनृत—असत्य परायणः। ऋतम्—सत्यम्। मानी—उद्धतः (haughty). संरम्भी—कोपन (angry, arrogant). नृशंसः—घातुकः, क्रूरः। कत्थनः—आत्म श्लाघा परायणः (swaggering). १६। अविलेपनी—चन्दनादि लेप रहित.। प्राकृतः—नीचः। १७। अमृष्टम्—अनिर्मलम्। निष्कः—उरो भूषणम्। नास्तिकः—नास्ति पर लोक इति बुद्धिमान्। १८। आहिताग्निः—अग्नि होत्री (One who consecrates the sacred fire). अयज्वा—सोम-याग रहितः। सहस्रदः—वदान्य इत्यर्थः। १९। प्रतिग्रहः—यथा शक्ति विधिना पर दत्तस्य स्वीकारः।

रूप-चातुर्य-माधुर्य-शीलाचार-गुणान्विताः
नार्यश्चासन्नयोध्यायां, सृष्टाभरण-वाससः । २०

नामर्षी, नापि चोद्विग्नो, नातुरो, न भयान्वितः
द्रष्टुं शक्यो ह्ययोध्यायां, नापि राजन्य-भक्तिमान् । २१

वर्ण-श्रेष्ठान् पूजयन्तः, पितॄन् देवातिथींस्तथा,
आसन् दीर्घायुषस्तत्र नराः, सत्य परायणाः । २२

एवमिक्ष्वाकु-नाथेन पालिता साभवत् पुरी,
यथा पुरस्तान्मनुना मानवेन्द्रेण भूरियम् । २३

योधानामग्निकल्पानां, संयुगेष्वनिवर्तिनाम्,
गुप्ता पुरी सहस्रैः, सा, सिंहैरिव गिरेर्गुहा ; २४

काम्बोज-देशजैश्चापि हयैर्वानायुजैस्तथा,
नदीजैर्वाह्लिजैश्चापि पूर्णा, हरि हयोपमैः ; २५

विन्ध्य पर्वतजैश्चैव नागैर्हैमवतैस्तथा,
सत्त्व वीर्य गुणोपेतैः, शूरैरव्याल चेष्टितैः । २६

२० । सृष्टम—निर्मलम । २१ । अमर्षी—असहिष्णुः, अक्षमः । २४ । संयुग—युद्धम् । गुप्ता—रक्षिता । २५ । काम्बोज देशः—काम्बोजानां (काम्बोजाख्य जनानां) देशः, इदानीं तिब्बतः (Tibet) इति नाम्ना ख्यातो देशः । वानायुः—भारत वर्षात् उत्तर पश्चिमस्यां दिशि स्थितो देश विशेषः । नदीजैः—सिन्धु नद समीपोद्भवैः । वाह्लिः—इदानीं बाल्ख (Balkh) इति नाम्ना ख्यातो भू-भागः । हरि हयः—उच्चैःश्रवाः । हरिः—इन्द्रः । तस्य हयः (अश्वः), उच्चैःश्रवाः । २६ । नागैः—गजैः । हैमवतैः—हिमवत् पर्वत जातैः । शूरैः—बलवद्भिः । अव्याल चेष्टितैः—दुष्ट गज चेष्टित रहितैः । व्यालः—दुष्टो गजः ।

द्वितीयः सर्गः।

आविर्भावः।

तिस्रो महिष्यस्तास्तस्य राजर्षेरभवन् पुरा,
गुणवत्योऽनु-रूपाश्च, रूपेणाप्सरसां समाः। १

कौशल्या महिषी चैव, कैकेयी चाभवच्छुभा,
सुमित्रा नाम-देवस्य बभूव करणी सुता। २

तासां प्रजज्ञिरे पुत्राश्चत्वारोऽमित-तेजसः,
राम-लक्ष्मण-शत्रुघ्न-भरता, देव-रूपिणः। ३

जन्म-तेजो-गुण-ज्येष्ठं पुत्रमप्रतिमौजसम्,
कौशल्या जनयद् रामं, विष्णु-तुल्य-पराक्रमम्। ४

भरतो नाम कैकेय्याः पुत्रः, सत्य-पराक्रमः,
धर्मात्मा च महात्मा च प्रख्यात-बल-विक्रमः। ५

तथा लक्ष्मण-शत्रुघ्नौ सुमित्राजनयत् सुतौ,
दृढ़-भक्तौ, महोत्साहौ, रामस्यावरजौ गुणैः। ६

ते दीप्त-मनसः सर्वे, महेष्वासा, नरर्षभाः।
अपूरयन्त ते कामान् पितुर्, धर्म-परायणाः। ७

स चतुर्भिर्महा-भागैः पुत्रैर्दश-रथो वृतः
बभूव परम-प्रीतो, देवैरिव पितामहः। ८

१। ताः—विश्व विश्रुताः इति भावः। २। करणी—शूद्रायां वैश्यात् जाता। ६। अवरजौ—पश्चात् जातौ, कनीयांसौ। ७। महेष्वासाः—महा धनुष्काः, महाधनुर्धारिणः। इष्वासः—धनुः; इषुः—बाणः (अस् क्षेपणे)। नरर्षभाः—नर पुङ्गवाः, नरश्रेष्ठाः। (ऋषभः—पुमान् गौः, वृषः, षण्ढः)। ८। पितामहः—ब्रह्मा।

तेषां, केतुरिव, श्रेष्ठो, रामो, लोक-हिते रतः,
स्वयम्भूरिव देवानां, सर्वेषां प्रिय-दर्शनः। ९

बाल्यात् प्रभृति तं भक्तो, लक्ष्मणो, लक्ष्मि-वर्धनः,
प्रजाभिरामं, धर्मात्मा भ्राता, भ्रातरमग्रजम्। १०

सोऽपि प्रियतरस्तस्य प्राणेभ्योऽपि, परन्तपः
लक्ष्मीवान् लक्ष्मणो, भ्रातुर्ज्येष्ठस्यारि विघातिनः। ११

मिष्टमन्नं तथा भोगानश्नाति न हि तं विना,
न विन्दति रतिं चैव मज्जनमपि तं विना। १२

मृगयामथवान्यत्र यान्तं राममनुव्रतः
लक्ष्मणोऽपि जगामैनं, धनुरादाय पृष्ठतः। १३

तृतीयः सर्गः।

सात्वो धर्मः।

एतस्मिन्नेव काले तु विश्वा मित्र इति श्रुतः
महर्षिरभ्ययाद् द्रष्टुमयोध्यायां नराधिपम्। १

वशिष्ठ-सहितो राजा स्वयमेव, महा-मनाः,
पाद्यमर्घ्यं च गां चापि विधिना प्रत्यवेदयत्। २

अर्चितं स ततो राजा विश्वामित्रमभाषत,—
"कस्तेऽभिलषितः कामः? किं करोमि, प्रशाधि माम्"। ३

९। केतुः—विजय ध्वजः। स इव कुल वंशस्य प्रकाशकः। स्वयम्भूः—ब्रह्मा। स इव, सर्व प्रीतिकरत्वात्। १०। लक्ष्मि-वर्धनः—लक्ष्मी वर्धनः। शुभस्य भाग्यः। ११। परन्तपः—शत्रु तापनः। १२। अश्नाति—भक्षयति। रामः इति शेषः। रतिः—प्रीतिः।
१। अभ्ययात्—अभ्यगच्छत्। २। प्रत्यवेदयत्—न्यवेदयत्।

तच्छ्रुत्वा, राज-सिंहस्य वाक्यमद्भुत-विस्तरम्,
हृष्ट-रोमा महा-तेजा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत,— ४

"यज्ञ-सिद्धि-करं किञ्चिदास्थितोऽस्मि महद् व्रतम् ;
न क्रोद्धव्यं मया तत्र कस्यचिद् भुवि, भू-पते । ५

व्रते चाप्यसमाप्ते मे, यज्ञघ्नौ राक्षसाधमौ
वेदीमभ्येत्य तरसा रुधिरेणाभ्यवर्षताम् । ६

तयोस्त्वं प्रतिषेद्धारं रामं, सत्य-पराक्रमम्,
दातुमर्हसि मे, तत्र रक्षार्थम्, अमितौजसम् ।" ७

स्नेहात्मूर्धन्युपाघ्राय, राजा दशरथः सुतम्
ददौ कुशिक पुत्राय, लक्ष्मणानुचरं, तदा । ८

विश्वामित्रं महात्मानं तावुभौ राम-लक्ष्मणौ
तदानुजग्मतुर्वीरौ, यथेन्द्रं देवमश्विनौ । ९

बद्ध गोधाङ्गुलि-त्राणौ, खड्ग-तूण-धनुर्धरौ,
तदानुजग्मतुः, स्थाणुं कुमाराविव पावकौ । १०

तस्मिन् यज्ञे समाप्तेऽथ विश्वामित्रो, महा-यशाः,
दृष्ट्वाश्रमं कृत-क्षेमं, काकुत्स्थमिदमब्रवीत्,— ११

"कृतार्थोऽस्मि, महाबाहो ; कृतं गुरु-वचस्त्वया ;
सिद्धाश्रम पदं चेदं भूयः सिद्धतरं कृतम् ।" १२

४ । अद्भुत विस्तरम्—अद्भुतः (आश्चर्यः) विस्तरः (प्रपञ्चः) यस्य तत् । ५ । व्रतम्—नियमः । आस्थितोऽस्मि—आस्थाय तिष्ठामि । ६ । तरसा—वेगेन । राक्षसाधमौ—मारीचः सुबाहुश्च । १० । बद्ध गोधाङ्गुलि त्राणौ—बद्धं गोधाङ्गुलि त्राणम् (गोधा-चर्म कृतम् अङ्गुलि त्राणम्, finger protector) ययोः तौ । स्थाणुम्—रुद्रम् । पावकौ—स्कन्द विशाखौ । ११ । क्षेमम्—कल्याणम् । काकुत्स्थः—ककुत्स्थस्य सन्तानः ।

चतुर्थः सर्गः ।

मिथिला-गमनम् ।

ततः, प्रागुत्तरां गत्वा दिशं, रामः स-लक्ष्मणः,
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य, यज्ञ-वाटं ददर्श ह । १

विश्वामित्रमृषिं प्राप्तं शुश्राव मिथिलेश्वरः ;
शतानन्दं पुरस्कृत्य पुरोहितमकल्मषम्, २
ऋत्विग्भिः सहितश्चान्यैरादायार्घ्यं, त्वरान्वितः,
विश्वामित्राय, सत्कृत्य, ददौ, मन्त्र पुरस्कृतम् । ३

अथ राजा मुनि-श्रेष्ठं कृताञ्जलिरभाषत,—
"आसने, भगवन्, कुशे उपविष्टुमिहार्हसि । ४
एतौ च, मुनि-शार्दूल, कुमाराविव पावकौ,
काक-पक्ष-धरौ कस्य ? किमर्थं चाभ्युपागतौ ? ५
व्यूढोरस्कौ, दीर्घ-भुजौ, खड्ग-तूण-धनुर्धरौ,
अश्विनोः सदृशौ रूपे, कस्यातिप्रिय-दर्शनौ ?" ६

तस्यैतद् वचनं श्रुत्वा, जनकस्य महात्मनः
न्यवेदयन्महात्मानौ सुतौ दशरथस्य तौ,
रामस्य धनुषश्चैव जिज्ञासार्थमुपागमम् । ७

१। प्रागुत्तराम्—पूर्वोत्तराम्, ऐशानीम्। यज्ञ वाटम्—यज्ञ शाला वाटम्। ३। कृत्य—रचित्वा। ५। काक पक्षाः—बालानां कपोल समीपवर्तिन शिखा (side locks of hair on the temples of boys). ६। व्यूढोरस्कौ—व्यूढ (विपुलं स्फीतं दृढं च) उरः (वक्षः) ययोः तौ। ७। न्यवेदयत्—विश्वामित्र इति शेष।

इत्युक्तो, जनको राजा प्रत्युवाच, कृताञ्जलिः,—
"श्रूयतां धनुषस्तत्त्वं—यदर्थं मयि तिष्ठति। ८
दक्ष-यज्ञ-वधे पूर्वं धनुरायम्य शङ्करः
विध्वस्य त्रिदशान् सर्वानिदं किल तदोक्तवान्,— ९
'यस्माद् भागार्थिनो भागं नाकल्पयत मे, सुराः!
तस्मादङ्गानि सर्वाणि धनुषा शातयामि वः!' १०
ततो देवा, भयोद्विग्ना, रुद्राय प्रणमंस्तदा;
प्रसादयाञ्चक्रुरेनं। तेषां तुष्टोऽभवद् भवः। ११
तदेतद् देव-देवस्य धनुर्दिव्यं, महात्मनः,
तिष्ठत्यद्यापि, भगवन्, कुलेऽस्माकं, सु-पूजितम्। १२
वीर्य-शुल्का च मे कन्या, दिव्य-रूपा, गुणान्विता,
भू-तलादुत्थिता पूर्वं, नाम्ना सीतेत्य-योनिजा। १३
तां नृपा वरयामासुरागत्यागत्य वै पुरा;
वीर्य-शुल्का प्रदेयेति तानहं चाब्रुवं नृपान्। १४
ततो नृपतयः सर्वे, प्रार्थयन्तः सुतां मम,
वीर्यं जिज्ञासयिषवः, परमभ्याययुर्मम। १५

९। दक्ष-यज्ञ-वधे —दक्ष-यज्ञ-नाशाय 'सप्तमी निमित्तात्'। किल —एव इत्यर्थः।
१०। भागार्थिनः—यज्ञ-भागार्थिनः। मे —मम। न अकल्पयत —यूयमिति शेषः। शातयामि (शद णिच् + मिप्)—छिनद्मि। ११। भवः —रुद्रः। १२। देव-देवस्य —रुद्रस्य। १३। वीर्य-शुल्का —[रुद्र-धनुः-सज्याकरणादि-रूपम्] वीर्यमेव शुल्कं (मूल्यं) यस्याः सा। अयोनिजा —अ-नारी-सम्भवा, 'भू-तलादुत्थिता'। १५। प्रार्थयन्तः—प्रार्थयमानाः। परम्—पदमात्रम्। जिज्ञासयिषवः (ज्ञा सन् णिच् सन् + उ + जस्)—ज्ञापयिष्यन्तः। अभ्याययुः —अभ्यागच्छन्। अततीति चक्रपराचेऽपि लिट्-प्रयोग आर्षः।

वीर्य-जिज्ञासया तेषां मया सन्दर्शितं धनुः ;
न शेकुश्चापि ते ग्रहणमुद्यन्तुमपि तद् धनुः । १६
तेषामल्पमहं ज्ञात्वा वीर्यं तत्र, महा-मुने,
कृतवान् सर्वतस्तेषां प्रत्याख्यानं सुतां प्रति । १७
तदेतत्, मुनि शार्दूल, दिव्यं, परम भास्वरम्,
दर्शयाम्यद्य रामाय लक्ष्मणाय च तद् धनुः । १८
कुर्यादारोपणं रामो धनुषश्चास्य चेदयम्,
दद्यामयोनिजामस्मै सीतां दशरथ स्नुषाम् ।" १९

जनकस्य वचः श्रुत्वा, विश्वामित्रो महा मुनिः,
धनुर्दर्शय रामाय तदिति, प्राब्रवीन्नृपम् । २०
सुरोपमस्तु जनकः सोऽमात्यान् व्यादिदेश ह,—
रामसन्दर्शनार्थं तद् धनुरानीयतामिति । २१

जनकेन समादिष्टाः, प्रविश्य सचिवाः पुरीम्,
धनुरानाययामासुः पुरुषैराम कारिभिः । २२
पुरुषाणां शतान्यष्टौ, व्यायतानां, महौजसाम्,
मञ्जूषामष्ट चक्र स्थां गुर्वीमूहुः कथञ्चन । २३

[illegible] कृयातन, w[illegible] th[illegible] [illegible] नाद्यात् इति [illegible] कार्मुकं [illegible] २३ । व्यायतानाम् [illegible] दीर्घाणाम् ।
मञ्जूषा—पेटक, [illegible] a receptacle

पञ्चमः सर्गः।

धनुर्भङ्गः।

तामानीय च मञ्जूषामायसीं—यत्र तद् धनुः—
सुरोपमं तु जनकं तमूचुरिति मन्त्रिणः,— १
"इदं तद् धनुरानीतमाज्ञया ते, नराधिप ;
दर्शयैतद् ऋषेरस्य राघवस्य च, भास्वरम्"। २

तेषामेतद् वचः श्रुत्वा, जनकः प्रसृतं वचः
विश्वामित्रमुवाचेदं, तौ चोभौ राम-लक्ष्मणौ,— ३
"ब्रह्मन्, धनुरुपानीतं यत् तु तिष्ठति नो गृहे—
राजभिर्यन्न शकितमुद्यन्तुमपि, तद् धनुः। ४
इदं मया धनुर्दिव्यं तवानायितमाज्ञया ;
दर्शयैतन्, मुने, क्षिप्रमनयो राज-पुत्रयोः।" ५

विश्वामित्रम् तच्छ्रुत्वा जनकस्य वचस्तदा,
अभ्यभाषत, धर्मात्मा, प्रहृष्टेनान्तरात्मना,— ६
"गृहाणेदं, महा-बाहो, दिव्यं धनुरनुत्तमम् ;
धारणे कर्षणे चास्य यत्नमातिष्ठ, राघव।" ७

मुनेस्तु वचनाद्, रामो, यत्र तिष्ठति तद् धनुः,
मञ्जूषां तामपावृत्य, विश्वामित्रमभाषत,— ८
"इदं धनुरहं दिव्यं तोलयिष्यामि पाणिना,
यत्नवांश्च भविष्यामि स-ज्यस्यास्य विकर्षणे।" ९

१। आयसीम्—लौहनिर्मिताम्। ३। प्रसृतम्—प्रणतम्, विनीतम्।
८। अपावृत्य—अपगतावरणां कृत्वा। ९। सज्यस्यास्य विकर्षणे—अस्य सज्यीकरणे

वाढ़मित्येव तं राजा मुनिश्च समभाषत।
स-लीलमिव तद् रामस्तोलयित्वैक-पाणिना, १०
पश्यतामभितस्तत्र सदस्यानां समन्ततः,
आनम्य नाति-यत्नेन, स-ज्यं चक्रे हसन्निव। ११
स-ज्यं कृत्वा, ततश्चैव पूरयामास वीर्यवान्;
बभञ्ज पूरयंश्चैव मध्ये रामो बलादिव। १२
तस्य शब्दो महानासीद्, गिरेरिव विशीर्यतः,
वज्रस्येव विमुक्तस्य शक्रेण नग-मूर्धनि। १३
निपेतुस्तेन शब्देन सर्वशो मोहिता जनाः,
विश्वामित्रं वर्जयित्वा, राजानं, तौ च राघवौ। १४
प्रत्याश्वस्ते जने तस्मिन्, राजा, विस्मयमागतः,
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं विश्वामित्रमिदं तदा,— १५
"भगवन्, श्रुत-पूर्वो मे रामो दशरथात्मजः;
अत्यद्भुतमिदं त्वया कर्म चादर्शितं मया। १६
जनकानां कुले कीर्तिमाहरिष्यति मे सुता
सीता, भर्तारमासाद्य रामं दशरथात्मजम्। १७
वीर्य-शुल्क-प्रदानेन प्रतिज्ञा स-फली-कृता;—
सीतां दास्यामि रामाय प्राणेभ्योऽपि प्रियामहम्। १८

विकर्षणे च। १०। स-लीलमिव—क्रीडयेव, अनायासेनैव। ११। पश्यतां सदस्यानाम्—पश्यतः सदस्यान् अनादृत्य। अनादरे षष्ठी। अभितः—समीपे [स्थित्वा]। समन्ततः—सर्वतः। स-ज्यं चक्रे—Strung. १२। पूरयामास—आ-कर्णं। मध्ये—मध्य-प्रदेशे। १३। विशीर्यतः—विदीर्यतः, splitting. १५। प्रत्याश्वस्ते—पुनः संज्ञां प्राप्तवति। जने—जन-समूहे। १७। आहरिष्यति—सम्पादयिष्यति।

भवतोऽनुमते तस्मादितो यान्तु, महा-मुने,
दूता ममाज्ञया शीघ्रमयोध्यां जवनैर्हयैः ; १९
विज्ञाप्य चैव राजानमानयन्तु पुरीं मम,
प्रदानं वीर्य-शुल्कायाः सीतायाः कथयन्तु च । २०
त्वया गुप्तौ च काकुत्स्थौ वेदयन्तु नृपाय ते ;
एभिः प्रह्लादितं वाक्यैरानयन्त्विह तं नृपम् ।” २१
कौशिकेन तथेत्युक्तो, नृपः प्रेष्यानुपस्थितान्
अयोध्यां प्रेषयामास—स हि राजा, त्वरान्वितः । २२

षष्ठः सर्गः ।

शुभः सन्देशः ।

जनकेन समादिष्टा, दूतास्ते द्रुत-वाहनाः,
मार्गे त्रि-रात्रमुषिता, अयोध्यां प्राविशन् पुरीम् । १
ते, राज्ञो विदिता, दूता, राज-वेश्म प्रवेशिताः,
ददृशुस्तं महात्मानं तत्राथ नृप-सत्तमम्, २
शासत् प्रजाः प्रशासन्तं, धर्मज्ञं, सचिवैर्वृतम्,
ऋत्विग्भिर्देव-सङ्काशैर्वशिष्ठाद्यैश्च मन्त्रिभिः ३
आशास्यमानं सुप्रीतैः, शक्रमाङ्गिरसैरिव,—
तं लोक-पाल-प्रतिमं, लोक-पाले सु-निश्चितम् । ४

१९ । भवतोऽनुमते—भवदनुमत कृत्य-साधन निमित्तम् । निमित्ते सप्तमी । यद्वा, भवतोऽनुमत्या । जवनैः—वेगवद्भिः । २२ । कौशिकः—कुशिकस्य सन्तानः, विश्वामित्र इत्यर्थः । प्रेष्यान्—दूतान् ।

१ । उषिताः—कृत वासाः । २ । प्रवेशिताः—द्वार पालैरिति शेषः । ३ । प्रशासन्तम्—प्रशासतम् । अभ्यस्तादपि शतुर्नुमागम आर्षः । ४ । आशास्यमानम्—अभि-

दृष्ट्वैव, चाभिप्रणता, बद्धाञ्जलि-पुटास्तत:,
ऊचुर्दशरथं वाक्यमिदं प्रिय-निवेदिन:,— ५

"वैदेहो जनको राजा पृच्छति त्वां, नराधिप,
कुशलानामयं स्निग्धं, सामात्यं, स-पुरोहितम् । ६

पृष्ट्वा चानामयं पूर्वमव्ययं, स नराधिप:
विश्वामित्र-सहायस्त्वां विज्ञापयति पार्थिव:,— ७

'सुता मे वीर्य-शुल्केति प्रख्याता ; विदिता च ते,
राजभिर्हीन-वीर्यैश्च पुरापि प्रार्थिता यथा । ८

सेयं मम सुता, राजन्, विश्वामित्रस्य शासनात्,
पुरीमिमां समागत्य, तव पुत्रेण निर्जिता । ९

आनम्य तद् धनुर्दिव्यं मध्ये भग्नं महात्मना
रामेण, बलमाश्रित्य, महत्यां जन-संमर्दि । १०

तस्मै सुता मया देया, वीर्य-शुल्का, सुताय ते ।
प्रतिज्ञां तर्तुमिच्छामि ; तदनुज्ञातुमर्हसि । ११

सोपाध्याय: स-स्व-जन: स-बल: स-पदानुग:,
शीघ्रमर्हसि, राजर्षे, त्वमागन्तुमिह, प्रभो । १२

प्रीतिं पूर्व-प्रवृत्तां मे सं-वर्धयितुमर्हसि ।
पुत्रयोरुभयोरेव वर्ध्वा ते दितृमिते मया ।' १३

दीयमानाशीर्वचनम्, being blessed ; यथा, आशिष्यमाणम्, [धर्मं कार्यम्] उपदिश्य मानम्—इन्द्रादिशासनात् आर्य:, 'क: केन शास्यते' (विष्णु पुराणम्, १।१७।२०) इत्यादिवत् । आङ्गिरसः—बृहस्पतिना । सम्भ्रमे अत्र वचनम् । लोक पाल: —दिक् पाल: । लोक पाले—पृथिवी-पालने । ६ । कुशलम् —क्षेमम् । अनामयम्—आरोग्यम् । स्निग्धम्—स्नेह युक्तम् । ७ । अव्ययम्—अक्षयम् । ११ । तर्तुम्—उत्तरितुम्, पूरयितुम् इत्यर्थ: । १३ । 'पुत्रयोरु-

इति त्वां जनको राजा विज्ञापयति, पार्थिव,
विश्वामित्राभ्यनुज्ञातः, शतानन्द-मते स्थितः।" १४

इति दूत-वचः श्रुत्वा, राजा, परम-हर्षितः,
उवाचेदं वशिष्ठादीन् सर्वानेव पुरोधसः,— १५

"गुप्तः कुशिक-पुत्रेण, कौशल्यानन्दि-वर्धनः,
लक्ष्मणेन सह भ्राता, विदेहानगमत् किल। १६

दृष्ट-वीर्यश्च काकुत्स्थे, जनकः सु-महा-यशाः
प्रति-प्रदानं सीताया रामे कर्तुं किलेच्छति। १७

यदि ते रोचते, ब्रह्मन्, जनकः स मही-पतिः
सम्बन्धी, तत्र गच्छामस्ततः शीघ्रमितो वयम्।" १८

वाढ़मित्येव, तच्छ्रुत्वा, वशिष्ठ-प्रमुखा द्विजाः
ऊचुः, परम-संहृष्टाः, श्वस्तु यास्याम इत्यपि। १९

ते चापि रजनीं तत्र दूताः, परम सत्कृताः,
ऊषुर्विदेह-राजस्य, सर्व-कामैः सु-पूजिताः। २०

सप्तमः सर्गः।

दशरथ-समागमः।

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां, सोपाध्यायो नराधिपः
राजा दशरथः, श्रीमान्, सुमन्त्रमिदमब्रवीत्,— १

प्रतिप्रदानं, &c.—अनेन लक्ष्मणाय ऊर्मिला दान कामना सूचिता। १५। पुरोधसः—पुरोहितान्। १६। कुशिक-पुत्र.—कुशिकस्य पुत्रः (सन्तानः, descendant). आनन्दिः—हर्षः। विदेहान्—विदेहानां निवासभूतान् जनपदान्। १९। श्वः—आगामिनि दिवसे, to morrow.

"अद्य सर्वे धनाध्यक्षा, धनमादाय पुष्कलम्,
निर्यान्त्वग्रे, समारोप्य नाना-रत्न-चयान् मम । २

चतुरङ्गं च मे शीघ्रं बलं निर्यातु सर्वशः ;
ममाज्ञा-सम-कालं च युज्यतां युग्यमुत्तमम् । ३

वशिष्ठो वाम-देवश्च जावालिः काश्यपो भृगुः,
मार्कण्डेयश्च दीर्घायुर्, मुनिः कात्यायनस्तथा— ४

एते द्विजाः प्रयान्त्वग्रे स्यन्दनैः, महिता मया,
यथा कालात्ययो न स्याद् । दूता हि त्वरयन्ति माम् ।" ५

इत्याज्ञया नरेन्द्रस्य, सेना सा चतुरङ्गिनी
राजानम्, ऋषिभिः सार्धं प्रयान्तं, पृष्ठतोऽन्वगात् ; ६

चतुर्भिस्तानहो-रात्रैर्विदेहानभ्युपेयिवान्,
ददर्श मिथिलां, रम्यां, जनकेनोपशोभिताम् । ७

प्रत्युद्गम्य च तं, राजा, प्रियातिथिमुपागतम्,
उवाच जनकः, प्रीतः, शतानन्द-समन्वितः,— ८

"स्वागतं ते, महा-राज ! दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मे गृहम् ;
पुत्रयोरुभयोः प्रीतिं दिष्ट्या प्राप्स्यसि, राघव । ९

दिष्ट्या प्राप्तो महा-तेजा वशिष्ठो भगवानयम् ;
मार्कण्डेयादयश्चैव दिष्ट्या प्राप्ता महर्षयः । १०

२। पुष्कलम्—बहु श्रेष्ठं च। ३। चतुरङ्गम्—हस्त्यश्व रथ पदातिमयम्। बलम्—सैन्यम्। युग्यम्—अश्वादि वाहनम्। ४·५। अयं द्विजप्रयाणा प्रयाणं कल्याणाय। ६। अन्वगात्—अनुजगाम। पाणिनिः, २।४।४५। ७। अभ्युपेयिवान्—अभ्युपेत्य। ९। दिष्ट्या -[मम] भाग्येन। दिष्ट्येति आनन्द सूचकमव्ययम।

दिष्ट्या मे निर्जिता विघ्ना—दिष्ट्या मे पूजितं कुलम्,
राघवैः सह सम्बन्धं कृत्वा, प्रथित-सद्-गुणैः । ११

अद्य मे सफलं जन्म, प्राप्तं चाद्य क्रिया-फलम् ।
अद्य पूतोऽस्मि, राजर्षे, त्वत्-सम्बन्धात्, स-बान्धवः । १२

एषां चापि महर्षीणामद्याभ्यागमनादहम्
स-विशेषतरं पूतो यज्ञश्चाप्यायितस्तथा । १३

श्वः प्रभाते, महा-राज, निर्वर्तयितुमर्हसि
यज्ञस्यावभृथं पुण्यमुद्वाहमृषिभिः सह ।" १४

तस्यैतद् वचनं श्रुत्वा, राजा दशरथस्तदा
ऋषि-मध्य उवाचेदं जनकं मिथिलेश्वरम्,— १५

"राजन्, प्रतिग्रहीतारः स्मृता दातृ-वशाः किल ।
यद् वक्ष्यसि यदा चैव, तत् कर्तारस्तदा वयम् ।" १६

श्लक्ष्णं चैवानुरूपं च वचनं प्रिय-वादिनः,
तद्, राज्ञो, जनकः श्रुत्वा परं विस्मयमागतः । १७

ततः सर्वे मुनि-गणाः, परस्पर-समागमे
हर्षमेत्य परं, तत्र निशां तामवसंस्तदा । १८

विश्वामित्रं च, दृष्ट्वैव, राजा दशरथस्तदा,
मुनि-श्रेष्ठं, समागम्य, ववन्दे, हृष्ट-मानसः । १९

---

१४ । निर्वर्तयितुम्—सम्पादयितुम् । यज्ञस्यावभृथं—यज्ञान्ते । १६ । प्रतिग्रहीतारः—[कन्या-गवादीनाम्] । स्मृताः—स्मृतौ उक्ताः । तत्—तृणां कर्मणि न षष्ठी, पाणिनिः, २।३।६९ । 'यद्…वयम्'—यदा च यदेव वक्ष्यसि, तदा तदेव साधु करिष्यामहे। १७ । श्लक्ष्णम्—स्निग्धम् । १५ १७ । वीर्यं शुल्केन पूर्वमेव कन्याया जितत्वेऽपि दशरथस्य विनयेन तादृग्-वचनात् जनकस्य परमो विस्मयः ।

तौ चापि पुत्रावाघ्राय, परिष्वज्य च पीडितम्,
उवास स निशां तत्र, सु-सुखी, हृष्ट-मानसः। २०

अष्टमः सर्गः

वरणम्।

ततः प्रभाते जनकः, कृत-पौर्वाह्णिक-क्रियः,
उवाच मधुरं वाक्यं शतानन्दं पुरोधसम्,— १
"भ्राता ममानुजः श्रीमान् वीर्यवान्, आज्ञया मम,
कुश-ध्वज इति ख्यातो, योऽध्यास्ते नगरं शुभम्, २
वप्राट्टालक-पर्यन्तं—पिबन्निक्षुमतीं नदीम्
साङ्काश्यं स्वर्ग-सङ्काशां, विमानमिव पुष्पकम्,— ३
तमहं द्रष्टुमिच्छामि। सानार्हो हि स मे मतः।
प्रीयते हि महा-सत्त्वः स मया, राज-सत्तमः।" ४

तस्याथ शासनाद् दूतास्तं, यात्वा, शीघ्र-गामिनः,
आनयामासुरव्यग्रा, विष्णुमिन्द्राज्ञया यथा। ५
स तस्य शासनाद् भ्रातुराजगाम कुशध्वजः,
ददर्श चोपसृत्याशु जनकं भ्रातृ-वत्सलम्। ६
सोऽभिवाद्य शतानन्दं, जनकं च मही-पतिम्,
अध्यतिष्ठद्, अनुज्ञातो, राजार्हं वरमासनम्। ७

२। अध्यास्ते—अधितिष्ठति। ३। वप्राट्टालक-पर्यन्तम्—वप्रः (वप्रः, ram part) अट्टालकाः (प्राकारोपरितन गृह स्थानानि) च पर्यन्तम् (सीमम्) यस्य तत्। इक्षुमतीं नदीम्—इक्षुमत्या नद्या जलम्। लक्षणा। ५। अव्यग्राः—समर्थाः।

सहोपविष्टौ तौ तत्र प्रेषयामासतुस्तदा
मन्त्रि-श्रेष्ठं, समाहूय, सु-दामानं, समाहितौ,— ८
"गच्छ, मन्त्रि-वराभ्येत्य, शीघ्रं दशरथं नृपम्
आनयेह, सहामात्यं, स-पुत्रं, स-पुरोधसम्।" ९

उपकार्यां स गत्वा, तमिक्ष्वाकु-कुल-नन्दनम्
ददर्श, शिरसा चैनं प्रणिपत्येदमब्रवीत्,— १०
"अयोध्याधिपते, राजन्, वैदेहो मिथिलाधिपः
त्वां द्रष्टुमिच्छति क्षिप्रं, सोपाध्यायं, स-बान्धवम्।" ११

मन्त्रि-श्रेष्ठ-वचः श्रुत्वा, राजा सर्षि-गणस्तदा
स-बन्धुरागमत् तत्र यत्र राजा स मैथिलः। १२
तमासाद्य च संगृह्य, राजा दशरथस्ततः
वाक्यं, वाक्य-विदां श्रेष्ठो, वैदेहमिदमब्रवीत्,— १३
"विदितं ते, यथास्माकमिक्ष्वाकु-कुल-दैवतम्,
प्रवक्ता धर्म-कार्येषु, वशिष्ठो, भगवानृषिः।" १४

तूष्णीं-भूते दशरथे, वशिष्ठो, भगवानृषिः,
उवाचेदं वचो धर्म्यं जनकं, स-पुरोहितम्,— १५
"आ-मनोरिति शुद्धानां राज्ञाममित-तेजसाम्,
ककुत्स्थेक्ष्वाकु-सगर-रघु-प्रवर-जन्मनाम्, १६

८। सहामात्यम्—सुदामा इत्यादयाम्। १०। उपकार्या—[दशरथस्य] शिविरम्। १३। आसाद्य—अभिगम्य, प्राप्य। संगृह्य—आलिङ्ग्य। १४। प्रवक्ता—कथयिता। १६। प्रवरः—गोत्रम्, कुलम्। ककुत्स्थे...जन्मनाम्—ककुत्स्थे... रघूणाम् प्रवरे (कुले) जन्म येषाम् तेषाम्।

उदाराचार-सत्त्वानां क्षत्र-धर्मानुपालिनाम्
कुले, जल-निधि-प्रख्ये, जातयोर्वृत्त-शालिनोः १७
राम-लक्ष्मणयोरर्थे वरये तनये तव ।
सदृशाभ्यां स्व-सदृशे सुते त्वं दातुमर्हसि ।" १८

ततस्त्वाभाष्य जनको वशिष्ठं, वदतां वरम्,
नृपं दशरथं चेदं प्रोवाच वचनं तदा,— १९
"कनीयानेष मे भ्राता सत्य-सन्धः कुशध्वजः ।
ददामि, सहितोऽनेन, वध्वौ तेऽहं सुते, नृप,—
सीतां रामाय तनयामूर्मिलां लक्ष्मणाय च । २०
वीर्य-शुल्का मम सुता सीता सुर-सुतोपमा ;
तां रामाय प्रयच्छामि पत्नीं वीर्य-बलार्जिताम् ।" २१

उक्त-वाक्ये तु जनके, विश्वामित्रो महा-मुनिः
उवाच वचनं, धीमान्, वशिष्ठ-सहितस्तदा,— २२
"ख्यात इक्ष्वाकु-वंशो हि, जनकानां तथैव च—
सदृशोऽपत्य-सम्बन्धो युवयोरिति मे मतिः । २३
वक्तव्यमस्ति नः किञ्चिद्भूयोऽपि । शृणु तन्, नृप ।
भ्राता ते सदृशो योऽयं शूरो राजा कुशध्वजः, २४
तस्यास्ति किल, धर्मात्मन्, रूपेणाप्रतिमं भुवि,
कन्या-द्वयं । राघवार्थे तद् वयं वरयामहे,— २५

---

१७ । उदारः—सरलः । सत्त्वम्—हृदयम् । जल निधि प्रख्ये—सागर तुल्ये, सागरवत् विशाले । वृत्त शालिनो—सु चरितौ । २० । सत्य सन्धः —सत्य-प्रतिज्ञः । २३ । सदृशः— अनुरूपः । अपत्य सम्बन्धः—अपत्य-विवाह सम्बन्धः ।

धर्मतो भरतस्यार्थे शत्रुघ्नस्य च धीमतः।
तदिमे संप्रयच्छ त्वं, यदि ते रुचिता वयम्। २६

पुत्रा दशरथस्यास्य चत्वारोऽमित-तेजसः,
लोक-पालोपमा वीराः—सर्वे सत्य-पराक्रमाः। २७

एषामर्थे वयं, राजन्, भवन्तं वरयामहे।
सदृशोऽसि प्रभावेण राघवाणां, मही-पते।" २८

इत्युदार-वचः श्रुत्वा विश्वामित्र-वशिष्ठयोः,
जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच मुनि-पुङ्गवौ,— २९

"एवं भवत्विमे कन्ये, कुशध्वज-सुते उभे,
ददामि—भरतायैकां शत्रुघ्नाय तथापराम्। ३०

एकाहे राज-पुत्रीणां चत्वारो रघु-नन्दनाः
गृह्णन्त्वासां चतसृणां पाणीन्, मन्त्रवदीप्सितान्। ३१

उत्तरे दिवसे, ब्रह्मन्, फाल्गुन्यो भग-दैवताः—
विवाहेषु प्रशंसन्ति नक्षत्रं वै विपश्चितः।" ३२

एवमस्त्विति तं तत्र वशिष्ठः प्रत्यभाषत।
तं चापि जनको राजा कृताञ्जलिरभाषत,— ३३

"वर-धर्मो-कृतो, ब्रह्मन्; शिष्योऽस्मि भवतां सदा;
सामात्यः स-बलश्चैव परवानस्मि, चिन्त्यताम्। ३४

३२। उत्तरे दिवसे—पर दिवसे, श्वः। फाल्गुन्यः—उत्तर फाल्गुनी नाम नक्षत्रम् सम्भूमि षष्ठ वचनम्। भग दैवताः—भगो दैवता यासां ताः। भग उत्तर-फाल्गुन्या दैवता भवति। स एव विवाहस्य अधिष्ठाता। अत एव उत्तर फाल्गुन्यां विवाहः प्रशस्यते। वै—एव, हि, surely. ३४। वर धर्मो-कृतः—वरः (श्रेष्ठः) धर्मो यस्य स वर धर्मः। अ वर धर्मः वर धर्मः कृतः वर धर्मो कृतः, कन्या दान रूप-परम धर्म

प्रभुर्दशरथो राजा ममास्य विषयस्य च,—
भवन्तश्चापि सर्वे मे सर्व-स्वे प्रभविष्णव: ।" ३५

तथा वदति वैदेहे जनके प्रश्रितं वच:,
राजा दशरथो, हृष्ट:, प्रत्युवाच, हसन्निव, ३६

प्रियं सम्बन्धिनं स्निग्धं प्रीति-युक्तमिदं वच:,—
"सर्व-स्वस्यास्य ते, राजन्, प्रभुरस्मि, यथात्थ माम् ;—३७

अहं तव, ममापि त्वं, यत् तवास्ति ममैव तत्,
विश्वामित्रादयश्चापि तवेमे मम चेश्वरा: । ३८

स्वस्ति प्राप्नुहि —भद्रं ते ! गमिष्यामि स्वमालयम्,
गो-दानादीनि कर्म्माणि कर्त्तुं कार्याण्यनन्तरम् ।" ३९

आपृच्छ्यैवं दशरथो राजानं मिथिलेश्वरम्,
पुरस्कृत्य वशिष्ठादीन्, निर्जगाम, मुनींस्तत: । ४०

नवम: सर्ग: ।

विवाह: ।

स, गत्वा निलयं, राजा, कृत्वा श्राद्धं महत्, तदा
पुत्राणां, प्रिय-पुत्र: स, चक्रे गो-दानमुत्तमम् । १

गवां शत-सहस्रं हि ब्राह्मणेभ्यो नरेश्वर:
एकैकशो ददौ, पुत्रानुद्दिश्य तान् पृथक् पृथक् । २

लालनात्। शिष्य: - धर्म कार्य्ये उपदेश योग्य.। भवताम् —प्रजाया: बहुवचनम्।
प्रश्रितम् —प्रगल्भम्:, सनम्रोत्तम इत्यर्थ:। ३७। गो दानम्—[समावर्तन पूर्वाङ्गम्]।
४०। आपृच्छ्य—प्रस्थान काले सम्भाष्य (bidding adieu to).
२। एकैकश:—एकश:। द्विभाव आर्ष:। पाणिनि:, ५।४।४३। याण भद्रस्य

पयस्विनीनां हि गवां, स-वत्सानां, सु-वर्चसाम्,
ददौ शत-सहस्राणि चत्वारि रघु-नन्दनः। ३

ततस्तामुषितो रात्रिं, सह पुत्रैर्मही-पतिः,
पुरस्कृत्य वशिष्ठादीन् मुनीन्, यज्ञमुपाययौ। ४

युक्ते मुहूर्ते, वैवाहे, महार्हाम्बर-भूषणैः
कृत-कौतुक-मङ्गलैः पुत्रैर्दशरथो वृतः, ५

वशिष्ठं पुरतः कृत्वा, तांश्चैवान्यान् महा-मुनीन्,
यथा-न्यायमुपागम्य, राजा वैदेहमब्रवीत्,— ६

"प्राप्ताः स्म, राजन्—भद्रं ते!—विवाहार्थं सदस्तव;
तत् साधु चिन्तयित्वास्मान् प्रवेशयितुमर्हसि। ७

स्थिता हि ते वशे सर्वे वयमद्य, स-बान्धवाः;
स्व-वंश-धर्माभ्युचितं कुरु वैवाहिकं क्रमम्।" ८

इत्युक्तो परमोदारं वाक्यं, वाक्य-विशारदः,
प्रत्युवाच ततो राजा मैथिलस्तं नराधिपम्,— ९

"कः स्थित प्रतिहारो मे? कस्याज्ञा प्रतिपाल्यते?
स्व-गृहे को विचारस्ते? विस्रम्भेण प्रविश्यताम्। १०

* ऋषिरपि 'एकैकशः [illegible] शक-शावकादन्ययत्नात्' इति उक्तिः। ३। सु-वर्चसाम्—सु-रूपाणाम्। ५। युक्ते—शुभे। कौतुकम्—वैवाहिक हस्त-सूत्रम्। कौतुक मङ्गलम्—वैवाहिक हस्त-सूत्र-बन्धन-रूपं मङ्गलानुष्ठानम्। कृत-कौतुक-मङ्गलैः—कृत-वैवाहिक-हस्त-सूत्र-बन्धन-रूप-मङ्गलानुष्ठानैः। ६। यथा-न्यायम्—लोकाचारानुसारतः। ७। स्म—स्मः। विसर्गाभाव आर्षः। सदः—सभाः। ८। क्रमः—व्यवहारः। ९। परमोदारम्—अति सरलम्। १०। प्रतिहारः—द्वार-पालः। विस्रम्भेण—स्वच्छन्देन, प्रणयेन।

यज्ञ-भूमिमिमां प्राप्ताः कृत-कौतुक-मङ्गलाः
मम कन्यास्ततस्तो हि, वह्नेर्दीप्ता इवार्चिषः । ११

सज्जोऽहं त्वत्-प्रतीक्षश्च वेद्यामस्यां स्थितो, नृप,—
अ-विघ्नं कुरु, राजेन्द्र ! किमर्थं त्वं विलम्बसे ?" १२

श्रुत्वैतज्जनकेनोक्तं वाक्यं, दशरथो नृपः
प्रवेशयामास तदा वशिष्ठादीन् द्विजर्षभान् । १३

ततो राजा विदेहानामुवाच रघु-नन्दनम्,—
"रामं कमल-पत्राक्षं पूर्वं वेदीमुपानय । १४

इयं सीता, मम सुता, सह-धर्म चरी तव ;
गृहाण पाणिना पाणिं त्वमस्या, रघु-नन्दन ! १५

लक्ष्मणागच्छ, पत्नीममूर्मिलाया मयोद्यताम्,
गृहाणोपेत्य धर्मेण पाणिं, राघव, पाणिना ।" १६

तमेवमुक्त्वा, जनको भरतं कैकयी-सुतम्
चोदयामास, धर्मात्मा, माण्डव्याः पाणि-संग्रहे । १७

शत्रुघ्नमपि चासीनं जनको वाक्यमब्रवीत्,—
"श्रुत-कीर्त्या गृहाण त्वं पाणिना पाणिमुद्यतम् । १८

सर्वे भवन्तः, सद्दारैर्युक्ता, यत-व्रताः,
कुलोचितं शुभं धर्मं कुरुध्वं—शिवमस्तु वः !" १९

११ । अर्चिषः—शिखाः । १२ । अ-विघ्नम्—अ-विलम्बम् इत्यर्थः । १५ । सह धर्मं चरीति पदेन 'अद्य प्रभृति त्वया यत् कर्त्तव्यं, तदनया सह' इति ख्यापितम् । १७ । चोदयामास—प्रेरयामास, नियुक्त । १९ । यत व्रताः—धृत व्रताः, अनुष्ठित व्रताः ।

जनकस्य वचः श्रुत्वा, पाणींस्तान् जगृहुस्तदा
चत्वारस्ते, चतसृणां, शतानन्दानुमन्त्रिताः। २०

अग्निं प्रदक्षिणं चक्रुस्ततः सर्वे यथा-क्रमम्,
राज्ञा कृत-स्वस्त्ययनास्तैश्च सर्वैर्मन्त्रर्षिभिः। २१

पपात पुष्पवृष्टिश्च लाजोन्मिश्रा, नभश्च्युता,
तेषामुपरि सर्वेषां, विवाहे, पुण्य-कर्मणाम्। २२

देव-दुन्दुभयो नेदुरम्बरे, मधुर-स्वनाः;
शुश्रुवे मधुरश्चैव वीणा-वेणु-स्वनो महान्। २३

ईदृशे वर्तमाने तु काले, रति-करे, शुभे,
त्रिरग्निं ते परिक्रम्य तत जग्मुर्वधूः पृथक्; २४

स्वानि यानानि चारोप्य दारांश्च, प्रययुस्ततः।
राजाप्यनुययौ पश्चात्, सर्षि-सङ्घः, स-बान्धवः। २५

दशमः सर्गः।

प्रत्यागमनम्।

अथ रात्र्यां व्यतीतायां, विश्वामित्रो महा-मुनिः,
आमन्त्र्य तौ नर-व्याघ्रौ, जगामोत्तर-पर्वतम्। १

विश्वामित्रे गते तस्मिन्, जनकं मिथिलाधिपम्
आपृच्छ्य, प्रययौ चापि राजा दशरथः पुरम्। २

२१। स्वस्त्ययनम्—अनिष्टापात-निवारणार्थं देवार्चनादिकम्। २२। लाजाः—अक्षतम्, भृष्ट धान्यम्, खै। २३। स्वनः—ध्वनिः। वेणुः—वंशी। २४। रति-करे—प्रीति करे।

१। 'उत्तर पर्वतः' मगधे कौशिकी तटे वर्तते।

अथ राजा विदेहानां तत्र कन्या-धनं ददौ—
कम्बलाजिन-रत्नानि, दुकूलानि मृदूनि च, ३
नाना-रागाणि वासांसि, शुभान्याभरणानि च,
रत्नानि च महार्हाणि, यानानि विविधानि च । ४
गवां शत-सहस्राणि चत्वारि पृथगेव च
ददौ राजा, महार्हाणि—कन्या-धनमभीप्सितम् । ५
चतुरङ्ग-बलं चान्यदनुयात्रं महद् ददौ ;
दासीनां निष्क-कण्ठीनां सहस्रमपि चाददात् । ६
सुवर्णस्यायुतं पूर्णं हिरण्यस्य च मैथिल:
ददौ प्रीतेन मनसा—कन्या-धनमनुत्तमम् । ७
समुच्छ्रित-ध्वजवतीं तूर्य-स्वन-निनादिताम्
सिक्त-राज-पथां रम्यां प्रकीर्ण-कुसुमोत्कराम्, ८
राज-प्रवेशाभिमुखै: पौरैर्मङ्गल-वादिभि:
सङ्कीर्णां, प्राविशद् राजा पुरीं, स्वं च निवेशनम् । ९
कौशल्या च सुमित्रा च कैकेयी च सु-मध्यमा,
वधू-प्रतिग्रहे युक्ता याश्चान्या राज-योषित:, १०
तत: सीतां श्री-प्रतिमामूर्मिलां च यशस्विनीम्
कुशध्वज-सुते चैव परिगृह्यानुरज्य च, ११

३। कन्या धनम्—यौतकम्। अजिनानि—मृग चर्माणि। दुकूलानि—पट्ट वस्त्राणि। मृदूनि—कोमलानि। ६। निष्क:—कण्ठ भूषणम्। ७। सुवर्णम्—हेम, स्वर्ण मुद्रा-विशेष:। हिरण्यम—रजतम्, रूप्यकम्, रजत-मुद्रा-विशेष:। ८। समुच्छ्रित:—अत्युन्नत:। ध्वज:—पताका दण्ड:, पताका वस्त्रं:। तूर्यम्—वादित्रम्। १०। प्रतिग्रहे—मङ्गलाचरण पूर्वक दर्शन स्पर्शने। ११। परिगृह्य—मङ्गलाचरणपूर्वकं दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च।

ततः प्रवेशयामासुर्नृप-वेश्म, स्वलं-कृताः,
मङ्गलालभनीयैश्च शोभिताः, क्षौम-वाससः ।
उपनिन्युश्च ता एता देवतायतनान्यपि । १२

अभिवाद्याभिवाद्यांस्तास्तत्र पूज्यान् गुरूंस्तथा,
रेमिरे, मुदितास्तत्र, भर्तृ-प्रिय-हिते रताः । १३

तासां भूयो विशेषेण मैथिली जनकात्मजा
रमयामास भर्तारं, विष्णुं श्रीरिव रूपिणी । १४

प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीन्महात्मनः ;
प्रिय-भावः स तु तया स्व-गुणैरभिवर्धितः । १५

तथैव रामः सीतायाः प्राणेभ्योऽपि प्रियोऽभवत् ।
हृदयं त्वेव जानाति प्रीति-योगं परस्परम् । १६

सीतया तु तया रामः प्रियया सह सङ्गतः,
प्रियोऽधिकतरं तस्या, विजहारामरोपमः । १७

एकादशः सर्गः ।

भरत-निर्गमः ।

कस्यचित् त्वथ कालस्य, राजा दशरथः सुतम्
भरतं कैकयी-पुत्रं समाहूयेदमब्रवीत्,— १

१२ । वेश्म—गृहम् । मङ्गलालभनीयैः—मङ्गल कर स्पृश्य द्रव्यैः । क्षौमम्—पट्ट-वस्त्रम् । आयतनानि—आलयाः, गृहाणि । १३ । अभिवाद्यान्—अभिवादनार्हान् । अभिवाद्य—नमस्कृत्य । ताः— राज-स्नुषाः । तत्र—नृप वेश्मनि । १४ । रमयामास—प्रीणयामास । श्रीः—लक्ष्मीः । १५ १६ । इमौ द्वावेव श्लोकौ रामायणे बाल-चरित-स्यान्त्येऽध्याये वर्तेते इति कृत्य-सुखेन भवभूतिनोक्तम् (उत्तर चरितम्, ६।२१-२२) ।
१ । कस्यचित् कालस्य—अत्यये इति शेषः ।

"अयं केकय-राजस्य सुतो वसति, पुत्रक,
नेतुं त्वामागतो, वीर, युधाजिन्मातुलस्तव। २
तस्मात्, मातामहं द्रष्टुमितोऽनेन सह, त्वया
गन्तव्यं। पुत्र, पश्य त्वं पुरं मातामहस्य तत्।" ३
श्रुत्वा दशरथस्यैतद् वचनं, कैकेयी-सुतः
गमनायोपचक्राम, शत्रुघ्न-सहितस्तदा। ४
सुहृद्भिः सह मार्गेषु व्याहरन्, प्रिय-वादिभिः,
अहोभिर्गणितैः कैश्चिद्-श्रान्त-बल-वाहनः, ५
वनानि सरितः शैलानतीत्य, सु-मनोहरान्,
आससाद पुरं राज्ञो, रम्यं राज-गृहं, विभुः। ६
आहार्य-सिकताकीर्णं पुष्पोत्कर-विभूषितम्
राज-मार्गं कारयित्वा, जलेन सु-समुक्षितम्, ७
विन्यस्त-पूर्ण-कलसं, वन-माला-विभूषितम्,
समुच्छ्रित-पताकं च धूप-गन्धाधिवासितम्, ८
ततः प्रवेशयामासुर्भरतं पुर-वासिनः,
सर्व-तूर्य-स्वनैश्चाराद् वाद्यमानैश्च नन्दितम्। ९

इत्यार्षे श्री-लघु-रामायणे, वाल्मीकीये, त्रि-साहस्र्यां संहितायाम्,
आदि काण्डम्।

५। व्याहरन्—आलापं कुर्वन्। गणितैः—संख्यातैः, कतिपयैः इत्यर्थः।
६। राज-गृहम्—राज-गृहं नाम मातामह-नगरम्। ७। आहार्य-सिकताः—कृत्रिम-वालुकाः। उत्करः, उत्कारः—राशिः। सु-समुक्षितम्—सु-सिक्तम्।
९। आरात्—दूरे।

इति मणि-किरणं नाम लघु-रामायण-प्रथमादि-काण्डम्।

अथ

श्री-लघु-रामायणे

अयोध्या-काण्डम्।

प्रथमः सर्गः।

मन्त्रणा।

दृष्ट्वा दशरथो रामं गुणाकरमरिन्दमम्,
चिन्तयामास सततं, तद्-गतेनान्तरात्मना,— १

"पात्र-भूतोऽस्य राज्यस्य, सर्व-भूतानुरञ्जकः,
मत्तः प्रियतरो रामः प्रजानां स्व-गुणैर्, विभुः; २

पराक्रमे शक्र-समो, बृहस्पति-समो मतौ,
महीधर-समः स्थैर्ये, मत्तश्च गुणवत्तरः। ३

महीमहमिमां कृत्स्नामधितिष्ठन्तमात्मजम्
अनेन वयसा दृष्ट्वा, सुखं स्वर्गमवाप्नुयाम्।" ४

तं तस्य भावं भाव-ज्ञा विज्ञाय सुधियो जनाः—
गुरवो मन्त्रिणश्चैव पौर-जानपदास्तथा ५

१। अरिन्दमः—शत्रु दमन कारी। अन्तरात्मा—अन्तः करणम्, मनः। २। विभुः—[निग्रहानुग्रह] समर्थः। ३। मतौ—बुद्धौ। ४। अधितिष्ठन्तम्—शासतम्। आत्मजः—पुत्रः। ५। भावः—अभिप्रायः। पौरः (पुर + अण् + सु)—पुर-वासी, नगर वासी। जानपदः (जन पद + अण् + सु)—जनपद वासी (देश वासी), ग्राम-वासी

समेत्य मन्त्रयामासुर् ; मन्त्रयित्वा च निश्चयम्,
ऊचे समन्ततः सर्वे वृद्धं दशरथं नृपम्,— ६
"अनेक-वर्ष-शतिको वृद्धोऽस्यथ, नरेश्वर !
स रामं यौव-राज्ये त्वमभिषेक्तुमिहार्हसि ।" ७

इति तद् वचनं श्रुत्वा तेषां, स्व-हृदयेप्सितम्,
अनिच्छन्निव, जिज्ञासुर्जनांस्तान् प्रत्युवाच सः,— ८
"कथं नु, मयि धर्मेण पृथिवीमनुशासति,
भवन्तः कर्तुमिच्छन्ति युव-राजं ममात्मजम् ?" ९

ते तमूचुर्महात्मानं पौर-जानपदाः पुनः,—
"बहवो, नृप, कल्याणा गुणाः पुत्रस्य सन्ति ते ;— १०
मृदुश्च देव-सत्त्वश्च साध्वाचारोऽनसूयकः,
प्रिय-कृत् प्रिय-वादी च, प्रजानां पितृ-मातृवत्, ११
बहु-श्रुतानां वृद्धानां ब्राह्मणानामुपासिता,
नियन्ता दुर्विनीतानां, विनीत-प्रतिपूजकः । १२
न भ्रातृषु, न पौरेषु, न च जानपदेष्वपि
जनोऽस्त्य-गुण-वादी यो रामस्य, भुवि, भू-पते । १३
स-वृद्ध-बालाः पौरास्ते तथा जानपदा जनाः,
गुणानुरक्ता रामस्य, राममिच्छन्ति भूमि-पम् । १४

शब्दार्थः । ६ । निश्चयः—सिद्धान्तः । ७ । यौव राज्यम्—युव राजत्वम्, जीवत्यपि पितरि पुत्रस्य राजत्वम्, regency. ९ । युव राजः (युवा राजा)—जीवत्यपि पितरि यः पुत्रो राजा भवति सः, a regent. । ११ । अनसूयकः—असूया रहितः । असूया—गुणेष्वपि दोषारोपः (detraction) । १२ । बहु श्रुतानाम्—बहु शास्त्र ज्ञानाम्, बहु विद्या विशारदानाम् । उपासिता—उपासकः, सेवकः ।

ज्ञाती रामो धनुर्वेदे, दिव्यास्त्रेषु च, संयुगे
अमोघास्त्रो दूर-पाती चित्र-योधी दृढायुधः। १५
यं यं व्रजति संग्रामं, राजन्, रामस्तवाज्ञया,
ततस्ततो, विजित्यारीन्, विजयी विनिवर्तते। १६
जित्वापि चारि-सैन्यानि यदायं विनिवर्तते,
तदापि प्रश्रित-परो भूत्वा नः पूजयत्युत। १७
प्रवासात् पुनरागत्य कुञ्जरेण रथेन वा,
राज-मार्गेऽपि दृष्ट्वा नः, स्मित्वा पृच्छत्यनामयम्।" १८
तेषामञ्जलिमालास्ताः प्रतिगृह्य समन्ततः,
हृष्टो, दशरथो राजा प्रोवाचेदं वचस्तदा,— १९
"धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवद्भिः प्रिय-वादिभिः,
यन्मे ज्येष्ठं प्रियं पुत्रं युव-राजमिहेच्छथ। २०
चैत्रः श्रीमानयं मासः, पुण्यः, पुष्पित-काननः।
रामाय यौव-राज्यं मे दातुमत्रैव रोचते।" २१

द्वितीयः सर्गः।

राजादेशः।

ततः, सु-मन्त्रमाहूय, राजा दशरथोऽब्रवीत्,—
रामः कृतात्मा भवता शीघ्रमानीयतामिति। १

१६। अरिः—शत्रु। १७। प्रश्रित परः—विनीतः।
१। कृतात्मा—[धर्मे] कृत बुद्धिः।

स तथेति प्रतिज्ञाय, सुमन्त्रो, राज-शासनात्,
रामं तत्र निनायाथ रथेन, रथिनां वरः । २

अथ तत्र समासीनास्तदा दशरथं नृपम्
प्राच्योदीच्याः प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्याश्च भूमि-पाः, ३
म्लेच्छाश्च यवनाश्चैव शकाः शैलान्त-वासिनः—
उपासाञ्चक्रिरे सर्वे ते, देवा इव वासवम् । ४

तेषां मध्ये स राजर्षिर्, मरुतामिव वासवः,
प्रासादस्थो, रथस्थं तं ददर्शायान्तमात्मजम्, ५
गन्धर्व-राज-प्रतिमं, लोके विश्रुत-पौरुषम्,
दीर्घ-बाहुं, महा-सत्त्वं, मत्त-मातङ्ग-गामिनम् । ६
घर्माभितप्ताः पर्जन्यं ह्लादयन्तमिव प्रजाः,
नातृप्यत तमायान्तमीक्षमाणो नराधिपः । ७

अवतार्य सुमन्त्रस्तु राघवं स्यन्दनोत्तमात्,
पितुः समीपं गच्छन्तं प्राञ्जलिः पृष्ठतोऽन्वगात् । ८

२ । तथेति प्रतिज्ञाय—तथा कर्तव्यम् इत्यवधार्य । ३ । प्राच्याः—पूर्व देशीयाः । उदीच्याः—उत्तर देशीयाः । प्रतीच्याः—पश्चिम देशीयाः । दाक्षिणात्याः—दक्षिण-देशीयाः । ४ । म्लेच्छाः—किरात-शबर पुलिन्दाः । तेषु किराता धनुर्बाणधारी वने चराः, शबराः पत्रिपत्र चूडाः, पुलिन्दाश्च अबोध्य भाषिणः । यवनाः—इदानीं ग्रीक् इति नाम्ना ख्याता जाति विशेषः । शकः—भारतात् उत्तर पश्चिमस्याः दिशो भारत वर्षं समायाताः इदानीं सिदियान्निति नाम्ना ख्याता जातिर्विशेषः । शैलान्त वासिनः—पार्वत्याः । उपासाञ्चक्रिरे—आनुगत्य दर्शयित्वा प्रसादयामासुः । वासवः—इन्द्रः । ५ । मरुताम्—देवानाम् । ६ । गन्धर्व राज प्रतिमम्—चित्र रथवत् सुन्दरम् । महा सत्त्वम्—महा-बलम् । मत्त मातङ्ग गामिनम्—मदान्वित गजेन्द्रवत् सुललित गतिम् । ७ । घर्मः—रौद्रम् । पर्जन्यः—मेघः । अतृप्यत—अतृप्यत् । आत्मने पदमार्षम् । ८ । स्यन्दनः—रथः ।

स तु कैलास-शृङ्गाभं प्रासादं नर-पुङ्गवः
आरुरोह, नृपं द्रष्टुं, सह सूतेन, राघवः । ९

स, प्राञ्जलिरभिप्रेत्य, प्रणतः, पितुरन्तिकम्,
नाम संश्रावयन्, रामो ववन्दे चरणौ पितुः । १०

तं दृष्ट्वा प्रणतं पार्श्वे, कृताञ्जलि-पुटं, नृपः
गृहीत्वाञ्जलिमाकृष्य सस्वजे प्रियमात्म-जम् । ११

तस्मै चात्युचितं श्रीमन्मणि-काञ्चन-भूषितम्,
दिदेश राजा रुचिरं रामायानुपमासनम् । १२

तदासनवरं, प्राप्य, व्यदीपयत राघवः,
स्वयैव प्रभया मेरुमुदये विमलो रविः । १३

तं स पश्यन् नर-पतिस्तुतोष प्रियमात्म-जम्,
अलङ्कृतमिवात्मानमादर्श-तलमास्थितम् । १४

स तं स-स्मितमाभाष्य पुत्रं, पुत्रवतां वरः,
उवाचेदं वचो राजा, देवेन्द्रमिव कश्यपः,— १५

"ज्येष्ठायामसि मे पत्न्यां सदृश्यां सदृशः सुतः
उत्पन्नस्त्वं, गुण-श्रेष्ठो, मम रामात्मजः प्रियः । १६

९ । सूतेन—सारथिना । १० । प्राञ्जलिः—बद्धाञ्जलिः । अभिप्रेत्य—अभ्युपेत्य, प्राप्य । अन्तिकम्—समीपम् । नाम संश्रावयन्—['राम वमा अहमस्मि' इत्येवम्] । ११ । आकृष्य—स्व सम्मुखमानीय । १२ । अत्युचितम्—अति न्याय्यम् । रुचिरम्—उज्ज्वलम् । अनुपम्—अनुपमम्, अतुलम् । १३ । व्यदीपयत—नितरामशोभयत । अत्र 'आसनं कर्म, 'राघवः' कर्ता । उदये—उदय काले । १४ । आदर्शः—दर्पणः । 'अलङ्कृत···मास्थितम्'—एतेन रामस्य पितृ सदृशावयवत्वं सूचितम् । १५ । देवेन्द्रः—

तवायत्ताः प्रजाश्चेमाः, स्व-गुणैरनुरञ्जिताः ;
तस्मात्त्वं पुष्य-योगेन यौव-राज्यमवाप्नुहि । १७
कामं च त्वं प्रकृत्यैव विनीतो गुणवानसि ।
गुणवत्त्वेऽपि तु, स्नेहात्, पुत्र, वक्ष्यामि ते हितम् । १८
भूयो विनयमास्थाय भव नित्यं जितेन्द्रियः ;
काम-क्रोध-समुत्थानि त्यजेथा व्यसनानि च । १९
परोक्षयानिशं वृत्त्या, राम, प्रत्यक्षया तथा,
परां च प्रकृतिं दृष्ट्वा, परिपाल्याः प्रजास्त्वया । २०
सत्-परो निरहङ्कारो भूत्वा, राम, गुणान्वितः,
ततः पालय पुत्रेमाः प्रजाः, पुत्रानिवौरसान् । २१
योधानमात्यान् हस्त्यश्वं कोषं चावेक्ष्य, यत्नवान्,
मित्राण्यमित्रान् मध्यस्थानुदासीनांश्च, राघव, २२

इन्दुः । १७ । पुष्य-योगेन—चन्द्रस्य पुष्य योगोपलक्षित काले । १८ । कामम्—अत्यर्थम् । प्रकृत्या—स्वभावेन । 'गुणवत्त्वेऽपि तु'—'गुणवत्यपि तु' इति पाठान्तरमपि शुद्धम् । 'गुणवत् त्वयि च' इति गोरेसियो धृतः पाठस्तु न समीचीनो भाति । १९ । भूयः—अधिकम् । व्यसनानि—दोषाः । काम क्रोध समुत्थानि व्यसनानि—स्त्री द्यूत मधु सेवनादीनि कामजानि, वाक्-पारुष्योग्र दण्डत्वार्थ दूषणादीनि च क्रोधजानि व्यसनानि । अर्थ-दूषणम्—पित्रादि सञ्चितार्थस्य नाशनम् । २० । अनिशम्—अविरतम्, सततम् । परोक्षया वृत्त्या—चार मुखात् श्रुतानां स्व पर राष्ट्र वृत्तान्तानां विचारेण । प्रत्यक्षया [वृत्त्या]—राज-सभामागतानां प्रजानां न्यायादि विचारेण । परां प्रकृतिम्—पराः प्रकृतीः, [स्वामी, अमात्यः, सुहृत्, कोषः, राष्ट्रम्, दुर्गम्, बलं चेति सप्त राज्याङ्गान्येव राजत्वस्य उपादान भूतानि सप्त] आदि-कारणानि । एक-वचनं समाहारार्थमार्षं च । दृष्ट्वा—समीक्ष्य । २१ । सत् परः—साधु जनानुरक्तः । औरसान्—धर्म-पत्नी-सम्भवान् आत्म-जान् । २२ । योधः—योद्धा । अमात्यः—मन्त्री । कोषः—अर्थ समूहः । अवेक्ष्य—परिदृश्य, having inspected or observed. मित्रम्—सुहृत्, मित्र-

तुष्टानुरक्त-प्रकृतिर्यः पालयति मेदिनीम्,
तस्य नन्दन्ति मित्राणि, लब्ध्वामृतमिवामराः। २३

अद्य चन्द्रोऽभ्युपगतः पुष्यात् पूर्वं पुनर्वसुम्;—
श्वस्त्वाहमभिषेक्तास्मि यौव-राज्ये, परन्तप! २४

तस्मात् त्वयाद्य व्रतिना निशेयं नियतात्मना
सह वध्वोपवस्तव्या दर्भ-संस्तर-शायिना। २५

निर्वासितश्च भरतो यावदेव पुरादितः,
तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्त-कालो मतो मम। २६

कामं खलु सतां वृत्ते भ्राता ते भरतः स्थितः,
ज्येष्ठानुवर्ती, धर्मात्मा, सानुक्रोशो, जितेन्द्रियः। २७

किन्तु चित्तं मनुष्याणां जानाम्येव यथा चलम्,
सतां च धर्म-नित्यानि कृत-शोभानि, राघव।" २८

इति राज्ञो वचः श्रुत्वा, नराः प्रिय-निवेदिनः,
त्वरिताः, शीघ्रमभ्येत्य, कौशल्यायै न्यवेदयत्। २९

सा, हिरण्यं च गाश्चैव रत्नानि विविधानि च
व्यादिदेश प्रियाख्येभ्यः कौशल्या, प्रमदोत्तमा। ३०

भावापन्नो [राजा]। अमित्रः—शत्रु-भावापन्नो [राजा]। मध्यस्थः, मध्यमः—अरि विजिगीष्वोर्मध्यवर्ती यो [राजा] सम्मिलितयोस्तयोरनुग्रहे समर्थः, असम्मिलितयोस्तयोर्निग्रहे च, सः। उदासीनः—यो [राजा] सम्मिलितानाम् अरि-विजिगीषु मध्यस्थानामनुग्रहे समर्थः, असम्मिलितानां तेषां निग्रहे च, सः। २३। प्रकृतयः—प्रजाः। २४। अभिषेक्तास्मि—अभिषेक्ष्यामीति स्थितमेव। २५। नियतात्मना—संयतेन्द्रियेण। उपवस्तव्या—अनाहारेण नेतव्या। संस्तरः—शय्या। २७। कामम्—स्वेच्छयैव। सानुक्रोशः—दयालुः। २८। यथा चलम्—चञ्चलमिति। कृत शोभानि—स यत्र

अथाभिवाद्य राजानं, रथमारुह्य, राघवः
ययौ स्वं, द्युतिमान्, वेश्म, जनौघैः परिवारितः । ३१

प्रविश्य चात्मनो वेश्म, राजादिष्टेऽभिषेचने,
तस्मिन् क्षणे विनिर्गत्य, मातुरन्तः-पुरं ययौ । ३२

तत्र तां प्रणतामेव मातरं, क्षौम-वाससम्,
ददर्श, याचमानां तु देवता-वेश्मनि श्रियम् । ३३

तथा संयमितामेव सोऽभिगम्याभिवाद्य च,
उवाच मातरं रामो हर्षयिष्यन्निदं वचः,— ३४

"अम्ब, पित्रा नियुक्तोऽस्मि प्रजा-पालन-कर्मणि ;
भविता श्वोऽभिषेको मे, यथा वै शासनं पितुः ।" ३५

एतच्छ्रुत्वा तु कौशल्या चिर-कालाभिकाङ्क्षितम्,
हर्ष-बाष्पाकुलं वाक्यमिदं राममभाषत,— ३६

"वत्स राम, चिरं जीव ! हतास्ते परिपन्थिनः !
ज्ञातीन् मे त्वं, श्रिया युक्तः, सुमित्रायाश्च, नन्दय ! ३७

अ-मोघा बत मे भक्तिः पुरुषे पुष्करेक्षणे—
सेयमिक्ष्वाकु-राजर्षेः श्रीस्त्वामद्य श्रयिष्यति ।" ३८

हृष्ट-नारी-नर-युतं राज-वेश्म तदा बभौ,
यथा मत्त-द्विज-गणं प्रफुल्ल-नलिनं सरः । ३९

सम्पादित-शोभा सम्पन्नानि, सम्पाद्य शोभानि, न तु स्वभाव-सुन्दराणि इत्यर्थः । ३४ । संयमिता—नियमिता । ३५ । भविता—भविष्यति । ३७ । परिपन्थी—शत्रुः । ज्ञातिः—स्व जनः । ३८ । अ मोघा—अ निष्फला, स फला । पुरुषे पुष्करेक्षणे—विष्णौ । श्रीः—लक्ष्मीः, सम्पद्, राज्यमिति भावः । ३९ । द्विजाः—पक्षिणः । नलिनम्—पद्मम् ।

वृन्द-वृन्दैरयोध्यायां राज-मार्गः समन्ततः
बभूव चाति-संबाधो जनैर्जात-कुतूहलैः। ४०

सिक्त-संमृष्ट-रथ्या हि सा राज-पथ-मालिनी,
आसीदयोध्या नगरी समुच्छ्रित-गृहध्वजा। ४१

तृतीयः सर्गः।

पुर-भूषणम्।

वाग्यतः, सह वैदेह्या, भूत्वा नियत-मैथुनः,
श्रीमत्यायतने विष्णोः शिश्ये नर-वरात्मजः। १

एक-यामावशिष्टायां रात्र्यां तु प्रतिबुध्य, सः
अलङ्कार-विधिं कृत्स्नं कारयामास वेश्मनः। २

ततः शृण्वन् शुभा वाचः सूत-मागध-वन्दिनाम्,
पूर्वां सन्ध्यामुपासीनो, जजाप, यत-मानसः। ३

तुष्टाव प्रयतश्चैव, प्रणम्य, मधु-सूदनम्;
विमल-क्षौम-संवीतो वाचयामास च द्विजान्। ४

४०। वृन्द-वृन्दैः—असंख्य-सङ्घैः। प्रथमो वृन्द-शब्दः संख्या-वाचकः। अज्ञात-संख्यार्थं ज्ञात-संख्या-प्रयोगः। यद्वा, वृन्दानां वृन्दैः, जन-सङ्घ-समूहैः। सम्बाधः—सम्मर्दः। ४१। संमृष्टा—मार्जिता, परिष्कृता। रथ्या—प्रतोली, a high street.

१। मैथुनम्—स्त्री-पुंसयोः सङ्गमः। नियतम्—संयतम्, त्यक्तमिति भावः। श्रीमत्—शोभमानम्, सुन्दरम्। २। प्रतिबुध्य—जागरित्वा। ३। सूताः—पौराणिकाः, मागधाः—वंशावली-कीर्तकाः। वन्दिनः—स्तुति-पाठकाः। 'पूर्वां··· उपासीनः'—पूर्वां सन्ध्योपासनं कुर्वन्। जजाप—गायत्रीमिति शेषः। यत-मानसः—ईश्वरार्पित-चित्तः। ४। प्रयतः—पूतः, पवित्रः। मधु-सूदनः—विष्णुः। संवीतः—आवृतः। वाचयामास—स्वस्ति-वाचनं पुण्याहञ्च इति शेषः।

तेषां पुण्याह-घोषोऽथ गम्भीर-मधुरस्तदा
अयोध्यां पूरयामास, तूर्य-घोष-विमिश्रितः। ५

ततः पौर-जनः सर्वः, श्रुत्वा रामाभिषेचनम्,
प्रभातां रजनीं वीक्ष्य, चक्रे शोभां परां पुनः। ६

सिताभ्र-शिखराभेषु देवतायतनेषु च,
चतुष्पथेषु, रथ्यासु, चैत्येष्वट्टालकेषु च, ७

नाना-पण्य-समृद्धेषु वणिजामापणेषु च,
कुटुम्बिनां समृद्धानां श्रीमत्सु भवनेषु च, ८

सभासु चैव सर्वासु वृक्षेष्वालक्षितेषु च
ध्वजाः समुच्छ्रिताश्चित्राः पताकाश्चाभवंस्तथा। ९

नट-नर्तक-संघानां, गायनानां च गायताम्
मनः-कर्ण-सुखा वाचः श्रूयन्तेऽथ समन्ततः। १०

रामाभिष्टव-संयुक्ताः कथाश्चक्रुर्मिथो जनाः,
रामाभिषेके संप्राप्ते, चत्वरेषु गृहेषु च। ११

बालाश्चापि, क्रीड़माना गृह-द्वारेषु सर्वशः,
रामाभिष्टव-संयुक्ताश्चक्रिरे ते मिथः कथाः। १२

कृत-पुष्पोपहारश्च धूप-गन्धाधिवासितः,
राज-मार्गः कृतः श्रीमान् पौरै रामाभिषेचने। १३

५। घोषः—ध्वनिः। ७। सितम्—शुक्लम्, श्वेतम्। अभ्रम्—मेघः। आभा—शोभा। चैत्येषु—बौद्ध मठेषु। अट्टालकेषु—प्राकारोपरिगत-युद्ध स्थानेषु। ९। आलक्षितेषु—सर्वतो लक्षितेषु, अत्युच्चेषु। १०। नटाः—नव धराः। गायनः—गायकः। ११। अभिष्टवः—गुण-कर्म-वर्णनम्। मिथः—अन्योऽन्यम्, परस्परम्। चत्वरेषु—अङ्गनेषु।

प्रकाशी-करणार्थञ्च, निशागमन-शङ्कया,
दीप-वृक्षांस्तथा चक्रुरनु-रथ्यासु सर्वशः ; १४

अलङ्कारं पुरस्यैवं कृत्वा च, पुर-वासिनः,
आकाङ्क्षन्तो हि रामस्य यौव-राज्याभिषेचनम्, १५

समेत्य संघशः सर्वे चत्वरेषु सभासु च,
कथयन्तो मिथस्तत्र, प्रशशंसुर्नराधिपम्,— १६

"अहो, महानयं राजा इक्ष्वाकु-कुल-नन्दनः,
ज्ञात्वा यो वृद्धमात्मानं रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति ! १७

सर्वे ह्यनुगृहीताः स्म, यन् नो रामो मही-पतिः
चिराय भविता गोप्ता, दृष्ट-तत्त्व-परावरः । १८

अनुद्धत-मना, विद्वान्, धर्मात्मा, भ्रातृ-वत्सलः,
यथा च भ्रातृषु स्निग्धस्तथास्मास्वपि राघवः । १९

चिरं जीवतु धर्मात्मा राजा दशरथोऽनघः,
यत्-प्रसादादभिषिक्तं द्रक्ष्यामो राघवं वयम् ।" २०

मिथः कथयतामेवं पौराणां शुश्रुवे तदा ।
दिग्भ्योऽपि श्रुत-वृत्तान्तः प्राप्तो जानपदो जनः । २१

स तु, दिग्भ्यः पुरीं प्राप्तो, द्रष्टु-कामोऽभिषेचनम्
रामस्य, पूरयामास पुरीं जानपदो जनः । २२

१४ । दीप वृक्षान्—वृक्षवत् नाना शाखान् दीप स्तम्भान् । अनु-रथ्यासु—रथ्या पार्श्वयोः । १८ । अनुगृहीताः—ईश्वरेण इति शेषः । स्म—स्मः (वृत्तिः, १।८।७) । चिराय—चिरम्, long. गोप्ता—रक्षिता । दृष्ट तत्त्व-परावरः—दृष्टम् (अनुभूतं, प्रत्यक्षी कृतम्) परं (श्रेष्ठं, पारमार्थिकम्) अवरम् (अश्रेष्ठं, व्यवहारिकं, जागतिक) च तत्त्व (सत्यं) येन सः । १९ । स्निग्धः— वत्सलः । २० । अनघः—निष्पापः । २१ । शुश्रुवे—कल रव

जनौघैस्तैर्विसर्पद्भिः शुश्रुवे तत्र निस्वनः,
पर्वसूदीर्ण-वेगस्य सागरस्येव भिद्यतः । २३

चतुर्थः सर्गः ।

कु-मन्त्रः ।

ज्ञाति-दास्यथ कैकेय्याः, सहोढ़ा परिचारिका,
प्रासादाग्रमुपारूढ़ा तस्मिन् काले यदृच्छया । १

ददर्श साथ तत्रस्थां श्रीमद्राज-पथां पुरीम्,
समुच्छ्रित-ध्वजवतीं हृष्ट-पुष्ट-जनाकुलाम् । २

तां च दृष्ट्वा पुरीं रम्यामलङ्कृत-जनाकुलाम्,
अ-दूर-स्थां समासाद्य धात्रीं काञ्चिदपृच्छत,— ३

"कस्मात् पौर-जनस्यायमति-हर्षोऽद्य, शंस मे ।
चिकीर्षितं किं नृपतेः कार्य्यं पौर-जन-प्रियम् ?" ४

इति पृष्टा तया धात्री कुब्जया, भृश-हर्षिता,
आचचक्षे, यथा-वृत्तं, यौव-राज्याभिषेचनम्,— ५

"श्वः पुष्य-योगेन किल यौव-राज्ये स्वमात्मजम्
अभिषेचयिता रामं राजा, गुण-गणाकरम् ।" ६

इति श्रीप . २३ । पर्वसु—अष्टम्यां चतुर्दश्यां पूर्णिमायाममावस्यायां च । विसर्पद्भिः—प्रसरद्भिः, spreading. उदीर्ण वेगस्य—उद्गत वेगस्य । भिद्यतः -भिद्यमानस्य । कर्म-कर्तरि परस्मैपदमार्षम् ।

१ । ज्ञाति दासी—ज्ञातेः (मातृ कुलस्य) दासी । सहोढा—ऊढया सह [आगता], परिणयात् परमेव या वध्वा सह तस्या भर्तृ-गृहमागच्छति सा । [अन्यया] सह ऊढेति प्रतीच्यां व्याख्यानं न समीचीन भाति । ३ । अपृच्छत—अपृच्छत् । आत्मनेपदमार्षम । ४ । चिकीर्षितम—कर्तुमिष्टम् । ५ । यथा वृत्तम्—अनुष्ठानमनतिक्रम्य ।

इति श्रुत्वाप्रियं वाक्यं, कुब्जा, क्षिप्रम-मर्षिता,
तस्मात् प्रासाद-शिखरादवतीर्य, त्वरान्विता, ७
संरक्त-नयना कोपात्, मन्थरा, पाप-निश्चया,
शयानामेव कैकेयीमिदं वचनमब्रवीत्,— ८
"उत्तिष्ठ, मूढ़े ! किं शेषे ? भयं ते घोरमागतम् !
समुपप्लुतमात्मानं, दुर्भगे ! नावबुध्यसे !" ९
तथैवमुक्ता कैकेयी संरम्भात् परुषं वचः
कुब्जया पाप-दर्शिन्या, प्रष्टुं समुपचक्रमे,— १०
"मन्थरे, किमसि क्रुद्धा ? किं तेऽक्षेमं, निवेदय।
विषण्ण-वदनां हि त्वां लक्षयामि सु-दुःखिताम्।" ११
मन्थरा, तद् वचः श्रुत्वा कैकेय्याः, पुनरब्रवीत्,
संरम्भामर्ष-ताम्राक्षी, वाक्यं, वाक्य-विशारदा,— १२
"अक्षेमं सु-महद्, देवि ! तवेदं समुपस्थितम्,
रामं दशरथो राजा यौव-राज्येऽभिषेक्ष्यति। १३
अपवाह्य हि दुष्टात्मा भरतं तव बन्धुषु,
काल्ये स्थापयिता रामं राज्ये, निहत-कण्टके।" १४
मन्थराया वचः श्रुत्वा, कैकेयी, हर्षिता, ततः,
एकमाभरणं मुक्त्वा कुब्जायै प्रददौ, शुभम्। १५

६। अभिषेचयिता—अभिषेचयिष्यति। 'अनद्यतने [भविष्यति] लुट्'—पाणिनिः, ३।३।१५। ७। अ-मर्षिता—अ-सहमाना। ९। समुपप्लुतः—सम्पीड़ितः, नितरां पीडितः। अवबुध्यसे—अवगच्छसि, जानासि। १०। संरम्भः—क्रोधः। पाप-दर्शिन्या—पाप-पथं दर्शयन्त्या। ११। अ-क्षेमम्—अ-मङ्गलम्। ते—तुभ्यम्। भातीति शेषः। १२। अ-मर्षः—अ-सहिष्णुता। १४। अपवाह्य—उद्वास्य। बन्धुषु—स्व-जनेषु, पितालये इत्यर्थः।

दत्त्वा चाभरणं श्रीमत्, प्रीति-दायं, प्रहर्षिता,
कैकेयी मन्थरां वाक्यमिदं तत्राब्रवीत् पुनः,— १६

"मन्थरे, यत् त्वया मेऽद्य प्रियमाख्यातमीप्सितम्,
तदिदं प्रीति-दायं ते प्रीत्या भूयो ददामि ते । १७

रामे वा भरते वापि विशेषो नास्ति कश्चन ;
तस्मात् प्रियं मे, यद् रामं राजा राज्येऽभिषेक्ष्यति ।" १८

इत्युक्ता तत्र कैकेय्या, तत् परिक्षिप्य भूषणम्,
सासूयं मन्थरा वाक्यमिदं भूयोऽभ्यभाषत,— १९

"कौशल्यां सुभगां मन्ये, यस्याः पुत्रोऽभिषिच्यते
यौव-राज्ये पैतृकेऽस्मिन् पुष्येण, कृत-लक्षणः । २०

प्राप्तां सु-महदैश्वर्यमृद्धावृद्धि-विवर्जिता
उपस्थास्यसि कौशल्यां, दासीव, त्वम-पण्डिते ! २१

ऋद्धि-युक्ता प्रिया जुष्टा राम-पत्नी भविष्यति ;
अ-श्रीमती त्व-समृद्धा स्नुषा च ते भविष्यति ।" २२

तां तथा भृशम-प्रीतां ब्रुवतीं प्रेक्ष्य मन्थराम्,
प्रीता, राम-गुणानेव कैकेयी प्रशशंस वै,— २३

"धर्मात्मा गुरु-वर्ती च कृत-ज्ञः सत्य-वाक् शुचिः,
रामो, राज्ञः सुतो ज्येष्ठो, युव-राजत्वमर्हति । २४

काल्ये—अन्यव उपसंक्रमण कालार्हे, यथा कालमन्यव उपसंक्रमणार्थे। स्थापयिता—स्थापयिष्यति। १७। दायः—दानम्। २०। सु-भगा—भर्तृ-प्रिया भार्या, समाहृता माता च। कृत लक्षणः—गुणैर्विख्यातः। २१। ऋद्धा—सम्पन्ना, समृद्धि-शालिनी। उपस्थास्यसि—सेविष्यसि। २२। जुष्टा—सेविता। अ-श्रीमती—अ-शोभना। अ-समृद्धा—सम्पत्ति-हीना। २४। गुरु वर्ती—पित्रादि-गुरु-जन चित्तानुसारी।

भ्रातॄन् सर्वान् स दीर्घायुः पितृवत् पालयिष्यति,
मातॄणां च स सर्वासां प्रियाण्युपचरिष्यति। २५
विशेषतः पूजयति, कौशल्यामप्यतीत्य, माम्
रामो, राजीव-पत्राक्षः, सर्वत्र सम-दर्शनः। २६
अ-कल्याणं नास्ति रामे, न द्वेषश्च, महात्मनि।
सन्तापं मा कथास्तस्माच्छ्रुत्वा रामाभिषेचनम्। २७
भरतश्चापि रामस्य, ध्रुवं, वर्ष-शतात् परम्,
पितृ-पैतामहं राज्यं क्रम-प्राप्तमवाप्स्यति।" २८

इत्येतद् वचनं श्रुत्वा, मन्थरा, भृश-दुःखिता,
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य कैकेयीं पुनरब्रवीत्,— २९
"रामश्चेद् भविता राजा, रामस्य च सुतस्ततः,
तस्यान्यस्तस्य चाप्यन्यो वंशे राजा भविष्यति। ३०
राज-वंशात्तु, कैकेयि, भरतः परिहास्यते।
न हि राज्ञः सुताः सर्वे राज्ये तिष्ठन्ति, भाविनि! ३१
बहूनामपि पुत्राणामेको राज्येऽभिषिच्यते।
तस्माज्ज्येष्ठेषु पुत्रेषु राज्य-तन्त्राणि पार्थिवाः, ३२
तेऽपि ज्येष्ठाः स्व-पुत्रेषु ज्येष्ठेष्वेव—न संशयः—
आसजन्त्यखिलं राज्यं, न भ्रातृषु कथञ्चन। ३३

२५। उपचरिष्यति—सेवा-परत्वेन आचरिष्यति। ३१। परिहास्यते—परित्यज्यते, परिक्षिप्यते। कर्मणि प्रयोगः। ३२। राज्य-तन्त्राणि—राज्य-निर्वाह-कर्माधिकार-प्राधान्यानि। ३३। आसजन्ति —युञ्जन्ति, स्थापयन्ति।

अतो-ऽत्यन्तम-पूजार्हस्तव पुत्रो भविष्यति,
अ-नाथवत् सुखाद् हीनो, राज-वंशाच्च शाश्वतात् । ३४
ध्रुवं तु भरतं रामः प्राप्य राज्यम-कण्टकम्,
देशान्तरं च नयिता, देहान्तरमथापि वा । ३५
भक्तो हि रामः सौमित्रिं, लक्ष्मणश्चापि राघवम्,
अश्विनोरिव सौभ्रात्रमनयोर्लोक-विश्रुतम् । ३६
तस्मात्, न लक्ष्मणे किञ्चित् पापं रामः करिष्यति ।
रामस्तु भरते पापं कुर्यादिति न संशयः । ३७
मातामह-गृहादेव, तस्माद्, गच्छतु ते सुतः
वनमाश्रयितुं शीघ्रमेतद् ध्यस्य क्षमं भवेत् । ३८
दर्पाद् धि नित्यं निकृता त्वया सौभाग्य-मत्तया,
राम-माता, स-पत्नी ते, कथं वैरं न पातयेत् ?” ३९
एवमुक्ता तु, कैकेयी विनिश्वस्याब्रवीद् वचः,—
“सत्यं वदसि मे, कुब्जे ! जाने ते भक्तिमुत्तमाम् । ४०
न तु पश्याम्युपायं तं येन शक्येत मे सुतः
इदं प्रापयितुं राज्यं, पितृ-पैतामहं, बलात् । ४१
अनुरक्तो नृपश्चायं रामं गुण-गणान्वितम् ।
स कथं राममुत्सृज्य, प्राणेभ्योऽपि प्रियं सुतम्,
भरतं नाम मे पुत्रमभिषिञ्चेदकारणम् ?” ४२

---

३५ । नयिता—नेता, नेष्यति । इडागम आर्षः । देहान्तरम्—पुनर्जन्म, मृत्युम् इत्यर्थः । ३६ । भक्तः—अनुरक्तः । अश्विनौ—वेदोक्तौ यमल-देव विशेषौ । सौभ्रात्रम्—सु-भ्रातृत्वम् । ३८ । क्षमम्—युक्तम् । ३९ । निकृता—परिभूता, तिरस्कृता, अवमानिता, अनादृता । ४२ । अनुरक्तो रामम्—रक्तो रामे । उपसर्ग योगे च कर्मत्वस्य

इत्येतद् वचनं श्रुत्वा कैकेय्या, मन्थरा, ततः,
उवाचेदं, विनिश्चित्य कुब्जा, पाप-विनिश्चया,— ४३

"इमं राममहं क्षिप्रं वनं प्रस्थापयामि, ते
भरतस्याभिषेकं च कारयामि, यदीच्छसि ।" ४४

श्रुत्वैतन् मन्थरा-वाक्यं, कैकेयी, हृष्ट-मानसा,
किञ्चिदुत्थाय शयनात् स्वास्तीर्णादिदमब्रवीत्,— ४५

"कथय त्वं, महा-प्रज्ञे ! केनोपायेन, मन्थरे !
भरतः प्राप्नुयाद् राज्यं, रामश्चैव वनं व्रजेत् ।" ४६

एवमुक्ता तया देव्या, मन्थरा, पाप-निश्चया,
वाक्यं, दुःखाय रामस्य, कैकेयीमिदमब्रवीत्,— ४७

"श्रूयतामभिधास्यामि, श्रुत्वा चैव विमृश्यताम्,
यथा ते भरतः पुत्रो राज्यं प्राप्स्यत्य-संशयम् । ४८

पुरा, देवासुरे युद्धे, युद्ध-सह्यः पतिस्तव,
याचितो देव-राजेन, युद्धं कर्तुमितो गतः । ४९

तस्मिन् महति संग्रामे राजा शस्त्र-परिक्षतः,
विजित्याभ्यागतो, देवि, त्वयोपचरितः स्वयम् । ५०

व्रण-संरोहणं चास्य तत्र, देवि, त्वया कृतम् ।
परितुष्टेन ते दत्तौ वरौ द्वौ, तत्र भाविनि ! ५१

धातोः स कर्मकत्वम् । ४३ । विनिश्चित्य—कार्यं सम्यक् निर्णीय । वि-निश्चयः—दृढः सङ्कल्पः, a firm determination. ४५ । शयनम्—शय्या । स्वास्तीर्णम्—शोभनं यथा स्यात् तथा प्रसारितम् । ४७ । निश्चयः—सङ्कल्पः, a resolve. ४८ । अभिधास्यामि—आख्यास्यामि । विमृश्यताम्—प्रणिधीयताम्, विचार्यताम् । ४९ । युद्ध-सह्यः—युद्धं सोढुं समर्थः । ५० । उपचरितः—सेवितः । ५१ । व्रण-संरोहणम्—

स त्वयोक्तः पतिस्तत्र,—यदेच्छेयं, तदा वरौ
गृह्णीयामिति । तच्चैव तथेत्युक्तं महात्मना । ५२

तौ वरौ याच भर्तारं—भरतस्याभिषेचनम्,
प्रव्राजनं च रामस्य वर्षाणि हि चतुर्दश । ५३

येन कालेन काकुत्स्थो वनात् प्रत्यागमिष्यति,
भरतोऽनेन कालेन बद्ध-मूलो भविष्यति । ५४

क्रोधागारं प्रविश्याद्य, क्रुद्धा भूत्वा, नृपात्मजे,
शेष्वानन्तर्हितायां त्वं भूमौ, मलिन-वासिनी । ५५

राजानं मा निरीक्षिष्ठा, मा भाषिष्ठाश्च किञ्चन,
सुप्ता भूमाव-नाथेव दुःखिता नाम, भाविनि ! ५६

तत्र त्वां शयितां राजा, स्वयं दुःख-समन्वितः,
प्रसादयिष्यति क्षिप्रं, प्रक्ष्यत्यपि च निर्णयम् । ५७

दयिता त्वं भृशं भर्तुर्, अत्र मे नास्ति संशयः ।
त्वदर्थं हि महा-राजः श्रियं दीप्तामपि त्यजेत् । ५८

मणि-मुक्ता-सुवर्णानि, रत्नानि विविधानि च
यदि दद्याच्च ते भर्ता, मास्म तेषु मनः कृथाः । ५९

अत-प्रवेशनम् । ५३ । प्रव्राजनम्—वने निर्वासनम् । ५५ । क्रोधागारम्—क्रोधवतीनां शयन-स्थानम् । अनन्तर्हितायाम्—अनाच्छन्नायाम् । मलिन-वासिनी—मलिन-वस्त्र धरा । ५६ । मा निरीक्षिष्ठाः, मा भाषिष्ठाः—माङ्-योगे लोडर्थे लुङ्, अडागमाभावश्च । ५७ । निर्णयः—अवधारणम् । ५८ । दयिता—प्रिया । श्रियम्—राज लक्ष्मीम्, राजत्व मित्यर्थः । दीप्ताम्—उज्ज्वलाम्, शोभमानाम् । ५९ । मास्म कृथाः—मास्म-योगे लोडर्थे लुङ्, अडागमाभावश्च ।

यदा तु तौ वरौ दित्सन्, स्वयमुत्थापयेत् पतिः,
सत्येन परिगृह्यैनं, याचेथास्त्वं तदा वरौ। ६०

ऋजु-स्वभावे! बुध्यस्व सौभाग्य-बलमात्मनः—
न त्वां क्रोधयितुं शक्तो, न च क्रुद्धामुपेक्षितुम्। ६१

तव प्रियार्थे हि राजा प्राणानपि परित्यजेत्।
न ह्यतिक्रमितुं शक्तस्तव वाक्यं मही-पतिः। ६२

गतोदके सेतु-बन्धो न, कस्यापि, प्रशस्यते।
उत्तिष्ठ! कुरु कल्याणं—राजानं परिमोहय!" ६३

तथेत्यथ प्रतिज्ञाय, मन्थरा-वचनात्, तदा
महार्ह-मणि-रत्नाढ्यं मुक्ता-हारं वराङ्गना ६४

अवमुच्य, तथान्यानि सर्वाण्याभरणानि, सा,
क्रोधागारं प्रविश्यैका, सौभाग्य-बल-दर्पिता,
संविश्य भूमौ, कैकेयी मन्थरामिदमब्रवीत्,— ६५

"इह वा मां मृतां, कुब्जे! भर्तुरावेदयिष्यसि;
वनं वा राघवे याते, भरतः प्राप्स्यति श्रियम्!" ६६

पञ्चमः सर्गः।

सत्य-पाशः।

आज्ञाप्य तु महा-राजो राघवस्याभिषेचनम्,
कैकेय्याः प्रियमाख्यातुं विवेशान्तः-पुरं, नृ-पः। १

६०। दित्सन्—दातुमिच्छन्। ६३। गतोदके—गतम् उदकं यस्मात् तस्मिन्। 'सति स्थाने' इति शेषः। सेतु बन्धः—आलि बन्धनम् (erection of a dyke). ६५। संविश्य—शयित्वा। ६६। 'मां...आवेदयिष्यसि'—अ-सिद्धे ममाभीष्टे इति शेषः।

तां तत्र पतितां भूमौ, शयानाम-तथोचिताम्,
प्रतप्त इव दुःखेन, सोऽपश्यज्जगती-पतिः । २

स वृद्धस्तरुणीं भार्यां, प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम्,
अपापः, पाप-सङ्कल्पामुपचक्रमे, दुःखितः । ३

करेणुमिव दिग्धेन विद्धां बाणेन, दुःखिताम्,
महा-गज इवासाद्य, स्नेहात् परिममर्श ताम् । ४

स तां विमृज्य पाणिभ्यामभिसंत्रस्त-चेतनः,
उवाच राजा कैकेयीं, श्वसन्तीमुरगीमिव,— ५

"देवि, केनाभियुक्तासि, केन वासि विमानिता,
यदिदं—मम दुःखाय शेषे, कल्याणि, दुःखिता,
भूतोपहत-चित्तेव, मम चित्त-प्रमाथिनी ? ६

कस्य वा तेऽप्रियं कार्यं ? केन वा तेऽप्रियं कृतम् ?
कः प्रियं लभतामद्य ? को वा सुमहदप्रियम् ? ७

अवध्यो वध्यतां कोऽद्य ? वध्यः को वा विमुच्यताम् ?
दरिद्रः को भवेद् वाढ्यो ? धनवान् कोऽस्त्व-किञ्चनः ? ८

पृथिव्यां वर-रत्नानां प्रभुरस्मि, शुचि-स्मिते !
ददामि यत् तेऽभिमतं—कोपं मा च कृथाः, प्रिये ! ९

२। तत्र—क्रोधागारे। अ-तथोचिताम्—तथा शयनानुचिताम्। इव शब्दोऽत्र एवार्थः। जगती—पृथिवी। ३। उपचक्रमे—गन्तुमारेभे। ४। करेणुम्—हस्तिनीम्। दिग्धेन—विष लिप्तेन। परिममर्श—पस्पर्श। ५। विमृज्य—स्पृष्ट्वा। अभिसंत्रस्त-चेतनः—त्रस्त-बुद्धिः। उरगीम्—सर्पीम्। ६। अभियुक्ता—कृत मिथ्याप वादा। विमानिता—निन्दिता। भूतोपहत चित्ता—पिशाचाविष्टा। ७। 'कस्य …कार्यम्'—कस्य वा अप्रियं कर्तव्यत्वेन तव मनसि वर्तते ? ८। अ-वध्यः—

न ते किञ्चिदभिप्रेतं न कर्तुमहमुत्सहे ;
आत्मनो जीवितेनापि करिष्ये ते प्रियं, प्रिये !" १०

एवमुक्ता, समुत्थाय, विवत्सुर्भूगम-प्रियम्,
परिपीडयितुं भूयो भर्तारं, साभ्यभाषत,— ११

"नास्मि विप्रकृता, देव ; केनचिन् न विमानिता।
अभीप्सितं तु मे किञ्चित् प्रियं कर्तुमिहार्हसि। १२

प्रतिजानीहि तावत् त्वं, यदि तत् कर्तुमिच्छसि।
प्रतिज्ञाते, ततोऽहं त्वां वरयिष्यामि काङ्क्षितम्।" १३

एवमुक्तस्तया राजा प्रियया, स्त्री-वशं गतः,
प्रविवेश, विनाशाय, मृगः पाशमिवाबुधः। १४

प्रियां, प्रिय-हिते युक्तां भार्यां, नित्यमनु-व्रताम्,
न तां विज्ञाय, सन्तप्तां, कैकेयीं पार्थिवोऽब्रवीत्,— १५

"अवलिप्ते ! न जानासि, त्वत्तः प्रियतरो मम—
राममेकं वर्जयित्वा—लोकेष्वन्यो न विद्यते। १६

दद्यां ते—परिहृत्येदं—प्रिये, हृदयमप्यहम् !
ततः, समीक्ष्य, कैकेयि, ब्रूहि, यत् साधु मन्यसे। १७

बलमात्मनि पश्यन्ती न विशङ्कितुमर्हसि ;
करिष्यामि तव प्रीतिं—सु-कृतेनात्मनः शपे।" १८

न अभ्यनार्हः। अकिञ्चनः—दरिद्रः। ११। विवत्सुः—वक्तु-कामा। १२। विप्रकृता—तिरस्कृता, अवमानिता। १३। वरयिष्यामि—प्राप्तुमिच्छामि, वरत्वेन याचिष्ये। १६। अवलिप्ते—गर्विते। १७। समीक्ष्य—सम्यक् विचार्य। १८। बलम्—मत्-प्रेम-रूपम् इति शेषः। प्रीतिम्—प्रीति विषयम्। सु-कृतेन—पुण्येन। शपे—

तुष्टा तेनाथ वाक्येन, हृष्टाभिप्रायमात्मनः
व्याजहार महा-घोरं कैकेयी, अप्रियम्-प्रियम्,— १९

"यथा धर्मेण शपसे, वरं मह्यं ददासि च,
तच्छृण्वन्तु, समागम्य, देवाः शक्र-पुरोगमाः । २०

सत्य-सन्धो महा-राजो, धर्म-ज्ञः, सु-समाहितः,
वरं मह्यं ददात्येष, तन्मे शृणुत, देवताः !" २१

इति देवी महेष्वासं परिगृह्याभिशाप्य च,
ततो वच उवाचेदं वर-दं, काम-मोहितम्,— २२

"पुरा देवासुरे युद्धे वरौ दत्तौ त्वया, नृप !
परितुष्टेन चेदानीं तौ वरौ त्वं प्रयच्छ मे । २३

यस्त्वयायं समारम्भो रामं प्रति समाहितः,
अनेनाप्नोतु भरतो यौव-राज्येऽभिषेचनम्; २४

वनं गच्छतु रामश्च चीराजिन-जटा-धरः
नव पञ्च च वर्षाणि—वरावेतौ वृणोम्यहम् । २५

यदि सत्य-प्रतिज्ञोऽसि, वनं रामं विसर्जय,
भरतं चापि मे पुत्रं यौव-राज्येऽभिषेचय ।" २६

एभिर्वचोभिः कैकेय्या हृदि विद्धो, नराधिपः
भयेन हृष्ट-रोमाभूद्, व्याघ्रीं दृष्ट्वा यथा मृगः । २७

शपथं करोमि । १९ । व्याजहार—उवाच । २० । पुरो गमः—पुरः सरः । २२ । परिगृह्य—परिवर्तनात् निवर्त्य, बद्धा । २४ । समारम्भः—कर्म । समाहितः—सम्पादितः, अनुष्ठितः इत्यर्थः । २५ । चीरम्—वल्कलम् । नव पञ्च च—चतुर्दश । २७ । हृष्ट रोमा—सञ्जात-लोम-हर्षः, जात रोमाञ्चः ।

सीदन्, दुःखेन महता स तेनाभिहतो नृपः
अ-संवृतायां, वि-मना, भूमावुपविवेश ह। २८

अहो धिगिति चाप्युक्त्वा, शोकार्तः, पतितः क्षितौ,
मोहमभ्यगमत् सद्यो, वाक्-शल्याभिहतो हृदि। २९

षष्ठः सर्गः।

दशरथ-विलापः।

चिरेण तु पुनः संज्ञां प्रतिलभ्यार्त-मानसः
कैकेयीमब्रवीत्, क्रुद्धो, दुःख-शोक-समन्वितः,— १

"नृ-शंसे! दुष्ट-चारित्रे! कुलस्यास्य विनाशिनि!
किं कृतं तव रामेण, मया वा, पाप-दर्शने? २

यदतीत्यापि कौशल्यां रामस्त्वामनुवर्तते,
तस्यैव त्वमनर्थाय किमर्थं चैवमुद्यता? ३

त्वं मयात्म-विनाशाय भवनं स्वं प्रवेशिता,
राज-पुत्रीति विज्ञाय, व्याली तीक्ष्ण-महा-विषा। ४

जीव-लोको यदा सर्वो रक्तो राम-गुणैरयम्,
अपराधं कमुद्दिश्य त्यक्ष्यामीष्टमहं सुतम्? ५

कौशल्यां वा, सुमित्रां वा, त्यजेयमपि वा श्रियम्,
जीवितं चात्मनो, रामं न त्वेनं पितृ-वत्सलम्। ६

२८। सीदन्—अवसीदन् (sinking). अ संवृतायाम्—अनावृतायाम्। वि मनाः—दुर्मनाः, अन्यमनाः, perplexed.

४। व्याली—सर्पी। ५। रक्तः—अनुरक्तः।

नन्दामि हि प्रियं पुत्रं दृष्ट्वा राममहं सदा,
अपश्यतः क्षणं तं मे न भवेदिह चेतना। ७

तिष्ठेल्लोको विना भूमिं, शस्यं वा सलिलं विना,
न तु रामं विना देहे तिष्ठेयुरसवो मम। ८

तदलं त्यज्यतामेष निश्चयः, पाप-निश्चये!
अपि ते चरणौ मूर्ध्ना स्पृशाम्येष, प्रसीद मे!" ९

अतदर्हं महा-राजं—पतितं पादयोरपि,
कैकेयी पुनरप्येवं घोरं वचनमब्रवीत्,— १०

"कीर्त्यसे त्वं सदा सद्भिः सत्य-वादी, दृढ़-व्रतः;
मम चेमौ वरौ दत्त्वा किं विचारयसि, प्रभो?" ११

एवमुक्तस्तु कैकेय्या, राजा दशरथस्तदा
प्रत्युवाच पुनः, क्रुद्धो, निश्वसन्नति-विह्वलः,— १२

"हन्तानार्ये! ममामित्रे! स-कामा भव, कैकेयि!
मृते मयि, गते रामे वनं मनुज-कुञ्जरे। १३

यदा मां गुरवो, वृद्धा, गुणवन्तो, बहु-श्रुताः
परिप्रक्ष्यन्ति काकुत्स्थं, वक्ष्यामि किमहं तदा? १४

'बालिशो बत कामात्मा राज्यं दशरथोऽन्वशात्,
स्त्री-जितो यस्त्यजेत् पुत्रं प्रियं ज्येष्ठमकारणे!'— १५

८। असवः—प्राणाः। ९। तत्—तस्मात्। अलम्—पर्याप्तम् (completely). १०। अ तदर्हम्—स्त्री प्रणामानर्हम्। १३। हन्त—हा, alas. १४। परिप्रक्ष्यन्ति—प्रातः 'क्व रामः' इति, इति शेषः। १५। बालिशः—मूढ़ः। बत—हन्त, हा धिक्, ah, alas. अन्वशात्—शशास।

इति मां गर्हयिष्यन्ति, स्त्री-जितं, सर्व-साधवः ।
गर्हितस्य च मे श्रेयो नेह ना-मुत्र विद्यते । १६

अ-नियोज्यैव तं कृच्छ्रे यदि मे मरणं भवेत्,
अनुग्रहः परो मे स्यादिति चाप्यभिकाङ्क्षितम् । १७

प्रियार्हं च सुखार्हं च प्रियं पुत्रं, गुणान्वितम्,
कथं वक्ष्याम्यहं, पापे, वनं गच्छेति, राघवम् ? १८

अ-कीर्तिर्-तुला लोके ध्रुवः परिभवश्च मे,
सर्व-भूतेषु चावज्ञा, यथा पाप-कृतस्तथा ।" १९

इति राज्ञो विलपतः, शोक-संविग्न-चेतसः,
अस्तमभ्यगमत् सूर्यो, रजनी चाभ्यवर्तत । २०

त्रि-यामापि भृशार्तस्य सा रात्रिरभवत् तदा
तथा विलपतस्तस्य राज्ञः शत-वर्षोपमा । २१

स, दीर्घमुष्णं निःश्वस्य, वृद्धो दशरथो नृपः
करुणं विललापार्तो, गगनासक्त-लोचनः,— २२

"हा रात्रि ! सर्व-भूतानां जीवितार्दापहारिणि !
नेच्छाम्यथ प्रभातां त्वाम्—अभियाचे, कृताञ्जलिः । २३

अथवा गम्यतां शीघ्रं ! नेमामिच्छामि निर्घृणाम्
अ-कृतघ्नां चिरं द्रष्टुं—कैकेयीं, भर्तृ-घातिनीम् ।" २४

१६। गर्हयिष्यन्ति—गर्हयिष्यन्ते, निन्दिष्यन्ति। श्रेयः—मङ्गलम्। इह—अस्मिन् [लोके]। अमुत्र—अमुष्मिन् [लोके], पर लोके। १७। कृच्छ्रम्—कष्टम्। १९। परिभवः—तिरस्कारः, अवमानना। पाप-कृतः—पाप कारिणः। २०। राज्ञः विलपतः—विलपन्तं राजानम् अनादृत्य इत्यर्थः। अनादरे षष्ठी। २१। त्रि-यामा—रात्र्याद्यन्तयोर्यामार्धयोर्दिवान्तर्गतत्वात्। २३। अर्दा—पीड़ा, सन्तापः। २४। निर्घृणाम्

विलप्यैवं, ततो राजा कैकेयीमुद्यताञ्जलिः
प्रसादयामास पुनर्वाक्यं चेदमथाब्रवीत्,— २५

"यद् यदिच्छसि सं-प्राप्तुं राम-प्रव्राजनादृते—
सर्व-स्वमपि वा प्राणां, स्ते ददामि, प्रसीद मे! २६

शून्येन खलु, कैकेयि, मयैतद् वाक्यमीरितम्;
कुरु, साध्वि! प्रसादं मे, भीतस्य, शरणार्थिनः।" २७

पुत्र-शोकातुरं, दीनं, वि-संज्ञं, पतितं भुवि,
विचेष्टमानं भर्तारं कैकेयी वाक्यमब्रवीत्,— २८

"पापं कृत्वेव,—किमिदं?—मम दत्त्वा वरौ स्वयम्,
शेषे क्षिति-तले सन्नः! स्थातुं सत्ये त्वमर्हसि। २९

आहुः सत्यं परं धर्मं धर्म-ज्ञाः सत्य-वादिनः।
सत्य-वागिति च ज्ञात्वा मया त्वमभियाचितः। ३०

न करिष्यसि चेदद्य वचनं मम काङ्क्षितम्,
अग्रतस्ते ततो, राजन्, परित्यक्ष्यामि जीवितम्।" ३१

छल-पाशेन कैकेय्या बद्ध एवं, नराधिपः
न शशाक तदा छेत्तुं, बलिः प्रागिव विष्णुना। ३२

विवर्ण-वदनश्चापि विभ्रान्त-नयनोऽभवत्,
महा-धुर्यः श्रमायुक्तो युगचक्रान्तरे यथा। ३३

—निर्दयाम्। २७। शून्येन—दुःख-वशात् वाच्यावाच्य-विवेक रहितेन। एतत्—पूर्वोक्त कटुक वाक्यम्। ईरितम्—कथितम्। २८। विचेष्टमानम्—मरण-काल इव विलुठन्तम्। २९। किमिदम्?—इदं शोचितम् इत्यर्थः। सन्नः—पीड़ितः। ३०। आहुः—वदन्ति। लडर्थे भवो लिट्। अभियाचितः—वरौ इति शेषः। ३१। अग्रतः—अग्रे। ३२। छेत्तुम्—तं पाशमिति शेषः। प्राक्—पुरा। विष्णुना—वामन-रूपेण इति शेषः। ३३। धुर्यः

कष्टादेव स धैर्येण संस्तभ्यात्मानमब्रवीत्,
शोक-संरम्भ-ताम्राक्षः, कैकेयीमभिवीक्ष्य ताम्,— २४

"धिगस्तु, पाप-शीले, त्वां ! नृ-शंसे ! पति-घातिनि !
त्यजामि त्वामहं पापां, निर्घृणां, निरपत्रपाम्। २५

न मे त्वया कृत्यमस्ति, क्षुद्रया, राज्य-लुब्धया ;
मन्त्रवच्च मया पाणिर्गृहीतो यस्त्यजाम्यहम् ;
त्वत्-कृते चापि भरतं त्यजाम्यनपकारिणम् !" २६

एवं विलपतस्तस्य राज्ञो दशरथस्य तु,
जगाम सा निशा कृत्स्ना, दुःखार्तस्य, महात्मनः। २७

सप्तमः सर्गः।

रामानयनम्।

अथोषसि, प्रभातायां शर्वर्यां, द्वारमागतः
सु-मन्त्रः, प्राञ्जलिर्भूत्वा, बोधयामास पार्थिवम्,— १

"सु-प्रभाता निशा, राजं, स्तवेयं ! भद्रमस्तु ते !
बुध्यस्व, नर-शार्दूल ! श्रियं भद्राणि चाप्नुहि !" २

ततः स राजा सूतस्य प्रतिबोधन-मङ्गलम्
श्रुत्वाति-दुःख-सन्तप्तस्तमाभाष्येदमब्रवीत्,— ३

—भार वाहकः पशुः। श्रमायुक्तः—श्रमे नियुक्तः। पक्षान्तरे—पक्षयामध्ये। २४। संस्तभ्य—संयम्य। २५। निरपत्रपाम्—निर्लज्जाम्। २६। 'न…अस्ति'—न त्वया मे सलिल क्रियादिकम् और्ध्वदेहिकं कर्म कर्तव्यं भवति। २७। 'एवं विलपतस्तस्य'—अनादरे षष्ठी।

१। बोधयामास—जागरयामास (awakened.) २। बुध्यस्व—जागृहि (awake). भद्राणि—मङ्गलानि।

"सूत ! किं दुःखितं मां त्वम-सुत्थं स्तोतुमर्हसि ?
वचोभिरेभिरार्तं मां भूयस्त्वमनुकृन्तसि !" ४

सुमन्त्रस्तद् वचः श्रुत्वा भर्तुर्दीनस्य भाषितम्
सहसा, व्रीडितः किञ्चित्, तस्माद् देशादपागमत्। ५

अत्रान्तरे पाप-शीला कैकेयी पुनरब्रवीत्,
भर्तारं वाक्-प्रतोदेन सीदन्तं तुदतीव, सा,— ६

"किमेवं भाषसे दीनं वाक्यं, सु-प्राकृतो यथा ?
राममाहूय विश्रब्धं वनायाद्य विसर्जय।" ७

स, तुन्नो वाक्-प्रतोदेन, प्रतोदेनेव कुञ्जरः,
राजा, शोकाभिसन्तप्तः, सुमन्त्रमिदमब्रवीत्,— ८

"सत्य-पाश-निबद्धोऽस्मि, सूत, विभ्रान्त-मानसः।
रामं द्रष्टुमिहेच्छामि ; तं च शीघ्रमिहानय।" ९

इति राज्ञो वचः श्रुत्वा, कैकेयी तदनन्तरम्
स्वयमेवाब्रवीत् सूतं,—"गच्छ त्वं, राममानय।" १०

अथ तां रात्रिमुषिताः, प्रधाना नृप-मन्त्रिणः
पौर-जानपदाश्चैव, पुरोहित-पुरोगमाः, ११

राजोपस्थानमागम्य, राज-सन्दर्शनार्थिनः,
आभिषेचनिकं सर्वं कृत्वा, तस्थुर्नृपाज्ञया। १२

४। अनुकृन्तसि—पश्चात् छिनत्सि। ५। व्रीडितः—लज्जितः। ६। प्रतोदेन—ताड़न-दण्डेन। सीदन्तम्—विषीदन्तम्। तुदती—छिन्दती। ७। सु-प्राकृतः—अति-नीचः। विश्रब्धम्—विश्वस्तम्, निःशङ्कम्। ८। तुन्नः—क्लिष्टः। ९। सत्यम्—शपथः, प्रतिज्ञा। १२। राजोपस्थानम्—राज-द्वारम्। आभिषेचनिकम्—अभिषेक-प्रयोजनकम्।

ययौ सुमन्त्रस्त्वरितो राममानयितुं गृहात्।
अथाससाद रामस्य स वेश्माभ्र-चयोपमम्, १३

दामभिर्वर-माल्यानां प्रालम्बैः समलङ्कृतम्,
महा-कवाट-पिहितं, वितर्दि-शत-शोभितम्,
काञ्चन-प्रतिमैकाग्र-मणि-विद्रुम-तोरणम्। १४

जनौघ-कीर्णाः सोऽतीत्य षट् कक्षास्तस्य वेश्मनः,
सु-विभक्तां ततः कक्षां सप्तमीमाससाद ह, १५

युवभिः पुरुषैर्गुप्तां प्रास-कार्मुक-पाणिभिः
अ-प्रमादिभिरेकाग्रैर्भक्तिमद्भिरलङ्कृतैः, १६

तथा कञ्चुकिभिर्वृद्धैः काषायाम्बर-धारिभिः
रचितामल-शृङ्गारैः स्त्र्यध्यक्षैर्वेत्र-पाणिभिः। १७

ते दृष्ट्वागतं सूतं, राम-प्रिय-चिकीर्षवः
सह-भार्याय रामाय, प्रणिपत्य, न्यवेदयन्। १८

श्रुत्वैवाभ्यागतं तं तु, दूतमभ्यर्चितं पितुः,
रामः प्रवेशयामास सत्-कृत्यालयमात्मनः। १९

१३। चयः—स्तूपः। १४। दामभिः—रज्जुभिः। प्रालम्बैः—स्रजा लम्बिभिः। पिहितम्—रुद्धम् [प्रातः समयत्वात्]। वितर्दिः—वेदिका। काञ्चन प्रतिमैकाग्रम्—काञ्चनीभिः प्रतिमाभिः [युक्तं] एकम् (प्रधानम्) अग्रम् (पुरो भागः) यस्य तत्। मणि विद्रुम तोरणम्—मणिभिः विद्रुमैश्च (प्रवालैश्च) [युक्तं] तोरणं (वहिर्द्वारं) यस्य तत्। १५। ओघः—प्रवाहः। कक्षा—कक्ष्या, हर्म्यादेः प्रकोष्ठः, enclosure of an edifice, महल। सु विभक्ता—सम्यक् पृथक्। १६। प्रासः—कुन्तः, a bearded dart. कार्मुकम्—धनुः। अ प्रमादिभिः—सावधानैः। १७। कञ्चुकी—राजान्तः पुराध्यक्षः। काषायम्—कौसुम्भादि कषाय रक्तम्। अम्बरम्—वसनम्। १९। अभ्यर्चितम्—बहु मतम्, सम्मतम्।

स, तं धनद-सद्माभं सूपविष्टं स्वलङ्कृतम्
ददर्श सूतः, सौवर्णे पर्यङ्के राङ्कवास्तृते, २०
वराह-रुधिराभेन सु-स्वच्छेन महा-भुजम्
अनुलिप्तं महार्हेण चन्दनेन सु-गन्धिना, २१
वाल-व्यजन-धारिण्या सीतया पार्श्वे संस्थया
स-पद्मया सेव्यमानं श्रियेव मधु-सूदनम्, २२
तरुणादित्य-सदृशं, प्रज्वलन्तमिव श्रिया।
ववन्दे राममभ्येत्य, सुमन्त्रो, विनयान्वितः। २३
पृष्ट्वा चैनं सुखं प्रह्वो विहार-शयनासने,
उवाचानन्तरमिदं सुमन्त्रो राज-शासनम्,— २४
"कौशल्या सु-प्रजा देवी! देवस्त्वां द्रष्टुमिच्छति,
कैकेयी-सहितो; राम, गम्यतां, यदि रोचते"। २५
एवमुक्तः सुमन्त्रेण, रामो राजीव-लोचनः,
शिरसा प्रतिगृह्याज्ञां पितुः, सीतामथाब्रवीत्,— २६
"सीते, देवश्च देवी च, समागम्य, परस्परम्
मम मन्त्रयतो नूनं यौवराज्याभिषेचनम्। २७

२०। धनद सद्माभम्—कुवेर सदृशम्। राङ्कवम्—रङ्कु-मृग-रोमज वस्त्रम्। आस्तृतम्—आच्छादितम्। २१। सु-स्वच्छेन—अति निर्मलेन। २२। वाल-व्यजनम्—चामरम्। स पद्मया—[श्वेत] पद्म हस्तया। यथा चामरस्य तथा पुण्डरीकस्यापि श्वेत वर्णत्वात् उभयोः सादृश्यम्। २३। आदित्यः—सूर्यः। २४। प्रह्वः—विनीतः। विहार-शयनासने—विहार-शयनयोः आसने, विहार-शयन स्थान भूते आसने। वर्तमानमिति शेषः। २५। सु-प्रजा—सु-सन्ताना। सु-पुत्रेण त्वया इति शेषः। २६। राजीवम्—पद्मम्। २७। मन्त्रयतः—मन्त्रयेते। परस्मैपदमार्षम्। नूनम्—निश्चितम्, certainly.

ध्रुवं मे यतते माता कैकेयी, मत्-प्रियेच्छया,
अद्यैव मे यौवराज्यं प्रतिपादयितुं स्वयम् । २८

नूनं रहसि राजानं मत्-कृते त्वरयत्यसौ;
अथवा, सहिता राज्ञा, मां प्रियं वक्तुमिच्छति । २९

तस्माच्छीघ्रमहं गत्वा पश्यामि जगती-पतिम्,
एकं, रहसि कैकेय्या सहासीनं, गत-ज्वरम् ।” ३०

इति भर्तृ-वचः श्रुत्वा, सीता वचनमब्रवीत्,—
“गच्छार्य-पुत्र, पितरं द्रष्टुं मातरमेव च” । ३१

इत्युक्त्वा, साञ्जलिं कृत्वा, रामं सं-प्रस्थितं तदा
आ-द्वारमनुवव्राज सीता, भर्तृ-वशानुगा । ३२

विनिर्गत्य च तस्मात् स गृहादनुपम-द्युतिः
ददर्शार्थि-जनं, द्वारि स्थितं, दर्शन-लालसम् । ३३

स सर्वानर्थिनो दृष्ट्वा, समेत्य, प्रतिनन्द्य च,
युक्तमेव रथे रौप्यमारुरोह, त्वरान्वितः । ३४

छत्र-चामर-पाणिस्तं प्रयान्तं लक्ष्मणस्तदा
अन्वारुरोह, देवेन्द्रमुपेन्द्र इव, हर्षयन् । ३५

ततो हलहला-शब्दस्तुमुलः समपद्यत,
दृष्ट्वैव राममायान्तं रथेन, रथिनां वरम् । ३६

२८। ध्रुवम्—निश्चितम्। प्रतिपादयितुम्—दातुम्। ३०। गत-ज्वरम्—विगत-सन्तापम्। ३२। सं प्रस्थितम्—सं प्रस्थास्यमानम् (going to start). ‘आशंसायां भूतवच्च’—पाणिनिः, ३।३।१३२। ३३। अर्थी—प्रार्थी, याचकाश्च। दर्शनाभिषेकयोः इति शेषः। स्थितः—दण्डायमानः। लालसः—लोलुपः। ३४। समेत्य—मिलित्वा। युक्तम्—युक्ताश्वम्। रौप्यम्—रूप्य-निर्मितम्। ३६। ‘हलहला’ इति शब्दानुकरणम्।

हर्षात् तेन जनौघेन सहसा समुदीरितः
स शब्दः पूरयामास दिशोऽथ विदिशस्तथा। ३७

स राज-कुलमासाद्य, महेन्द्र-भवनोपमम्,
अवतीर्य रथात् तस्मात्, प्रविवेश, श्रिया ज्वलन्। ३८

अष्टमः सर्गः।

पितृ-शासनम्।

स ददर्शासने राम आसीनं पितरं तदा,
कैकेयी-सहितं, दीनं, मुखेन परिशुष्यता। १

स, तस्य चरणौ पूर्वं प्रणिपत्य, कृताञ्जलिः,
ततो ववन्दे, प्रणतः, कैकेय्यास्तदनन्तरम्। २

सौमित्रिरपि, चाभ्येत्य, पितुः पादावनन्तरम्
ववन्दे, परम-प्रीतः, कैकेय्या, विनयान्वितः। ३

स्थितं सं-प्रश्रितं दृष्ट्वा रामं, दशरथो नृपः
नाशक्नोद-प्रियं वक्तुं प्रियं पुत्रमनागसम्; ४

रामेत्युक्त्वा तु वचनं, वाष्प-वेग-जडी-कृतः,
नाशक्नोत् परतो वक्तुं, नेक्षितुं दयितं सुतम्। ५

३७। दिशः—दिशश्चतस्रः,—प्राची (पूर्वा), अवाची (दक्षिणा), प्रतीची (पश्चिमा), उदीची (उत्तरा) चेति। विदिशः—विदिशोऽपि चतस्रः,—आग्नेयी, नैरृती, वायवी, ऐशानी चेति। विदिक्—उपदिशम्, दिशोर्मध्यम्। ३८। कुलम्—गृहम्। महेन्द्रः—इन्द्रः। श्रिया—प्रभया।

१। मुखेन परिशुष्यता—परिशुष्यता मुखेन उपलक्षितम्। ३। अभ्येत्य—समीपमागम्य। कैकेय्याः—'चरणौ ववन्दे च' इति शेषः। ४। सं-प्रश्रितम्—अति-विनीतम्। अनागसम्—निरपराधम्, निष्पापम्।

तम-पूर्वं पितुर्दृष्ट्वा विकारं, परिशङ्कितः,
रामोऽप्युद्वेगमापेदे, पदा स्पृष्ट्वेव पन्नगम्। ६

अ-प्रसन्नेन्द्रियं दृष्ट्वा, शोक-सन्ताप-विह्वलम्,
निःश्वसन्तं यथा नागं—दीर्घमुष्णं च निश्वसन्— ७
ऊर्मि-मालिनम-क्षोभ्यं क्षोभितं सागरं यथा,
उपप्लुतमिवादित्यमुक्तानृतमृषिं यथा,— ८
अ-निमित्तं विकारं तं दृष्ट्वा रामः पितुस्तदा
बभूव सं-क्षुब्धतरः, समुद्र इव पर्वणि। ९

चिन्तयामास च तदा रामः, पितृहिते रतः,—
"किं-निमित्तमयं राजा मां न शक्नोति वीक्षितुम्? १०
उक्त्वा रामेति कस्माच्च नोत्तरं प्रतिपद्यते?
कच्चिन् मया नापकृतम् अ-ज्ञानाल् लाघवेन वा। ११
अन्यदा ह्येष मां दृष्ट्वा कुपितोऽपि प्रसीदति।
अस्याद्यैव तु मां दृष्ट्वा केनायासोऽयमीदृशः?" १२

६। उद्वेगमापेदे—स्वापराध शङ्कया इति शेषः। पन्नगः—सर्पः। ७। अप्रसन्नेन्द्रियम्—विषण्ण-वदनम्। यथा नागम्—सर्पमिव। नागः—सर्पः। ८। ऊर्मि-मालिनम्—तरङ्ग सङ्कुलम्। अ क्षोभ्यम्—अ विचालनीयम्। क्षोभितम्—विचालितम्। उपप्लुतम्—राहु ग्रस्तम्। उक्तानृतम्—उक्तम् (भाषितम्) अनृतम् (मिथ्या) येन तम्, मिथ्या भाषणात् निस्तेजस्कम् इत्यर्थः। ९। अ निमित्तम्—न (नास्ति) निमित्तम् (कारणं) यस्य तम्। सं क्षुब्धतरः—नितरां विचलितः। समुद्र इव पर्वणि—यथा पर्वणि चन्द्रोदयात् समुद्रः अति क्षुब्धो भवति तथा। ११। उत्तरम्—वाक्यस्य पर भागम्। प्रतिपद्यते—उच्चारयति। कच्चित्—आशंसे, I hope. लाघवेन—बुद्धि-हीनतया। १२। आयासः—खेदः।

स तदा पितुरायासम-पूर्वं, पितृ-वत्सलः,
दृष्ट्वा, सं-चिन्तयामास तत् तदुद्विग्न-मानसः । १३

स दीन इव शोकार्तो विषण्ण-वदनस्ततः
कैकेयीमभिवीक्ष्यैव रामो वचनमब्रवीत्, — १४

"देवि, किन् नु मयाज्ञानादपराद्धं मही-पतेः,
विषण्ण-वदनो दीनो येन मां नाभिभाषते ? १५

शारीरो मानसो वापि कच्चिदेनं न बाधते,
सन्तापो वाभिघातो वा । दुर्लभं हि सदा सुखम् । १६

कच्चिन् न भरते किञ्चित्, कुमारे पितृ-नन्दने,
शत्रुघ्ने चाप्य-कुशलं, देवि, मातृषु वा पुनः । १७

कच्चिन् मया नापकृतम-ज्ञानाद् येन वा पिता
कुपितस्—तन् ममाचक्ष्व ; त्वं चैनं वै प्रसादय । १८

पितर्य-परितुष्टे हि, कृत्वा वा किञ्चिद-प्रियम्,
नोत्सहे जीवितुं, देवि ! सत्यमेतद् ब्रवीमि ते । १९

यतः शरीरस्योत्पत्तिरस्य, मे जीवितस्य च,
कथं नामाप्रियं तस्य कृत्वा जीवितुमुत्सहे ? २०

प्रभुः, शरीर-प्रभवः, प्रिय-कृद्, वृत्ति-दो, वरः,
हितानामुपदेष्टा च—प्रत्यक्षं दैवतं पिता । २१

न किञ्चित् परुषं कच्चिदभिमानात् पिता मम
क्रुधयोक्तो भवत्यायं, येनास्याकुलितं मनः । २२

---

१५ । किम् न—सम्भवतः किम् । १६ । अभिघातः—यातना । १८ । अपकृतम्
—अनिष्टं कृतम् । आचक्ष्व—कथय । २० । नाम—सम्भवतः, possibly. उत्सहे—

एतदाचक्ष्व मे, देवि ! याथातथ्येन पृच्छतः,
यन्निमित्तो विकारोऽयम-पूर्वोऽस्य मही-पतेः । २३

अहं ह्यस्य कृते राज्ञो विशेयमपि पावकम्,
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं, मज्जेयमपि सागरे । २४

यथैव मे पिता पूज्यस्त्वमप्यम्ब तथैव मे ;
तस्मात् त्वमेव मां ब्रूहि, यद् राज्ञोऽस्य चिकीर्षितम् । २५

पतेद् द्यौः, पृथिवी शीर्येत्क्षोभं जल-निधिर्व्रजेत्,—
स्वैरेष्वपि न तु ब्रूयामनृतं क्वचिदप्यहम् ।" २६

तमार्जवमनार्या सा विदित्वा सत्य-वादिनम्,
उवाच वाक्यं कैकेयी, मन्थरा-वाक्य-दूषिता,— २७

"पुरा, देवासुरे युद्धे, पित्रा ते, रघु-नन्दन,
शुश्रूषितेन प्रीतेन, मह्यं दत्तं वर-द्वयम् । २८

मयायं याचितस्तत्र भरतस्याभिषेचनम्,
तव निर्वासनं चैव वर्षाणि हि चतुर्दश । २९

अद्यैव च त्वया, राम, गन्तव्यं, वचनात् पितुः,
वन-वासं समुद्दिश्य नव वर्षाणि पञ्च च । ३०

शक्नोमि । २१ । प्रभवः—उत्पत्ति-स्थानम् । वृत्तिदः—जीविका दाता । दैवतम्—देवता । २३ । याथातथ्येन—तत्त्वतः, यथार्थतः । तथ्यम्—याथार्थ्यम्, सत्यम् । २४ । विशेयम्—प्रवेष्टुमिच्छामि । प्रार्थनायां लिङ् । पाणिनिः, ३।३।१६१ । पावकः—अग्निः । २६ । पतेत्—यदीति शेषः । 'हेतु हेतुमतोर्लिङ्'—पाणिनिः, ३।३।१५६ । द्यौः—स्वर्गः । शीर्येत्—विदीर्येत्, split. जल निधिः—समुद्रः । स्वैरेषु—स्वतन्त्रेषु, स्वच्छन्देषु, स्वेच्छाचारिषु । अनृतम्—असत्यम्, मिथ्या । २७ । आर्जवम्—ऋजुम्, सरलम् । स्वार्थे अण् । अनार्या—असभ्या, अकर्तव्य कर्मानुष्ठात्री । आर्यः—'कर्तव्यमाचरन् काममकर्तव्यमनाचरन्, तिष्ठति प्रकृताचारे यः स आर्य इति स्मृतः' । प्रथमा पंक्तिः—

यदि सत्य-प्रतिज्ञं त्वं पितरं कर्तुमिच्छसि,
आत्मानमपि वा कर्तुं यदि सत्यं व्यवस्यसि, ३१
सप्त सप्त च वर्षाणि तदा वन-चरो भव,
त्यक्त्वा राज्यं—दिग्धं प्राप्तां, चीराजिन-जटा-धरः।" ३२

अथैतद् वचनं श्रुत्वा, कैकेय्या समुदाहृतम्,
स्मितं कृत्वा ततो राम इदं वचनमब्रवीत्,— ३३
"एवमस्तु—निवत्स्यामि वने, चीर-जटा-धरः,
चतुर्दशैव वर्षाणि, प्रतिज्ञां पालयन् पितुः। ३४
इदं तु ज्ञातुमिच्छामि,—किमर्थं मां स्वयं गुरुः
नाज्ञापयति. विस्रब्धं प्रेष्यमात्म-वशानुगम् ? ३५
महाननुग्रहो मे स्यादाज्ञप्तस्य महात्मना।
मयि भृत्ये च पुत्रे च किं राज्ञो, देवि, गौरवम् ? ३६
दैवतं हि प्रभुश्चैव पिता राजा गुरुश्च मे।
अस्याज्ञां शिरसा गृह्य, करिष्यामि यथात्थ माम्। ३७
न च मन्युस्त्वया कार्यस्तथ्यं मे वदतो वचः—
यास्यामि—भव सु-प्रीता—वनं, चीर-जटा-धरः। ३८
गुरोरिष्टस्य, विदुषो, धर्म-ज्ञस्य, महात्मनः
पितुः, पुत्रः कथं नाम न कुर्यात्, मद्-विधो, वचः ? ३९

'तमार्जवसमायुक्तमनार्या सत्यवादिनम्' इति पाठान्तरम्। ३१। व्यवस्यसि—उत्सहसे, यतसे। ३५। प्रेष्यः—दासः। ३६। आज्ञप्तः—आज्ञप्तः (आज्ञा प्राप्तः), आदिष्टः। गौरवम्—सम्मानः। ३७। गृह्य—गृहीत्वा। अ समासेऽपि क्त्वो ल्यबार्षः। आत्थ (अह् + थल्)—वदसि। ब्रूञर्थे अहो लिट्। ३८। मन्युः—क्रोधः। तथ्यम्—यथार्थम्। ३९। इष्टस्य—वाञ्छितस्य, प्रियस्य।

व्यलीकं तु ममाख्येयं—हृदयं दहतीव यत्—
भरताभिषेकं राजा यन् नाज्ञापयति स्वयम्। ४०

अहं हि राज्यं दारां च प्राणानिष्टान् धनानि च
स्वयमेव प्रयच्छेयं भरतायाभियाचित:— ४१

किं पुनर्मनुजेन्द्रेण स्वयं पित्रा नियोजित: ?
प्रदद्यां भरतायाहमपि जीवितमात्मन:। ४२

तदाश्वासय राजानमात्मानमपि च स्वयम्,
गमिष्याम्यहमद्यैव—सुखी भवतु मे पिता ! ४३

गच्छन्त्वद्य पुरादस्माच्छीघ्रं प्रजविनैर्हयै:,
भरतं मातुल-कुलादुपावर्तयितुं, नरा:। ४४

एषोऽहमद्य गच्छामि वन-वासं, क्षत-त्वर:,
पितुर्नियोगात्, कैकेयि, तव वा, हृष्ट-मानस:।” ४५

इति राम-वच: श्रुत्वा, कैकेयी हृष्ट-मानसा,
अ-श्रद्दधाना प्रस्थाने, त्वरयामास राघवम्,— ४६

“एवं भवतु—यास्यन्ति शीघ्रं प्रजविनैर्हयै:,
भरतं मातुल-कुलादुपावर्तयितुं, नरा:। ४७

तव त्वहं क्षमं मन्ये नोत्सुकस्य विलम्बनम्।
राम, तस्मादितोऽद्यैव वनं त्वं गन्तुमर्हसि। ४८

४०। व्यलीकम्—महत् दु:खम्। ४१। दारान्—पत्नीम्। एक-भार्यार्थत्वेऽपि पुं-भुम्न्येव दार शब्द: प्रयुज्यते। प्रयच्छेयम्—प्रदातुमिच्छामि। अभियाचित:—त्वयापि इति शेष:। ४४। प्रजविनै:—वेगवद्भि:। उपावर्तयितुम्—प्रत्यागमयितुम्, प्रत्यानेतुम्। ४५। क्षत-त्वर:—क्षतोत्सव:। ४६। अ-श्रद्दधाना प्रस्थाने—रामो याथार्थ्येन वनं न प्रस्थास्यते इति मन्यमाना। ४८। उत्सुकस्य—वन गमनोत्सुकस्य।

न त्वामुत्सहते वक्तुं स्वयं व्रीडान्वितो नृपः ।
मा तेऽत्र संशयोऽस्त्वन्यो, मा मन्युं कुरु, राघव ! ४९

यावत् त्वं न वनं यातः पुरादस्माद् भविष्यसि,
तावन् न ते पिता, राम, स्वास्थ्यं प्राप्स्यति, दुःखितः ।" ५०

निमीलितेक्षणो राजा, श्रुत्वैतद् दारुणं वचः
कैकेय्याः, शङ्कमानाया—लुब्धाया—राम-निश्चयम्, ५१

सु-दीर्घं हा हतोऽस्मीति वाक्यमुक्त्वा, स दुःखितः,
मूर्च्छामुपागमद् भूयः, शोक बाष्प-परिप्लुतः । ५२

तद्-प्रियमति-क्रूरं वाक्यं, हृदय-दारुणम्,
श्रुत्वा न विव्यथे रामो, वचनं चेदमब्रवीत्,— ५३

"नाहमर्थ-परो, देवि, न राज्येप्सुर् न चानृती ;
सत्य-वाक् शुद्ध-भावोऽस्मि—कस्मान् मां परिशङ्कसे ? ५४

यत् तत्रापि भवेत् किञ्चिच्छक्यं कर्तुं हितं मया,
कृतं तदिति विद्धि त्वं, त्यक्त्वा प्राणानपि प्रियान् । ५५

अनुज्ञातोऽप्यत्र गुरुणा, भवत्या वचनादहम्
वने वत्स्यामि विजने, नव वर्षाणि पञ्च च । ५६

नूनं मयि न कल्याणं सम्भावयसि किञ्चन,
यत् त्वया भरतस्यार्थे राजा विज्ञापितः स्वयम् । ५७

४९ । उत्सहते—शक्नोति । व्रीडा—लज्जा । ५० । यातो भविष्यसि—कादपवर्गे भविष्यदतीते यत्कर्तृ-धातोः भविष्यति प्रयोगः । ५३ । हृदय दारुणम्—हृदय दारणम्, हृदय विदारकम्, heart-rending. ५४ । परः—निरतः, आसक्तः । अर्थ परः—धन परः, धनेप्सुः । अनृती—अ सत्य परायणः ।

इष्टान् भोगान्, प्रियान् दारान्, अपि वा जीवितं प्रियम्
तवैव वचनाद् दद्यां भरताय महात्मने। ५८

राजानं दुःखितं ज्ञात्वा, पुत्रार्थं, राज्य-लुब्धया,
अम्ब, किं नाम सं-प्राप्तं त्वया फलमभीप्सितम्? ५९

स्वयं मातरमापृच्छ्य, वैदेहीं परिहाय च,
अद्यैव वन-वासाय गच्छामि—सुखिनी भव! ६०

भरतः पालयेद् राज्यं शुश्रूषेच्च यथा नृपम्,
तथा भवत्या कर्तव्यम्—एष धर्मः सनातनः।" ६१

इति राम-वचः श्रुत्वा, शोक-बाष्प-परिप्लुतः,
ईषत्-संज्ञोऽपि, नृपतिर्भूयो मोहमुपागमत्। ६२

निः-संज्ञस्य पितुः पादौ शिरसा सोऽभिवाद्य हि,
अनार्यायाश्च कैकेय्या कृत्वा पादाभिवन्दनम्, ६३

कृताञ्जलिर्दशरथं कैकेयीं च प्रदक्षिणम्
कृत्वा, रामस्ततस्तस्मान् निर्जगाम गृहात् पितुः। ६४

तं बाष्प-परिपूर्णाक्षो लक्ष्मणः, शुभ-लक्षणः,
निर्गच्छन्तं सु-दुर्धर्षमनुवव्राज पृष्ठतः। ६५

आभिषेचनिकं द्रव्यं कृत्वा रामः प्रदक्षिणम्,
शनैर्जगाम, सापेक्षो, दृष्टिं तत्रापि वारयन्। ६६

६०। वैदेही—विदेह राज दुहिता, सीता। परिहाय—त्यक्त्वा। ६१। शुश्रूषेत्—शुश्रूषेत। परस्मैपदमार्षम्। पाणिनिः, १।३।५७। ६५। अक्षि—चक्षुः। दुर्धर्षः—दुर्जयः, अजेयः। ६६। द्रव्यम्—द्रव्य जातम्, उपकरण समूहः। कृत्वा प्रदक्षिणम्—[मङ्गलतीर्थादीनां पुण्य तीर्थोपकरणत्वात्]। सापेक्षः—वनं प्रति इति शेषः।

तत् तद् विगणयन् दुःखं पितुरात्म-वियोग-जम्,
निष्क्रम्यान्तः-पुरात् तस्मात्, तं ददर्श पुनर्जनम्। ६७

दृष्ट्वा च, स, स्मित-मुखः, प्रतिपूज्य यथार्हतः,
जगाम, त्वरितो, द्रष्टुं मातरं स्व-निवेशने। ६८

दुःखमन्तर्गतं तस्य न कश्चिद् बुबुधे जनः
—लक्ष्मणं वर्जयित्वैकं—धृति-संयत-चेतसः। ६९

न चापि धन-सम्पूर्णां त्यजतोऽस्य वसुन्धराम्,
यतेरिव विमुक्तस्य, लक्ष्यते चित्त-विक्रिया। ७०

मनसैव महद् दुःखमुद्-वहन्, धृतिमाश्रितः,
जगाम मातुम्, तद् दुःखं स्वयं वेदयितुं, गृहम्। ७१

नवमः सर्गः।

मातृ-दर्शनम्।

प्रविश्य चैव त्वरितो रामो मातुर्निवेशनम्,
ददर्श मातरं तत्र देवागारे, यत-व्रताम्, १

कृताञ्जलिं, देव-परां, स्थितां, मङ्गल-वादिनीम्,
अर्चयन्तीं पितॄंश्चैव देवांश्चानन्य-मानसाम्। २

६८। यथार्हतः—यथा योग्यम्। निवेशनम्—गृहम्। ६९। धृतिः—धैर्यम्। संयतम्—बद्धम्, नियमितम्। ७०। लक्ष्यते—अलक्ष्यत, मुख वर्ण परिवर्तनादि विक्रियाऽजायत। कथायामपि अतीतयोर्मध्ये वर्तमान प्रयोगो न युज्यते। ७१। वेदयितुम्—ज्ञापयितुम्।

१। आगारम्, अगारम्—गृहम्, आलयः। यत व्रता—अनुष्ठित व्रता। २। देव-परा—देवार्पित चित्ता। स्थिता—दण्डायमाना। मङ्गलम्—आशीर्वचनम्। मङ्गल-वादिनी—आशीर्वचनमुच्चारयन्ती।

तामवेक्ष्य ततो रामो ववन्दे, विनयान्वितः,
उवाच चैनाम्, अभ्येत्य, रामोऽहमिति, नन्दयन् । ३

साथ दृष्ट्वैव तनयं, मातृ-नन्दनमागतम्,
अभ्यनन्दच्च वात्सल्याद्, वत्सं गौरिव वत्सला । ४

स, मात्रा, समभिप्रेत्य, परिष्वक्तोऽभिनन्दितः,
पूजयामास तां देवीम्, अदितिं मघवानिव । ५

तमुवाच ततो हृष्टा कौशल्या प्रियमात्मजम्,
प्रयोजयन्ती पुत्रस्य शिव-वृद्ध्यर्थमाशिषः,— ६

"वृद्धानां, पुत्र, सर्वेषां राजर्षीणां, महात्मनाम्,
प्राप्नुह्यायुश्च कीर्तिं च, धर्मं च स्व-कुलोचितम् । ७

सत्य-प्रतिज्ञं पितरं पश्य, राघव,—मा चिरम्
अद्य हि त्वां पिता, राम, यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति ।" ८

एवं ब्रुवाणां कौशल्यां रामो वचनमब्रवीत्,
कैकेयी-वाक्य-सन्तप्त, ईषदाकुल-चेतनः,— ९

"अम्ब, त्वं न प्र-जानासि, महद् व्यसनमागतम्
तव दुःखाय महते, वैदेह्या, लक्ष्मणस्य च । १०

कैकेय्या भरतस्यार्थे राज्यं राजाभियाचितः,
सत्येन परिबद्धादौ ; तेन चास्यै प्रतिश्रुतम्,— ११

४ । नन्दनः—आनन्द-वर्धनः । ५ । समभिप्रेत्य—अभ्येत्य, सम्यगुपगम्य । अदितिः—दक्ष प्रजापतेः सा कन्या या कश्यप-पत्नी देव-माता च । मघवान्—इन्द्रः । परिष्वक्तः—आलिङ्गितः । ६ । शिवम्—मङ्गलम्, कल्याणम् । ८ । मा चिरम्—अ चिरम्, शीघ्रम् । १० । व्यसनम्—विपद् ।

भरताय महा-राजो यौवराज्यं प्रदास्यति,
मां पुनर्दण्ड-वासाय नियोजयति साम्प्रतम् । १२

सोऽहं वत्स्यामि वर्षाणि वने, देवि, चतुर्दश,
स्वादूनि हित्वा भोज्यानि, फल-मूल-कृताशनः ।" १३

इति राम-वचः श्रुत्वा, सा पपात, तपस्विनी
कौशल्या, दुःख-सन्तप्ता, निकृत्ता कदली यथा । १४

स तां निपतितां दृष्ट्वा भूमौ, मातरमातुराम्
राम उत्थापयामास, दुःखितां, गत-चेतनाम् । १५

उपावृत्योत्थितां दीनां, वड़वामिव विह्वलाम्,
ममार्ज पाणिना रामः, पांशुना परिगुण्ठिताम् । १६

अथ किञ्चित् समाश्वस्य, कौशल्या, दुःख-मोहिता,
उदीक्ष्य, रामं प्रोवाच वाष्प-गद्‌गदया गिरा,— १७

"न प्राप्त-पूर्वं कल्याणं मया पति-परिग्रहात्;
आशंसितं मे सु-चिरं, त्वत्तोऽपि प्राप्नुयामिति । १८

तदद्य वि-फली-भूतं मया, राम, वि-चिन्तितम् —
दुःखानामिव पुत्राहं विहितात्यन्त-भागिनी । १९

सा बह्वन्य-मनोज्ञानि वाचश्च, हृदयच्छिदः,
सहिष्येऽहं, स-पत्नीनाम-वराणां, वरा सती । २०

१३। अशनम्—भोजनम्। १४। तपस्विनी—दीना, अनुकम्पार्हा। निकृत्ता—छिन्ना। १५। आतुरा—कातरा। १६। उपावृत्य—भुवि लुण्ठनं कृत्वा। वड़वा—घोटकी। विह्वला—विवशा। पांशुना—धूलिना। परिगुण्ठिताम्—समावृताम्। १७। समाश्वस्य—स्थिरी भूय। उदीक्ष्य—नेत्रे उन्नमय्य। १८। आशंसितम्—आकाङ्क्षितम्, आशा आसीत् इत्यर्थः। अपि—सम्भवतः। २०। हृदयच्छिदः

तद्-सह्य-दुःखमिदं सोढुं, पुत्रक, नोत्सहे।
अद्यैव मरणं मेऽस्तु—कोऽर्थो जीवितेन मे? २१

नियमाश्चोपवासाश्च ये मया त्वत्-कृते कृताः,
ते मेऽद्य वि-फली-भूता, वनं सं-प्रस्थिते त्वयि। २२

न श्रोतव्यं त्वया, राम, पितुः कामवतो वचः।
इहैव वस—किं तेऽसौ राजा वृद्धः करिष्यति?" २३

तथा तामातुरां दृष्ट्वा कौशल्यां राम-मातरम्,
उवाच लक्ष्मणः श्रीमां स्तत्-काल-सदृशं वचः,— २४

"न रोचते ममाप्येतद्,आर्ये, यद् राघवो वनम्,
त्यक्त्वा राज्यम्,इतो गच्छेत्, स्त्री-वाक्येन प्रचोदितः। २५

विपरीतमति-वृद्धः, स्त्री-जितः, काम-लालसः,
राजा किमिति न ब्रूयात्, कैकेय्या वशमागतः? २६

नापराधं हि पश्यामि, न दोषमणुमप्यहम्
रामस्य, येन राष्ट्रायं राष्ट्रान् निर्वासयते वनम्। २७

यावदेव न जानाति कश्चिदर्थमिमं नरः,
तावदेव मया सार्धमात्म-स्थं कुरु शासनम्। २८

—हृदय विदारिकाः। अ-वराणाम्—कनीयसाम्। वरा—ज्येष्ठा। २१। अर्थः—प्रयोजनम्। २२। त्वत् कृते—तव कृते, त्वदर्थम्। २३। कामवतः—काम-वशं गतस्य। २४। तत्-काल-सदृशम्—तत्-कालोचितम्। २५। प्रचोदितः—प्रेरितः। २६। विपरीतम्—विरुद्धम्, न्याय विरुद्धम्, अनुचितम्। काम लालसः—रति-लोलुपः। किमिति—केन हेतुना, किमर्थम्। २७। अपराधः—पित्रादीन् प्रति च विहितमाचरणम्। दोषः—प्रजा-वधादि-रूपं पातकम्। राष्ट्रम्—राज्यम्, देशः। २८। इमम्—त्वद् निर्वासन रूपम्। अर्थः—विषयः। तावदेव—ततः पूर्वमेव। आत्म-स्थम्—आत्माधीनम्। शासनम्—Government. १८—२१। रामं प्रति लक्ष्मणोक्तिः।

भूत्ये ते मयि पार्श्व-स्थे राज्य-प्रामर्ष्मुपयति,
यौवराज्याभिषेकस्य विघातं कः करिष्यति ? २९

निर्मनुष्यामयोध्यां हि कुर्यां, राम, शितैः शरैः ।
यौवराज्य-विघातं ते यः कुर्वीत नृपाज्ञया, ३०

भरतस्यापि वा पक्षं यो गृह्णीयाद्‌-चेतनः,
तं पापमहमद्यैव प्रेषयामि यम-क्षयम् ।" ३१

इत्येतद् वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य, महात्मनः,
उवाच रामं कौशल्या, दुःख-शोक-परिप्लुता,— ३२

"भ्रातुस्ते वचनं, राम, श्रुतं, भक्तिमतो, हितम् ;
एतदेव, विमृश्याशु, क्रियतां, यदि रोचते । ३३

यथैव राजा पूज्यस्ते, तथाहमपि, पुत्रक ;
ममाप्यतस्ते वचनान् न गन्तव्यमितो वनम् ।" ३४

विलपन्तीं तथा, दीनां कौशल्यां, दुःख-मूर्च्छिताम्,
उवाच रामो, धर्मात्मा, वचनं, धर्म-संहितम्,— ३५

"नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम ;
प्रसादये त्वां शिरसा—करिष्ये वचनं पितुः । ३६

जामदग्न्येन रामेण जनन्याः, किल, धीमता,
शिरश्छिन्नं, परशुना, क्रुद्धस्य पितुराज्ञया ।" ३७

इत्येवमुक्त्वा कौशल्यां, रामो लक्ष्मणमब्रवीत्,—
"जानामि लक्ष्मणाहं ते भक्ति-भावमनुत्तमम् । ३८

२९ । विघातः—आघातः, प्रतिबन्धः । ३० । शितैः—शाणिते, तीक्ष्णैः । ३१ । क्षयः—गृहम् । ३३ । विमृश्य—विचार्य । ३५ । धर्म-संहितम्—धर्म-सङ्गतम् ।

अहो लज्जमहो दुःखं, यत् पापं कर्तुमिच्छसि !
मा भूत् स कालः, सौमित्रे, यदहं शासनं पितुः   ३९

इच्छेयं समतिक्राम्य मुहूर्तमपि जीवितुम् !
साधु ! लक्ष्मण, संशाम्य ! मम चेदिच्छसि प्रियम् ।   ४०

धर्मे स्थितिः परो लाभो, धर्मो धारयते धृतः ।
न च धर्मो धृतो मेऽद्य पितुराराधनादृ ऋते ।"   ४१

इत्युक्त्वा वचनं रामो लक्ष्मणं, लक्ष्मि-वर्धनम्,
उवाच भूयः कौशल्यां, प्राञ्जलिः, शिरसा नतः,—   ४२

"अनुजानीहि मां, देवि ! करिष्ये शासनं पितुः—
गच्छेयं, त्वदनुज्ञातो, निर्व्यलीकेन चेतसा ।"   ४३

इत्युक्त-वचनं रामं बभाषे लक्ष्मणस्तदा,
अ-प्रकम्प्यं, स्थितं धर्मे, पुरन्दरमिवानुजः,—   ४४

"लोक-नाथ, गतिर्या ते सा ममापि भविष्यति—
वने वत्स्याम्यहमपि, शुश्रूषा-निरतस्तव ।   ४५

त्वया त्यक्तामहमपि परित्यक्ष्ये पुरीमिमाम् ;
त्वदृ ऋते न हि वस्तुं मे स्वर्गेऽपि रमते मनः ।"   ४६

सोऽनुनीतो बहु-विधं लक्ष्मणेन, यशस्विना,
वाढमित्यब्रवीद् रामो लक्ष्मणं, भ्रातृ-वत्सलम् ।   ४७

४० । साधु—पर्याप्तम्, अलमति विस्तरेण । संशाम्य—निवृत्तो भव । ४१ । परः, परमः—श्रेष्ठः, प्रधानः । ४३ । निर्व्यलीकेन—दुःख मुक्तेन । ४४ । पुरन्दरः—पुराणि (नगराणि) दारयति (विदारयति) यः सः, इन्द्रः । [पुरन्दरस्य] अनुजः (कनीयान् भ्राता)—उपेन्द्रः, विष्णुः । ४६ । परित्यक्ष्ये—परित्यक्ष्यामि । आत्मनेपदमार्षम् । त्वद् ऋते—त्वां विना । ऋते-योगे पञ्चमी । ४७ । वाढम्—एवमस्तु ।

दशमः सर्गः।

[illegible]।

तथा तु रामं गमने कृत-व्रतं
समीक्ष्य देवी, रुदती भयातुरा,
उवाच भूयो, हृदयेन तप्यता,
सुशोषिता, दुःख-परिप्लुता भृशम्,— १

"यदि धर्मं पुरस्कृत्य, पुत्र, वर्तितुमिच्छसि,
ततो मे वचनं धर्म्यं शृणु, धर्म-भृतां वर! २

आज्ञया परया, राम, शिशुस्त्वं परिपालितः;
तत् समर्थोऽद्य मां दीनां परिरक्षितुमर्हसि। ३

साहं ते पितृतो, राम, धर्मतो गौरवाधिका,—
माननीया विशेषेण, यथा धर्म-विदो विदुः। ४

अतो ममापि ते कार्यं शासनं, गुरु-वत्सल!
अभिषिच्यस्व धर्मेण राज्ये, राजीव-लोचन!" ५

अथानुनेतुं चक्रेऽसौ मातरं, यत्नमास्थितः,
प्रश्रितैर्मधुरैर्वाक्यैर्हेतुमद्भिश्च, राघवः,— ६

"मम चैव भवत्याश्च राजा प्रभवति प्रभुः;
न प्रभुत्वमतस्तेऽस्ति मम, देवि, निवर्तने। ७

१। हृदयेन तप्यता—तप्यमानेन हृदयेन। उपलक्षिता इति शेषः। सन्ताप्यमान-हृदया इत्यर्थः। परस्मैपदमार्षम्। ६। 'अनुनेतुं चक्रेऽसौ मातरम्'—अनुनेतुमिति वैदिक-रीत्या स-कर्मक-क्रिया-धर्मवत्तमु-प्रत्ययान्तादनुनेतु शब्दात् कर्मणि द्वितीया। प्रश्रितैः—विनीतैः। हेतुमद्भिः—युक्ति-युक्तैः।

कुले जातासि, विस्तीर्णे, राज्ञाममित-तेजसाम्,
सद्गुणाख्यात-यशसां कोशलानां, महात्मनाम्। ८
कुल-शील-गुणाचार-धर्मज्ञासि, यत-व्रते!
सा कथं शासनं भर्तुरतिवर्तितुमर्हसि?” ९

इत्युक्ता सा प्रियं पुत्रं वाष्प-पर्याकुलं वचः
उवाचेदं,—“स-पत्नीनां वस्तुं मध्ये न मे क्षमम्। १०
नय मामपि, पुत्र, त्वं वनं, वन्य-मृगाकुलम्,
यदि ते गमने बुद्धिः कृता पितुरपेक्षया।” ११

तां तथा ब्रुवतीं रामः पुनर्वचनमब्रवीत्,—
“जीवत्-पत्याः स्त्रिया भर्ता दैवतं, न पुनः सुतः। १२
अतो नार्हाम्यहं नेतुं त्वामितो नगराद् वनम्।
महात्मा वा दुरात्मा वा, पतिरेव गतिः स्त्रियाः; १३
किं पुनर्नृपतिर्, देवि, महात्मा, दयितश्च, ते?
मत्तोऽधिकतर-पूजां भरतादप्यवाप्स्यसि। १४
यथा तु, मयि निष्क्रान्ते, पुत्र-शोकेन मे पिता
अति-मात्रं न सन्तप्येत्, तथा त्वं कर्तुमर्हसि। १५
न ते राजा किञ्चिदपि वक्तव्यो मदपेक्षया,
प्रतीपमप्रियं वापि, न च कार्यं—प्रसीद मे!” १६

इत्येवमुक्ता रामेण, कौशल्या, धर्म-दर्शिनी,
तथेत्युवाच, दुःखार्ता, रामं, सं-प्रस्थितं वनम्; १७

९। अतिवर्तितुम्—अतिक्रमितुम्, उल्लङ्घयितुम्। ११। मतिः—आशयः।
१५। सन्तप्येत्—सन्तप्येत। परस्मैपदमार्षम्। १६। प्रतीपम्—प्रति-कूलम्।

निश्चितं च तथा रामं विज्ञाय गमनोत्सुकम्,
प्रास्थानिकं स्वस्त्ययनं कर्तुं समुपचक्रमे । १८

सा, निगृह्य ततो वाष्पमुपस्पृश्य जलं शुचि,
चकार देवी रामस्य ततः स्वस्त्ययन-क्रियाम् । १९

सुमनोभिश्च गन्धैश्च मनोज्ञैर्बलिभिस्तथा
देवानभ्यर्च्य विधिवत्, प्रणम्य च, शुभ-व्रता, २०

गन्ध-माल्य-हविः-शेषं रामाय प्रतिपाद्य च,
मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय, परिष्वज्य च पीड़ितम्, २१

रक्षो-घ्नीमोषधीं पाणौ दक्षिणेऽस्य बबन्ध सा,
राम-स्वस्त्ययनार्थं हि मन्त्रमेतं जजाप च,— २२

''यन् मङ्गलं महेन्द्रस्य सर्व-देवैः पुरा कृतम्,
वृत्रं हन्तुं प्रयातस्य, वत्स, तत् तेऽस्तु मङ्गलम् । २३

यन् मङ्गलं सु-पर्णस्य विनताकल्पयत् पुरा,
अमृतार्थं प्रयातस्य, तत् ते भवतु मङ्गलम् । २४

आगमास्ते शिवाः सन्तु, सिध्यन्तु च मनो-रथाः,
सुखेन यातु कालस्ते, स्वस्ति प्राप्नुहि, राघव !'' २५

---

१८ । समुपचक्रमे—आरेभे । [भृति-सर्ग-तायनेषु] उप-पराभ्यां [क्रम आत्मनेपदम्],'—पाणिनिः, १।३।३९ । १९ । निगृह्य—निरुध्य । २० । सुमनोभिः—पुष्पैः । बलिभिः—पूजोपहारैः । २१ । हविः—हवनीयं द्रव्यम् । प्रतिपाद्य—दत्त्वा । परिष्वज्य—आलिङ्ग्य । २२ । रक्षो-घ्नी—राक्षस-हन्त्री । २४ । सु पर्णः—गरुड़ो नाम पक्षी । विनता—दक्ष-प्रजापतेः सा कन्या या कश्यपस्य पत्नी अरुण-गरुड़योर्माता च । 'अमृतार्थं प्रयातस्य'—पुरा किल विनता स-पत्न्या नाम-मातुः कद्रोश्छल पाशेन बद्धा तस्या दास्यं भेजे; गरुड़स्तु मातृ-दास्यं मोचयितुं सर्प-सङ्घ प्रार्थनया अमृताय इन्द्र-पुरं प्रतस्थे, देवान् विजित्य तत् नाग-गण-सकाशमानिनाय च । २५ । आगमः—आगमः । शिवः—शुभ-प्रदः । स्वस्ति—मङ्गलम् ।

एका-दशः सर्गः।

पति-व्रता।

वि-राजयन् राज-सुतो राज-मार्गं, जनैर्वृतम्,
हरन्निव जनौघस्य हृदयानि, जगाम, सः। १

वैदेह्यपि च तत्-काले, तत्-परानन्य-मानसा,
तस्थौ स्व-वेश्म-मध्ये, सा, रामागमन-काङ्क्षिणी। २

प्रविवेशाथ सहसा रामो वेश्मात्मनस्तदा,
भक्तिमद्भिर्जनैः कीर्णं, ह्रिया किञ्चिदवाङ्-मुखः। ३

ईषद्-दीन-मुखः, श्यामो, मनो-दुःख-समन्वितः,
नाति-हृष्ट-मनाः, सीतां ददर्शाथ, प्रविश्य, सः, ४

तत्-परां, वेश्म-मध्य-स्थां, विनयावनतां, स्थिताम्,
विनयाचार-सम्पन्नां, प्राणेभ्योऽपि प्रियां प्रियाम्। ५

सा तु दृष्ट्वैव भर्तारं, प्रत्युद्गम्य प्रणम्य च,
राम-पार्श्वे स्थिता देवी, रामं दीन-मुखं तदा ६

अभि-वीक्ष्य, वरारोहा, वेपमानेदमब्रवीत्,
दृष्टान्तर्गत-दुःखार्तं, किमेतदिति विह्वला,— ७

१। वि-राजयन्—द्योतयन्, वि-दीपयन्। वृतम्—आच्छादितम्। ३। कीर्णम्—आकीर्णम्, समाकीर्णम्, व्याप्तम्। ह्रिया—[सीतायै कथमिदमप्रियं स्व-माता-पितृ-कृतं कथयामि इति] लज्जया। अवाङ्-मुखः—अधो-मुखः। ४। श्यामः—शोचः, दुर्मनः, म्लानः। ५। प्रिया—द्वितीयः प्रिया-शब्दो भार्या-वाचकः। ७। वरारोहा—नितम्बिनी, सु-नितम्बा, उत्तमा इत्यर्थः। वेपमाना—[भर्तुर्दीन-मुखत्वादि-दर्शनात्]

"किन् नु बार्हस्पतो योगो युक्तः पुष्येण, राघव,
प्रोच्यते ब्राह्मणैस्तज्-ज्ञैर्, येन त्वमसि दुर्मनाः ?" ८

एवं ब्रुवाणां तां रामो, जात-शङ्कां, स, मैथिलीम्,
उवाचेदं वचो धीरं, सत्त्व-गाम्भीर्यमाश्रितः,— ९

"मया वर्षाणि वस्तव्यं चतुर्दश वने, प्रिये !
भरतेनाप्ययोध्यायां राज्ञा भाव्यम्, अनिन्दिते ! १०

*सोऽहं त्वामागतो द्रष्टुं, प्रस्थितो विजनं वनम् ;
आपृच्छे ! धैर्यमालम्ब्य मामनुज्ञातुमर्हसि । ११

श्वश्रूं च श्वशुरं चैव, वस त्वं, समुपाश्रिता,
शुश्रूषा-परमा भूत्वा, यावदागमनं मम । १२

मद्-व्यपाश्रय-जं मानमाश्रित्य, वर-वर्णिनि !
भरतस्य समीपेऽहं न ते स्तुत्यः कदाचन । १३

ऐश्वर्य-मद-मत्ता हि न सहन्ते पर-स्तवम् ;
तस्मात् त्वया गुणाः स्तुत्या, भरतस्याग्रतो न, मे । १४

अहं हि पितरं सत्यं चिकीर्षुस्तन्-नियोगतः
वनमद्यैव यास्यामि—कुरु त्वं हृदयं स्थिरम् ! १५

मयि याते, तु, कल्याणि, वनं मुनि-जन-प्रियम्,
व्रतोपवास-रतया भवितव्यं त्वया, प्रिये ! १६

८। बार्हस्पतो-योगः—बृहस्पति-देवताको योगः ; [illegible] इति शेषः। ९। सत्त्व गाम्भीर्यम्—स्वाभाविक धैर्यम्। ११। प्रस्थितः—प्रस्थास्यमानः। आ-शंसायां भविष्यति अतीतार्थ-प्रत्ययः। १३। व्यपाश्रयः—आश्रयः। वर-वर्णिनी—श्रेष्ठाङ्ग-रामा, उत्तमा [illegible]। १५। चिकीर्षुः—कर्तुमिच्छुः।

कल्यमुत्थाय, देवानां कृत्वा पूजाभिवादनम्,
वन्दितव्यो दशरथ:, पिता मे, दैवतं यथा । १७

मातरश्चैव मे सर्वा, यथा-क्रमम-शेषत:,
त्वयार्चनीया: सततं—समा हि मम मातर: । १८

भ्रातरौ चापि मे, सीते, प्राणेभ्योऽपि प्रियावुभौ,
त्वया भरत-शत्रुघ्नौ द्रष्टव्यौ भ्रातृ-पुत्रवत् । १९

न वक्तव्योऽप्रियं, सीते, मत्-प्रीत्या भरतस्त्वया ;
स हि राजा गुरुश्चैव देशस्यास्य, प्रियश्च मे । २०

त्वं च तेनेह भर्तव्या, वनं विप्रोषिते मयि ;
तस्मात् सान्त्वैव लिप्सेथाश्चेल-पिण्ड-भृतिं तत: । २१

मम माता च कौशल्या, वृद्धा, मच्छोक-कर्षिता,
मत्-प्रियार्थं, प्रिये सीते, शुश्रूष्यानन्य-चित्तया ।" २२

इत्य-प्रियमिदं वाक्यं श्रुत्वा, सा प्रिय-भाषिणी,
सासूयमिव भर्तारं सीता वचनमब्रवीत्,— २३

"आर्य-पुत्र ! पिता, माता, भ्रातरो, बान्धवा:, सुता:
प्रेत्य चैवेह चाश्नन्ति स्वं स्वं कर्म-फलं पृथक् । २४

भार्यैका पति-भाग्यानि भुङ्क्ते, पति-परायणा ;—
साहं त्वामनुयास्यामि यत्र यत्र गमिष्यसि । २५

१७। कल्यम्—उषसि, प्रत्यूषे। २१। विप्रोषिते—प्रवासिते। सान्त्वा—प्रिय-वचनेन। लिप्सेथा:—लब्धुमिच्छे:, लब्धुमिच्छ। अनुज्ञायां लिङ्। चेलम्—वस्त्रम्। पिण्ड:—ग्रास:। भृति:—वेतनम्। २२। कर्षिता—कृशी कृता, क्षीणाङ्गी कृता। २४। प्रेत्य—अमुत्र, पर-लोके। अश्नन्ति—भुञ्जते।

अपेऽहं ते प्रसादेन जीवितेन च, राघव,
यथा नेच्छाम्यहं वस्तुं स्वर्गेऽपि, रहिता त्वया। २६

त्वं मे नाथो गुरुश्चैव गतिर्दैवतमेव च ;
गमिष्यामि त्वया सार्धम्—एष मे निश्चयः परः। २७

यदि त्वमुद्यतो गन्तुं दुर्गं कण्टकितं वनम्,
अहं तवाग्रे यास्यामि, मृद्नन्ती कुश-कण्टकम्। २८

सुखं वनेऽपि वत्स्यामि तव पाद-व्यपाश्रयात्,
विहरन्ती त्वया सार्धं, यथेन्द्र-भवने तथा। २९

शुश्रूषमाणा, वत्स्यामि, पादौ ते, नियत-व्रता,
रममाणा त्वया सार्धं, काननेषु सु-गन्धिषु। ३०

शतक्रतु-समः शौर्ये, विष्णोस्तुल्य-पराक्रमः,
त्वं हि लोक-त्रयस्यास्य, समर्थः, प्रतिपालने। ३१

न ममाभिभवे शक्तो महेन्द्रोऽपि त्वदाश्रयात् ;
अतो नार्हसि मां भर्त्ता निवर्तयितुमातुराम्। ३२

त्वया सह भविष्यामि फल-मूल-कृताशना ;
दुर्भरा न भविष्यामि, वने, तेऽहं कथञ्चन। ३३

इच्छामि सरितः शैलान् सरांसि च वनानि च
द्रष्टुं, वल्कल-संवीता, त्वया नाथेन रक्षिता। ३४

हंस-कारण्डवाकीर्णाः पद्मिनीर्विमलोदकाः
अवगाह्याभिरंस्येऽहं, त्वयैव सह, राघव। ३५

३१। शतक्रतुः—शतं क्रतवः (यज्ञाः, अश्वमेध-यज्ञाः) यस्य सः, इन्द्रः।
३३। दुर्भरा—दुर्वहा। ३५। कारण्डवः—जल-कुक्कुटः, गाङ्चिल। पद्मिनीः—

वनोद्देशेषु, रम्येषु, नाना-कुसुम-गन्धिषु,
वस्तुमिच्छामि, मुदिता, त्वयाहं सह, कानने । २६

पित्रा चाप्यनुशिष्टास्मि मात्रा बन्धु-जनेन च,
विना भर्त्रा न वस्तव्यं त्वयेति, रघु-नन्दन । २७

अतः, प्रपन्नस्य याचे त्वां, गमने कृत-निश्चया ;
न मामर्हसि सन्देष्टुमिति-कर्तव्यतां प्रति ।" २८

द्वा-दशः सर्गः ।

कृत-निश्चया ।

तां तथा ब्रुवतीं रामः, प्रियां भार्यामनुव्रताम्,
उवाचेदं, बहून् दोषान् वन-वास उदाहरन्, — १

"वने वसन्ति शार्दूला, आसन्न-जन-घातिनः ;
भेतव्यं च सदा तेभ्यस् ;—तेन दुःखं, प्रिये, वनम् । २

प्र-भिन्न-करटा नागा बहवः सन्ति कानने,
आसाद्य ये विनिघ्नन्ति ;—तेन दुःखं वनं, प्रिये । ३

अत्युष्णमति-शीतं च तृड्-बुभुक्षे तथैव च,
भयानि च बहून्यत्र ;—तेन दुःखं, प्रिये, वनम् । ४

पुष्करिणीः, पद्म गुच्छ-समाकीर्णाः सरसीः । अभिरंस्ये—विहरिष्यामि । २६ । वनोद्देशेषु—वन-प्रदेशेषु । मुदिता—प्रीता, सन्तुष्टा । २८ । सन्देष्टुम्—आदेष्टुम् । इति-कर्तव्यतां प्रति—किं [मया] कर्तव्यं किमकर्तव्यमिति विषये ।

२ । शार्दूलः—व्याघ्रः, a tiger. आसन्नः—निकट-स्थः । ३ । प्रभिन्न-करटाः—प्रस्फुटित-गण्डाः, मत्ताः । नागाः—हस्तिनः । आसाद्य—समीपमागत्य । ४ । तृट् (तृष्)—तृष्णा । बुभुक्षा—भोक्तुमिच्छा, क्षुधा । भयानि—भय-कारणानि ।

सर्पाः सरीसृपाश्चान्ये वृश्चिकाश्च, महा-विषाः,
चरन्ति गहनेऽरण्ये ;—तेन दुःखं, प्रिये, वनम् । ५
गिरि-कन्दर-जातानां महारण्य-निवासिनाम्,
उद्वेजनीयाः, सिंहानां श्रूयन्ते निनदा वने ; ६
नदी-कुटिल-गा नागा, मही-विवर-शायिनः,
दृश्यन्ते वन-मार्गेषु, दृष्टि-श्वास-महा-विषाः ; ७
अ-गाधाः पङ्कवत्यश्च महा-नक्र-समाकुलाः
सरितस्तरणीयाश्च, दूर-पारा, दुरासदाः ; ८
कुश-कण्टकवन्तश्च लता-गुल्म-तृणावृताः
दुर्गमाः सन्ति पन्थानः ;—सीते, दुःखमतो वनम् । ९
सन्त्यटव्यश्च, वैदेहि, दुर्गमा, बहु-योजनाः,
पुण्योदक-फलैर्हीना, घोर-सत्त्व-समाकुलाः ; १०
गिरि-कन्दर-दुर्गाणि पल्वलोदकवन्ति च
तथानूपानि, वैदेहि, सत्त्व-गम्यानि कानने ; ११
सुप्यते पर्ण-शय्यासु तृण-शय्यासु, चाबले,
स्वयं-कृतासु, दुःखासु, भूतले, निर्जने वने । १२

---

५ । गहनम्—निबिडम्, दुष्प्रवेशम्, दुर्गमम् । ६ । उद्वेजनीयाः—भयावहाः । ७ । नदी-कुटिल-गा—नदीवत् कुटिल-गतयः । नागाः—सर्पाः । ८ । नक्रः—कुम्भीरः, a crocodile. पारम्—नद्याः पर-तीरम् । दुरासदाः—दुरधिगम्याः, दुर्गमाः, दुस्तराः इत्यर्थः । १० । अटवी—वनम् । घोरः—भयङ्करः । सत्त्वम्—प्राणी । ११ । गिरि-कन्दर-दुर्गाणि—पर्वत-गुहाभिर्दुर्गमाणि । पल्वलः—क्षुद्रो जलाशयः । उदकम्—जलम् । अनूपानि—जल-प्रायाणि, marshy. अगम्यानि—स्थानानीति शेषः । १२ । सुप्यते (स्वप् शयने + भावे ते)—वन-वासिभिः इति शेषः ।

आहारश्चैव कर्तव्यो बदरामलकेङ्गुदैः,
तथा श्यामाक-नीवार-कषाय-कटु-तिक्तकैः। १३

वन्येष्व-लभ्यमाने च वन्ये मूल-फले, पुनः,
बहून्यहानि वस्तव्यं निराहारैर्वनाश्रयैः। १४

वल्कलाजिन-वस्त्राणि वसितव्यानि कानने;
वनेषु भवितव्यं च दीर्घ-श्मश्रु-जटा-धरैः। १५

वातातप-विवर्णाङ्गीं, तपो-नियम-कर्षिताम्,
दुःखितां त्वां वने दृष्ट्वा भविष्याम्यति-दुःखितः। १६

न त्वामिच्छामि, वैदेहि, मत्-कृते, शोक-कर्षिताम्
द्रष्टुं प्रति-भयेऽरण्ये—भृशं हि दयितासि मे!" १७

अथ तद् वचनं श्रुत्वा, सीता, रामस्य, दुःखिता,
प्रसक्ताश्रु-मुखी, वाक्यमिदं भर्तारमब्रवीत्,— १८

"वन-वासे त्वया दोषा य एते परिकीर्तिताः,
तान्, आर्य-पुत्र, मन्येऽहं, त्वद्-भक्त्या, सर्वशो गुणान्। १९

त्वद्-बाहु-गुप्तां न च माम् अपि देवः शतक्रतुः
शक्तोऽभिभवितुं लोके—कुतोऽन्ये वन-चारिणः? २०

अनुरक्तां प्रियां भार्यां, सु-व्रतां, पति-देवताम्
न त्वं रोचयसे नेतुं मामितः केन हेतुना? २१

१४। वन्यम्—वने जातम्। १५। वसितव्यानि—परिधेयानि। १७। प्रतिभये—भयङ्करे। १८। प्रसक्तानि—आसक्तानि, संलग्नानि। २०। अभिभवितुम्—पराजेतुम्। २१। रोचयसे—इच्छसि।

यदि मां, निश्चितां गन्तुं, न नेतुं त्वमिहेच्छसि,
सत्येनालभ्य पादौ ते, न भविष्याम्य-संशयम्।" २२

इत्युक्त्वा प्ररुरोदार्ता मैथिली, शोक-कर्षिता,
दुःखामर्ष-परीताङ्गी, सु-स्वरं, कल-भाषिणी। २३

एवमार्तामपि तु तां, विलपन्तीं सु-दुःखिताम्,
रामः प्रियामनुगतां नेतुं नैवाध्यवस्यति ; २४

दध्यौ चाधो-मुखः किञ्चिद्, रुदन्तीमभिवीक्ष्य ताम्,
वन-वास-कृतान् दोषान् बहुधाभिविचारयन्। २५

रामस्य तां मतिं बुद्ध्वा, मैथिली, कृत-निश्चया,
रोषात् प्रस्फुरमाणौष्ठी, पुनर्वचनमब्रवीत्, २६

उन्मत्तेवाभिपश्यन्ती भर्तारं, विपुलेक्षणा,
रोष-वेगात् क्षिपन्तीव, प्रणयादभिमानिनी,— २७

"कृतार्थं मन्यते मूढः स आत्मानं पिता मम,
रामं जामातरं लब्ध्वा, क्लीवं पुरुष-मानिनम्! २८

अनृतं बत लोकोऽयम-ज्ञानादनुपश्यति,
तेजस्वी राम एवैकः सूर्यवद् द्युतिमानिति। २९

किं वा पश्यन् विषण्णस्त्वं, कुतो वा भयमस्ति ते,
त्यक्तुमिच्छसि मां येन प्रियां नान्य-परायणाम्? ३०

२२। सत्यं न—अपि इति शेषः। आलभ्य—स्पृष्ट्वा। न भविष्यामि—मरिष्यामि। २३। दुःखामर्ष-परीताङ्गी—दुःखामर्षाभ्यां (दुःख-क्रोधाभ्याम्) परीतानि (परिव्याप्तानि, अभिभूतानि) अङ्गानि यस्याः सा। कलम्—मधुरम्। २४। आर्तां—पीड़िता। अध्यवस्यति—उत्सहते, यतते। २५। दध्यौ—चिन्तयामास। रुदन्तीम्—रुदतीम्। नुमागम आर्षः। २७। विपुलेक्षणा—विशाल नेत्रा। क्षिपन्ती—सोपहास-वचनं ब्रुवती।

कौमारीं दयितां भार्यां स्वयमाहृत्य मां, कथम्
शैलूष इव योषां त्वमन्यस्मै दातुमर्हसि ? ३१

न तेऽहमपराध्यामि कर्मणा मनसापि वा,
वाचा वा ; तत् कथं मां त्वं त्यक्तुमिच्छस्य-कारणम् ? ३२

यदि वाप्यपराधस्ते मया कश्चित् पुरा कृतः,
अज्ञानाद् यदि वा ज्ञानात्, क्षमये त्वां—प्रसीद मे ! ३३

अथ नेच्छसि चेन् नेतुं मामेवं त्वदनुव्रताम्,
विषमद्यैव पास्यामि, पश्यतस्ते, नृपात्मज !" ३४

इति शोकाग्नि-सन्तप्ता, विलप्य, जनकात्मजा
पादयोर्निपपातार्ता भर्तुर्,गमन-लालसा । ३५

उक्त्वा वाक्यं स-करुणं, त्रायस्व नय मामिति,
करोद, पतिता तत्र, सु-स्वरं मृदु-भाषिणी । ३६

स, तस्याः करुणैर्वाक्यैर्हृदि क्षत इवातुरः,
मुमोच वाष्पं शोकोष्णं, धैर्य-संरुद्ध-मानसः । ३७

तस्य शोकाम्बु-पूर्णाभ्यां प्रिय-कारुण्य-जं तदा
सुस्राव वारि नेत्राभ्यां, पुष्कराभ्यामिवोदकम् । ३८

स, तामुत्थाप्य शनकैः, पादयोः पतितां प्रियाम्,
उवाच वचनं रामो मधुरं, परि-सान्त्वयन्,— ३९

---

२९ । अनृतम्—मिथ्या । ३१ । कौमारीम् – अ-परिणीत पूर्वाम् । शैलूषः—नटः, नर्तकः, जाया-जीवः इत्यर्थः । योषा—नारी । ३४ । पश्यतस्ते— पश्यन्तं त्वामनादृत्य अनादरे षष्ठी । ३७ । आतुरः—व्याधितः, अ-पटुः, diseased. ३८ । प्रिय-कारुण्यम्—प्रियश्चासौ करुणश्चेति प्रिय करुणः, तस्य भावः ; प्रेम करुणा च । सुस्राव—प्रोवाह, प्रवहति स्म । पुष्कराभ्याम्—कमलाभ्याम्, पद्माभ्याम् । ३९ । शनकैः—शनैः, अ-द्रुतम्,

"न कामये स्वर्गमपि त्वद् ऋतेऽहं, वरानने ;
न च मेऽस्ति भयं किञ्चिदपि साक्षात् स्वयम्भुवः। ४०
एहि, गच्छ मया सार्धं, यथा ते रुचितं, प्रिये ;
इच्छामि हि प्रियं कर्तुं नित्यं तेऽहम-निन्दिते ! ४१
ब्राह्मणेभ्यश्च साधुभ्यो वासांस्याभरणानि च,
संश्रितेभ्यस्तथान्येभ्यो देहि दानानि, जानकि ;
गुरूं श्चामन्त्र्य, सु-भगे, ततो व्रज, मया सह।" ४२

त्रयो-दशः सर्गः।

आत्म-निवेदनम्।

इत्युक्त्वा राघवः सीतां, समाहूयाथ लक्ष्मणम्,
उवाचेदं वचः, श्रीमान्, अवेक्ष्य, प्रश्रयागतम्,— १
"प्रियः प्राण-समो भ्राता सहायश्च सखा च मे ;
तस्मात् प्रणयतोऽहं त्वां यद् ब्रवीमि, कुरुष्व तत्। २
वनं त्वया न गन्तव्यं, मया सह, कथञ्चन ;
इहैव हि महान् भारो वोढव्यो भवतानघ।" ३
इति राम-वचः श्रुत्वा, लक्ष्मणो, दीन-मानसः,
वाष्प-पर्याकुल-मुखः, सोढुं शोकमशक्नुवन्, ४

slowly. परि-सान्त्वयन्—आश्वासयन्। ४०। स्वयम्भुः—रुद्रः। ४२। संश्रितेभ्यः—आश्रितेभ्यः।

१। अवेक्ष्य—[किं वक्तव्यमिति] आलोच्य (विचार्य)। प्रश्रयागतम्—विनयावनतम्। ३। वोढव्यः—वहनीयः। ४। सोढुम्—सहितुम्।

प्रपद्य चरणौ भ्रातुः, परिष्वज्य च पीडितम्,
सीतायाश्च, महा-प्राज्ञस्ततो राघवमब्रवीत्,— ५
"अनुज्ञातोऽस्मि भवता पूर्वमेव वनं प्रति
सह गन्तुमितः ; कस्मात् निवर्तयसि मां पुनः ? ६
न निवर्तयितव्योऽहं, जीवन्तं मां यदीच्छसि ;
शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि—प्रसीदार्य ! नयस्व माम् ।" ७

तमब्रवीत् ततो रामः स्थितं लक्ष्मणमग्रतः,
प्रह्वं नतेन शिरसा, वेपमानं, कृताञ्जलिम्,— ८
"गते त्वयि मया सार्धमितो, लक्ष्मण, काननम्,
को भरिष्यति कौशल्यां सुमित्रां च, यशस्विनीम् ? ९
अभिवर्षति कामैर्यौ मातरौ नौ नराधिपः,
स काम-वश-गो व्यक्तं न द्रक्ष्यति, यथा पुरा । १०
राज्यैश्वर्य-मदान्धा हि कदाचिदपि कैकेयी
अ-साधु प्रतिपद्येत स-पत्नीनाम-चेतना । ११
ते मातराविह-स्थेन समाश्वास्ये विशेषतः,
प्रतिपाल्ये च, सौमित्रे, यावदागमनं मम । १२
यथैवाहं तथैव त्वं तयोरिह भविष्यसि—
बन्धुराप्यायनं चैव, दुःखेभ्यश्चैव रक्षिता ।" १३

७। शरणं प्रपन्नः—शरणं गतः। १०। अभिवर्षति—[मेघो वारिणा पृथिवीमिव]। कामैः—[इष्टान्न-पान-वस्त्रादिभिः] काम्य वस्तुभिः। काम-वश-गः—अनु-रागेण कैकेयीमनुगामी। व्यक्तम्—स्पष्टम्। ११। प्रतिपद्येत—कुर्यात्। सम्भावने लिङ्। १३। आप्यायनम्—तृप्तिः, तृप्ति-दाता इत्यर्थः। कर्त्तरि क्रिया-वाचक विशेष्य-पद-प्रयोगः।

इति राम-वचः श्रुत्वा लक्ष्मणः, श्रीमतां वरः,
कृताञ्जलिरिदं भूयो रामं वचनमब्रवीत्,— १४

"मद्-विधानां सहस्राणि कौशल्या बिभृयाद्, विभो,
यस्याः सहस्रं ग्रामाणां निसृष्टमुपजीवनम् । १५

त्वदपेक्षश्च भरतः पूजयिष्यत्य-संशयम्
कौशल्यां च सुमित्रां च, परम-यत्नमास्थितः । १६

नय मामनपेक्षस्त्वं, वन-वास-कृतोद्यमम् ;
शिष्यः प्रेष्यः सहायश्च भविष्यामि वने तव । १७

खनित्र-पिटके बिभ्रत्, खड्ग-बाण-धनुर्धरः,
अग्रतस्ते गमिष्यामि, पन्थानं परिशोधयन् । १८

वन्यानि चाहरिष्यामि पुष्प-मूल-फलानि च,
शय्योपकरणार्थं च द्रुम-पर्ण-तृणानि ते । १९

त्वमार्य, सह वैदेह्या, वन-वासेऽपि रंस्यसे ;
रक्षतस्त्वां गमिष्यन्ति रात्रयो मम जाग्रतः । २०

आर्य ! शिष्योऽस्मि, दासोऽस्मि, भक्तोऽस्म्यनुगतस्तथा
तवाहं सर्वथा ; साधो, प्रसीद ! नय मामपि ।" २१

वाक्येनानेन तु प्रीतो रामो लक्ष्मणमब्रवीत्,—
"आगच्छ, व्रज, सौमित्रे, आपृच्छस्व सुहृज्जनम् । २२

---

१५ । निसृष्टम्—दत्तम् । उपजीवनम्—उपजीविका । १६ । त्वदपेक्षः—तव अभिप्रायं स्मरन् । १७ । अनपेक्षः—निरपेक्षः । १८ । पिटकम्, पिटकः, पिटका —पेटकः, a basket. बिभ्रत्—वहन् । १९ । द्रुमः—वृक्षः । २० । रंस्यसे—सुखी भविष्यसि । 'रक्षतस्त्वां···मम जाग्रतः'—त्वां रक्षन्तं जाग्रतं माम् अनादृत्य । अनादरे षष्ठी ।

ये च रात्रौ ददौ दिव्ये महात्मा वरुणः स्वयम्
धनुषी, ते गृहाण त्वम-क्षयानिषु-धीं च ताम् । २३

अ-भेद्ये च तनु-त्राणे गृहाण लघुनी शुभे,
खड्गौ च विमलाकाश-वर्चसौ, विमल-त्सरू । २४

यच्चाचार्य-गृहे दिव्यं धनुस्तिष्ठति मेऽर्चितम्,
तदानयस्व, गत्वा, त्वं त्वरावानिह, लक्ष्मण ।" २५

इत्युक्तो लक्ष्मणः शीघ्रं, समापृच्छ्य सुहृज्जनम्,
आचार्य-कुलमागम्य, ते जग्राहायुधोत्तमे । २६

ते समादाय धनुषी, स-खड्गेषु-निबन्धने,
दर्शयामास रामाय, निबबन्ध च यत्नवान् । २७

तमुवाचागतं रामो लक्ष्मणं प्रिय-दर्शनम्,—
"काले त्वमागतः शीघ्रं काङ्क्षिते मम, लक्ष्मण । २८

दातुमिच्छामि विप्रेभ्यो धन-रत्नार्थ-सञ्चयम् ।
बहु-भृत्यानल्प-धनां स्तस्मादानय तान् द्विजान् । २९

ये चास्मत्-सुहृदो भक्ता निवसन्तीह, लक्ष्मण,
तेषां चापि प्रदास्यामि सर्वेषामुपजीवनम् ।" ३०

२३ । इषुधिः—तूणः, शराधारः । २४ । तनु-त्राणम्—वर्म । वर्चः—रूपम् । त्सरुः—खड्गादि-मुष्टिः, a hilt, a handle. २७ । इषु-निबन्धनम्—तूणः । निबबन्ध—बबन्ध । २९ । सञ्चयः—समूहः । बहु भृत्याः—बहु पोष्याः ।

चतुर्दशः सर्गः ।

चीर-परिधानम् ।

दत्त्वा तु, सह वैदेह्या, ब्राह्मणेभ्यो धनानि, सः
जगाम पितरं द्रष्टुं, सीतया सह, राघवः । १

अथ चीराणि कैकेयी स्वयमाहृत्य, राघवम्
उवाच, परिधत्स्वेति, निर्लज्जा, जन-संसदि । २

प्रतिगृह्य च ते चीरे कैकेय्या हस्ततस्ततः,
विहाय वाससी सूक्ष्मे, रामः परिदधे स्वयम् । ३

अन्वेवं लक्ष्मणश्चापि, विहाय वसने शुभे,
चीरे परिदधे, वीरस्तथैव, पितुरग्रतः । ४

अथात्म-परिधानाय, पीत-कौशेय-वासिनी,
दृष्ट्वा समुद्यते चीरे कैकेय्या, जनकात्मजा, ५

लज्जमाना, स्थिता पार्श्वे रामस्य, शुभ-दर्शना,
जग्राह, श्रुमुद्विग्ना, मृगी दृष्ट्वेव वागुराम् । ६

परिगृह्य च ते चीरे, सीता, साश्राविलेक्षणा,
गन्धर्व-राज-प्रतिमं भर्तारमिदमब्रवीत्,— ७

"आर्य-पुत्र, कथं चीरमहं बध्नामि, शंस मे",—
इत्युक्त्वा चीरमेकं सा स्वस्मिन् स्कन्धे समासृजत् । ८

२ । जन संसदि—जनता-मध्ये । ४ । अनु—पश्चात्, ततः । ५ । कौशेयम्, कौषेयम्—कृमि कोषोत्थं [वस्त्रादि], silk [cloth], रेशमी [कापड़]। ६ । वागुरा —जालम् । ७। साश्राविलेक्षणा—अस्रैः (अश्रु-पूर्णे) अत एव आविले (कलुषिते) ईक्षणे (नेत्रे) यस्याः सा, अश्रु-पूर्ण-नेत्रा । ८। शंस—कथय । समासृजत्—बबन्ध ।

तां चीर-वसनां दृष्ट्वा, भर्तृ-नाथाम-नाथवत्,
प्र-चुक्रुशुः स्त्रियः सर्वा, धिग् धिगित्येव चाब्रुवन् । ९

तं धिक्-शब्दं नृपः श्रुत्वा, स्त्रीभिः समुदाहृतम्,
चिच्छेद जीवित-श्रद्धां सुख-श्रद्धां च, दुःखितः । १०

"यत्र, पुत्र, मया काले लालनीयोऽसि सर्वथा,
दुःखे महति तत्र त्वां योजयामि—धिगस्तु माम् !"—
इत्युक्त्वा निपपातोर्व्यां राजा, मूर्च्छां जगाम च । ११

संज्ञां च प्रतिलभ्याथ मुहूर्तात्, स मही-पतिः,
अश्रु-पूर्णेक्षणो, वाक्यं सुमन्त्रमिदमब्रवीत्,— १२

"युक्त्वा रथं मदीयं, त्वं शीघ्रमानय, वाजिभिः ;
तेन प्रापय मे पुत्रं वनं, मुनि-जन-प्रियम् ।" १३

इति राज्ञा समाज्ञप्तः, सुमन्त्रस्त्वरयान्वितः
आजगाम, रथं राज्ञो युक्त्वा परम-वाजिभिः । १४

उपनीय च तं युक्तं रथं रत्न-विभूषितम्,
राज्ञे निवेदयामास,—रथोऽयं युक्त इत्युत । १५

कोषाध्यक्षमथाहूय स्वममात्यं, नराधिपः
उवाचेदं वचो, धर्म्यं, शोक-व्याकुलिताक्षरम्,— १६

"वासांसि त्वं महार्हाणि,भूषणानि वराणि च,
वर्षाण्येतानि संख्याय, वैदेह्यै प्रतिपादय ।" १७

९ । प्रचुक्रुशुः—रुरुदुः । १० । श्रद्धा—स्पृहा । ११ । लालनीयः—प्रयत्नैः पालनीयः । उर्वी (अति विस्तीर्णा)—पृथिवी । १२ । ईक्षणे—चक्षुः । १७ । वराणि—श्रेष्ठानि । प्रतिपादय—देहि ।

इति राज्ञा समादिष्टो, गत्वा कोष-गृहं तु, सः
प्रायच्छत्, क्षौममादाय, वैदेह्यै सर्वमेव तत् । १८

ततो नि-वासयामास तानि वासांसि मैथिली,
भूषयामास चात्मानं भूषणैस्तैर्वरानना । १९

ततो वि-राजयामास सा तद् वेश्म, वि-भूषिता,
वि-मलेव प्रभा सौरी वि-भ्रष्ट-तिमिरं नभः । २०

तां भूषितां परिष्वज्य श्वश्रूर्वचनमब्रवीत्,
स्नेहान् मूर्धन्युपाघ्राय, सीतां, दुःखितरं यथा,— २१

"सत्-कृता लालिताश्चैव, वैदेहि, प्राकृताः स्त्रियः
दरिद्रमवमन्यन्ते भर्तारं ; न तु सत्-स्त्रियः । २२

तत् त्वया नावमन्तव्यो भर्ता, पुत्रि, धन-च्युतः ।
दैवतं हि पतिः स्त्रीणां, स-धनो निर्धनोऽपि वा ।" २३

इति श्वश्र्वा समादिष्टा, सीता, भर्तृ-परायणा,
कृताञ्जलिः, स्थिता, प्रह्वा, कौशल्यामिदमब्रवीत्,—२४

"आर्ये, करिष्येऽभ्यधिकं शासनं ते, यथात्थ माम् ;
अभिज्ञाऽस्मि सत्-स्त्रीणां धर्माचारस्य सर्वशः । २५

पृथग्-जन-समाम्, आर्ये, न मां त्वं कर्तुमर्हसि ;
धर्माद् विचलितुं नालमहं, सूर्यादिव प्रभा । २६

१९ । निवासयामास—परिदधे । २० । प्रभा सौरी—सूर्य किरणः । विभ्रष्ट तिमिरम्—तमो-निर्मुक्तम् । नभः—आकाशम्, गगनम् । २२ । सत्कृताः—समादृताः । २५ । अभ्यधिकम्—अत्यधिकम् । अभिज्ञा—अभिज्ञानम्, ज्ञापकं चिह्नम् । सर्वशः—सर्वत्र । २६ । पृथग् जनः—नीच जनः । अलम्—समर्था, शक्ता ।

नातन्त्री वाद्यते वीणा, नाचक्रो वर्तते रथः ;
नापतिः सुखमाप्नोति नारी, यद्यपि सु-प्रजा । २७

मितं ददाति हि पिता, मितं माता, मितं सुतः ;
अमितस्य हि दातैकः सुखस्यार्ये पतिः स्त्रियाः । २८

साहं सुखानां सर्वेषां दातारं—दैवतं—पतिम्
कथमार्येऽवमन्येऽहं, यथान्याः प्राकृताः स्त्रियः । २९

'भर्तुः प्रिय-निमित्तं हि त्यजेयम् अपि जीवितम्'—
पाणि-प्रदान-समयात् प्रभृत्येवं व्रतं मम ।" ३०

इति सीता-वचः श्रुत्वा, धर्म्यं, हृदय-नन्दनम्,
शुद्ध-सत्त्वा मुमोचाश्रु कौशल्या, दुःख-हर्ष-जम् । ३१

परिष्वज्य च कौशल्या तां वधूं जनकात्मजाम्,
उवाच, परम-प्रीता, गद्गद-ग्रथिताक्षरम्,— ३२

"जनकस्य नरेन्द्रस्य मैथिलस्य महात्मनः
यशसश्च गुणानां च सदृशी त्वं—वि-भूषणम् । ३३

निर्वृताहं भविष्यामि त्वया सह वने गते
रामे राजीव-ताम्राक्षे साकेतं पुनरागते ।" ३४

एवं सन्दिश्य सीतां तु, प्रशस्य च यशस्विनीम्,
मूर्ध्न्युपाघ्राय स-स्नेहं कौशल्या राममब्रवीत्,— ३५

२७। वीणा—वादन समर्था इति शेषः। रथः—गमन समर्थः इति शेषः। २८। मितम्—परिमितम्, स्वल्पम् [ऐहिकं सुखम्]। अ-मितस्य—अ-परिमितस्य, ऐहिकस्य आमुष्मिकस्य च सकलस्य। ३०। त्यजेयम्—त्यक्ष्यामि। अध्यवसाये लिङ्। ३१। शुद्ध-सत्त्वा—निर्मल हृदया। ३४। निर्वृता—सुखिता। साकेतम्—अयोध्या नाम नगरी। ३५। सन्दिश्य—आदिश्य।

"नित्यं, राघव, सीताया भवितव्यं समीपतः,
लक्ष्मणस्य च वीरस्य, त्वयि भक्तस्य, मान-द।" ३६

रामः स, धर्म्यं, धर्म-ज्ञो, मातरं वाक्यमब्रवीत्,—
"अम्ब, सीतां समाश्रित्य त्वं हि मामनुशास्सि किम्? ३७
लक्ष्मणो दक्षिणो बाहुश्छायेव मम मैथिली—
न हि हातुं मया शक्या, कीर्तिरात्मवता यथा। ३८
गृहीत-शर-चापस्य कुतोऽस्ति हि भयं मम—
अपि त्रयाणां लोकानामीश्वराद् वा शतक्रतोः? ३९
स्वस्तिमन्तम-रोगं मां, पुनरभ्यागतं वनात्,
स्वैरेव सु-कृतैर्, देवि, ध्रुवं द्रक्ष्यसि—मा शुचः!" ४०

एतावदभिनीतार्थमुक्त्वा स जननीं वचः,
ददर्शोत्पत्य मातॄणां सार्ध-सप्त शतानि सः। ४१
समुपेत्य च, मातॄस्ताः कृताञ्जलिरिदं वचः
उवाच रामो, धर्मात्मा, प्रश्रयावनतस्तदा,— ४२
"अज्ञानाद् वा प्रमादाद् वा मया वो यदि किञ्चन
अपराद्धं, तदद्याहं सर्वशः क्षमयामि वः।" ४३
अथ जज्ञे महा-स्वनस् तासां नृपति-योषिताम्,
क्रौञ्चीनामिव, सं-क्रन्द, एवं ब्रुवति राघवे। ४४

कृताञ्जलिस्ततो रामो लक्ष्मणश्च, महा-यशाः,
वैदेही चैव राजानं परिजग्मुः प्रदक्षिणम्। ४५

३७। समाश्रित्य—उद्दिश्य। ३८। आत्मवान्—मनस्वी। ४०। स्वस्तिमन्तम्—सुखान्वितम्। ४१। अभिनीतार्थम्—निर्णीतार्थम्। उत्पत्य—उद्गम्य। सार्ध-सप्त शतानि—अर्ध-सप्त-शतानीति गौरेसियो: पठति। ४२। समुपेत्य—समीपं गत्वा। प्रश्रयः

कृत्वा प्रदक्षिणं चैव, प्रणिपत्यानुमान्य च,
रामः शोक-परिप्लुतां जननीमभ्यवादयत्। ४६

ततो मातुः सुमित्रायाः पादौ जग्राह लक्ष्मणः।
तं, वन्दमानं चरणौ, सुमित्रा पुत्रमब्रवीत्, ४७

स्नेहान् मूर्धन्युपाघ्राय, परिरभ्य च पीड़ितम्,—
"शुश्रूष भ्रातरं ज्येष्ठं, रामं, लोक-हिते रतम्। ४८

प्राणिभ्योऽपि प्रियतरो ज्येष्ठो भ्राता गुरुश्च, ते।
तस्मादस्य, प्रयत्नैस्त्वं शरीरं प्रतिपालय। ४९

एष, पुत्र, सतां धर्मो यत् त्वमिच्छसि सेवितुम्;—
उचितं वः कुले, वत्स, ज्येष्ठ-भ्रात्रनुपालनम्। ५०

रामं दशरथं विद्धि, मां विद्धि जनकात्मजाम्,
अयोध्यामटवीं विद्धि;—गच्छ, पुत्र, यथा-सुखम्।" ५१

पञ्च-दशः सर्गः।

वन-प्रस्थानम्।

ततः सुमन्त्रः काकुत्स्थं प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्,
विनीतवदुपागम्य, मातलिर्वासवं यथा,— १

—विनयः। ४१। अपराद्धम्—अपराधः कृतः।४६। प्रणिपत्य—[राजानं] प्रणम्य। [राजानम्] अनुमान्य—[वन गमने] राज्ञः अनुमतिं गृहीत्वा। शोक-परिप्लुताम्—शोक-प्रपीड़िताम्, शोकाभिभूताम्। अभ्यवादयत्—अभ्यवादयत, अवन्दे। परस्मैपदमार्षम्। ४८। परिरभ्य—आलिङ्ग्य। शुश्रूष—शुश्रूषस्व। परस्मैपदमार्षम्। ५०। एषः—विधेय-प्राधान्यात् पुंस्त्वम्। सेवितुम्—राममिति शेषः।
अनुवर्तनम्, अनुसरणम्।

"राज-पुत्र, नमस्तेऽस्तु ! युक्तोऽयं ते महा-रथः।
अनेन त्वां नयिष्यामि, यत्र ते गन्तुमीप्सितम्।" २

सुमन्त्र-वचनं श्रुत्वा, ततो, रामः, स-लक्ष्मणः,
सीतया चापि सहित, आरुरोह रथोत्तमम्। ३

तस्मिन् प्रयाते सहसा वन-वासाय राघवे,
हा राम इति वि-क्रुष्टं जनौघेन समन्ततः। ४

आर्त-नारी-नर-गणं तत् सम्भ्रान्त-जनाकुलम्
पुरमासीदतीवार्तं, राम-प्रव्राजने, तदा। ५

स-वृद्ध-बाला हि पुरी, शोक-सन्ताप-विह्वला,
राममेवाभिदुद्राव, घर्मार्ता सलिलं यथा। ६

तदोचुरनुगच्छन्तो, बाहूनुद्धृत्य, दुःखिताः,
संयच्छ वाजिनं, सूत, शनैर्याहीति वादिनः,— ७

"रामस्य द्रष्टुमिच्छामो मुख-चन्द्रं महात्मनः,—
मनांसि नो हरत्येष, सर्वेषां, नर-चन्द्रमाः। ८

आयसं हृदयं नूनं राम-मातुः, सु-संहतम्,
यन् न दीर्णं, प्रिये पुत्रे वन-वासाय निर्गते। ९

एकैव कृत-पुण्येयं वैदेही, तनु-मध्यमा,
यानुगच्छति गच्छन्तं, छायेवानुगता, पतिम्। १०

२। ईप्सितम्—इच्छा। ४। वि-क्रुष्टम्—उच्चैः कथितम्। ५। सम्भ्रान्त-जनाकुलम्—व्याकुल-जन-सम्बाधितम्। पुरम्—नगरम्। ६। अभिदुद्राव—उद्दिश्य दधाव। ७। संयच्छ—बधान, निरुन्धि, निवर्तय। शनैः—अ-द्रुतम्, slowly. ९। आयसम्—लौह-निर्मितम्। सु-संहतम्—अति-दृढम्। दीर्णम्—वि-दीर्णम्। १०। तनुः—कृशः। मध्यमः—देह-मध्य-भागः, (কোমর, the waist.

त्वं च, लक्ष्मण, सिद्धार्थः कृत-पुण्यश्च, यः प्रियम्
भक्त्यानुगच्छसि ज्येष्ठं भ्रातरं, धर्म-वत्सलम् । ११

एषा ते महती सिद्धिरेष चाभ्युदयो महान्,
एष स्वर्गस्य पन्थास्ते, यद् राममनुगच्छसि ।" १२

एवं ब्रुवन्तस्ते पौरा, वाष्प-वेगमुपागतम्
यदा न शेकुः सं-सोढुं, दुःखार्ता रुरुदुस्तदा । १३

अथ राजा, वृतः स्त्रीभिर्, विक्लवो, दीन-मानसः,
निर्जगाम, प्रियं पुत्रं द्रष्टुमिच्छुः, स्वयं, गृहात् । १४

क्रन्दन्तीनां पुर-स्त्रीणां शुश्रुवे तत्र नि-स्वनः,
करेणूनामिवाक्रन्दो बद्धे यूथ-पतौ वने । १५

स च राजा दशरथो, गत-श्रीर्, न बभौ तदा,
वि-रश्मिः पर्वणीवेन्दुर्, ग्रहेणोपहत-द्युतिः । १६

समवेक्ष्य ततो रामः पितरं शोक-कर्शितम्,
पदातिमनुगच्छन्तं, दारैः परिवृतं, तदा, १७

देव्या कौशल्यया सार्धं विलपन्तं पदे पदे,
धर्म-पाश-सितो, दीनो, नाशक्नोदभिवीक्षितुम् । १८

पदाती ताव-दुःखार्हौ दृष्ट्वा दुःख-समन्वितौ,
पितरौ, चोदयामास रामो याहीति सारथिम् । १९

११ । सिद्धार्थः—कृतार्थः । १२ । अभ्युदयः—ऐहिकी उन्नतिः, prosperity.
१४ । वृतः—वेष्टितः । विक्लवः—वि वशः, विह्वलः । १५ । आ क्रन्दः—रोदनम् ।
१६ । पर्वणि—राहुणा ग्रस्तः । १७ । समवेक्ष्य—समीक्ष्य, having observed.
१८ । सितः—बद्धः । अभि वीक्षितुम्—द्रष्टुम् । १९ । चोदयामास—चालयामास ।

तिष्ठ तिष्ठेति चुक्रोश राजा, याहीति राघवः,—
सुमन्त्रस्याभवत् तदा गां च खं चान्तरा स्थितिः। २०

स रामस्य मतं बुद्ध्वा सुमन्त्रो, दीन-मानसः,
अञ्जलिं नृपतेः कृत्वा, चोदयामास तान् हयान्। २१

यावद् राजा प्रियं पुत्रमपश्यत् तं तु धार्मिकम्,
तावत् प्रावर्त्ततां तस्य चक्षुषी, पश्यतः सुतम्। २२

नापश्यच्च रजोऽप्यस्य यदा रामस्य भूमि-पः,
तदार्त्तः स वि-षण्णश्च धरण्यां निपपात ह। २३

तस्य दक्षिणमन्वङ्गं कौशल्या भवदाकुला,
वामं च सान्वगादङ्गं कैकेयी भरत-प्रिया। २४

उवाच राजा, कैकेयीं समीक्ष्य, पाप-निश्चयाम्,—
"कैकेयि, मा ममाङ्गानि स्प्राक्षीस्त्वं, दुष्ट-चारिणि!" २५

अथ रेणु-परिध्वस्तं तमुत्थाप्य मही-पतिम्,
न्यवर्त्तयत् तदा देवी कौशल्या, शोक-कर्षिता। २६

२०। चुक्रोश—ररोद, चक्रन्द। गाम्—पृथिवीम्। खम्—आकाशम्। उभयत्रापि अन्तरा-योगे द्वितीया। 'अन्तरान्तरेण-युक्ते [द्वितीया]',—पाणिनिः, २।३।४। अन्तरा—मध्ये, between. 'गां च खं चान्तरा'—द्यावा-पृथिव्योर्मध्ये। २२। प्रावर्त्तताम्—प्रावर्त्तेताम्, बहिरगच्छताम्। परस्मैपदम् आर्षम्। २३। रजः—धूलिः। २४। दक्षिणमन्वङ्गम् (दक्षिणमङ्गमनु)—दक्षिणाङ्गस्य पश्चात्, दक्षिणाङ्गं धृत्वा इत्यर्थः। अन्वगात्—अनुससार, न तु दधार। भरत-प्रिया—भरतः प्रियो यस्याः सा। २५। मा स्प्राक्षीः—मा स्पृश। माङ्-योगे लोडर्थे लुङ् अडागमाभावश्च। २६। रेणुः—धूलिः। परिध्वस्तः—विपर्य्यस्ताङ्गः, परि-धूसरः। न्यवर्त्तयत्—प्रत्यागमयत्, प्रत्यागयत्।

षोड़शः सर्गः।

तमसोत्तरणम्।

अनुरक्ता महात्मानं रामं, सत्य-पराक्रमम्,
अनुजग्मुः, प्रयान्तं तं वन-वासाय, मानवाः। १

गच्छत्येवाथ, सहसा, राघवो, धर्म-वत्सलः,
ददर्श तमसां तत्र वारयन्तीमिवाध्वतः। २

ततः स, तमसा-तीरे वासमुद्दिश्य, राघवः,
नदीमुद्वीक्ष्य, सौमित्रिमिदं वचनमब्रवीत्,— ३

"प्रथमेयं निशा, सौम्य सौमित्रे, पर्य्युपस्थिता,
वन-वासस्य। भद्रं ते! त्वं नोत्कण्ठितुमर्हसि। ४

पश्य, शून्यान्यरण्यानि रुदन्तीव समन्ततः,
यथा निलय-सं-लीनैर् हीनानि मृग-पक्षिभिः। ५

अयोध्या, सौम्य, नगरी, राज-धानी पितुर्मम,
स-बाल-वृद्धा नियतमस्मान् शोचति, लक्ष्मण। ६

अनुरक्ता हि मनुजा राजानं बहुभिर्गुणैः,
त्वां च मां च, महा-बाहो, शत्रुघ्न-भरतौ तथा। ७

पितरं त्वनु-शोचामि, मातरं च तपस्विनीम्—
अपि नान्धौ भवेताम् तौ रुदन्तावति-मात्रतः? ८

२। तत्र—मार्गे। वारयन्तीव—[मार्ग-प्रतिरोधात्]। ३। सौमित्रिः—सुमित्रायाः पुत्रः, लक्ष्मणः। ५। रुदन्तीव (रुदन्ति + इव)—[शब्दान् कृत्वा] क्रियमाणीव वर्तन्ते। हीनानि—[निलयेष्वन्तर्लीनत्वात्]। ७। मनुजाः—मानवाः, मनुष्याः।

भरतः, खलु, धर्मात्मा, पितरं मातरं च मे,
धर्म-कामार्थ-सहितैर्वाक्यैराश्वासयिष्यति। ९

भरतस्यानृशंस्यं हि सं-चिन्त्याहं पुनः पुनः,
नानुशोचामि पितरं मातरं चापि, लक्ष्मण। १०

त्वयार्यत्वं, नर-व्याघ्र, मामनुव्रजता कृतम्—
ईप्सितव्या हि वैदेह्या रक्षणार्थं सहायता। ११

अद्भिरेव तु, सौमित्रे, वसामोऽत्र निशामिमाम्;
एतद् धि रोचते मह्यं, वन्येऽपि विविधे सति।" १२

एवमुक्त्वा तु सौमित्रिं, सुमन्त्रमपि राघवः,
अ-प्रमत्तस्त्वमश्वेषु भव, सौम्येत्युवाच ह। १३

सोऽश्वान् सुमन्त्रः संयम्य, सूर्येऽस्तं समुपागते,
प्रभूतं यवसं दत्त्वा, बभूव प्रत्यनन्तरः। १४

उपास्य तु शिवां सन्ध्यां, दृष्ट्वा रात्रिमुपस्थिताम्,
रामस्य शय्यां चक्रे वै सूतः, सौमित्रिणा सह। १५

तां शय्यां तमसा-तीरे, वृक्ष-पर्णैः कृतां, तदा,
रामः सौमित्रिमामन्त्र्य, स-भार्यः, सं-विवेश ह। १६

९। आश्वासयिष्यति—सान्त्वयिष्यति। १०। आनृशंस्यम्—स-हृदयता। ११। आर्यत्वम्—सज्जनता। ईप्सितव्या—वाञ्छितव्या। सहायता—सहाय समूहः। १२। अद्भिरेव—जलेनैव [कृत-प्राण रक्षकः], अस्या निशाया वन-वास-व्रत-सङ्कल्प-दिनात्वात्। वन्ये—वन-जाते [फल मूले]। भावे सप्तमी। 'यस्य च भावेन भाव लक्षणम् [तस्मात् सप्तमी स्यात्]',—पाणिनिः, २। ३। ३७। (भावः—क्रिया)। १३। अ-प्रमत्तः—अवहितः, सावधानः। १४। संयम्य—बद्धा। यवसम्—घासः। प्रत्यनन्तरः—प्रत्यासन्नः, समीप स्थः। १५। शिवा—शुभा। १६। आमन्त्र्य—आपृच्छ्य, विदाय-कालोचितमाभाष्य। सं विवेश—शिश्ये।

आयतोरिव, सा रात्रिः, सारथेर् लक्ष्मणस्य च,
जगाम तमसा-तीरे, रामस्य ब्रुवतोर्गुणान् । १७

उत्थायायार्ध-रात्रे तु, प्रजाः सुप्ता निशम्य च,
अब्रवीद् भ्रातरं रामो, लक्ष्मणं, शुभ-लक्षणम्,— १८

"अस्मद्-व्यपेक्षया, भ्रातर्, निरपेक्षान् स्ववेश्मसु,
वृक्ष-मूलेषु सं-सुप्तान् पश्य पौरान्, स्ववेश्मस्विव । १९

यथैते निश्चिताः सर्वे यतन्तेऽस्मन्-निवर्तने,
त्यक्ष्यन्ति हि तथा देहान् मत्-कृते, नात्र संशयः । २०

यावदेव तु सं-सुप्तास्तावदेव वयं, लघु,
रथमारुह्य, गच्छामः, पथानेन, तपो-वनम् । २१

इति भूयोऽपि नेदानीमिक्ष्वाकु-पुर-वासिनः
अपेयुरनुरक्ता मे, वृक्ष-मूलान्युपाश्रिताः । २२

पौरा ह्यनुगता दुःखाद् वि-प्र-मोच्या नराधिपैः ;
न तु खल्वात्मना योज्या दुःखेन पुर-वासिनः ।" २३

अथाह लक्ष्मणो रामं, साक्षाद् धर्ममिव स्थितम्,—
रोचते मे, महा-प्राज्ञ,—क्षिप्रमारुह्यतामिति । २४

सूतमाह ततो रामस्,—"त्वरितस्तुरगोत्तमैः,
उदङ्-मुखः, प्रयाहि त्वं, रथमास्थाय, सारथे । २५

१७। आयतोरिव &c.—अनादरे षष्ठी। १८। निशम्य—श्रुत्वा। १९। अस्मद्-व्यपेक्षया—अस्मास्वेव या विशेषया अपेक्षया। निरपेक्षान्—उदासीनान्। २१। लघु—शीघ्रम्। २२। अपेयुः—अगंस्युः। २४। क्षिप्रम्—शीघ्रम्। २५। उदङ्-मुखः—उत्तराभिमुखः। प्रयाहि त्वम्—[न वयम्, इत भङ्ग्यापत्तेः]।

मुहूर्तं त्वरितं गत्वा, निवर्तय रथं पुनः—
यथा न विद्युः पौरा मां, तथा कुरु, समाहितः ।” २६

रामस्य वचनं श्रुत्वा, तथा चक्रे स सारथिः ;
प्रत्यागम्य च, रामाय स्यन्दनं प्रत्यवेदयत् । २७

तं स्यन्दनमधिष्ठाय, राघवः, स-परिच्छदः,
शीघ्रं तामाकुलावर्तामतरत् तमसा-नदीम् । २८

सन्तीर्य च, महा-बाहुः श्रीमञ् शिवम-कण्टकम्,
प्रपेदे तमसा-मार्गम-भयं, क्षेम-दर्शनम् । २९

अनुगम्य, निवृत्तानां, रामं, नगर-वासिनाम्
उद्-गतानीव सत्त्वानि बभूवुर्, गत-चेतसाम् । ३०

स्वं स्वं शरणमागम्य, पुत्र-दारैः समावृताः,
अश्रूणि मुमुचुः सर्वे, सु-स्वरं, शोक-विह्वलाः । ३१

सप्त-दशः सर्गः ।

गङ्गोत्तरणम् ।

रामोऽपि, रात्रि-शेषेण तेनैव, महदन्तरम्
जगाम, पुरुष-व्याघ्रः, पितुराज्ञामनुस्मरन् । १

२६ । न विद्युः—[गहनतरं वनं गत इति] न जानीयुः । २७ । प्रत्यवेदयत्—[आरोहणार्थम्] अज्ञापयत् । २८ । परिच्छदः—धनुः-कवचादि । आकुलावर्तां—क्षुभितावर्तां (with whirlpools in convulsion), आवर्तैराकुलां (con vulsed with whirlpools) वा । २९ । सन्तीर्य—[तमसाम्] उत्तीर्य । अभय मार्गम्—राज-मार्गमित्यर्थः । क्षेम-दर्शनम्—दर्शनेन अनिष्टापात-कारण-रहितमिति प्रतीयमानम् । ३० । उद्-गतानि—उत्-क्रान्तानि । सत्त्वानि—प्राणाः । गत-चेतसाम्—हत-बुद्धीनाम् । ३१ । शरणम्—गृहम् ।

१ । तेनैव—[यत्र रात्रि-शेषे नगर-वासिनो वञ्चिताः] । महदन्तरम्—बहु-

तथैव गच्छतस्तस्य प्रभाता रजनी शुभा ।
उपास्याथ शिवां सन्ध्यां, प्रययौ राघवः पुनः । २

ततो वेद-श्रुतिं नाम शिवावर्तां महा-नदीम्
उत्तीर्याभिमुखः प्रायादगस्त्याध्युषितां दिशम् । ३

गत्वा च सु-चिरं कालं ततः, शीत-जलां नदीम्
गोमतीं गोकुलाकीर्णामतरत् स, त्वरन्निव । ४

यात्वा चामर-सङ्काशः, शीघ्रं, शीघ्र-पराक्रमः,
आससाद, स, सायाह्ने शृङ्गवेर-पुरं महत् । ५

ततस्त्रि-पथ-गां तत्र, शीत-तोयाम-शैवलाम्,
ददर्श राघवो, दिव्यां, सु-पुण्यामृषि-सेविताम्, ६

पवित्र-सलिल-स्पर्शां, हिमवच्-छैल-सम्भवाम्,
स्वर्ग-तोरण-निःश्रेणीं, गङ्गां, भागीरथीं नदीम् । ७

तामूर्मि-सलिलावर्तामन्ववेक्ष्य, महा-रथः,
सुमन्त्रमब्रवीद् रामो,—"निवसाम इहाद्य वै । ८

अ-वि-दूरे ह्ययं नद्या, बहु-पुष्प-प्रवालवान्
सुमहानिङ्गुदी-वृक्षो । वसामोऽत्रैव, सारथे ।" ९

दूरम् । ३। अगस्त्याध्युषिता—दक्षिणा । पुरा किल अगस्त्यो नाम ऋषिः दक्षिणां दिशमध्युवास । ४ । गो-कुलाकीर्णाम्—यस्यास्तीरयोः गो-चारण-योग्यानि तृणाच्छादितानि अनूपानि आसन् ताम् इति भावः । ५ । अमर-सङ्काशः—देव-तुल्यः । ६ । त्रि-पथ-गा—स्वर्ग-मर्त्य-पाताल-वाहिनी । ७ । निःश्रेणी—अधिरोहणी, a ladder, a stair-case. ८ । ऊर्मि-सलिलावर्ताम्—ऊर्मिभिः (तरङ्गैः) सलिलाः (प्रवहमानाः) आवर्ताः यस्याः ताम् । अन्ववेक्ष्य—परीक्ष्य, having inspected. ९ । अ-वि-दूरे—समीपे । प्रवालाः—नव पल्लवाः ।

लक्ष्मणस्य सुमन्त्रस्य वाढ़मित्येव राघवम्
उक्त्वा, तमिङ्गुदी-वृक्षं सुमन्त्रोऽभिययौ हयैः। १०
रामोऽथ, गत्वा तं रम्यं वृक्षम्, इक्ष्वाकु-नन्दनः,
रथादवातरत् तस्मात्, स-सीतः, सह-लक्ष्मणः। ११

तत्र राजा निषादानां, रामस्य दयितः सखा,
धार्मिकः सत्य-वादी च, गुहो नाम, महा-बलः। १२
स, श्रुत्वा पुरुष-व्याघ्रं रामं विषयमागतम्,
वृद्धैः परिवृतोऽमात्यैर्ज्ञातिभिश्चाभ्युपागमत्। १३
ततो निषादाधिपतिं दृष्ट्वा दूरादुपस्थितम्,
सह सौमित्रिणा, रामः समागच्छद् गुहेन, सः। १४

तमार्तं सं-परिष्वज्य गुहो राघवमब्रवीत्,—
"यथायोध्या तथेदं ते पुरं। किं करवाणि ते ? १५
भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च लेह्यं चेदमुपस्थितम्,
शयनानि च मुख्यानि, वाजिनां यवसं तथा। १६
स्वागतं ते, महा-बाहो! तवेयमखिला मही।
वयं प्रेष्या, भवान् भर्ता,—साधु, राम, प्रशाधि नः।" १७

गुहमेवं ब्रुवाणं तु राघवः प्रत्युवाच ह,—
"अर्चिता मानिताश्चैव सर्वथा भवता वयम्"; १८
पद्भ्यामभिगतं चैनं स्नेहादादाय, मूर्धनि
भुजाभ्यां साधु-वृत्ताभ्यां पीड़यन्, वाक्यमब्रवीत्,— १९

१२। निषादः—चण्डालः। दयितः—प्रियः। १३। विषयः—देशः।

"अश्वानां यवसेनाहमर्थी, नान्येन केनचित्;
एतावताऽहं भवता भविष्यामि सु-पूजितः"। २०

ततश्चीरोत्तरासङ्गः, सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमां,
जलमेवाददे रामो, लक्ष्मणेनाहृतं स्वयम्। २१

तस्य भूमौ शयानस्य पादौ प्रक्षाल्य, लक्ष्मणः,
स-भार्यस्य, ततः पश्चात् तस्थौ, वृक्षमुपाश्रितः। २२

गुहोऽपि, सह सूतेन, सौमित्रिमनुभाष्य च,
अन्वजाग्रत् ततो रामम-प्रमत्तो, धनुर्धरः। २३

प्रभातायां तु शर्वर्यां, पृथु-वक्षा, महा-यशाः,
उवाच रामः सौमित्रिं लक्ष्मणं, भ्रातरं शुभम्,— २४

"भास्करोदय-कालोऽयं; गता भगवती निशा;
असौ सु-कृष्णो विहगः कोकिलस्, तात, कूजति। २५

बर्हिणां चैव निर्घोषः श्रूयते, नदतां वने;
तरामो जाह्नवीं, सौम्य, शीघ्रं, सागर-गामिनीम्। २६

ततः कलापौ संनह्य खड्गौ बद्ध्वा च, धन्विनौ
जग्मतुर् येन गङ्गां वै, सीतया सह, राघवौ। २७

२०। नान्येन केनचित्—[तापस धर्मित्वात्]। २१। उत्तरासङ्गः—उत्तरीयम्, an upper garment. अन्वास्य—उपास्य। आददे—अग्रहीत्। आङो दा धातोः आत्मने-पदम्। पाणिनिः, १।३।२०। २२। अनु—पश्चात्, समीपे च। अन्वजाग्रत्—अन्वजागः। आम्र-दिपोर्मध्ये चत्वारम पार्श्वे। २४। शर्वरी—रात्रिः। पृथु—विस्तृतम्, महत्। २५। भास्करः—सूर्यः। निशा—रात्रिः। विहगः—पक्षी। कोकिलः—कोकिल इति पक्षिनाम कोकिल पाचकः काको पीकः। २६। बर्हिणाम्—मयूराणाम्। निर्घोषः—ध्वनिः, रवः। नदताम्—रवं कुर्वताम्। जाह्नवी—गङ्गा। २७। कलापौ—

राममेवतु धर्मज्ञमभिवीक्ष्य, विनीतवत्,
किमहं करवाणीति सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत्। २८

निवर्तस्वेत्युवाचैनम्,—"एतावद् धि कृतं मम
यानेन; पद्भ्यामेवाहं गमिष्यामि महा-वनम्"। २९

लक्ष्मणस्यात्मनश्चैव रामश्चक्रे ततो जटाः—
पयोभूतावपि-समौ भ्रातरौ राम-लक्ष्मणौ। ३०

ततो गङ्गामभिमुखः, पुण्यां, सरितमुत्तमाम्,
राघवः प्रययौ, मार्गमाश्रितः, सह-लक्ष्मणः। ३१

स तु दृष्ट्वा, नदी-तीरे, नावमिक्ष्वाकु-नन्दनः,
तितीर्षुस्त्वरितं गङ्गां, लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत्,— ३२

"आरोह त्वं, नर-व्याघ्र, स्थितां नावमिमां शुभाम्;
सीतां आरोपय शनैः, परिरभ्य, तपस्विनीम्।" ३३

स भ्रातुः शासनं कुर्वन्, अप्रति-कूल-कृत्,
आरोप्य मैथिलीं पूर्वमारुरोहात्मना ततः। ३४

अथारुरोह तेजस्वी स्वयं लक्ष्मण-पूर्व-जः।
ततस्तौ भ्रातरौ वीरौ तारयामास नाविकः। ३५

मध्यं च समनुप्राप्ता भागीरथ्या यदा च नौः,
वैदेही प्राञ्जलिर्भूत्वा तदा गङ्गामथाब्रवीत्,— ३६

तूष्णीं। संयम्य—बद्ध्वा। रथ—यानेन। २९। एतावत्—एतावत्-पर्यन्तम्। कृतम् यानेन—[राजाज्ञया] यानेन [मदर्थं] कृतम्। ३२। नावम् (नौ+अम्)—नौकाम्। तितीर्षुः—तरितुम् (अतिक्रमितुम्) इच्छुः। ३३। परिरभ्य—आलिङ्ग्य, हस्ते धृत्वा इति भावः। ३४। अ-प्रति-कूल-कृत्—अनुकूल-कृत्, अनुकूल-कर्म-कारी। आत्मना। ३५। पूर्व-जः—पूर्व-जन्मा, अग्र-जः, ज्येष्ठो भ्राता। तारयामास—

"पुत्रो दशरथस्यायं, महा-राजस्य, धीमतः,
निदेशं पालयेद् राज्ञस्त्वया, गङ्गे, ऽभिरक्षितः ; ३७
चतुर्दश हि वर्षाणि पर्युष्य विजने वने,
भ्रात्रा सह मया चैव प्रत्यागच्छेत् पुनः पुरीम् । ३८
ततस्त्वां, देवि, सु-भगे, क्षेमेण पुनरागता,
यक्ष्ये, प्र-मुदिता, गङ्गे, सर्व-काम-समृद्धये । ३९
त्वं हि त्रि-पथ-गा, देवि, ब्रह्म-लोकात् प्रवर्तसे,
भार्या चोदक-राजस्य, लोकेऽस्मिन् सं-प्रदृश्यसे । ४०
सा त्वां, देवि, नमस्यामि, प्रशंसामि च, शोभने ।
प्राप्त-राज्ये नर-व्याघ्रे, शिवेनैत्य पुनस्त्वहम् ४१
गवां शत-सहस्राणि वस्त्राण्याभरणानि च
ब्राह्मणेभ्यः प्रदास्यामि, तव प्रिय-चिकीर्षया ।" ४२
तथा सम्भाषमाणा तु सीता गङ्गाम-निन्दिता,
दक्षिणा, दक्षिणं तीरं शीघ्रमेवाभ्युपागमत् । ४३

षष्ठा-दशः सर्गः ।

भरद्वाजाश्रमः ।

स च राज-सुतो, धीमान्, वन-वासाय दीक्षितः,
तमब्रवीन् महा-बाहुं सुमित्रानन्दि-वर्धनम्, १

चातिक्रमयामास । नदीमिति शेषः । ३७ । निदेशः—आज्ञा । ३८ । पर्युष्य—अवस्थानं कृत्वा । ३९ । यक्ष्ये—पूजयिष्यामि । ४० । उदक-राजः—समुद्रः । ४२ । प्रिय-चिकीर्षा —प्रियं कर्तुमिच्छा । ४३ । दक्षिणा—उदारा, सरला ।

"अग्रतो गच्छ, सौमित्रे ; सीता त्वामनुगच्छतु ;
पृष्ठतोऽहं गमिष्यामि, त्वां च सीतां च पालयन् । २

अद्य दुःखं तु वैदेही, वन-वासस्य, वेत्स्यति ;
सिंह-व्याघ्र-वराहाणां निनादं प्रसहिष्यति ।" ३

सु-दूरमथ गत्वा, तौ भ्रातरौ राम-लक्ष्मणौ,
अवरोह-समाकीर्णं वटमासाद्य, तस्थतुः । ४

तत्र तौ पीत-पानीयौ, हत्वैकं पृषतं मृगम्,
ज्वालयित्वा हुत-वहं, पेचतुस्—तौ नरर्षभौ । ५

भक्षयित्वा च तन्-मांसं, सीतया सह, राघवौ,
वासाय, मेध्यं न्यग्रोधं कल्पयामासतुस्तदा । ६

तां तु रात्रिमुषित्वा ते तस्मिन् न्यग्रोध-पादपे,
उपास्य सन्ध्याम्, उदिते सूर्ये भूयः प्रतस्थिरे । ७

यत्र भागीरथीं पुण्यां यमुनाभिप्रवर्तते,
जग्मुस्, तं देशमुद्दिश्य, वि-गाह्य सु-महद् वनम्, ८
ते,भूमि-भागान् विविधान् देशांश्चापि मनो-रमान्
अ-दृष्ट-पूर्वान् पश्यन्तस्, तत्र तत्र तपस्विनः । ९

२। पालयन्—रक्षन्। ३। वेत्स्यति—प्राप्स्यति। वराहः—शूकरः। निनादः—गर्जनम्। प्रसहिष्यति—दिवादिगणीयोऽयं सह-धातुः परस्मै-पदी च। ४। अवरोहः—शाखा-शिफा, a fibrous root from a radicant branch. ५। पृषतः—श्वेत-बिन्दु-युक्तो मृगः, the porcine deer. ६। मेध्यः—शुद्धः, पवित्रः। न्यग्रोधः—वटः। ७। भूयः—पुनः। ८। अभि-प्रवर्तते—अभिमुखम्। प्रवहति। तं देशम्—प्रयागम् इत्यर्थः। विगाह्य—निमज्ज्य, प्रविश्य इत्यर्थः।

निवेशाय यथा गच्छन्, पश्यंश्च विविधान् द्रुमान्,
निवृत्ते किञ्चिदादित्ये रामो लक्ष्मणमब्रवीत्,— १०

"प्रयागमभितः पश्य, सौमित्रे, धूममुन्नतम्,
अग्नेर्भगवतः केतुं । मन्ये, सन्निहितो मुनिः । ११

प्राप्ताः स्म सङ्गमं नूनं गङ्गा-यमुनयोः, ध्रुवम् ;—
श्रूयते हि महा-नद्योर् वारि-सङ्घट्ट-जः स्वनः । १२

दारूण्येतानि, पश्यैवं, भग्नानि वन-जैर् वने ;
भरद्वाजाश्रमे चैते दृश्यन्ते विविधा द्रुमाः ।" १३

धन्विनस्ते, सुखं गत्वा, लम्बमाने दिवा-करे
भरद्वाजाश्रमं पुण्यमासेदुः, श्रम-कर्षिताः । १४

तस्याश्रम-पदं प्राप्य, रामः, सौमित्रिणा सह,
त्रासयन्, सायुधः, मृगान्, विवेश, मृग-पक्षिणः । १५

आगम्य चाश्रम-द्वारं, मुनेर् दर्शन-काङ्क्षया,
तस्थौ रामः, सह, श्रीमान्, सीतया लक्ष्मणेन च । १६

तौ विदित्वागतौ चापि, भ्रातरौ राम-लक्ष्मणौ
प्रवेशयामास मुनिः स्वमाश्रम-पदं तदा । १७

हुताग्नि-होत्रमासीनं महा-भागं कृताञ्जलिः
रामः, सौमित्रिणा सार्धं, सीतया चाभ्यवादयत् । १८

११। अभितः—समीपे। केतुः—चिह्नम्, चिन्हम्। १२। सङ्घट्टः—परस्पर-घर्षणम्। १३। दारु—काष्ठम्। वन-जैः—वन्यैः, वन-सम्भवैः [मानुषैः]। १४। धन्विनः—धन्विनौ [राम-लक्ष्मणौ] सीता च इत्यभिप्रायः। लम्बमाने दिवाकरे—अपराह्णे। आसेदुः—प्रापुः। १५। सायुधः—स-धनुष्कः। मृगान्—निरीहान्, पाखी भयकारणाभावात् आश्रम-स्थान् निश्चेष्टान् इत्यर्थः। १८। हुताग्नि-होत्रम्—

मृग-पक्षिभिरासीनैर्वृतो, मुनिभिरेव च,
राममागतमभ्यर्च्य, सोऽभ्यनन्दत, तं, मुनिः । १९

न्यवेदयत चात्मानं तस्मै लक्ष्मण-पूर्व-जः,—
"पुत्रौ दशरथस्यावां भ्रातरौ राम-लक्ष्मणौ । २०
भार्या ममेयं वैदेही कल्याणी जनकात्मजा,
अनुव्रजन्ती मामिव, तपो-वनमुपागता । २१
पित्रा प्रव्राज्यमानं मां सौमित्रिरनु-जः, प्रियः,
स्वयमन्वगमद्, भ्राता, वनमेव, दृढ़-व्रतः । २२
पित्रा नियुक्तो, भगवन्, प्रवेक्ष्यामि महा-वनम् ;
धर्ममेव चरिष्यामि तत्र, मूल-फलाशनः ।" २३

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा, राज-पुत्रस्य धीमतः,
उपानयत धर्मात्मा गामर्घ्यमुदकं तथा । २४
प्रतिगृह्य स काकुत्स्थमासनेनोदकेन च,
न्यमन्त्रयत मूलैश्च फलैश्च, फल-भोजनः । २५

प्रतिगृह्य तु तां पूजामुपविष्टं, स राघवम्
भरद्वाजोऽब्रवीद् वाक्यं धर्म-युक्तमिदं तदा,— २६
"दिष्ट्यासि कुशली, राम, ममाश्रममुपागतः ;
श्रुतं हि ते मया पित्रा विवासनम-कारणम् । २७

[illegible] प्रायश्चित्ती होमः। १९। अभ्यर्च्य—पूजयित्वा। अभ्यनन्दत्—Hailed. २३। धर्ममेव—वानप्रस्थ-धर्ममेव। मूल फलाशनः—मूल फल भक्षणं मोक्षस्यापि उपलक्षणम्। २४। गाम्—मधुपर्कार्थं गवा-द्रव्यम्।

अवकाशो विविक्तोऽयं रमणीयश्च, राघव,
गङ्गा-यमुनयोः पुण्यः सङ्गमो, लोक-विश्रुतः । २८

इह, राम, मया सार्धं, वस त्वं, यदि रोचते ;
सर्व-साधारणं हीदं तपो-वन-निवासिनाम् ।" २९

तमेवं-वादिनं रामः कृताञ्जलिरभाषत,—
"वसतोऽनुग्रहो मे स्यादिह ब्रह्मं त्वया सह । ३०

इतस्तु विषयोऽस्माकमभ्याशे, तपतां वर ;—
आगमिष्यन्ति सु-व्यक्तं द्रष्टुं मामिह बान्धवाः । ३१

अनेन कारणेनाहमिह वासं न रोचये ।
अन्यमाश्रममेकान्ते विविक्तं वक्तुमर्हसि, ३२

वसेयं यत्र, वैदेह्या सहितो, लक्ष्मणेन च,
स्व-जनेनापरिज्ञातो, निरुद्विग्नः, सुखी, वने ।" ३३

इति राम-वचः श्रुत्वा, भरद्वाजो, महा-मुनिः,
ध्यात्वा मुहूर्तमेकाग्रो, रामं वचनमब्रवीत्,— ३४

"इतस्त्रि-योजनाद्, राम, गिरिर्—यत्र निवत्स्यसि—
महर्षि-सेवितः, पुण्यः, सर्वस्य सुख-दः, शिवः, ३५

गोलाङ्गुलाभिनन्दितो, वानरर्क्ष-निषेवितः,
चित्र-कूट इति ख्यातो, गन्ध-मादन-सन्निभः । ३६

यावद् हि चित्रकूटस्य नरः शृङ्गाणि पश्यति,
तावत् कल्याणमाप्नोति, धर्मे च कुरुते मतिम् । ३७

२८ । अवकाशः—स्थानम् । विविक्तः—निर्जनः पवित्रो वा । ३१ । अभ्याशे—समीपे । सु-व्यक्तम्—सुनिश्चितम् । ३२ । एकान्तम्—निर्जनम् [स्थानम्] । ३६ । गोलाङ्गुलः

मुनयस्तत्र बहवो, विहृत्य शरदां शतम्,
तपसा दिवमारूढाः कपाल-शिरसा सह। ३८
तं विविक्तमहं मन्ये, वासं ते, रघु-नन्दन ;
इह वा, पुरुष-व्याघ्र, वस, राम, मया सह। ३९
सर्वथा रंस्यसे, राम, तस्मिन्नाश्रम-मण्डले,
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा, सीतया चानयानघ।” ४०
इत्युक्त्वा, प्रिय-कामैस्तं, भरद्वाजः, प्रियातिथिम्,
स-भार्यं सानुजं चैव प्रतिजग्राह, धर्म-वित्। ४१
तस्य भुक्तवतस्तत्र तदार्यो, मुनिना सह,
जगाम रजनी पुण्या, चित्राः कथयतः कथाः। ४२

नव-दशः सर्गः।

चित्रकूट-प्रवेशः।

तामुषित्वा निशां तत्र सुखमिक्ष्वाकु-नन्दनौ,
सीतामेवाग्रतः कृत्वा, कालिन्दीं जग्मतुर्नदीम्। १
तत्र बद्ध्वोडुपं काष्ठैर् वेणुभिश्चापि, तीर-जैः,
सीतामारोपयाञ्चक्रे रामस्तत्र स्वयं तदा। २

—ऋक्ष-मुख्याः कपि-विशेषाः। अभिनन्दितः—'अभिनदितः' इति गोरेसियोः पठति। ऋक्षः—भल्लुकः। ३८। शरदां शतम्—शतं वर्षाणि। कपाल-शिरसा सह—यदा तेषां शिरांसि (मस्तकानि) अति-वार्धक्यात् [शिरः मृतस्य] कपालानीव शुक्लानि बभूवुः तदा। 'कपाल-शिरसा सह' इति गोरेसियो-धृतः पाठस्तु न साधुरिति। ३९। वासः—वास-स्थानम्। ४१। प्रिय-कामैः—प्रियैः काम्य वस्तुभिः। प्रतिजग्राह—सत्-चकार। ४२। चित्राः—नाना, आश्चर्याः वा।

१। कालिन्दी—यमुना। २। उडुपम्—प्लवः, a float, a raft. वेणुभिः—वंशैः।

परिष्वज्य प्रियां बालां, वेपमानां लतामिव,
सीतामारोप्य, रामोऽपि लक्ष्मणश्चाप्यरोहताम् । ३

तेन प्लवेनांशुमतीं शीघ्र-गामूर्मि-मालिनीम्,
तीरजैर् बहुभिर् वृक्षैस् तेरुस् ते यमुनां नदीम् । ४

सन्तीर्णाः, प्लवमुत्सृज्य, प्रस्थाय यमुनां नदीम्,
शीत-च्छायं समासेदुः, श्यामं न्यग्रोध-पादपम् । ५

अर्चयित्वाथ तं, सीतायाचतेदं, कृताञ्जलिः,—
"चिरं जीवतु मे शूरः श्वशुरः, कोशलेश्वरः ; ६

भर्ता मे, देवराश्चैव जीवन्तु, भरतादयः ।"
कौशल्यां चैव जीवन्तीं पश्येयमिति मैथिली ७

ययाचे तं । ततोऽभ्येत्य, श्यामं सत्योपयाचनम्
प्रदक्षिणमुपावृत्य ततस् ते प्रययुः पुनः ; ८

क्रोशमात्रं ततो गत्वा, नीलमासाद्य तद् वनम्,
हत्वा तत्र मृगं मेध्यं, पक्त्वा तमुपभुज्य च, ९

विहृत्य तस्मिन् बहु-पक्षि-नादिते
वने, यथेष्टं, मृग-यूथ-सेविते,
ततो निवासार्थमुपाययुः शिवम्
शुभं नदी-तीर-तरुं, समुच्छ्रितम् । १०

४। अंशुमती—ज्योतिर्मयी। तेरुः—अतिचक्रमुः। ५। सन्तीर्णाः—उत्तीर्णाः।
६। अर्चयित्वा—पूजयित्वा। ८। सत्योपयाचनम्—सत्यम् उपयाचनम् (प्रार्थना) यस्य तम्। उपावृत्य—परिवृत्य। ९। नीलम्—सु-विख्यातम्, पुष्प-पूर्णम्।

अथ, रात्र्यां व्यतीतायां, सुख-सुप्तं अनात्मवत्,
राम उत्थापयामास लक्ष्मणं शनकैस्तदा,— ११
"मृगाणां शृणु, सौमित्रे, वल्गु व्याहरतां वने ;
सं-प्रतिष्ठामहे भूयो, यदि, लक्ष्मण, मन्यसे।" १२
स, सुप्तः सु-सुखं, भ्रात्रा लक्ष्मणः प्रतिबोधितः,
जहौ निद्रां क्लमं चैव, तं चैवाध्व-परिश्रमम् । १३
अथ उत्थाय सहिताः, स्पृष्ट्वा च सलिलं शुचि,
उपास्य च शुभां सन्ध्यां तत्रैवाभि-प्रतस्थिरे । १४
चित्रकूटस्य पन्थानमासाद्य, कृत-निश्चयाः,
तत्र वासं समुद्दिश्य, ययुः, शीघ्र-पराक्रमाः । १५
अचिरेण समासाद्य ततस्तच् चित्र-पादपम्
चित्रकूट-वनं, रामः सीतां वचनमब्रवीत्,— १६
"पश्यामून् पुष्पितान्, सीते, मालिनीं सरितं प्रति,
शिशिरात्यये, दीप्तार्चिषि, प्रदीप्तानिव, किंशुकान्। १७
कर्णिकार-वनं चापि, पश्य, मन्दाकिनीमनु,
दीपितं रुचिरैः पुष्पैः, प्रदीप्तैः काञ्चनैरिव ! १८
पश्य भल्लातकान्, बिल्वान्, पनसांस्तिन्दुकांस्तथा,
फल-भारानतांश्चैव तथान्यान् फल-पादपान् । १९

१२। वल्गु—मधुरम्। व्याहरताम्—वदताम्, कूजताम्। १३। प्रतिबोधितः—जागरितः, awakened. क्लमः—क्लान्तिः। अध्वा—पन्थाः। १६। पादपाः—वृक्षाः। १७। मालिनीं सरितं प्रति—मालिनी-नद्याः समीपे। अत्ययः—अपगमः। किंशुकाः—पलाश-वृक्षाः। १८। कर्णिकाराः—आरग्वध वृक्षाः, कणियार्। मन्दाकिनी-मनु—मन्दाकिनी-तीरयोः। १९। भल्लातकः—वीर-वृक्षः, ভেলা গাছ। बिल्वः—

शक्यमत्र फलैरिव जीवितुं, तनु-मध्यमे !
अहो, स्वर्गोपमं प्राप्ताश्चित्रकूटमिमं वयम् ! २०

पश्य द्रोण-प्रमाणानि लम्बमानानि, सर्वशः,
चितानि, चित्रकूटेऽस्मिन्, मधूनि मधु-पैः ख-गैः। २१

असौ कूजति दात्यूहस्तं शिखी प्रति-कूजति ;
तं चोपहसतीवायं, कूजन्तं, जल-कुक्कुभः। २२

पर-पुष्ट-रुतं श्रुत्वा, गायन्त इव कानने,
भ्रमरा विचरन्त्येते, पुष्प-वास-कल-स्वनाः। २३

पश्य, मन्दाकिनी-तीरे, कुसुम-प्रकरैः, प्रिये,
रचितानीव, सु-श्रोणि, शयनानि, द्रुमे द्रुमे। २४

शिला-तलानि चेमानि वि-मलानि, शुचि-स्मिते,
लता-वितान-च्छन्नानि, पश्य, रम्याणि, भाविनि। २५

मातङ्ग-यूथ-निचिते नाना-विहग-नादिते
नाना-मृग-समाकीर्णे शैलेऽस्मिन्, रम्य-कानने, २६

वैदेहि, विचरिष्यामः सुखमत्र वयं, प्रिये।
इह प्राप्स्यसि, वैदेहि, मया सह रतिं शुभाम्।' २७

श। फलः, जेल गाछ। पनसः—कण्टकि-फलः, काँठाल गाछ। तिन्दुकः—टेन्दुकः, गाब गाछ। २१। द्रोणः—आढ़क-चतुष्टयम्, ३२ सेर। द्रोण-प्रमाणानि—द्रोण-प्रमाण-मधु-पूर्णानि। मधूनि—मधु-पटलानि, मधु-चक्र, मौचाक। चितानि—रचितानि। मधु-पः—मधु-पायी। ख-गः—आकाश-गामी। मधु-पैः ख-गैः—मधु-मक्षिकाभिः। २२। दात्यूहः—चातकः, डाक। शिखी—मयूरः। जल-कुक्कुभः—जल-चरो वन-कुक्कुटः। २३। पर-पुष्टः—कोकिलः। रुतम्—रवः। पुष्प-वासः—आमोदः। २४। कुसुम-प्रकरैः—पुष्प-राशिभिः। सु-श्रोणी—शोभन-कटिः। २६। मातङ्गाः—हस्तिनः। निचिते—व्याप्ते। मृगाः—हरिणाः।

अवेक्षमाणा एवं ते रम्यां मन्दाकिनीं नदीम्,
चित्रकूटं समाजग्मुर्, नाना-कुसुमित-द्रुमम् । २८
तस्य शैलस्य पार्श्वे तु, विविक्ते, सलिलावृते,
आश्रमं चक्रतुर् वीरौ भ्रातरौ राम-लक्ष्मणौ— २९
गज-भग्नान्युपाहृत्य दारूण्युप-वनान्तरात्,
लता-वितान-गर्भे द्वे चक्रतुः सदने दृढम्;
वृक्ष-पर्णैश्च बहुभिश्छादयामासतुस्तत: । ३०
ते पर्ण-शाले, कृत्वा, तु शोधयामास लक्ष्मण: ।
मृदोपलेपनं चक्रे वैदेही, तनु-मध्यमा । ३१
कृत्वाश्रम-पदं रामस्ततो लक्ष्मणमब्रवीत्,—
"मृगमाहृत्य, सौमित्रे, पक्वं श्रपय मा चिरम्;
तेन यष्टुमिहेच्छामि पञ्चाश्रम-देवता:" । ३२
इत्युक्तो लक्ष्मणो भ्राता, हत्वा कृष्ण-मृगं, वनात्
आहृत्य, ज्वालयित्वाग्निं, श्रपयामास, संस्कृतम् । ३३
तं मृगं सु-शृतं ज्ञात्वा, सु-निष्टप्तं च, लक्ष्मण:
उवाच रामम्, अभ्येत्य, कृताञ्जलिरिदं वच:,— ३४
"आज्ञया ते, मयाहृत्य, शृत: कृष्ण-मृगो, वनात्;
यष्टुमर्हसि तेन त्वं देवता अभिकाङ्क्षिता:" । ३५

---

२८ । अवेक्षमाणा:—परिपश्यन्त: । ३० । वितान:—विस्तार:, आवरकम् इत्यर्थ: । सदनम्—गृहम् । ३१ । पर्णानि—पत्राणि । शाला—गृहम् । ३२ । पक्व:—[illegible] [illegible], उष्णान्नम् । श्रपय—पच । ३३ । श्रपयामास—पपाच । संस्कृतम्—शोधितम् । ३४ । सु-शृतम्—सु-पक्वम् । पाणिनि:, ६।१।२७ । सु-निष्टप्तम्—निस्तप्तम् ।

इत्युक्ते राघवः, स्नात्वा, अग्न्याय विधिवत्, तदा,
हुत्वाग्निं समवत तत्र, ततस्तान् जुहुवे हविः। ३६

हविर् हुत्वा च देवेभ्यः, पितृभ्यस्तदनन्तरम्,
निर्वपाय पवित्रेषु निवापं, स-जलाञ्जलिम्; ३७

भुत्त्य चैव निवापं तं, भूतेभ्योऽपि विधानतः
चकार बलि-निर्वापं राघवस्तदनन्तरम्। ३८

लक्ष्मणेन सह भ्राता, हुत-शेषं ततः स्वयम्
उपविश्योपबुभुजे, न्यस्ते पर्ण-पुटे शुचौ। ३९

परिवेष्य च सीतापि तावुभौ भर्तृ-देवरौ,
एकान्तं समुपागम्य, ततः शेषमुपाददे। ४०

विंशः सर्गः।

मुनि-पुत्र-संवादः।

अयोध्यामाजगामार्तो, निवृत्तेऽहनि, सारथिः;
यत्र राजा दशरथस्तदेवोपययौ गृहम्। १

अभिगम्य स राजानं, प्रणिपत्य च, सारथिः
यथोक्तं राम-वचनं कृताञ्जलिरवेदयत्। २

राम-लक्ष्मणयोरेव विवासाद् वासवोपमम्
अभ्रोपप्लव-गतं सूर्यं तम इवाम्बरे। ३

३७। निर्वपाय—उत्सृज्य। पवित्रेषु—च-वर्ण-दाम-कुशेषु। निवापः—पितृनुद्दिश्य देयं भोज्यम्। ३८। भुत्त्य—पितृनुद्दिश्य दत्त्वा। निर्वापः—उत्सर्गः। ३९। उपबुभुजे—बुभुजे। ४०। उपाददे—जग्राह, बुभुजे इत्यर्थः।

३। वासवोपमम्—इन्द्र-तुल्यम् [राजानं दशरथम्]। उपप्लवः—ग्रहणम्।

स, षष्ठे दिवसे, रामं शोचन्नेव, महा-यशाः,
अर्ध-रात्रे प्रबुद्धः सन्, स्वकारात्म-सु-दुष्कृतम् । ४

स्मृत्वा च, देवीं कौशल्यामभिभाष्येदमब्रवीत्,—
"यदि जानासि, कौशल्ये, शृणु मेऽवहिता वचः । ५

यदाचरति, कल्याणि, नरः कर्म शुभाशुभम्,
सोऽवश्यं फलमाप्नोति तस्य, काल-समागतम् । ६

गुरु-लाघवमर्थानामारम्भेष्व-वितर्कयन्
गुणतो दोषतश्चैव, बाल इत्युच्यते बुधैः । ७

तद् यथाम्र-वणं छित्वा पलाश-वनमाश्रयेत्,
पुष्पं दृष्ट्वा फल-प्रेप्सुर् निराशः स्यात् फलागमे । ८

सोऽहमाम्र-वणं छित्वा पलाश-वनमाश्रितः,
बुद्धि-मोहात् परित्यज्य रामं, शोचामि, दुर्मतिः । ९

"कौशल्ये, लब्ध-लक्ष्येण तरुणेन मया, पुरा
कौमारे, शब्द-वेधित्व-श्लाघिना दुष्कृतं कृतम् । १०

तदिदं मामनुप्राप्तं फलं पापस्य कर्मणः,
भक्षितस्य विषस्येव विपाको जीवितान्तकः । ११

उपप्लव गतम्—राहु ग्रस्तम् । अम्बरम्—आकाशः । ४ । प्रबुद्धः—जागरितः । सु दुष्कृतम्—महत् दुष्कर्म । ७ । गुरु-लाघवम्—गौरवम् लाघवं च, गुरुत्वं लघुत्वं च । अर्थानाम्—कर्मणाम् । आरम्भेषु—आरम्भ-कालेषु । न वितर्कयन्—न विचारयन्, न आलोचयन् । गुणतः—गुणे, गुण विषये । दोषतः—दोषे, दोष विषये । 'गुरु··· बुधैः'—य आरम्भ काले इदं कार्यं अल्प-दोषं बहु-गुणम्, इदं च बहु-दोषमल्प-गुणमित्येवं न विचारयति, स पण्डितैर्बाल उच्यते । ८ । तद् यथा—यथा, as for example. आम्र-वणम्—उत्तर-पदस्थोऽपि आम्र-शब्द-परत्वात् वन शब्दस्य णो वः । पाणिनिः, ८।४।५। प्रेप्सुः—प्राप्तुमिच्छुः । १० । शब्द-वेधी—शब्देन (अदृष्ट शब्देन) वेधितुं ([अदृश्यमानं

अ-विज्ञानाद् यथा कश्चित् पुरुषो भक्षयेद् विषम्,
तथा ममाप्य-विज्ञानात् पापं कर्म पुरा कृतम् । १२

"दैव्यनूढा तदाभूस्त्वं, युव-राजो भवाम्यहम् ।
अथ प्रावृडनुप्राप्ता, मनः-सं-हर्षिणी मम । १३

आदाय हि रसं भौमं, तप्त्वा च जगतीं, रवौ
उदग् गत्वाभ्युपावृत्ते परेताचरितां दिशम्, १४

आवृत्ताना दिशः सर्वाः स्निग्धा ददृशिरे घनाः ;
मुदा विजह्रिरे चापि बक-सारस-बर्हिणः । १५

आकुलाविल-तोयानि स्रोतांसि, विपुलान्यपि,
उन्मार्ग-जल-वाहीनि बभूवुर् जलदागमे । १६

मेघजेनाम्बुना भूमिर् भूरिशा परितर्पिता,
उन्मत्त-शिखि-सारङ्गा, बभौ, हरित-शाद्वला । १७

"एतस्मिन्नीदृशे काले वर्तमानेऽहमङ्गने,
बद्धा तूणी, धनुष्पाणिः, शरयूमगमं नदीम् । १८

धनुर्-व्यायाम-शीलत्वात् शब्द-वेध-चिकीर्षया,
तस्या नद्यास्तथा तीरं विविक्तमुपसृत्य च, १९

लक्ष्यं] यस्य) शीलं यस्य सः । ११ । विपाकः—परिणामः । १२ । अ-विज्ञानात्—अ विज्ञाय, अ विचार्य । १३ । अनूढा—अ-विवाहिता । भवामि—अभूवम् । वर्तमान-सामीप्ये वर्तमानवत् प्रयोगः । पाणिनिः, ३।३।१३१ । प्रावृट्—वर्षाः । १४ । आदाय—गृहीत्वा । उदक्—उत्तरां दिशम् । उपावृत्ते—प्रतिनिवृत्ते, प्रत्यावर्तते । परेताचरिताम्—प्रेताचरिताम्, प्रेत व्यवहृताम्, मृत-जनाश्रिताम्, दक्षिणाम् । परेतः (परा इण् + क्तः) —परं [लोकं] इतः (गतः), मृतः । १५ । मुदा—प्रीत्या, हर्षेण । १६ । स्रोतांसि—स्रोतांसि, प्रवाहाः, currents. १७ । हरित शाद्वला—नव-दूर्वैः हरिती-कृता । १८ । अङ्गना—अङ्ग-सौष्ठव-शालिनी नारी ।

निपाने निशि वन्यानां मृगाणां सलिलार्थिनाम्,
स्थितस्तत्राहमेकान्ते, रात्रौ, वितत-कार्मुकः,— २०

तत्रापि महिषं वन्यं, गजं वा, तीरमागतम्,
अन्यं वापि मृगं हन्मि, शब्दं श्रुत्वाभ्युपागतः। २१

“अथाहं पूर्यमाणस्य जल-कुम्भस्य निस्वनम्
अ-चक्षुर्-विषयेऽश्रौषं, वारणस्येव बृंहितम्। २२

ततः सु-पुङ्खं निशितं शरं सन्धाय कार्मुके,
तस्मिन् शब्दे शरं क्षिप्रमसृजं, दैव-मोहितः। २३

“शरे, चाम्भवं, तस्मिन् सुते निपतिते, तदा
हा हतोऽस्मीति करुणं मानुषेणेरितां गिरम्। २४

‘कथम् अस्मद्-विधे शस्त्रं निपात्येत, तपस्विनि?
केनायं सु-क्रूरेण मयि बाणो निपातितः?’ — २५

इति तां करुणां वाचं श्रुत्वा मे, भ्रान्त-चेतसः,
अ-धर्म-भय-भीतस्य, करादच्यवतायुधम्। २६

“सहसाभ्युपगत्यैनमपश्यं, हृदि ताडितम्,
जटाजिन-धरं बालं, दीनं, पतितमम्भसि। २७

स मां कृपणमुद्वीक्ष्य, मर्मण्यभिहतो, दृढम्,
इत्युवाच वचो, देवि, दिधक्षुरिव तेजसा,— २८

२०। निपाने—[नदी-तीरस्थे] जलाशये। मृगः—पशुः। मृगाणां निपाने इत्यन्वयः। वितत-कार्मुकः [सन्]—धनुः पूरयन्। २२। अ-चक्षुर्-विषये—चक्षुरगोचर-स्थाने। सु-पुङ्खः—पक्ष-शोभनः। निशितः—शाणितः, तीक्ष्णी-कृतः। २४। ईरिताम्—उच्चारिताम्। गिरम्—वाणीम्, वाक्यम्। २५। निपात्येत—निन्दायां कर्मणि लिङ्। पाणिनिः, ३।३।१४३। २६। अच्यवत—अपतत्। २८। कृपणम्—दीनम्।

'किं तवापकृतं, वत्स, वने निवसता मया,
जिहीर्षुरम्भो गुर्वर्थं यदहं ताड़ितस्त्वया ? २९

अमू हि कृपणावन्धाव-नाथौ विजने वने
मदीयौ पितरौ वृद्धौ प्रतीक्षेते ममाशया । ३०

एकेनानेन बाणेन त्वया, पाप, हतास्त्रयः—
अहमम्बा च तातश्च, कस्माद्, अनपकारिणः ? ३१

नूनं न तपसः किञ्चित् फलं मन्ये, श्रुतस्य वा,
यथा मां नाभिजानाति पिता, मूढ़, त्वया हतम् । ३२

जानन्नपि च किं कुर्याद्, अन्धत्वाद-पराक्रमः,
छिद्यमानमिवाशक्तस्त्रातुमन्यं न-गो न-गम् । ३३

पितुरेव च मे शीघ्रं गत्वा चाचक्ष्व, राघव ;
मा त्वां धक्ष्यति शापेन, शुष्कं काष्ठमिवानलः । ३४

इयमेक-पदी याति मम तं पितुराश्रमम् ;
तं प्रसादय गत्वाशु—न स त्वां कुपितः शपेत् । ३५

वि-शल्यं मां कुरु क्षिप्रं । त्वयायं योऽर्पितः शरः,
हृदि वज्राग्नि-सं-स्पर्शः, प्राणानुपरुणद्धि मे ।' ३६

इति मामब्रवीद् वाक्यं बालः, शर-हतो मया ।
तस्याथोत्ताम्यतो बाणमुज्जहार बलादहम् । ३७

जिहीर्षुः—हर्तुमिच्छुः । २९ । जिघृक्षुः—ग्रहीतुमिच्छुः । ३२ । श्रुतम्—वेदः, शास्त्रम्, शास्त्र-ज्ञानम् । ३३ । अ-पराक्रमः—पुरुषकार-हीनः । न-गः—वृक्षः । ३५ । एक-पदी—सूक्ष्मो मार्गः । ३६ । वि-शल्यम्—उद्धृत-बाणम् । उपरुणद्धि—प्र-पीड़यति । ३७ । उत्ताम्यतः—उत्कण्ठितस्य ।

"शरे तु तस्मिन् व्यपनीतमात्रे,
हिक्कोद्गत-श्वास-मुहूर्त-खिन्नः,
वि-चेष्टमानः, परिवृत्त-नेत्रः,
प्राणानमुञ्चत् स मुनेस्तनू-जः । ३८

"ततोऽहं शरमुद्धृत्य, दीप्तम्, आशी-विषोपमम्,
आगच्छं कुम्भमादाय, पितुरस्याश्रमं प्रति । ३९
तत्राहं कृपणावन्धौ हताव-परिचारकौ,
अपश्यं जनकौ तस्य, लून-पक्षाविवाण्ड-जौ । ४०

"श्रुत्वैव पद-शब्दं तु ततो मां सोऽभ्यभाषत,—
'किं ते चिरायितं, पुत्र ? पानीयं क्षिप्रमानय । ४१
यज्ञ-दत्त, चिरं, तात, सलिले क्रीडितं त्वया ;
उत्कण्ठितेयं माता ते, तथाहमपि, पुत्रक । ४२
यदि किञ्चिद् व्यलीकं ते मया मात्रापि वा कृतम्,
क्षमये त्वां ; च मा भूयश्चिरयेथाः क्वचिद्, गतः । ४३
अगतेस्त्वं गतिर् मेऽद्य, त्वं मे चक्षुर-चक्षुषः ;
ममासक्तास्त्वयि प्राणाः ; कस्मात् त्वं नाभिभाषसे ?' ४४

"तत्रेति करुणां वाचं ब्रुवन्तं, पुत्र-लालसम्,
अहमभ्येत्य शनकैरब्रुवं, भय-विह्वलः, ४५

३८। परिवृत्त-नेत्रः—घूर्णित-नयनः। तनू-जः—आत्म-जः, पुत्रः। ३९। आशी-विषः—सर्पः। ४०। लून-पक्षौ—छिन्न-पक्षौ। ४१। सः—स जनकः। चिरायितम्—विलम्बितम्। ४३। व्यलीकम्—अ-प्रियम्। 'क्षमये त्वाम्'—'क्षमयेऽहम्' इति गोरेसियो-धृत-पाठस्तु न समीचीनो भाति। चिरयेथाः—चिरयेः, चिरयतु, विलम्बेथाः। आत्मने-पदमार्षम्।

बाष्प-पूर्णेन कण्ठेन, धृत्वा संस्तभ्य वाग्-बलम्,
कृताञ्जलिर्, वेपमानो, भय-गद्गद-वागिदम्,— ४६

'क्षत्रियोऽहं दशरथो—नाहं पुत्रो; मुने, तव—
सज्जनावमतं घोरं कृत्वा पापमुपागतः। ४७

भगवं, श्चाप-हस्तोऽहं, शरय्वास्तीरमागतः,
काङ्क्षन्, जिघांसुर्., अ-ज्ञातं मृगं, तत्राभ्युपागतम्। ४८

पूर्यमाणस्य कुम्भस्य अथ शब्दो मया श्रुतः;
तत्र पुत्रो मयासौ ते निहतो, गज-शङ्कया। ४९

तस्याहं रुदितं श्रुत्वा, हृदि भिन्नस्य पत्रिणा,
भीत आगम्य तं देशम्, अपश्यं तं तपस्विनम्। ५०

समुद्धृते मया बाणे, प्राणां स्त्यक्त्वा दिवं गतः,
भवन्तौ सु-चिरं कालं परिशोच्य, तपस्विनौ। ५१

अ-ज्ञानतो मया पुत्रो हतस्ते, दयितो, मुने;
शेषमेवं गते, तेजो मय्युत्स्रष्टुं त्वमर्हसि।' ५२

"स, एतदभि-सं-श्रुत्य, मुहूर्तमिव मूर्च्छितः,
प्रत्याश्वस्यागत-प्राणो, मामुवाच, कृताञ्जलिम्,— ५३

'नय मां साधु तं देशं, यत्रासौ बालकस्त्वया
हतो, नृ-शंस, बाणेन, ममान्धस्यान्ध-यष्टिका। ५४

४६। सं-स्तभ्य—संयम्य। ४७। अवमतम्—अवज्ञातम्, गर्हितम्। ४८। जिघांसुः—हन्तुमिच्छुः। ५०। पत्रिणा—बाणेन। ५२। शेषः—विनाशः। गते—उचितम् इति शेषः। भावे सप्तमी। पाणिनिः, २।३।३७। समभ्यस्त-पदमत्र कारक-योजकम्। उत्-स्रष्टुम्—निक्षेप्तुम्। ५३। प्रत्याश्वस्य—आश्वस्त-हृदयो भूत्वा, taking heart.

तमहं, पतितं भूमौ, स्प्रष्टुमिच्छामि पुत्रकम्,—
सं-प्राप्य यदि जीवेयं पुत्र-स्पर्शम-पश्चिमम् ।' ५५

"पश्चादहमेकस्तं देशं नीत्वा तौ भृश-दुःखितौ,
तमहं स्पर्शयामास, स-भार्यं, पतितं सुतम् । ५६

पुत्र-शोकातुरौ स्पृष्ट्वा, तौ, पुत्रं, पतितं क्षितौ,
आर्त-स्वरं विक्रुश्योभौ तस्यैवोपरि पेततुः । ५७

माता चास्य मृतस्यापि, जिह्वया लिहती मुखम्,
विललापाति-करुणं, गौर् वि-वत्सेव, वत्सला । ५८

"सोऽपि कृत्वोदकं तस्य पुत्रस्य, सह भार्यया,
तपस्वी मामुवाचेदं, कृताञ्जलिमुपस्थितम्,— ५९

'पुत्र-शोकातुरः प्राणान् सं-त्यक्ष्याम्य-वशो यथा,
त्वमप्यन्ते तथा प्राणां स्त्यक्ष्यसे पुत्र-लालसः' । ६०

"एवं शापमहं लब्ध्वा स्व-पुरं पुनरागतः;
सोऽप्यृषिः पुत्र-शोकेन न चिरादिव सं-स्थितः । ६१

स ब्रह्म-शापो नियतमद्य मां समुपस्थितः;
तथा हि,—पुत्र-शोकार्तं प्राणाः सं-त्वरयन्ति माम् । ६२

चक्षुर्भ्यां न प्र-पश्यामि, स्मृतिर् मे, देवि, लुप्यते;
दूता वैवस्वतस्यैते त्वरयन्ति च मां, शुभे ! ६३

यदि मां सं-स्पृशेद् रामः, संभाषेतापि चागतः,
जीवेयमिति मे बुद्धिः, प्राप्यामृतमिवातुरः । ६४

---

५५ । अ-पश्चिमम्—चरमम्, the last. ६० । अन्ते—अन्तकाले । आत्मने-पदम् आर्षम् । ६१ । न चिरात्—अ-चिरात्, शीघ्रम् । इव—एव । सं-स्थितः—मृतः ।

दृष्ट्वापि, यद्यहं प्राणां स्थापयेयं, दयितं सुतम्,
प्रेत्यापि न वि-मुच्येऽहं पुत्र-शोकेन, दु:खित: । ६५

अतो नु किं दु:खतरं भवेन् मम च, भाविनि,
यद्-दृष्ट्वैव रामस्य मुखं त्यक्ष्यामि जीवितम् !” ६६

इति रामं स्मरन्नेव, शयनीय-तले, नृप:
शनैरुपजगामास्तं, शशीव रजनी-क्षये । ६७

एक-विंश: सर्ग: ।

भरत-प्रयाणम् ।

इदं पुरो-हितो वाक्यं भरतं प्रत्यभाषत,—
“तात, राजा दशरथ: स्वर्गतो, धर्ममाचरन्,
धन-धान्यवतीं स्फीतां, प्रदाय पृथिवीं तव । १

रामस्तथा सत्य-धृति:, सतां धर्म्ममनुस्मरन्,
नाजहात् पितुरादेशं, लक्ष्मीं शीतांशुमानिव । २

पित्रा भ्रात्रा च ते दत्तं राज्यं, निहत-कण्टकम् ;
तद् भुङ्क्ष्व—मुदितामात्यमभिषेकमवाप्नुहि ।”

६२ । नियतम्—नियमेन, inevitably. तथा हि—तथादिवम् । ६३ । लुप्यते—कर्मं कर्तरि प्रयोग: । वैवस्वतस्य—विवस्वत: (सूर्यस्य) पुत्रस्य, यमस्य । ६५ । प्रेत्य—[अस्मात् लोकात्] प्रस्थाय, पर-लोकं गत्वा । वि मुच्ये—वि-मुच्यामि, मोक्ष्यामि । आत्मने-पदमार्षम् । ६६ । नु किम्—किम् नु, सम्भवत: किम् । ६७ । शयनीय-तले—शय्या-पृष्ठे ।

१ । पुरोहित:—वसिष्ठ: इत्यर्थ: । २ । सत्य-धृति:—सत्यमेव धृति: (धार्य्ये) यस्य स:, सत्य-शील: । शीतांशुमान्—चन्द्र: । अत्र मतुप्-प्रत्ययोऽतिरिक्त एव । ३ । निहत-कण्टकम्—[राम वन-वासात्] । मुदितामात्यम्—मुदिता: (हर्षिता:, आनन्दिता:) अमात्या: येन तम् ।

तच्छ्रुत्वा भरतो वाक्यं, शोकेनाभिपरिप्लुतः ;
जगाम मनसा रामं, धर्म-ज्ञो, धर्म-काङ्क्षया। ४

स, बाष्प-कलया वाचा, कल-हंस-स्वरो युवा
निजगाद सभा-मध्ये—जगर्हे च पुरोहितम्,— ५

"कथं दशरथाज् जातो भवेद् राज्यापहारकः ?
राज्यं चाहं च रामस्य। धर्म्यं वक्तुमिहार्हसि। ६

तं निवर्तयितुं बुद्धिः, वन-वासात्, कृता मया।
न केनचिदियं शक्या ; प्रत्यक्षं वो ब्रवीम्यहम्।" ७

तद् वाक्यं धर्म-संयुक्तं श्रुत्वा, सर्वे सभा-सदः
हर्षान् मुमुचुरश्रूणि, रामे निहित-चेतसः। ८

ततः श्वेतैर् हयैर् युक्तमास्थाय स्यन्दनोत्तमम्,
प्रययौ भरतः, श्रीमान्, राम-दर्शन-काङ्क्षया। ९

अग्रतः प्रययुस्तस्य सर्वे मन्त्रि-पुरो-गमाः,
अधिरुह्य हयैर्युक्तान् रथान्, सूर्य-रथोपमान्। १०

दश नाग-सहस्राणि, कल्पितानि यथा-विधि,
अन्वयुर्भरतं यान्तमिक्ष्वाकु-कुल-नन्दनम्। ११

षष्टी रथ-सहस्राणि धन्विनां, सायुधानि वै,
अन्वयुर्भरतं यान्तं राज-पुत्रं महा-बलम्। १२

४। मनसा जगाम—सस्मार। ५। बाष्प-कलया—बाष्प-रोधात् मधुराऽस्फुटया। वाचा—स्वरेण। जगर्हे—निनिन्द। ६। धर्म्यम्—धर्म-सङ्गतम् [वाक्यम्]। ७। इयम्—बुद्धिः इति शेषः। शक्या—निवर्तयितुमिति शेषः। प्रत्यक्षम्—समक्षम्, publicly. १०। पुरो-गमाः—श्रेष्ठाः। ११। कल्पितानि—सज्जितानि। १२। आयुधाः—अस्त्र-शस्त्राणि। येन कर-धृतेन हन्यते तत् शस्त्रं, खड्गादि। येन क्षिप्तेन हन्यते तदस्त्रं,

शतं चाश्व-सहस्राणि समारूढ़ानि राघवम्
अन्वयुर्भरतं यान्तं राज-पुत्रं यशस्विनम् । १३

कैकेयी च, सुमित्रा च कौशल्या च यशस्विनी,
रामानयन-सं-हृष्टा, ययुर् यानै:, प्रभास्वरै: । १४

प्र-ययौ चार्य-सङ्घातो रामं द्रष्टुं, स-लक्ष्मणम्,
तस्यैवेष्टा: कथा: सर्वं कुर्वन्तो, हृष्ट-मानसा: । १५

स, गत्वा दूरमध्वानम्, अ-परिश्रान्त-वाहन:,
उवाच भरतो, धीमान्, शत्रुघ्नं शिष्ट-सम्मतम्,— १६

"यादृशं लक्ष्यते रूपं, यादृशं च श्रुतं मया,
व्यक्तं प्राप्ता: स्म तं देशं भरद्वाजो यमब्रवीत् । १७

अयं गिरिश्चित्रकूट, इयं मन्दाकिनी नदी ;
एतत् प्रकाशते दूरान् नील-मेघ-निभं वनम् । १८

साधु सैन्या: प्रतिष्ठन्तां, विचिन्वन्तु च काननम् ;
यथा तौ पुरुष-व्याघ्रौ पश्येयं, तद् विधीयताम् ।" १९

भरतस्य वच: श्रुत्वा, पुरुषा: शस्त्र-पाणय:
विविशुस्तद् वनं । वीरा धूमं च ददृशुस्तत: । २०

ते, तदालोक्य धूमाग्रम्, ऊचुर् भरतमीश्वरम्,—
"नामानुषो भवत्यग्निर्—ध्रुवमत्रैव राघवौ ।" २१

श्वाश्वादि । अनु: अगमन् । १४ । प्रभास्वरै:—प्रोज्ज्वलै: । १५ । चार्य सङ्घात:—कुलीन वृन्दम् । १६ । शिष्ट सम्मत:—साधु जन समादृत: । १७ । स्म—स्म: । छान्दसो विसर्ग-लोप: । १९ । साधु—यथोचितम्, यथा विधि । प्रतिष्ठन्ताम्—गच्छन्तु । २१ । धूमाग्रम्—धूम-शिखा ।

निविष्टायां तु सेनायाम्, उत्सुको भरतस्तदा
जगाम, भ्रातरं द्रष्टुं, शत्रुघ्न-सहितो, विभुः ; २२

ददर्श महतीं पुण्यां पर्ण-शालां, मनो-रमाम्,
साल-तालाश्वकर्णानां पर्णैर् बहुभिराहृताम्— २३

विशालामूर्ध्व-विस्तारां—दर्भैर् वेदिमिवाध्वरे,
शक्रायुध-निकाशाभ्यां कार्मुकाभ्यां विभूषिताम्— २४

महद्भ्यां रुक्म-पृष्ठाभ्यां नागाभ्यामिव चावृताम्,
अर्क-रश्मि-प्रतीकाशैर् घोरैस् तूण-गतैः शरैः २५

शोभितां—दीप्त-वदनैः सर्पैर् भोगवतीमिव,
महा-रजत-वासाभ्यामसिभ्यां च विराजिताम्, २६

रुक्म-बिन्दु-वि-चित्राभ्यां चर्मभ्यां चापि शोभिताम्,
गोधाङ्गुलि-त्रैरासक्तैश्चित्रैः कनक-भूषितैः,
अरि-सङ्घैरनाधृष्यां—मृगैः सिंह-गुहामिव। २७

प्रागुदक्-प्रवणे देशे वेदीं सं-दीप्त-पावकाम्
ददर्श भरतस्तत्र पुण्यां राम-निवेशने। २८

स, विलोक्य मुहूर्तं तु, ददर्श भरतो गुरुम्
उटजे राममासीनं, जटा-वल्कल-धारिणम्, २९

२२। उत्सुकः—उत्कण्ठितः, व्यग्रः। २३। शालाः—वट पलाशाद्याः वृक्षाः विशाल-पर्णवन्तो वृक्षाः। २४। अध्वरः—यज्ञः। शक्रायुध निकाशाभ्याम्—इन्द्र-धनुस्-तुल्याभ्याम्। २५। अर्क-रश्मि प्रतीकाशैः—सूर्य-किरण-तुल्यैः। २६। भोगवती—नाग-वासः। महा रजत-वासाभ्याम्—सुवर्ण पार्श्वाभ्याम्। विराजिताम्—वि-दीपिताम्, उज्ज्वली-कृताम्। २७। रुक्म बिन्दु-वि-चित्राभ्याम्—स्वर्ण बिन्दुभिः स-विचित्र-चित्रिताभ्याम्। चर्म—फलकम्, s.n, a shield. गोधाङ्गुलि-त्रैः—गोधा-चर्म-कृतैः

सिंह-स्कन्धं, महा-बाहुं, पुण्डरीक-निभेक्षणम्,
पृथिव्या: सागरान्ताया गोप्तारं, धर्म-चारिणम्, ३०

महात्मानं महा-भागं ब्रह्माणमिव शाश्वतम्,
महोपविष्टमासीनं सीतया लक्ष्मणेन च। ३१

अभ्यधावत धर्मात्मा भ्रातरं कैकयी-सुत:,
अशक्नुवन् धारयितुं धैर्यं; वचनमब्रवीत्,— ३२

"यो हस्त्यश्व-रथै: पूर्वं सर्वत: परिवार्यते,
वन्यैर् मृगै: परिवृत: सोऽयमास्ते ममाग्रज:। ३३

यस्य यज्ञैर् यथोद्दिष्टैर् युक्तो धर्मस्य सञ्चय:,
शरीर-क्लेश-सम्भूतं स धर्मं परिमार्गति। ३४

चन्दनेन महार्हेण यस्याङ्गमुपलेपितम्,
मलेन तस्याङ्गमिदं कथमार्यस्य सेव्यते ? ३५

वासोभिर् बहु-साहस्रैर् यो वै निवसित: पुरा,
धृताजिन: सोऽयमिह प्रसुप्तो जगती-तले। ३६

अधारयद् यो विविधाश्चित्रा: सु-मनस: स्रज:,
सोऽयं जटाभारमिमं सहते राघव: कथम् ?" ३७

अङ्गुलि-भागै:। उपलक्षितामिति शेष:। २८। प्रागुदक्-प्रवणे—ईशान भागे निम्ने। ३१। शाश्वतो ब्रह्मा—नित्यो ब्रह्मा, हिरण्य-गर्भ:। ३२। अभ्यधावत—धावित्वा त्वरया जगाम। धारयितुम्—अवलम्बितुम्। ३३। परिवार्यते—वेष्ट्यते। परिवृत:—वेष्टित:। ३४। यथोद्दिष्टै:—यथोपदिष्टै:, यथा विहितैरित्यर्थ:, ऋत्विक्-क्लेश-साध्यैरिति भाव:। सम्भूतम्—उत्पन्नम्। परिमार्गति—अन्विच्छति। ३६। वासोभि:—वस्त्रै:। बहु-साहस्रै:—बहु-सहस्र-द्रव्य-मूल्यै:। धृताजिन:—धृते (परिहिते) अजिने (मृग-चर्मणी [अन्तरीयोत्तरीय-रूपे] येन स:। ३७। स्रज:—माला:।

इत्यसौ, विलपन्, दीन:, प्र-खिन्न-मुख-पङ्कज:,
पादावुपेत्य रामस्य प्रापतद् भरतो, रुदन्। ३८

दु:खाभितप्तो भरतो, राज-पुत्रो, महा-बल:,
उक्त्वार्येति सकृद्, दीन:, पुनर् नोवाच किञ्चन। ३९

बाष्पापिहित-कण्ठो हि, रामं प्रेक्ष्य, यशस्विनम्,
आर्येत्येवं समाभाष्य व्याहर्तुं नाशकत् तदा। ४०

शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववन्दे चरणौ, रुदन्;
तावुभौ च समालिङ्ग्य रामोऽप्यश्रूण्यवर्तयत्। ४१

द्वा-विंश: सर्ग:।

अनुनय:।

आघ्राय तु, स तं मूर्ध्नि, परिष्वज्य च, राघव:,
अङ्के भरतमारोप्य, पर्यपृच्छत्, समाहित:,— १

"क्व नु, तात, पिता तेऽभूद्, यदरण्यं त्वमागत:?
न हि त्वं, जीवतस्तस्य गुरोर्, आगन्तुमर्हसि। २

चिरस्य बत पश्यामि दूराद् भरतमागतम्।
दुष्प्रणीतमरण्येऽस्मिन् किं, तात, वनमागत:? ३

३८। प्र-खिन्नम्—अतिशय यथा खिन्नम्। ३९। सकृत्—एक वारम्। ४०। अपिहित:—बद्ध:। व्याहर्तुम्—वक्तुम्।

१। समाहित:—कुशल प्रश्न करणे धर्म बोधने सावधान-चित्त:। २। नु—इव प्रश्न वा इत्यर्थ:। अभूत्—आमन्त्र भूते लुङ्। पाणिनि:, ३।२।११० । जीवतस्तस्य—जीवन्तं तमनादृत्य। अनादरे षष्ठी। जीवतस्तस्य भेत्तः हित्वा इत्यर्थ:। ३। चिरस्य—चिरात्, चिरेण, long after. बत—हन्त, oh. दुष्प्रणीतम्—दुष्प्रवेशम्। अरण्यम् & वनम्—अरण्यं मनुष्याणामुपभोग्यम् अति भीषणम्, तद्वर्ति वनम् व्याघ्रादि-युक्त मनुष्य-

कच्चिद् दशरथो राजा कुशली, सत्य-सङ्गरः,
राज-सूयाश्व-मेधानामाहर्ता, धर्म-तत्त्व-वित्। ४

स कच्चिद् ब्राह्मणो विद्वान् धर्म-नित्यस् तपो-धनः,
इक्ष्वाकूणामुपाध्यायो यथावत्, तात, पूज्यते। ५

तात, कच्चिच्च कौशल्या सुमित्रा च, यशस्विनी,
सुखिता ; कच्चिदार्या च देवी नन्दति कैकयी। ६

कच्चिदग्निषु ते युक्तो ब्राह्मणो मतिमानृजुः
हुतं च होष्यमाणं च काले वेदयते सदा। ७

इष्वस्त्रे परमाचार्यमस्त्र-शास्त्र-विशारदम्
सु-धन्वानमुपाध्यायं कच्चित् त्वं नावमन्यसे। ८

कच्चिदात्म-समाः शूराः श्रुतवन्तो जितेन्द्रियाः
कृत-शास्त्रेङ्गित-ज्ञाश्च भक्तास्ते, तात, मन्त्रिणः। ९

कच्चित् कृषि-करैस्, तात, सु-निविष्टो, जनाकुलः,
देव-स्थानैः प्रपाभिश्च तडागैश् चोपशोभितः, १०

प्रहृष्ट-नर-नारीकः, समाजोत्सव-भूषितः,
सु-कृष्ट-सीमः, पशुमान्, वि-हिंसा-परिवर्जितः,— ११

भाव्यम्। ४। सत्य-सङ्गरः—सत्य-प्रतिज्ञः। आहर्ता—यज्ञानां सम्पादयिता। ५। उपाध्यायः—अध्यापकः, उपदेशकः, वशिष्ठः इत्यर्थः। ६। नन्दति—हृष्यति। मम वन-वासात् तव राज्य-लाभाच्च इति व्यङ्ग्यः। ७। युक्तः—नियुक्तः। ऋजुः—सरलः। काले—होम-काले। हुतं च होष्यमाणं च—अग्निमिति शेषः। वेदयते—जानाति। ८। इषुः—अ-मन्त्रो बाण-प्रयोगः। अस्त्रम्—स-मन्त्रको बाण-प्रयोगः। सु-धन्वानम्—सु-धन्वा इत्याख्याम्। उपाध्यायम्—धनुर्वेदाचार्यम्। ९। श्रुतवन्तः—शास्त्र-ज्ञाः। इङ्गित-ज्ञः—केन चेष्टितेन कोऽभिप्रायः सूच्यते इति यो जानाति सः। १०। सु-निविष्टः—सु-प्रतिष्ठितः। जनाकुलः—जनैः आकुलः (निबिडः)। प्रपाभिः—

अ-देव-मातृकः कच्चित् श्वापदैश्च विवर्जितः—
कच्चिज् जन-पदः, स्फीतः, सुखं वसति, राघव । १२
कच्चित् ते निरता वैश्याः कृषि-गो-रक्ष-कर्मसु ;
वार्तायां संश्रितस्, तात, लोको हि कृषि-जीवनः । १३
तेषां गुप्ति-परीहारैः कच्चित् ते धारणा कृता ।
रक्ष्या हि राज-धर्मेण सर्वे विषय-वासिनः । १४
कच्चित् संग्राम-नीति-ज्ञः शूरस्ते वाहिनी-पतिः
अ-संहार्योऽनुरक्तश्च हिते नित्यं च तिष्ठति । १५
कच्चित् पूर्वानुरक्तास्ते कुल-पुत्राः प्रधानतः
आहवेषु प्रियान् प्राणान् सं-त्यजन्ति, समाहिताः । १६
कच्चित् सदा ते दुर्गाणि धन-धान्योदकायुधैः
यन्त्रैश्च परिपूर्णानि तथा शिल्पि-धनुर्धरैः । १७
आयस्ते विपुलः कच्चित्, कच्चिदल्पतरो व्ययः ;
अ-पात्रेषु न ते कच्चित् कोषो गच्छति, पार्थिव । १८

कूपैः । मनु-भाष्यम्, ८ । २१९ । ११ । सु-कृष्ट-सीमः—सुकृष्टाः सीमाः (तत् तत् ग्राम-देशाः) यस्मिन् सः । १२ । अ-देव-मातृकः—नदी मातृकः, नद्यम्बु-जीवनः । 'नद्यम्बुजीवनो देशो नदी मातृक उच्यते, वृष्टि निष्पाद्य सस्यस्तु विज्ञेयो देव-मातृकः ।' १३ । रक्षः—रक्षा । वार्तायाम्—कृषि-गो-रक्षादौ । संश्रितः—प्रतिष्ठितः । १४ । तेषाम्—कृष्यादि-जीविनाम् । गुप्ति परीहारैः—इष्ट प्रापणानिष्ट-परीहारैः । धारणा—स्थिरता । विषय-वासिनः—देश वासिनः । १५ । शूरः—पर योधाभिभव-समर्थः । वाहिनी—सेना । अ-संहार्यः—अ-विनाश्यः । १६ । कुल पुत्राः—ज्ञातयः । प्रधानतः—प्रधानाः । पाणिनिः, ५ । ४ । १४ । समाहिताः—[युद्धे] सावधान-चित्ताः । १८ । आयः—धनागमः । व्ययः—सीम धन-रक्षार्थः त्यागः । अपात्रेषु—नट-नायकादिषु इति भावः । कोषः— धन-राशिः ।

कच्चिद् विवदतोऽर्थेषु बलिनो दुर्बलस्य च
अ-पक्ष-पातात् पश्यन्ति कार्येष्वधिकृता नराः। १९
यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि रोदताम्,
तानि पुत्र-पशून् घ्नन्ति तेषां मिथ्याभिशंसिनाम्।" २०
तथा चैवानुपृच्छन्तं रामं, व्यथित-चेतनः,
अश्रावयद् भृशार्तोऽसौ भरतो मरणं पितुः,— २१
"आर्य, राज्यं परित्यज्य, कृत्वा कर्म सु-दुष्करम्,
गतः स्वर्गं महा-राजः, पुत्र-शोकाभि-पीड़ितः। २२
दुष्टां स्त्री-बुद्धिमास्थाय, कैकेयी, राज्य-कामिनी,
चकार सु-महत् पापमिदमम्बा, यशो-हरम्। २३
सा, राज्य-फलम-प्राप्य, वि-धवा, शोक-कर्षिता,
पतिष्यति महा-घोरं निरयं जननी मम। २४
तस्य मे दास-भूतस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि,—
अभिषिच्यस्व राज्येन नाकेन मघवानिव। २५
इमाः प्रकृतयः सर्वा, वि-धवा मातरश्च मे
त्वत्-सकाशमनुप्राप्ताः:—प्रसादं कर्तुमर्हसि! २६

१९। विवदतः—विवदमानस्य। परस्मै पदमार्षम्। पाणिनिः, १।३।४७। अर्थेषु—व्यवहारेषु, विचार-क्रियासु। अ-पक्ष-पातात्—अ-पक्ष-पातमवलम्ब्य, पक्ष-पातं परित्यज्य। ल्यप्-लोपे कर्मणि पञ्चमी। अधिकृताः—अधिकार-प्राप्ताः, authorised.
२०। मिथ्याभिशस्तानाम्—राज्ञा विचारे अ-निर्णीत-मिथ्याभियोगानाम्। २२। 'क्व नु तात पिता मेऽभूत्' इति प्रश्नस्य उत्तरमाह, आर्येति। कृत्वा कर्म सु-दुष्करम्—ज्येष्ठ-प्राप्यं राज्यं कनीयसे दत्त्वा। २३। शोकोऽयं [illegible] इति मन्यमानो [illegible]। २४। निरयम्—निरये, नरके। क्रियायाः गत्यर्थत्वात् अधिकरणे कर्मत्वारोपः। २५। राज्येन—राज्य-निमित्तम्। नाकेन—स्वर्गेण। राज्येन नाकेन—

त्वमानुपूर्व्या पुत्रश्च, पुत्रं कालेन, मान-द,
राज्यं प्राप्नुहि धर्मेण—स-कामान् सुहृदः कुरु। २७

शाश्वतोऽयं सदा धर्मः स्थितोऽस्माकं, नरर्षभ,—
ज्येष्ठे त्वयि स्थिते रामे कनीयान् न भवेन् नृ-पः। २८

भवत्व-वि-धवा भूमिस्त्वया पत्या समन्विता,
शशिना विमलेनेह शारदी रजनी यथा। २९

एभिश्च सचिवैः सार्धं शिरसा याचितो मया,—
भ्रातुः शिष्यस्य दासस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि। ३०

तदिदं शाश्वतं सर्वं, पित्रा सचिव-मण्डलम्
पूजितं, मनुज-व्याघ्र,, नातिक्रमितुमर्हसि।" ३१

एवमुक्त्वा, महा-बाहुः, स-बाष्पः, कैकयी-सुतः,
रामस्य, शिरसा, पादौ जग्राह भरतस्तदा। ३२

तमार्तमिव मातङ्गं निः-श्वसन्तं मुहुर्मुहुः,
भरतं भ्रातरं रामः परिष्वज्येदमब्रवीत्,— ३३

"कुलीनः, सत्त्व-सम्पन्नस्तेजस्वी, चरित-व्रतः,
राज्य-हेतोः कथं पापमाचरेन् मद्-विधो जनः? ३४

न दोषं त्वयि पश्यामि सूक्ष्ममप्यरि-सूदन,
न चापि जननीं बाल्यात् त्वं वि-गर्हितुमर्हसि। ३५

'कालेन राज्यम्' इति गोरेसियः पठति। २६। प्रकृतयः—अमात्याः। २७। आनुपूर्वी—अनुक्रमः, पर्यायः, order. २८। शाश्वतः—कुल-क्रमागतः इत्यर्थः। धर्मः—नियमः, law. २९। विमलेनेह—'विमलेनेव' इति पाठम् गोरेसियोरमत्। ३१। शाश्वतम्—परम्परा-प्राप्तम् इत्यर्थः। ३४। कुलीनः—महा-कुलः, आर्यः, सज्जनः। पापम्—पित्राज्ञा-भङ्ग-रूपम् इति शेषः। ३५। बाल्यात्—अ-ज्ञानादित्यर्थः।

त्वया राज्यमयोध्यायां प्राप्तव्यं, लोक-सत्-कृतम् ;
वस्तव्यं दण्डकारण्ये मया, वल्कल-वाससा ;— ३६

एवं कृत्वा महा-भागो विभागं लोक-सन्निधौ,
व्यादिश्य चैव, धर्मात्मा, दिवं दशरथो गतः । ३७

स चेत् प्रमाणं, राजेन्द्रो, राजा, लोक-गुरुस्, तव,
पित्रा दत्तं महा-भागमुपभोक्तुं त्वमर्हसि । ३८

चतुर्दश समाः, सौम्य, दण्डकारण्यमाश्रितः,
उपभोक्ष्ये, यथा दत्तं, भागं, पित्रा महात्मना ।" ३९

ततो मन्दाकिनी-तीरे, शुचौ देशे, नराधिपः
पितुर् व्यवर्तयच्, छ्रीमान्, निवापं, भ्रातृभिः सह । ४०

ऐङ्गुदं बदरीमिश्रं पिण्याकं दर्भ-संस्तरे
न्युप्य रामः, सु-दुःखार्त, इदं वचनमब्रवीत्,— ४१

"इदं भुङ्क्ष्व, महा-राज, प्रीतो, यदशना वयम्—
यदन्नः पुरुषो भूनं, तदन्नाः पितृ-देवताः ।" ४२

ततः पर्ण-कुटी-द्वारमागत्य, जगती-पतिः
परिजग्राह पाणिभ्यामुभौ भरत-लक्ष्मणौ । ४३

वसिष्ठः, पुरतः कृत्वा दारान् दशरथस्य, सः
अभिचक्राम तं देशं, राम-दर्शन-काङ्क्षया । ४४

ततस्तु, त्वरितं गत्वा, सर्वा नृपति-योषितः
अपश्यन्नाश्रमे रामं, स्वर्ग-च्युतमिवामरम् । ४५

३७। व्यादिश्य—आज्ञाप्य। ४०। व्यवर्तयत्—सम्पादयत्। निवापः—पितृदानम्। ४१। पिण्याकः—तिलकल्कः, oil cake.

तं, शोकैः सम्परिक्लान्तं, रामं प्रेक्ष्यैव, मातरः,
आर्त्ताः, मुमुचुरश्रूणि, स्व-स्वरं, शोक-लालसाः। ४६

तासां, रामः, समुत्थाय, जग्राह चरणान् शुभान्
मातॄणां, मनुज-व्याघ्रः, सर्वासामनु-पूर्वशः। ४७

पाणिभिः, सुख-सं-स्पर्शैर्, मृद्वङ्गुलि-तलैः, शुभैः,
मूर्धन्याघ्राय तं रामं, रुरुदुः पार्थिव-स्त्रियः। ४८

सौमित्रिरपि ताः सर्वाः, स, मातॄः, शोक-कर्षिताः,
अभ्यवादयत, प्रह्वो, दीनो, रामादनन्तरम्। ४९

यथा रामे तथा तस्मिन् सर्वा ववृतिरे स्त्रियः
वृत्तिं दशरथाज् जाते लक्ष्मणे, शुभ-लक्षणे। ५०

सीतापि रुदती, तासां पदं स्पृष्ट्वा, सु-दुःखिता,
श्वश्रूणाम्, अश्रु-पूर्णाक्षी, सा बभूवाग्रतः स्थिता। ५१

तां परिष्वज्य, कौशल्या, माता दुहितरं यथा,
वन-वास-कृशां, दीनामिदं वचनमब्रवीत्,— ५२

"विदेह-राजस्य सुता, स्नुषा दशरथस्य च,
राम-पत्नी, कथं दुर्गं वनं प्राप्तासि, जानकि? ५३

पद्ममातप-सन्तप्तं, परि-क्लिष्टमिवोत्पलम्,
मुखं ते प्रेक्ष्य, मां शोको दहत्यग्निरिवाश्रयम्।" ५४

४६। शोक-लालसाः—शोकेन लालसाः (लोलुपाः, पुत्र-सङ्ग-लोलुपाः इत्यर्थः)।
४७। अनु-पूर्वशः—ज्येष्ठत्वानु-क्रमेण। ५४। परि-क्लिष्टम्—परि-मर्दितम्, दलितम्।
उत्पलम्— रक्तोत्पलम्।

त्रयो-विंशः सर्गः।

जाबालेरुपदेशः।

अथ रामम्, अनिच्छन्तं गमनाय पुरं प्रति,
राज्ञो नैयायिकस्, तेषां सम्मतः, सर्व-शास्त्र-वित्, १

आश्वासयंश्च भरतं, जाबालिर् ब्राह्मणोत्तमः,
उवाच रामं, धर्म-ज्ञो, धर्मापेतमिदं वचः,— २

"साधु, राघव, मा ते भूद् बुद्धिरेवं निरर्थका,
नरस्य प्राकृतस्येव, गर्ह्या बुद्धिस्तपस्विनः। ३

कः कस्य पुरुषो बन्धुः, किं कार्य्यं कस्य केनचित्,
यदेको जायते जन्तुरेक एव वि-नश्यति। ४

तस्मात् माता पिता चैव प्रतिश्रय-समावुभौ।
उन्मत्त इव विज्ञेयो, योऽत्र सज्जेत वै नरः। ५

यथा, ग्रामान्तरं गच्छन्, नरः कश्चित् क्वचिद् वसेत्,
उत्सृज्य च तमावासं प्रतिष्ठेतापरेऽहनि, ६

एवमेव मनुष्याणां पिता माता गृहं वसु
आवासमात्रं, काकुत्स्थ; तत्रालं काम-चिन्तया। ७

नीरजस्कं समं हित्वा पन्थानम्, अ-कुतो-भयम्,
आस्थातुं नार्हसे, वीर, का-पथं, बहु-कण्टकम्। ८

२। धर्मापेतम्—धर्म-मार्ग-विरुद्धम्, लोकायतिक-मतावलम्बनम् इति यावत्। 'धर्मोपेतम्' इति गोरेशियोः पठति। धर्मोपेतम्—धर्म-सङ्गतम्। ३। एवम्—इत्थं-वचः पाठनीयम् एवं-रूपा। ४। कार्य्यम्—कर्तव्यम्। ५। प्रतिश्रयः—आश्रयः, गृहम्। सज्जेत—आसक्तो भवेत्। ७। आवासमात्रम्—[पान्थशालामिव]। ८। अर्हसि

समृद्धायामयोध्यायामात्मानमभिषेचय ;
एक-वेणी-धरा हि त्वां नगरी सं-प्रतीक्षते । ८

न ते कश्चिद् दशरथस्त्वं च तस्य न कश्चन ;
अन्यो राजा, त्वमप्यन्यस् ; तस्मात् कुरु यदुच्यते । १०

गतः स नृपतिस्तत्र, गन्तव्यं यत्र तेन वै ;
प्रवृत्तिरेषा भूतानां ; त्वं तु मिथ्या वि-हन्यसे । ११

"अथ धर्म-विदो ये ये, तां स्तान् पृच्छामि, नेतरान् ;
ते हि दुःखमनुप्राप्य विनाशं प्रेत्य भेजिरे । १२

अष्टकाः, पितृ-दैवत्यः, कार्याभि-प्रसृतो जनः,—
अन्नस्योपद्रवं पश्य । मृते किमशिष्यते ? १३

यदि भुक्तमिहान्येन कायमन्यस्य गच्छति,
दद्यात् प्रवसतः श्राद्धं, न स पथ्योदनं वहेत् । १४

दान-सं-वर्धना ह्येते ग्रन्था मेधाविभिः कृताः,—
'यजस्व', 'देहि', 'दीक्षस्व', 'तपस्तप्यस्व', 'सन्त्यज' ! १५

—अर्हसि । आत्मनं-पदमार्षम् । ८ । एक-वेणी-धरा—एक-वेणी-धरत्वम् विरहिणी-लक्षणम् । १० । अन्यो राजा—त्वम् जनकाद् अन्यः सम्प्रति राजा भवसि । यत्—राज्य कुरु इति यत् । ११ । यत्र—येषु भूतेषु । तत्र—तेषु । गतः—लीनः, लयं प्राप्तः । एषा—लय-प्राप्ति रूपा । प्रवृत्तिरेषा भूतानाम्—सर्वे एव मर्त्याः पञ्च-भूतेभ्यो जायन्ते, तेष्वेव लीयन्ते च । अतएव न कश्चित् कस्य कस्यचित् कोऽपि सम्बन्धोऽस्तीति बोध्यम् । वि-हन्यसे—राज्य-रूपात् पुरुषार्थात् इति शेषः । १२ । 'अथ···भेजिरे'—विनाशे इति उपार्जित-धर्मस्य कुत्र अवस्थितिः ? इति शेषः । पृच्छामि—शोचामीति पाठान्तरम् । १३ । अष्टकाः—कृष्णाष्टम्यः, प्राधान्येन हेमन्त-शिशिरयोः कृष्णाष्टम्यः ; अष्टकासु कर्तव्यानि पितृ-श्राद्धानि । पितृ-दैवत्यः—अष्टकासु कर्तव्यः पितृ-यज्ञः । कार्याभिप्रसृतः—कर्तव्य-कर्मणि प्रवृत्तः । उपद्रवः—वि-नाशः । १४ । दद्यात्—श्राद्ध-कारी [illegible] ।

"स 'नास्ति परम्' इत्येतां कुरु बुद्धिं, महा-मते!
परोक्षं मा मतं कार्षीः; प्रत्यक्षं कुरु, राघव। १६

सतां बुद्धिं पुरस्कृत्य, सर्व-लोक-नि-दर्शिनीम्,
राज्यं त्वं प्रतिगृह्णीष्व, भरतेन प्रसादितः। १७

रघुर् दिलीपः सगरो दुष्यन्तश्च नरर्षभः,—
एते चान्ये च बहवो नर-लोकाधिपोत्तमाः, १८

प्रियान् पुत्रांश्च दारांश्च हित्वा, काल-वशं गताः।
एतेषां नाम-मात्राणि श्रूयन्ते हि मही-क्षिताम्। १९

यश्चैतान् काङ्क्षते यत्र, स च तां तत्र मन्यते,
इति नास्ति व्यवस्थास्मिन्। क्वेदं सन्तिष्ठते जगत्? २०

अयमेव परो लोकस्, तस्मात् त्वं सुख-भाग् भव;
न हि धर्म-परः सर्वः सुखायैवोपपद्यते।" २१

इति श्रुत्वा वचस्तस्य, मन्द-कोपोऽपि, राघवः
अ-शेषं परि-चुक्रोध, नास्तिक्यमनुदर्शितः। २२

पाणिनिः, १।३।१६१। पर्य्यादनम्—पाथेयम्। १५। कुरुष्व—देव-पूजां कुरु। दैवि—यज्ञादि इति शेषः। दीयस्व—दानार्थम् इति शेषः। तपः—चान्द्रायणादि। सन्न्यस [संसारम्]—प्रव्रज। प्रथमा पंक्तिः—[एवम्-परा] दान-संवर्धना (दान-वृत्ति साधन-भूताः) एते (वेदादयो) ग्रन्थाः मेधाविभिः (वार्तादिना जीवने क्षमं पश्यद्भिः पण्डितैः) कृताः। १६। परः—परो लोकः। परोक्षम्—अनुमान शब्दादि-गम्यम्। प्रत्यक्षम्—इन्द्रिय-ग्राह्यम् [मतम्]। १७। सताम्—प्रत्यक्ष सिद्धस्यैव सत्त्वं वदताम्। 'स ताम्' इति गोरेसियो-धृतः पाठः। स [त्वं] ताम् (उक्ताम्)। सर्व-लोक-नि-दर्शिनीम्—सर्व-लोक-हित-दर्शिनीम्। १९। मही-क्षित्—भू-पतिः, राजा। २०। काङ्क्षते—काङ्क्षति। आत्मने-पदमार्षम्। सन्तिष्ठते—अवतिष्ठते। 'समव-प्र-विभ्यः स्थः [आत्मने-पदम्]',—पाणिनिः, १।३।२२। २१। उपपद्यते—उपपन्नो भवति।

उवाच च वचः स्निग्धितं, स-क्रोधो, लक्ष्मणाग्रजः,—
"नाहं पितृ-समादेशाद् विचलेयं, समाश्रितः । २३

यद्यहं जीवतः श्रुत्वा वचः, कुर्यां मृतेऽन्यथा,
ननु सर्वस्य लोकस्य क्लीव-ग्रहणमाप्नुयाम् । २४

न ह्यहं, हेतु-वचनैरेभिरेवं निरर्थकैः,
त्वया चालयितुं शक्यो, वातैरिव मही-धरः । २५

"कर्मणामपि वैफल्यं यदात्थ, बहु-गर्हितम्,
एतदप्यर्थ-विद्विष्टं नोदाहर्तुमिहार्हसि । २६

यदा क्रतु-शतैरिन्द्रः प्राप्तः स्थानं, सुराधिपः,
प्रमाणं तद् ऋतं चैव । कस्मात् तद् वि-तथं तु ते ? २७

सत्यात्रेय-सुतश्चापि मम मित्रं च कौशिकः,
तपोभिः स्थान-माहात्म्यं प्रापुर् अन्ये तथर्षयः । २८

"भवत्विदं कर्तुमिहाद्य निष्फलं,
यथा तथा वास्तु यथा त्वमिच्छसि ;
पितुर् नियोगान् न चलेयमाहृताद्,
व्रतान् महर्षिः परमादिवाहितात् । २९

"कुलीनम-कुलीनं वा नरं पुरुष-मानिनम्
चारित्र्यमेव व्याचष्टे, शुभं वा यदि वाशुभम् । ३०

२३। विचलेयम्—अव्यवसाये लिङ्। २४। क्लीव ग्रहणम्—क्लीव इति नाम्ना स्वीकरणम्। २५। हेतु वचनैः—हेतु-वादैः, युक्तिभिः। २६। अर्थ-विद्विष्टम्—पुरुषार्थ-विवर्जितम्। उदाहर्तुम्—वक्तुम्। २७। ऋतम्—सत्यम्। वि-तथम्—मिथ्या। २८। सत्यात्रेयः—कश्चिद् वैदिक ऋषिः। स हि ऋग्वेद संहितायाः पञ्चम मण्डलस्य पञ्चाशत्तमस्य एक-पञ्चाशत्तमस्य च सूक्तस्य रचयिता। २९। यथा तथा—यथा कथञ्चित्,

राज-वृत्तं किल लोक: कृत्स्न: समनुवर्तते,—
यद्-वृत्ता: सन्ति राजानस् तद्-वृत्ता: सन्ति मानवा: । २१

सत्यं चैवानृशंस्यं च राज-वृत्तं सनातनम्,
तस्मात् सत्यात्मकं राज्यं, सत्ये लोका: प्रतिष्ठिता: । २२

"दत्तमिष्टं हुतं चैव तपो यज्ञाश्च केवला:—
सत्य-मूलानि सर्वाणि, सत्यान् नास्ति परं तप: । २३

ऋषयो देवताश्चैव सत्यमेव समासते,
सत्य-वादी हि लोकेऽस्मिन् प्रेत्य गच्छति सद्-गतिम् । २४

उद्-विजन्ते यथा सर्पात्, तथैवानृतिकाज् जनात् ;
धर्म: सत्य-परो लोके ; मूलं धर्मस्य सत्यता । २५

सत्यमेवेश्वरो लोके, सत्ये श्रीर् नियतं स्थिता ;
सर्वं सत्य-प्रतिष्ठानं ; तस्मात् सत्य-परो भवेत् । २६

नैव लोभान् न मोहाद् वा नाप्य-ज्ञान-समन्वित:
सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि, गुरो: सत्य-प्रतिश्रवम् !" २७

येन केनचित् प्रकारेण। आहितात्—गृहीतात् इत्यर्थ: । २० । चारित्र्यम्—आचार: । २२ । सत्यमेव—सत्य वचनमेव । आनृशंस्यम्—भूतानुकम्पा । सनातनम्—अनादि-कालात् सिद्धम् । राज वृत्तम्—राजाचार: । सत्यात्मकम्—सत्यैक-प्रतिष्ठितम् । २३ । केवला:—कृत्स्ना:, समस्ता:, entire. 'सत्य मूलानि सर्वाणि'—[दान-हवनादीनि प्रतिपादयतां वेदानां सत्य प्रतिष्ठानत्वात् । वेदा हि सत्यादीश्वरात् श्वास-प्रश्वासवत् आविर्भूता: ।] दत्तम्—दानम् । हुतम्—हवनम् । २४ । समासते—नियामकत्वेन स्वी-कुर्वन्ति । २५ । उद्विजन्ते—बिभ्यति । आनृतिकात्—आनृतिन:, मिथ्या-वादिन: । २६ । सत्यमेव—सत्य-पद वाच्य एव । २७ । लोभात्—राज्यस्य प्रति प्रेम: । मोहात्—धर्म-विस्मरणात् । अ-ज्ञान समन्वित:—[प्रतिज्ञा-ज्ञानी सो दोषवान्] ज्ञानेन अ-युक्त: । सत्य-प्रतिश्रवम्—सत्य-प्रतिज्ञम् ।

चतुर्विंशः सर्गः।

भरत-व्यवसायः।

रामस्य वचनं श्रुत्वा वशिष्ठः प्रत्युवाच ह,—
"मम त्वं वचनं कुर्वन् नातिक्रामीः सतां गतिम्। १
इमा हि ताः परिषदः श्रेणयश्च समागताः—
एष, पुत्र, सतां धर्मो—नातिक्रामीः सतां गतिम्। २
वृद्धाया धर्म-शीलाया मातुर्नार्हसि लङ्घितुम्;
तस्यास्तु वचनं कुर्वन् नातिवर्तस्व सद्-गतिम्। ३
भरतस्य वचः कुर्वन्, याचमानस्य, राघव,
आत्मानं नातिवर्तस्व, सत्य-धर्म-परायण।" ४

एवमुक्तः, स, मधुरं गुरुणा, राघवः, स्वयम्,
प्रत्युवाच तथासीनं वशिष्ठं, पुरुषर्षभः,— ५
"माता-पितृषु यद् वृत्तं सम्यक् कुर्वन्ति मानवाः,
न स्व-प्रतिकारं ताभ्यां, मात्रा पित्रा च यत् कृतम्। ६
स हि राजा दशरथः, पिता, जनयिता मम;
प्रतिज्ञातं मया तस्य न कार्यं वाक्यमन्यथा।" ७

१। कुर्वन्—हेतौ शतृ। 'लक्षण-हेत्वोः क्रियायाः',—पाणिनिः, ३।२।१२६। अति-क्रामीः—आत्म-काले लिङ्। पाणिनिः, ३।३।१६१। २। परिषदः—समितयः, गोष्ठ्यः, councils. श्रेणयः—शिल्पि-संहतयः, artesans' guilds. ३। अतिवर्तस्व—अतिक्रामीः, लङ्घय। आत्म-काले लोट्। पाणिनिः, ३।३।१६२। ६। प्रतिकारः—परिशोधः। ७। जनयिता—उत्पादकः, न केवलं पालकः।

एवमुक्ते तु रामेण, भरतस्तदनन्तरम्
उवाच, विपुलोरस्कः, सूतं, परम-दुर्मनाः,— ८
"इह मे स्थण्डिले शीघ्रं क्रियतां संस्तरः कुशैः।
आर्यं प्रत्युपवेक्ष्यामि यावन् मे न प्रसीदति। ९
अनाहारो, निरालोको, धन-हीनो यथाद्विजः,
शये पुरस्तात् शालायां, यावन् न प्रतियास्यति।" १०
स तु, राममभिप्रेक्ष्य, भरतश्च, सु-दुर्मनाः,
कुशास्तरैरुपस्थाप्य भूमावेवास्तृणात् स्वयम्। ११
तमुवाच महा-तेजा रामो, राजर्षि-नन्दनः,—
"किं मां, भरत, कुर्वाणं, तात, प्रत्युपवेक्ष्यसि? १२
ब्राह्मणो ह्येक-पार्श्वेन शयानस्तु पुरं दहेत्,
न तु मूर्धाभिषिक्तानां विधिः प्रत्युपवेशने। १३
उत्तिष्ठ, राज-शार्दूल, हित्वैतद् दारुणं व्रतम्;
अयोध्यां गच्छ शीघ्रं त्वं; कुरु सत्यं-पितुर् वचः।" १४
आसीनस्त्वेवं, भरतः पौर-जानपदं जनम्
उवाच, सर्वतः प्रेक्ष्य,—"किमार्यं नानु-याचथ?" १५

८। विपुलोरस्कः—विशाल-वक्षाः। ९। स्थण्डिले—सम-भूमौ। प्रत्युपवेक्ष्यामि—प्रत्युपवेशनं करिष्ये। प्रत्युपवेशनम्—उपरोद्धव्यस्य गृह-द्वार-समीपे कुशेषु, यावत् कार्य-सिद्धिं, निराहारतया अवगुण्ठिताननस्य एक-पार्श्वेनैव, पार्श्वान्तर-परिवृत्ति-परिहारेण, शयनम्। १०। निरालोकः—दृष्टि-पात-विमुखः। आलोकः—दर्शनम्। ११। उपस्थाप्य—आनाय्य इति शेषः। आस्तृणात्—[कुशास्तरम् (कुश-शय्याम्)] रचितवान्। १३। ब्राह्मणः—'धनादिना विशेषितः' इति शेषः। एक-पार्श्वेन शयानः—प्रत्युपवेशनं कुर्वन्। मूर्धाभिषिक्तानाम्—क्षत्रियाणाम्। १५। आसीनः—प्रत्युपविष्टः।

ते तमूचुर् महात्मानं पौर-जानपदा जनाः,
भरतं, बाष्प-रक्ताक्षं, रामानुनय-विह्वलम्,— १६

"अभिजानीमः काकुत्स्थं सत्य-धर्म-परायणम् ।
वक्तुं न शक्नुमः स्नेहान्—न हि नः श्रोष्यते वचः । १७

पितुरेष, महा-भागो, वचनं परि-पालयन्,
न गुरूणां न मातॄणां न तव श्रोतुमिच्छति । १८

नैव शक्यश्चालयितुं सत्यात् सत्य-परायणः,
हिमवानिव शैलेन्द्रो वायुना द्रुम-वैरिणा ।" १९

पौराणां तु वचः श्रुत्वा, राघवः, पौर-वत्सलः,
प्रहर्षमतुलं लेभे, प्रहृष्टश्चेदमब्रवीत्,— २०

"पौराणां नृप-भक्तानामेतत् स्व-सदृशं वचः ।
किमस्मां स्तो परिक्लिश्य ? भरत, प्रतिगम्यताम् । २१

महार्णवः शोषयितुं भवेच् छक्यो, नदी-पतिः ;
अहं तु शासनं, वीर, न करिष्येऽनृतं पितुः ।" २२

एवं तद् वचनं श्रुत्वा, भरतः पार्थिवात्मजः,
विवर्ण-वदनो भूत्वा, परं दैन्यमुपागतः । २३

स, दर्भ-शयनात् तस्मादुत्थाय, भरतस्तदा,
उपस्पृश्योदकं, वीरो, वाक्यमेतदुवाच ह,— २४

"शृण्वन्तु मे परिषदो, मन्त्रिणो, मातरस्तथा,
अनुरक्ताश्च सुहृदः, पौर-जानपदास्तथा,— २५

१७। श्रोष्यते—श्रोष्यति। आर्षम्-परस्मार्थम्।

विशुद्धिं दातुमिच्छामि गर्हितस्यास्य कर्मणः,—
न राज्यं पितरं याचे, नानुशोचामि मातरम्,
आर्यं परम-धर्मज्ञं नावजानामि राघवम्। २६

यदि त्ववश्यं वस्तव्यं—कर्तव्यं वचनं पितुः,
अहमेतानि वत्स्यामि वर्षाणीह चतुर्दश।” २७

धर्मात्मा स तु, तथ्येन, भ्रातुर् वाक्येन विस्मितः,
उवाच रामः, सं-प्रेक्ष्य पौर-जानपदं जनम्,— २८

“वि-क्रीड़माहितं दत्तं यत् पित्रा जीवता मम,
तन् न लङ्घयितुं शक्यं मया वा भरतेन वा। २९

जानामि भरतं शान्तं गुरु-सत्कार-कारिणम्;
सर्वमेवात्र कल्याणं प्रत्याशंसे महात्मनि।” ३०

पञ्च-विंशः सर्गः।

न्यास-लाभः।

अथाप्रतिम-तेजोभ्यां भ्रातृभ्यां लोम-हर्षणम्,
विस्मिताः, सङ्गमं प्रेक्ष्य, समवेता महर्षयः। १

त्रस्त-गात्रस्तु भरतो, वाचा सं-सज्जमानया,
कृताञ्जलिरिदं वाक्यं राघवं पुनरब्रवीत्,— २

२६। न याचे—न याचितवान्। वर्तमान-सामीप्ये वर्तमानवत् प्रयोगः। पाणिनिः, ३।३।१३१। नानुशोचामि—न शोचामि। नावजानामि—न अवमन्ये। २९। वि-क्रीडम्—अ-परीहासेन, याथार्थ्येन। क्रीड़ः—परीहासः। आहितम्—न्यस्तम्। ३०। प्रत्याशंसे—आशंसे, I hope for.

१। भ्रातृभ्याम्—भ्रात्रोः। तृतीया षष्ठ्यर्थे। २। सज्ज-मानः—विषिद्यमानः।

"रक्षितुं सु-महद् राज्यमहमेकस्तु नोत्सहे,
पौर-जानपदं चापि राज्ये रञ्जयितुं जनम् । ३
भ्रातरश्चापि योधाश्च मित्राणि सु-हृदस्तथा
त्वामेव प्रतिकाङ्क्षन्ते, पर्जन्यमिव कर्षकाः । ४
इदं च राज्यं, धर्म-ज्ञ, सर्वं त्वं प्रतिपद्य हि ।
शक्तिमान् न हि, काकुत्स्थ, लोकस्य परि-पालने ।" ५

तमङ्के भरतं कृत्वा, रामो वचनमब्रवीत्,
श्यामं, नलिन-पत्राक्षं, मत्त-हंस-गति-स्वनम्,— ६
"इयं ते यादृशी बुद्धिः स्व-भावाद् विनयाश्रया,
भृशमुत्सहते सेयं त्रैलोक्यस्यापि रक्षणे । ७
अमात्यैश्च सुहृद्भिश्च बुद्धिमद्भिश्च मन्त्रिभिः
पूर्वं कार्याणि संमृश्य सु-सं-चिन्त्य हि, कारयेत् । ८
चन्द्रादपक्रमेल् लक्ष्मीर्, हिमवान् वा परित्यजेत्,
अतीयात् सागरो वेलां, न प्रतिज्ञामहं पितुः । ९
कामाद् वा यदि वा लोभान्, मात्रा ते यदिदं कृतम्,
न तन् मनसि कर्तव्यं, वर्तितव्यं च मातृवत् ।" १०

बाष्पा—अश्रव । स-सज्जमानया—स्खलन्त्या, कम्पमानया । ३ । एकः—अ-सहायः । नोत्सहे—न शक्नोमि । ४ । 'मित्रम्' 'सु-हृत्' च—'अ-ज्ञात-सङ्गतो बन्धुः स दैवानुमतः सु-हृत्, एक-क्रियं भवेन् मित्रं सम-प्राणः सखा मतः' । प्रति काङ्क्षन्ते—प्रति-काङ्क्षन्ति । आत्मने-पदमार्षम् । ५ । प्रतिपद्य—प्रतिपद्यस्व, स्वी कुरु । परस्मै-पदमार्षम् । शक्तिमान्—शक्नोमीति शेषः । ८ । अमात्यैः—प्रधान-मन्त्रिभिः । मन्त्रिभिः—उप-मन्त्रिभिः । कारयेत्—'भवान्' इति शेषः । लिङोऽ-वि-[illegible]-प्रयोज्यत्वम् वा । पाणिनिः, ३।३।१६१ । प्रयोज्ये तृतीया । ९ । अपक्रमेत्—अपक्रामेत्, अपगच्छेत् । [illegible] आर्षः । अतीयात्—अतिक्रामेत् । न—न अतीयाम्, न अतिक्रामेयम् । १० । कामात्—

एवमभिहितं वाक्यं तु भरतो राममब्रवीत्,
तेजसादित्य-सङ्काशं, प्रतिपच्-चन्द्र-दर्शनम् । ११

ततः, पादौ हि सं-स्पृश्य, भरतो न्यपतत् क्षितौ,
रुदत्यतितराम्, आर्तः, क्रुद्धाद् ब्रह्म इव च्युतः । १२

मातरश्चास्य ताः सर्वाः, सीता च जनकात्मजा
अरुदं स्तस्य कारुण्याद्, वाष्प-प्रस्रवणैर् मुखैः । १३

स-योध-श्रेणि-निगमः, सोपाध्याय-पुरोहितः,
तस्मिन् मुहूर्ते, दुःखार्तः सर्वः प्ररुदितो जनः । १४

भरतं वाष्प-पूर्णाक्षं, स्नेहादागत-विक्लवः,
गाढमाश्लिष्य, दुःखार्तं, रामो वचनमब्रवीत्,— १५

"न त्वां शक्नोम्यहं द्रष्टुमिवम्-भूतं कृपात्म-जम्,
शोक-भार-समाक्रान्तं,—सीदतीव हि मे मनः ।" १६

एवमुक्तस्तु, भरतः, प्रमृज्याश्रु-हतं मुखम्,
पूर्वमुक्त्वा प्रसीदेति, राघवं स ततोऽब्रवीत्,— १७

"अहं हि जीवितेनापि प्रियं कुर्यां तव, प्रभो ;
गमिष्ये सर्वथायोध्यां, मातृभिः सह, राघव । १८

अपि आरिप्सतीक्ष्वाको र्, न्यास-धर्मान् नृप-श्रियम्
धारयस्वेति, धर्मज्ञ, समयं, स, खलु, प्रभो ?" १९

मद-मत-कुञ्जरात् । लाभात्—मद न्यासेन राज्य-करण-लाभात् । १२ । अतितराम्,—द्वयोरेकातिशये तरप् । अव्ययात् तरप आमुः, अ-द्रव्य-प्रकर्षे । पाणिनिः, ५।३।११ । १३ । वाष्प-प्रस्रवणैः—सवष्प-वाष्पैः । १४ । निगमाः—वार्ताः, वणिक्-सङ्घाः, trade-guilds. १५ । विक्लवः—व्याकुलता । १६ । सीदति—अवसन्नं भवति । १८ । गमिष्ये—गमिष्यामि । आत्मनेपदमार्षम् । १९ । अपि—किम् । न्यास-धर्मान्—न्यास-

स, प्र-हृष्टतरो, रामो भरतं, गमनोत्सुकम्,
सान्त्वयित्वा शुभैर् वाक्यैर्, तथेत्यभिदधे पुनः। २०

एतस्मिन्नन्तरे, शिष्याः शर-भङ्गस्य, धीमतः,
उपायनम्, अनुप्राप्ता, गृहीत्वा कुश-पादुके। २१

मुनेस्तु कुशलं पृष्ट्वा, निवेद्य, सु-महात्मनः,
राघवः प्रतिजग्राह ते उभे कुश-पादुके। २२

अब्रवीच् च तदा वाक्यं, जनौघैः परिवारितः,
वशिष्ठो, वाक्य-कुशलो, दैन्यं हर्षं च वर्धयन्,— २३

"अधिरोप्यार्य पादाभ्यामिमे गृह्णीष्व पादुके।
एते हि सर्व-लोकस्य योग-क्षेमं करिष्यतः।" २४

सोऽधिरोप्य, महा-तेजाः, पादुके, व्यपरोप्य च,
प्रायच्छत तदा, धीमान्, भरताय महात्मने। २५

ततः शिरसि कृत्वा तु पादुके, भरतस्तदा
आरुरोह रथं, हृष्टः, शत्रुघ्नेन समन्वितः। २६

धर्ममनुसृत्य। ल्यप् लोपे कर्मणि पञ्चमी। अत्र धर्मः—निर्दिष्ट नियमः। समयः—आचारः। इक्ष्वाकूणां समयमित्यन्वयः। २०। अभिदधे—ऊचे। २१। उपायनम्—उपहारः। कुश-पादुके उपायनं गृहीत्वा इत्यन्वयः। २२। निवेद्य—'आत्मनः कुशलम्' इति शेषः। २३। परिवारितः—परिवेष्टितः। २४। पादाभ्याम्—पादौ। तृतीया चार्थे। योग-क्षेमम्—योगः—अ-लब्ध-वस्तु-प्राप्तिः; क्षेमम्—लब्ध-वस्तु-रक्षा। तयोः समाहारः। २५। प्रायच्छत—प्रायच्छत्, प्र-ददौ। आत्मने-पदमार्षम्।

षड्-विंशः सर्गः।

अयोध्या-प्रवेशः।

स्निग्ध-गम्भीर-घोषेण स्यन्दनेनोपयान्, प्रभुः,
अयोध्यां भरतः क्षिप्रं प्र-विवेश, महा-यशाः, १

मार्जारोलूक-सङ्कीर्णां, सु-दीन-नर-वाहनाम्,
तिमिराभ्याहतां—कालीम-प्रकाशां निशामिव, २

अल्पोष्ण-क्षुब्ध-सलिलां रुग्ण-स्वर-विहङ्गमाम्
लीन-मीन-झष-ग्राहां कृशां गिरि-नदीमिव, ३

पुष्प-गन्धां वसन्तान्ते मत्त-भ्रमर-नादिताम्
द्रुम-दावाग्नि-वि-प्लुष्टां कान्तां वन-लतामिव, ४

सं-मूढ़-निगमां सर्वां संक्षिप्त-विपणापणाम्—
प्रच्छन्न-शशि-नक्षत्रां द्यामिवाम्बु-धरैर् वृताम्, ५

शुष्क-तोयां महा-मत्स्यैः कूर्मैश्च बहुभिर् वृताम्
प्र-भिन्नामिव विस्तीर्णां वापीमपहृतोत्पलाम्। ६

भरतस्तु, रथ-स्थोऽथ, श्रीमान्, दशरथात्म-जः,
वाहयन्तं रथ-श्रेष्ठं, सारथिं वाक्यमब्रवीत्,— ७

"किन् नु खल्वद्य गम्भीरो मूर्च्छितो न निशम्यते
यथा-पूर्वमयोध्यायां गीत-वादित्र-निस्वनः ? ८

१। उपयान्—उपगच्छन्। २। मार्जारः—बिडालः। उलूकः—पेचकः। सङ्कीर्णां—समाकीर्णां, व्याप्ता। तिमिराभ्याहताम्—तिमिरेण (अन्धकारेण) अभ्याहताम् (अ-लक्ष्यतां प्रापिताम्)। कालीम्—कृष्णाम्। ३। क्षुब्धम्—आकुलितम्। लीनाः—अदर्शनं प्राप्ताः। झषः—मकरः। ग्राहः—कुम्भीरः। ४। पुष्प-गन्धान्—पुष्पमयीम्। वि-प्लुष्टाम्—अति-दग्धाम्। कान्ताम्—कमनीयाम्। ५। सं-मूढ़ाः—सम्यक् मोहं प्राप्ताः। विपणः

तरुणीजन-वेशैश्च नरैरुत्तम-भूषणैः
सम्पतद्भिरयोध्यायां न विभान्ति महा-पथाः ? ९
वारुणी-मद-गन्धश्च माल्य-गन्धश्च, मूर्च्छितः,
धूपनागुरु-गन्धश्च न प्र-वाति यथा पुरा ? १०
यान-प्र-वर-घोषश्च, स्निग्धश्च हय-निस्वनः,
मत्त-नाग-निनादश्च श्रूयते न, यथा पुरा ?" ११

सप्त-विंशः सर्गः ।

पादुकाभिषेकः ।

स, वल्कल-जटा-चीर-मुनि-वेश-धरः, प्रभुः,
नन्दी-ग्रामेऽवसद्, दीनः, स-सैन्यो भरतस्तदा । १
पादुके त्वभिषिच्याथ नन्दी-ग्रामे, पुरोत्तमे,
भरतः शासनं सर्वं पादुकाभ्यां न्यवेदयत् । २
एवं कालो व्यतिक्रामद् भरतस्य महात्मनः,
यावदागमनं तस्य रामस्याक्लिष्ट-कर्मणः । ३

इत्यार्षे श्री-लघु-रामायणे, वाल्मीकीये, त्रि-साहस्र्यां संहितायाम्,
अयोध्या-काण्डम् ।

—विक्रयः। आपणः—निपणा, a market. द्यौः—आकाशः। पयो-धरः—मेघः। ८। प्र-भिन्नाम्—बहुधा वि-दीर्णाम्। वापी—दीर्घिका। ९। सम्पतद्भिः—गच्छद्भिः। महा-पथाः—राज-मार्गाः। १०। मूर्च्छितः—व्याप्तः। धूपनः—शाल-वृक्ष-निर्यासः, धूना, incense. अगुरु—कृष्ण-चन्दनम्, aloe wood. ९—११। प्रति-वाक्यं 'किम् नु खलु' इति पदोऽध्याहार्यः।

३। व्यतिक्रामत्—व्यत्यक्रामत्। छान्दसोऽडभावः आर्षः। यावदागमनम्—आगमन-पर्यन्तम्। यावत्-योगे द्वितीया।

इति [illegible] नाम लघु-रामायणस्यायोध्या-काण्डम् ।

अथ

श्री-लघु-रामायणे

अरण्य-काण्डम्।

प्रथमः सर्गः।

अत्रेराश्रमः।

"अयेह भरतो दृष्टो मातरो नागरास्तथा,
महान् मे हृदये तापस्तान् नित्यमनुशोचतः। १

स्कन्धावार-निवेशे तु तेन चेह निवेशिते,
हय-हस्ति-करीषाभ्यामपमर्दः कृतो महान्। २

तस्मादन्यत्र गच्छाम,"—इति निश्चित्य, राघवः
प्रातिष्ठत ततः, सार्धं सीतया लक्ष्मणेन च। ३

सो, ऽत्रेराश्रममासाद्य, ववन्दे तं तपो-धनम्;
तं चापि भगवानत्रिः पितृवत् प्रत्यपूजयत्। ४

स्वयमातिथ्य-सत्कारं कृत्वा रामाय, सत्-कृतम्
सौमित्रिमथ सीतां च यथावत् पर्यसान्त्वयत्। ५

२। स्कन्धावारः—सेना। निवेशः—शिविरम्। हयः—अश्वः। करीषः—शुष्क-गोमयम्, [अत्र] एक-पाक्षिक-पक्षो: एक शिष्ठा। अपमर्दः—भूमिर्-दलिता। ५। आतिथ्य-सत्कारः—आतिथ्यः (अतिथये साधुः) सत्कारः (पूजा)। पर्यसान्त्वयत्—

पत्नीं स च, महा-व्रतां शिथिलां वृद्धां तपस्विनीम्
अनसूयां, महा-भागां, सर्व-भूत-हिते रताम्, ६
"प्रतिगृह्णीष्व वैदेहीम्," उवाच मुनि-पुङ्गवः,
"योजयस्व प्र-कामैस्त्वं राम-पत्नीं यशस्विनीम्" । ७

शिथिलां, पलितां, वृद्धां, जरा-पाण्डुर-मूर्धजाम्,
प्र-तनुं, वेपमानाङ्गीं प्रवाते कदलीं यथा, ८

तां, तु, सीता, महा-भागामनसूयां, धृत-व्रताम्,
अभ्यवादयत क्षिप्रं, ब्रुवती "मैथिली अहम्" । ९

ततः सीतां महा-भागां दृष्ट्वा, सा धर्म-चारिणी
उवाच, कुशलं पृष्ट्वा,—"दिष्ट्या धर्ममवेक्षसे । १०

त्यक्त्वा ज्ञाति-जनं, सीते, सुखं मानं च, भाविनि,
अनुरागाद् वने रामं दिष्ट्या त्वमभिगच्छसि । ११

सम-स्थो वि-षम-स्थो वा, पापो वा यदि वा शुचिः,
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः ।" १२

सा, त्वेवमुक्ता, वैदेही, भगवत्यानसूयया,
प्रतिपूज्य वचो, हृष्टा, वक्तुं समुपचक्रमे,— १३

"नैतदाश्चर्यम्, आर्ये, यत् त्वमेवमनुभाषसे ।
विदितं तु मयाप्येतद् यथा स्त्रीणां पतिर् गतिः । १४

प्रीति-युक्तेन चक्षुषा अपश्यन् । ७ । प्र-कामैः—यथेष्ट-काम्य-वस्तुभिः । ८ । शिथिलाम् —श्लथ-सन्धि-बन्धाम् । पाण्डुराः—शुक्लाः । मूर्ध-जाः—केशाः । प्र-तनुम्—अति-क्षीणाम् । ११ । अभिगच्छसि—अनुगच्छसि । १२ । सम-स्थः—सम्पन्नः । वि-षम-स्थः—विपन्नः । महोदयाः—अभ्युन्नताः ।

यद्यप्येष भवेद् भर्ता ममार्ये गुण-वर्जितः,
अद्वैतेनोपचर्यस्तु तथापि नियतं मया ; १५

किं पुनर् यो गुण-श्लाघ्यः, सानुक्रोशो, जितेन्द्रियः,
स्थिरानुरागो, धर्मात्मा, पित्रोः प्रियतरः, सदा ? १६

आगच्छन्तीं च वि-जनं वनं श्वश्रूर् यदब्रवीत्,
समाहितवती, पूर्वं, हृदये तत् स्थिरं मम। १७

पाणि-ग्रहण-काले तु यत् पुरा पावकान्तरे
अनुशिष्टा जनन्या हि, तच् च मे हृदि वर्तते।" १८

तच् चानसूया सं-हृष्टा श्रुत्वा वचनमुत्तमम्;
शिरस्याघ्राय चोवाच मैथिलीं, हर्ष-गद्गदा,— १९

"उपपन्नं च युक्तं च वचनं तव, मैथिलि,—
प्रीतास्म्यनेन। तद्, ब्रूहि, प्रियं किं करवाणि ते।" २०

सैवं तस्या वचः श्रुत्वा, विस्मितामनु-वि-स्मिता,
कृतमित्यब्रवीत् सीता, तपो-बल-समन्विताम्। २१

सैवमुक्ता, तु, धर्म-ज्ञा, तदा प्रीततराभवत्,
सफलं च प्रसादं च कुर्वती, तामुवाच ह.— २२

"अङ्ग-रागेण दिव्येन लिप्ताङ्गी जनकात्मजे,
मया दत्तेन, सु-भगे, भूषिता विचरिष्यसि। २३

१५। अद्वैतेन—अनन्य-मनसा। उपचर्यः—सेवितव्यः। १६। गुण-श्लाघ्यः—गुणैः श्लाघ्यः (प्रशंसनीयः, स्पृहणीयः इत्यर्थः)। पित्रोः—माता-पित्रोः। १७। समाहितवती—स्थापितवती। १८। पावकान्तरे—अग्नि-व्यवधाने। २१। विस्मितामनु-वि-स्मिता—प्रथमं जात-विस्मया पश्चात् सञ्जात-स्मिता। अनु-योगं इति या। कृतम्—[भवत्या अनुग्रहेणैव सर्वं मे] पूर्णम्। न किञ्चित् कर्तव्यमस्तीति भावः। २२। अङ्ग-रागः—अङ्ग-

अद्य-प्रभृति—भद्रं ते !—मण्डनं खलु शाश्वतम्,
अनुलेपश्च सु-चिरं गात्रान् नापगमिष्यति ।" २४

सा वासांस्यङ्ग-रागं च भूषणानि स्रजस्तथा
मैथिली प्रतिजग्राह, प्रीति-दायमनुत्तमम् । २५

तां विनीतामुपासीनामनसूया, दृढ़-व्रता,
वचनं वक्तुमारेभे सीतां, कमल-लोचनाम्,— २६

"रविरस्तं गतस्त्वेष, वृत्ता च रजनी शुभा,
सह-नक्षत्र-सम्पूर्णा, वि-मला, वि-मलानने । २७

दिवसे विप्रकीर्णानामाहारार्थं च, मैथिलि,
समागतानां नीड़ेषु, पक्षिणां श्रूयते स्वनः । २८

गत्वा सरोऽभिषेकार्थम्, अमी कलश-पाणयः
मुनयो वि-निवर्तन्ते, सलिलाप्लुत-वल्कलाः । २९

अग्नि-होत्रेष्वृषीणां च हुतेषु विधि-पूर्वकम्
कपोताङ्गारुणो धूमो दृश्यते वि-मले ऽम्बरे । ३०

अल्प-वर्णाश्च तरवो घनी-भूताः समन्ततः
विप्रकीर्णे शुभे देशे प्रकाशन्ते यथा न-गाः । ३१

निशाचराणि सत्त्वानि प्र-चरन्ति समन्ततः;
तपो-वन-मृगाश्चेमे वेदी-मध्येषु शेरते । ३२

रञ्जन-करं द्रव्यम् । २४ । मण्डनम्—प्रभा-मण्डलम्, a halo. अनुलेपः—दिव्य-गन्ध-द्रव्यम्, चन्दनम् इत्यर्थः । २७ । वृत्ता—प्रवृत्ता, आरब्धा । २८ । विप्रकीर्णानाम्—इतस्ततो विक्षिप्तानाम्, चतुर्दिक्षु सञ्चरताम् । २९ । अभिषेकः—स्नानम् । ३० । कपोताङ्गारुणः—कपोताङ्गवत् (पारावत-कण्ठवत्) अरुणः (मेचकः, श्यामः) । ३१ । विप्रकीर्णे—सु-विस्तृते । न-गाः—पर्वताः । ३२ । समन्ततः—समन्तात्

सं-प्रवृत्ता निशा, सीते, नक्षत्र-गण-मण्डिता ;
ज्योत्स्ना-प्रावरणश्चेन्दुर् दृश्यते ऽभ्युदितोऽम्बरे । २२

गम्यताम्—अनुजाने त्वां—पार्श्वं रामस्य, मैथिलि;
कथयन्त्या हि मधुरं त्वयाहं, साध्वि, तोषिता । २४

अलङ्कुरुष्व तावत् त्वं प्रत्यक्षं मम, मैथिलि ;
निर्वृताहं भविष्यामि दृष्ट्वा त्वां समलङ्कृताम् ।" २५

ततः, स्वयमलङ्कृत्य, सीता, सुर-सुतोपमा,
अभिवाद्यानसूयां तां, ययौ, राघवमीक्षितुम् । २६

प्रहृष्टोऽथाभवद् रामो लक्ष्मणश्च, महा-यशाः,
मैथिल्या सत्-क्रियां लब्धां दृष्ट्वा, स्त्रीभिः सु-दुर्लभाम् । २७

ततस्तां शर्वरीं पुण्यां, प्रियया सह, राघवः
उवास, परम-प्रीतस्, तस्मिन् मुनि-वराश्रमे । २८

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायाम्, उपापृच्छति राघवे,
हुताग्नि-होत्रो भगवान् राममत्रिरभाषत,— २९

"एष पन्था महर्षीणां, फलान्याहरतां, वने ।
अनेन त्वं वनं दुर्गमितोऽन्यद् गन्तुमर्हसि ।" ३०

द्वितीयः सर्गः ।

दण्डकारण्य-प्रवेशः ।

प्रविशन् स महारण्यं, दण्डकारण्यमुत्तमम्,
ददर्श रामो दुर्धर्षं तापसाश्रम-मण्डलम्, १

चतुर्दिक्षु । २२ । प्रावरणम्—उत्तरीयम्, आवरण-वस्त्रं वा । २९ । उपापृच्छति—उपापृच्छमाने, आपृच्छमाने, प्रस्थान-वार्त्तां ज्ञापयमाने । परस्मै-पदमार्षम् ।

१ । दण्डकारण्यम्—नर्मदा-गोदावर्योर्मध्ये दण्डकी नाम महारण्यम्, अम-

कुश-चीर-परिक्षिप्तं, ब्राह्म्या लक्ष्म्या समावृतम्,
दुष्प्रवेशं, दुरालक्ष्यं, सूर्य-मण्डल-वर्चसम्, २

विशालैरग्नि-शरणैः स्रुग्-भाण्डै रुचिरैः शुभैः
महद्भिस् तोय-कलशैः फल-मूलैश् च शोभितम्, ३

आरण्यैश् च महा-वृक्षैः पुण्य-स्वादु-फलैर् वृतम्,
विचित्र-पुष्पैस् तरुभिः पद्मिनीभिः सु-शोभितम्, ४

फल-मूलाशनैर् दान्तैश् चीर-कृष्णाजिनाम्बरैः
सूर्य-वैश्वानर-निभैः पुराणैर् मुनिभिर् वृतम्, ५

बलि-होमार्चितं, पुण्यं, ब्रह्म-घोष-निनादितम्,
नाना-विनियताहारैः शोभितं पुरुषर्षभैः। ६

तद् ब्रह्म-भवन-प्रख्यं, ब्रह्मर्षि-गण-सेवितम्,
ब्रह्म-भूतैर् महा-भागैर् ब्राह्मणैरुपशोभितम्, ७

नाना-पक्षि-रुतै रम्यं, नाना-मृग-समावृतम्,
दृष्ट्वैव राघवो दूरात् तापसाश्रम-मण्डलम्, ८

अभ्यागच्छन्, महा-तेजा, वि-ज्यं कृत्वा महद् धनुः,
सीतयानुगतो, धीमान्, भ्रात्रा वै लक्ष्मणेन च। ९

व्याप्तम्, पार्श्वेषु स्थापितानां महा-राशीनां इत्यर्थः। दुर्धर्षम्—बलाद् आक्रमात्] अशक्य-प्रवेशम्। मण्डलम्—समूहः। २। परिक्षिप्तम्—व्याप्तम्। ब्राह्मी—ब्रह्म-विद्याभ्यास-जनिता। लक्ष्मीः—कान्तिः, तेजः। दुरालक्ष्यम्—दुर्दर्शम्, दुःसहप्रकाशम्। वर्चः—तेजः। ३। अग्नि-शरणैः—अग्नि-होत्र गृहैः। स्रुक् (स्रुच्)—यज्ञीय घृत प्रक्षेप-पात्रम्। रुचिरैः—मनो-हरैः। ४। आरण्यैः—अरण्य-भवैः। ५। दान्तैः—जितेन्द्रियैः। वैश्वानरः—अग्निः। पुराणैः—वृद्धैः। ६। बलि-होमार्चितम्—वैश्वदेव-होम-बलि-कर्मभिः सत्-कृतम्। ब्रह्म—वेदः। निनादितम्—शब्दितम्। विनियताहारैः—संयतेन्द्रियैः। ७। ब्रह्म-भवनम्—ब्रह्म-लोकः। ब्राह्मणैः—ब्रह्म-विद्भिः। ९। वि-ज्यम्—अवरोपित-

दिव्य-ज्ञानोपपन्नास्ते, रामं दृष्ट्वा, महर्षयः,
अभ्यागच्छन्त, सु-प्रीता, वैदेहीं लक्ष्मणं तथा ; १०
साक्षात् सूर्यमिवोद्यन्तं दृष्ट्वा तं धर्म-चारिणम्,
मङ्गलानि प्रयुञ्जानाः, प्रत्यगृह्णन्, धृत-व्रताः । ११
रूपं प्रमाणं लक्ष्मीं च सौकुमार्यं सु-वेशताम्
ददृशुर्, विस्मिताकारा, रामस्य, वन-वासिनः । १२
वैदेहीं लक्ष्मणं रामं नेत्रैर्-निमिषैरिव
आश्चर्य-भूतं ददृशुः सर्वे ते वन-वासिनः । १३

मुनयस्ते, ततो, राममतिथिं, स्वयमागतम्,
सहिताः, पर्ण-शालायां वासार्थं सं-न्यवेशयन् ; १४
पुष्पं मूलं फलं वन्यमाश्रमं च महात्मने
निवेद्य खलु धर्मेण, ततः प्राञ्जलयोऽब्रुवन्,— १५
"त्वं नो धर्मः, पिता, राम, तथा शरण-दः सखा ;
नगर-स्थो वन-स्थो वा, त्वं नो राजा, रघूत्तम ! १६
न्यस्त-दण्डा वयं, राम, जित क्रोधा, जितेन्द्रियाः ;
रक्षितव्यास्त्वया शश्वद् धर्म-निष्ठास्तपो-धनाः । १७
एहि, पश्य शरीराणि मुनीनां, भावितात्मनाम्,
हतानां, राम, रक्षोभिर्, बहूनां, बहुधा, वने ।" १८

गुणम्, unstrung. १०। अभ्यागच्छन्त—[रामस्य] समीपमागच्छन्। आत्मने-पदमार्षम्। १२। प्रमाणम्—परिमाणम्। सौकुमार्यम्—सु-कुमारता, पर-चित्त-हारित्वम्, मार्दवं सौन्दर्यं नव-वयस्त्वं च। विस्मिताकाराः—विस्फारित-नेत्राः। १७। न्यस्त-दण्डाः—न्यस्त-निग्रहाः। शश्वत्—सर्वदा। १८। भावितात्मनाम्—[ध्यानेन] विशोधित-चित्तानाम्।

इति श्रुत्वा वचो रामस् तापसानां, महात्मनाम्,
इदं प्रोवाच, धर्मात्मा, सर्वानेव तपो-धनान्,— १९
"स-कामोऽयं वने वासो भविष्यति, यशस्कर:,
सं-रक्षतो मुनि-गणान्, निघ्नतो राक्षसान्, मम ।" २०

तृतीय: सर्ग: ।

सीतानुनय: ।

प्रस्थितौ धृत-चापौ च तौ निशाम्याथ जानकी
श्लक्ष्णया स्निग्धया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत्,— १
"यदिदं ते व्यवसितं पर-हिंसा-कृतं व्रतम्,
च-स्थाने वैर-करणं तच् च ते समुपस्थितम् । २
प्रतिज्ञातस्त्वया, वीर, दण्डकारण्य-वासिनाम्
ऋषीणां रक्षण-कृते वध: संयति रक्षसाम् । ३
प्रस्थितस्त्वं, सह भ्रात्रा, गृहीत्वा स-शरं धनु: ;
त्वां चैव प्रस्थितं दृष्ट्वा, राम, चिन्ताकुलं मन: । ४
त्वं हि, बाण-धनुष्पाणिर्, भ्रात्रा सह वनं गत:,
दृष्ट्वा वन-चरान्, नाथ, किं न कुर्या: शर-व्ययम् ? ५
क्षत्रियस्य धनु: प्रोक्तं हुताशस्येन्धनं यथा ;
तत्, समीपे स्थितं भूयस्, तेजो मूर्च्छयते बलात् । ६

२० । स-काम:—सार्थक: । निघ्नत:—विनाशयत: ।

१ । निशाम्य—दृष्ट्वा । अयमेव पाठोऽस्माकं रोचते । 'निशम्य' इति कीर्तिशिवी-प्रभृतय: पठन्ति । निशम्य—श्रुत्वा । श्लक्ष्णया—[युक्तिमत्त्वेन] हृदयङ्गमया । स्निग्धया—स्नेह-सङ्गतया । २ । च—एव, निश्चितम् । ३ । संयति—युद्धे । ६ । हुताश:—हुताशन:,

एवं हि दृष्ट्वा विक्रान्तं, वि-त्रस्यन्ति वने-चरा: ;
एकान्तेऽपि स्थितास्ते तु वधमिच्छन्ति तावकम् । ७

"पुरा किल, महा-बाहो, तपस्वी संयतेन्द्रिय:
कश्चिद्, वन-गत:, सिद्धस्, तापसारण्यमाश्रित: । ८

तस्य केनचिद्, आगत्य, निशितं खड्गमुत्तमम्
सन्न्यास-विधिना दत्तं, पुण्ये महति तिष्ठत: । ९

स, तत् खड्गमनुप्राप्य, न्यास-रक्षण-तत्-पर:,
वनेऽपि न जहात्येनं, रक्षन् प्रत्ययमात्मन: । १०

यत्र गच्छत्युपादातुं पुष्पाणि च फलानि च,
न विना तत्र खड्गेन याति, न्यास-वि-शङ्कित: । ११

नित्यं शस्त्रं परिचरन्, क्रमेण स तपो-धन:
चकार रौद्रीं स्वां बुद्धिं, त्यक्त्वा तापस-निश्चयम् । १२

तत: स, रौद्र्या बुद्ध्या, तदानीं धर्म-कर्षित:,
तस्य शस्त्रस्य संसर्गाज् जगाम निरयं मुनि: । १३

"स्नेहाच् च बहु-मानाच् च स्मारये त्वा, न शिक्षये;
न कथञ्चिन् मन: कार्यं गृहीत-धनुषा त्वया । १४

राक्षसानां, विना वैरं, वधो, वीर, न युज्यते ;
अपराधाद् ऋते नापि हन्तव्या राक्षसास्त्वया । १५

अग्नि: । मूर्च्छयति—वर्धयति । ७ । विक्रान्त:—विक्रम-शाली, विक्रममाप्त: [illegible] । ९ । सन्न्यास-विधिना—न्यास विधिना, कालान्तरे आदानाय रक्षणार्थेन स्थापन-कर्मणा । १० । जहाति—त्यजति । प्रत्यय:—विश्वास: । १२ । रौद्री—क्रूरोचिता, रौद्र-कर्म-निष्ठा । १४ । बहु-मानात्—सम्मानात्, त्वत्-कर्तृकात् मम सम्मानात् ।

क्षत्रियाणां हि शूराणां स्व-धर्म-निरतात्मनाम्
धनुषा कार्यमेतावद्—आर्तानां परि-रक्षणम्। १६

क्व च शस्त्रं, क्व च वनं, क्व च क्षात्रं—तपः क्व च;
प्रतिषिद्धमिदं सर्वम्—एष धर्मस्तु पूज्यताम्। १७

त्वमार्ये कलुषां बुद्धिं त्यजैनां, शास्त्र-गर्हिताम्;
गत्वा पुनरयोध्यायां, क्षत्र-धर्मं चरिष्यसि।" १८

वाक्यमेतत्, तु, वैदेह्या व्याहृतं, धर्म-संहितम्,
निशम्य, मधुरं, रामो मैथिलीं प्रत्युवाच ह,— १९

"किं ते वक्ष्यामि, सु-श्रोणि, यत् त्वयोक्तमिदं वचः?
क्षत्रियैर् धार्यते शस्त्रं नार्त-शब्दो भवेदिति। २०

ते चार्ता दण्डकारण्ये, मुनयः, संशित-व्रताः,
मां, सीते, स्वयमागत्य, शरण्यं शरणं गताः। २१

वसन्तो, धर्म-निरता, वने, मूल-फलाशनाः,
न लभन्ते सुखं, भीरु, राक्षसैः परिपीडिताः। २२

नियताः सर्व-कालेषु विविधैर् नियमैर् वने,
भक्ष्यन्ते राक्षसैर् घोरैर् विकृतैर् वन-चारिभिः। २३

ते, भक्ष्यमाणा, मुनयो, दण्डकारण्य-वासिनः,
अस्मानभ्युपपद्यैव तत्रोचुर्, भय-विह्वलाः,— २४

१६। स्व-धर्म-निरतात्मनाम्—राज्य रक्षणे युद्धे च दीक्षितानाम्। १७। क्षात्रम्—क्षत्रियस्य कर्म दुष्ट-वधादि। २०। आर्त-शब्दः—[रक्षकाभाव-जातः] आर्तानां शब्दः। न भवेत्—मा भूत्। इच्छायां लिङ्। इति—इत्यर्थम्। २१। संशित-व्रताः—सम्यक्-सम्पादित-व्रताः।

'क्रुद्धाः, प्र-धर्षयन्त्यस्मान् राक्षसाः, पिशिताशनाः ।
रक्षास्मांस्तापमुख्येभ्य ; त्वन्-नाथा हि वयं वने ।' २५

मया चैतद् वचः श्रुत्वा, यत्नेन परि-पालनम्
ऋषीणां दण्डकारण्ये, संश्रुतं, लोक-साक्षिकम् । २६

तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परि-पालनम्,
अनुक्तेनापि, वैदेहि । किं पुनः सत्य-संश्रवे ?" २७

ततस्तस्मिन्, स काकुत्स्थः, श्रीमत्याश्रम-मण्डले
न्यवसत्, सु-सुखम्, तैस्तैः पूज्यमानो महर्षिभिः । २८

जगाम चाश्रमं तेषां पर्यायेण महात्मनाम्,
पादाभिवादनं कर्तुं सकाशं, राघवस्तदा । २९

तथा सं-वसतस्तस्य मुनीनामाश्रमे सुखम्
रमतश्चानुकूल्येन, ययुः सं-वत्सरा दश । ३०

चतुर्थः सर्गः ।

अगस्त्य-सन्दर्शनम् ।

अग्रतोऽथ ययौ रामः, सीता मध्ये सु-मध्यमा,
पृष्ठतश्च धनुष्पाणिर् लक्ष्मणोऽनुजगाम ह । १

स, प्रविश्याश्रम-पदं, लक्ष्मणो, राघवाज्ञया,
अगस्त्य-शिष्यमासाद्य, वाक्यमेतदुवाच ह,— २

२५ । प्र-धर्षयन्ति—सम्यक् अभिभवन्ति । पिशिताशनाः—मांस-भक्षकाः । २६ । संश्रुतम्—प्रतिज्ञातम् । लोक-साक्षिकम्—लोक-समक्षम् । २७ । अनुक्तेनापि—'क्रुद्धाः प्रधर्षयन्त्यस्मान्' इत्यादि ऋषिभिः अनुक्तेनापि मया । सत्य-संश्रवे—सत्य-प्रतिज्ञायाम् [सत्याम्] । भावे सप्तमी । ३० । रमतः—रममाणस्य । परस्मै-पदमार्षम् ।

"राजा दश-रथो नाम। ज्येष्ठस्तस्य सुतो, बली,
रामो नाम, महा-भाग, मुनिं द्रष्टुमिहेच्छति। ३
लक्ष्मणो नाम तस्याहं भ्राता तदनु-गो हितः।
स-दारः, सह-तेजस्वी, मुनिं द्रष्टुमिहागतः।" ४

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य, तपो-धनः
तथेत्युक्त्वाश्रम-पदं प्र-विवेश निवेदितुम्; ५
प्रविश्य चाग्नि-शरणं, तमृषिं, दुष्-प्र-धर्षणम्,
कृताञ्जलिरुवाचेदं वचनं, श्लक्ष्णया गिरा,— ६
"पुत्रो दशरथस्यासौ, रामो नाम, महा-यशाः,
सह भ्रात्राश्रम-द्वारि भार्यया सह तिष्ठति"। ७

ततः, शिष्यादुपश्रुत्य प्राप्तं रामं स-लक्ष्मणम्,
वैदेहीं च महाभागाम्, इदं वचनमब्रवीत्,— ८
"दिष्ट्या, रामो, महा-बाहुः, स-भार्यो, मामुपागतः;
मनसा काङ्क्षितं तस्य ममाप्यागमनं स्वयम्। ९
गम्यताम्,—सत्-कृतो रामः, स-भार्यः, सह-लक्ष्मणः,
प्रवेश्यतामिह क्षिप्रं। किं चासौ न प्रवेशितः?" १०

प्रविवेश ततो राम आश्रमं पुण्य-कर्मणः,
प्रशान्त-मृग-सङ्कीर्णं, समन्तादवलोकयन्। ११

४। हितः—अनु-चारी। सह-तेजस्वी—तेजस्विना [मया] सह। आगतः—'रामः' इति कर्तृ-पदमुह्यम्। ५। निवेदितुम्—निवेदयितुम्। णिच्-भाव आर्षः। ६। दुष्प्रधर्षणम्—अभिभवितुम् अ-शक्यम्। ८। अब्रवीत्—'स ऋषिः' इति शेषः। १०। सत्-कृतः—'पाद्यार्घ्यादिभिर् मार्ग-प्रदर्शनेन च' इति शेषः।

ततः, शिष्यैः परिवृतो, निश्चक्राम महा-मुनिः,
कृष्णाजिनाम्बर-धरैश्, चीर-वल्कल-धारिभिः। १२

"महो भगवतस्तेज" इत्युक्त्वोपेत्य चैव हि,
जग्राह, परम-प्रीतस्, तस्य पादावुपेस्तदा, १३
सीतया सह वैदेह्या, लक्ष्मणेन च, राघवः।
अभिवाद्य यथा-न्यायं, तस्थौ रामः, कृताञ्जलिः। १४

अभिवादितवन्तं च राघवं, सु-महा-तपाः,
मूर्धन्युपाघ्राय, तदा, निषीदेत्यब्रवीन् मुनिः। १५
दत्त्वासनं तदा रामं वैदेहीं लक्ष्मणं तथा
अर्चयित्वा, तु, पप्रच्छ कुशलानामयं मुनिः; १६
पृष्ट्वा चानन्तरं शिष्यमुवाचेदं वचस्तदा,—
"अग्नौ हुत्वा हविः पूर्वं, शेषं रामाय धीमते १७
प्रतिपाद्य, सत्-कृत्य, मन्त्रवत्। प्राश्नतामयम्।
वानप्रस्थेन विधिना सत्-कारार्हो हि राघवः। १८
यो गृहायातमतिथिं यथा-शक्ति न पूजयेत्,
दत्त्वा स दुष्कृतं, तस्य पुण्यमादाय गच्छति।" १९
एवमुक्त्वा, फलैर् मूलैः पुष्पैरन्यैश्च राघवम्
अर्चयित्वा यथा-न्यायं, पुनरेवाब्रवीद् वचः,— २०
"धनुर्-वरमिदं, दिव्यं, वज्र-हेम-परिष्कृतम्,
वैष्णवं, पुरुष-व्याघ्र, निर्मितं विश्व-कर्मणा। २१

१२। चीरम्—वल्क-वसनम्। १७। 'अग्नौ···हविः'—वैश्वदेव-होमं कृत्वा इत्यर्थः।
१८। प्राश्नताम्—भोज्यताम्। अयम्—रामः इत्यर्थः। २१। वज्र-हेम-परिष्कृतम्—

अ-मोघा इषवश्चेमे, ब्रह्म-दत्ताः, सु-तेजसः,
दत्ता मम महेन्द्रेण। तूणी चाक्षय-सायकौ, २२
सम्पूर्णौ निशितैर् बाणैर्, ज्वलद्भिरिव पावकैः।
महा-कोष-निवासी च महासिर् हेम-विग्रहः। २३
अनेन धनुषा, राम, हत्वा सङ्ख्ये महासुरान्,
आजहार श्रियं दीप्तां पुरा विष्णुर्, दिवौकसाम्। २४
इदं धनुः स-तूणीरं, खड्गं चेमं मयोद्यतम्
जयाय प्रतिगृह्णीष्व, वज्रं वज्र-धरो यथा। २५
"पुत्र, प्रीतोऽस्मि ते, राम; परितुष्टोऽस्मि, लक्ष्मण;
अभिवादयितुं यन् मां प्राप्तौ स्थः, सह सीतया। २६
अपि श्रमो न वैदेहीं बाधते, रघु-नन्दन?
सीता हि सु-कुमाराङ्गी, सुखैश्च न विना-कृता, २७
बहु-दोषं वनं प्राप्ता, भर्तृ-स्नेह-प्रचोदिता।
यथा रमेत वैदेही वने, राम, तथा कुरु। २८
दुष्करं हि करोत्येषा, त्वत्-कृते वनमागता।
प्रकृतिर् हि सदा स्त्रीणां भीरुत्वं क्लैब्यमिव च। २९
सम-स्थमनुरज्यन्ते, वि-षम-स्थं त्यजन्ति च,—
स्वभाव एष हि स्त्रीणां, सृष्टिस्थ, पुरुषर्षभ। ३०

वज्रेण (हीरकेण) हेम्ना (सुवर्णेन) च परिष्कृतम् (विभूषितम्)। वैष्णवम्—विष्णोः। २३। हेम-विग्रहः—हेममय-कायः, सुवर्ण-मण्डितः। २४। सङ्ख्ये—युद्धे। दिवौकसाम्—स्वर्ग-वासिनाम्, देवानाम्। २५। वज्र-धरः—इन्द्रः। २७। न विना-कृता—[इतः प्राक् कदापि] न वियोजिता। २९। क्लैब्यम्—पौरुष-हीनता। ३०। सम-स्थः—[धन-धान्यादि-युक्ततया] सम्यगवस्थितः। अनुरज्यन्ते—अनुवर्तन्ते,

शत-ह्रदानां लोलत्वं, शस्त्राणां चापि तीक्ष्णताम्,
गरुडानिलयोः शैघ्र्यमनुकुर्वन्ति योषितः। ३१

इयन्तु भवतो भार्या दोषैरेतैर् विवर्जिता,
श्लाघ्या च व्यपदेश्या च, यथा देवेष्वरुन्धती। ३२

अयं त्वलङ्कृतो देशस्त्वया, सौमित्रिणा सह,
वैदेह्या चानया साध्व्या। वसतेह ममाश्रमे।" ३३

एवमुक्तस्तु मुनिना, राघवः, संहताञ्जलिः,
उवाच प्रश्रितं वाक्यं तमृषिं, सत्य-विक्रमः,— ३४

"धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि, यस्य मे, मुनि-पुङ्गवः,
गुणैः, स-भ्रातृ-भार्यस्य, सु-तोषः, परि-तुष्यति। ३५

किन्तु व्यादिश मे देशं सोदकं, बहु-काननम्,
यत्राश्रम-पदं कृत्वा वसेयं, निरतः, सुखी।" ३६

ततोऽब्रवीन् मुनि-श्रेष्ठः, श्रुत्वा रामस्य तद् वचः,
ध्यात्वा मुहूर्तं, धर्मात्मा, धीमान्, धीरतरं वचः,— ३७

"इतो द्वि-योजने, राम, स्वादु-मूल-फलैर् युतः,
देशः, शुचि-जलः, श्रीमान्, पञ्च-वटीति विश्रुतः। ३८

अनुसरन्ति। वि-षम-स्थः—दारिद्र्य-रोगादि-ग्रस्तः। सृष्टिः—विधातृ-विधानम्। ३१। शत-ह्रदानाम्—विद्युताम्। लोलत्वम्—चाञ्चल्यम् [एकत्र अवस्थानाभावात्]। तीक्ष्णताम्—बहु-कालागत-स्नेह-बन्ध-च्छेदे इति शेषः। गरुडानिलयोः—पक्षि-वाय्वोः। शैघ्र्यम्—[मित्र-कार्य-करणे] शीघ्रताम्। योषित्—स्त्री, नारी। ३२। श्लाघ्या—प्रशंसनीया। व्यपदेश्या—व्यपदेशेन (नाम्ना) उल्लेख-योग्या, पति-व्रतासु अग्र-गण्या इत्यर्थः। ३४। संहताञ्जलिः—बद्धाञ्जलिः। ३६। व्यादिश—बोधय। आश्रम-पदम्—वास-स्थानम्। निरतः—प्रीतः। ३७। ध्यात्वा—चिन्तयित्वा। 'वासोचितं

तत्र गत्वाश्रमं कृत्वा, राम, सौमित्रिणा सह,
निवस त्वं, पितुर् वाक्यं यथोक्तमनु-पालयन्। ३९

स देशः श्लाघनीयश्च नाति-दूरे च, राघव ;
गोदावर्याः समीपे च। तत्र सीताभिरंस्यते। ४०

भवानपि स-दारश्च शक्तश्च परि-रक्षसि ;
अपि चात्र वसन्, राम, तापसान् पालयिष्यसि। ४१

एतदालक्ष्यते, राम, मधुकानां महद् वनम् ;
उत्तरेणास्य गन्तव्यं न्यग्रोधमधिगच्छता। ४२

ततः स्थलीमुपारूढा पर्वतस्याविदूरतः
तत्र पञ्च-वटी नाम, दिव्य-पुष्पित-कानना।" ४३

एवमुक्तस्त्वगस्त्येन, रामः, सौमित्रिणा सह,
सत्-कृत्यामन्त्रयामास तमृषिं, सत्य-वादिनम्। ४४

तौ तु तेनाभ्यनुज्ञातौ, कृत-पादाभिवादनौ,
सीतया सह, काकुत्स्थौ जग्मतुर्, वास-काङ्क्षिणौ। ४५

पञ्चमः सर्गः।

पञ्चवटी-प्रवेशः।

स, तु, पञ्च-वटीं गत्वा, नाना-व्याल-निषेविताम्,
उवाच भ्रातरं रामो, लक्ष्मणं दीप्त-तेजसम्,— १

देशम्, इति शेषः। ४१। परि रक्षसि—तापसानाम् इति शेषः। अपि च—अपरञ्च, किञ्च, moreover. ४२। न्यग्रोधः—न्यग्रोध-वृक्षोपलक्षितं स्थानम्। ४३। स्थली—निर्जला देशः। उपारूढा—प्राप्ता। अ-वि-दूरतः—अ-वि-दूरे, समीपतः। तत्र—स्थलिप्रदेशे। ४४। सत्-कृत्य—'पद्यार्घ्य-नमस्कारादिभिः' इति शेषः।

१। व्यालाः—हिंस्र-जन्तवः, श्वापद-सर्पाः।

"आगताः स्मो यथोद्दिष्टम्, इमं देशं, महर्षिणा,
रमणीयं वनं यत्र, पुष्प-मूल-फलं स्थिरम् । २
पञ्चवटीयं, सौमित्रे, देशः पुष्पित-काननः ।
सर्वतश्चार्यतां दृष्टिर् विपुला,—निपुणो ह्यसि । ३
आश्रमः कतरस्मिंस्तु देशे च तव सम्मतः,
रमेत यत्र वैदेही, त्वमहं चैव, लक्ष्मण ; ४
सन्निकृष्टं च यत्र स्यादिध्म-पुष्प-फलोदकम्,
वनं रम्यं च, सौमित्रे, स्थली रम्या च यद् भवेत् ?" ५

एवमुक्तस्तु रामेण, लक्ष्मणः, संहताञ्जलिः,
सीता-समक्षं काकुत्स्थमिदं वचनमब्रवीत्,— ६
"परवानस्मि, काकुत्स्थ, त्वयि, वर्षायुतं, स्थिते ;
स्वयमेव रुचिर् देशो दृश्यतां, यत्र रोचते ।" ७
सु-प्रीतस्तेन वाक्येन लक्ष्मणस्य, महा-द्युतिः,
विमृश्य, रोचयामास देशं, सर्व-गुणान्वितम्,— ८
स, तं रुचिर-पानीयं देशमाश्रम-कर्मणि ।
प्रगृह्य हस्तं हस्तेन, रामो लक्ष्मणमब्रवीत्,— ९

---

३ । निपुणः—दक्षः, 'आश्रमोचित-देश-ज्ञाने' इति शेषः । ५ । इध्मम्—इन्धनम्, समित्, fuel. ७ । परवान्—पराधीनः, अ-स्व-तन्त्रः । त्वयि स्थिते—भावे सप्तमी । सप्तम्यन्त-पदमत्र हेतु-वाचकम् । वर्षायुतम्—दश वर्ष-सहस्राणि । अपि इति शेषः । एवमेव पाठोऽस्मभ्यं रोचते । 'त्वयि स्थिते—वर्षायुतमपि' इति योज्यम् । यावत् ते जीवनम्, तावत् मे त्वदधीनता इत्यर्थः । 'वर्षायुतैः' इति गोरेसियो-प्रभृतयः पठन्ति । 'वर्ष-शतम्' इति पाठान्तरम् । रुचिः—स्पृहा, स्वरुचितः इत्यर्थः । ८ । विमृश्य—पर्यालोच्य । रोचयामास—अभिललाष, इयेष । ९ । रुचिर-पानीयम्—मधुर-जलम् ।

"अयं देशः समः, श्रीमान्, पुष्पितैस्तरुभिर् वृतः।
इहाश्रम-पदं, सौम्य, यथावत् कर्तुमर्हसि। १०
इयमादित्य-सङ्काशैः पद्मैः, सुरभि-गन्धिभिः,
अ-दूरे दृश्यते रम्या पुण्या गोदावरी सरित्, ११
हंस-कारण्डवाकीर्णा, चक्रवाकोपशोभिता,
न च दूरे न चाभ्यासे, मृग-यूथैर् विलोड़िता। १२
मयूराभिरुतो रम्यः प्रांशुः कन्दरवान् गिरिः,
नाना-लता-वितानाढ्यः, पुष्पितैस्तरुभिर् वृतः,— १३
वानीरैस्तिनिशैश्चैव पलाशैरर्जुनैर् धवैः,
चम्पकैः कर्णिकारैश्च तथाशोकैर् वि-भूषितः; १४
राजन्ते धातवो यत्र काञ्चनाश्च—महा-गिरिः!—
आयसाश्चैव ताम्राश्च विभ्राजन्ते समन्ततः। १५
अभ्याश एव शैलस्य विशाला भूमयः समाः,
यासु तालास्तमालाश्च खर्जूराश्च सहस्रशः। १६
चन्दनैः स्यन्दनैश्चैव पियालैर् बकुलैरपि,
धवाश्वकर्ण-खदिरैः, शमी-किंशुक-पाटलैः, १७
इदं मेध्यमिदं रम्यमिदं बहु-गुणं वनम्,—
वत्स्यामोऽत्रैव, सौमित्रे, सहायेन पतत्रिणा।" १८

११। आदित्य-सङ्काशैः—सूर्यवत् उज्ज्वलैः। १२। अभ्यासे—समीपे। मृग यूथैः—पशु-समूहैः। 'पाठान्तरम् आकीर्णा' इति शेषः। १३। अभिरुतः—नादितः। प्रांशुः—उन्नतः। १४। वानीरः—वेतसः, बेत गाछ। १७। स्यन्दनः—तिनिश वृक्षः। पाटलः—पारुल गाछ। १८। मेध्यम्—शुद्धम्, पवित्रम्। पतत्रिणा—पक्षिणा [सह], [illegible]।

एवमुक्तस्तु रामेण, लक्ष्मणः, पर-वीर-हा,
अचिरेणाश्रमं भ्रातुश् चकार, सु-मनो हरम्। १९
पर्ण-शालां स मतिमां चकार, विपुलां, तदा,
मनो-ज्ञां, राघवस्यार्थे, प्रेक्षणीयां, मनो-रमाम्। २०
गत्वा तु लक्ष्मणः, श्रीमान्, नदीं गोदावरीं, ततः,
स्नात्वा, पद्मान्युपादाय, स, शीघ्रं पुनराययौ। २१
पुष्पोपहारं कृत्वाथ, हुत्वा चाग्निं विधानतः,
दर्शयामास रामाय तदाश्रम-पदं कृतम्। २२
स तु दृष्ट्वाश्रमं, रम्यम्, आगत्य, सह सीतया,
राघवः, पर्ण-शालायां, हर्षमाहारयत् परम्; २३
सं-प्रहृष्टः, परिष्वज्य बाहुभ्यां लक्ष्मणं तदा,
अति-स्निग्धं मनो-हारि वचनं श्लक्ष्णमब्रवीत्,— २४
"प्रीतोऽस्मि ते, महत् कर्म त्वया यत् कृतमीदृशम्;
परिष्वङ्गमिमं तावत्. प्रीति-दायं, गृहाण मे। २५
गुण-ज्ञेन कृत-ज्ञेन धर्म-ज्ञेन च, लक्ष्मण,
सत्-पुत्रेण त्वया, तात, तारिताः पितरो मम।" २६
एवं लक्ष्मणमुक्त्वा तु राघवो, लक्ष्मि-वर्धनम्,
तस्मिन् देशे, बहु-फले, बहु-पुष्पोपशोभिते, २७
न्यवसत् सहितो, वीरः, सीतया लक्ष्मणेन च,
कञ्चित् कालं. स धर्मात्मा, स्वर्गे इन्द्र इवापरः। २८

१९। पर-वीर-हा—शत्रु-वीर-हन्ता। २३। आहारयत्—प्राप्तवान्। २५। परिष्वङ्गः—आलिङ्गनम्। प्रीति-दायः—प्रीत्या दीयमानं धनम्। २६। 'गुणज्ञेन…मम'—'सत्-पुत्रस्य कुल-पावनत्वात्' इति शेषः। उणादि-सूत्रम्, ४।१४।

षष्ठः सर्गः ।

हेमन्तागमः ।

वसतस्तस्य तु सुखं राघवस्य तपो-वने,
शरद्-व्यपाये, हेमन्तः प्रावर्तत, भृशं प्रियः । १

स कदाचित्, प्रभातायां शर्वर्यां, रघु-नन्दनः,
अभिषेकार्थमुत्थाय, ययौ गोदावरीं नदीम् । २

प्रह्वः कलश-हस्तश्च, सीतया सह, वीर्यवान्,
पृष्ठतोऽनुव्रजन्, भ्राता सौमित्रिरिदमब्रवीत्,— ३

"अयं ते कालः सं-प्राप्तः, प्रभो, यस्ते प्रियः सदा ;
अलङ्कृत इवाभाति येन सं-वत्सरो गुणैः । ४

नीहार-परुषो वायुः, पृथिवी शस्य-मालिनी,
जलान्यनुपभोग्यानि, सु-भगो हव्य-वाहनः । ५

नवाग्रायण-पूजाभिरभ्यर्च्य पितृ-देवताः,
कृताग्रायण-भोक्तारः सर्वे, विगत-कल्मषाः । ६

प्राप्त-कामा जन-पदाः, सम्पन्न-यव-गो-रसाः ;
विचरन्ति मही-पाला यात्रार्थं वि-जिगीषवः । ७

१ । व्यपाये—गमने । ३ । पृष्ठतः—रामस्येति शेषः । ४ । आभाति—सु-पक्व-शस्यादि-सम्पत्त्या इति शेषः । ५ । नीहार-परुषः—नीहारेण (तुषारेण, हिमेन) परुषः (कठिन-स्पर्शः) । सु-भगः—सुख-दः, प्रियः, सु-सेव्यः । हव्य-वाहनः—अग्निः । ६ । नवाग्रायणपूजाभिः—नवान्न-भोजनाय यत् आग्रायणाख्यं कर्म (नवान्न-श्राद्धादि) कर्तव्यं, तद्-रूप-पूजाभिः । अभ्यर्च्य—समर्च्य । कृताग्रायण-भोक्तारः—आग्रायणं (नव-शस्येष्टिं, नवान्न-श्राद्धम्) कृत्वा [नवान्नं] भुञ्जते ये ते । आग्रायणम्—अग्र-अयन + अण् + अम् । ७ । गो-रसः—गव्यम्, गो-दुग्धादि । यात्रार्थम्—युद्धाय

अगस्त्य-सेवितामाशां सेवमाने दिवा-करे,
वि-हीन-तिलकेव स्त्री, नोत्तरा दिक् प्रकाशते । ८

प्रकृत्या हिम-कोषाढ्यो दूर-सूर्यश्च सम्प्रति
यथार्थ-कृत-नामासौ हिमवान् हिमवान् गिरिः ! ९

प्रत्यूषे दुःख-सञ्चारा मध्याह्न-समये सुखाः,
दिवसाः सु-भगाः पुण्यास्त्वरिता व्यतियान्ति नः ; १०

मृदु-सूर्याः स-नीहाराः कटु-शीतानिलान्विताः
शून्यारण्या, हिम-ध्वस्ताः, प्रत्यूषे भान्ति साम्प्रतम् । ११

निवृत्ताकाश-शयनाः पुष्य-नीता हिमारुणाः
शीत-वृद्धतरायामास्त्रि-यामा यान्ति साम्प्रतम् । १२

रवि-सं-क्रान्त-सौभाग्यस्तुषारारुण-मण्डलः
स-निःश्वास इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते । १३

पौर्णमास्यामपि ज्योत्स्ना तुषार-कलुषी-कृता,
सीतेव तपसा श्यामा, लक्ष्यते, न तु शोभते । १४

प्रकृत्या शीत-सं-स्पर्शो, हिम-विद्धश्च, सम्प्रति
प्रवाति पश्चिमो वायुः, काले द्वि-गुण-शीतलः । १५

प्रख्यापनार्थम्, अभिनिवेशार्थम् । ८ । अगस्त्य-सेविताम्—दक्षिणाम् । आशाम्—दिशम् । ९ । प्रकृत्या—स्व-भावेन । हिम-कोषाढ्यः—हिम-कोषैः (घनीभूत-हिम-समूहैः) आढ्यः (सम्पन्नः) । १० । दुःख-सञ्चाराः—दुःखः सञ्चारः (सञ्चरणम्) येषु ते । ११ । नीहारः—सर्वावरकं हिमम् । कटुः—दुःख-स्पर्शः । हिम-ध्वस्ताः—हिम-विनष्ट-पल्लवादयः । १२ । आकाशः—अनावृत-स्थानम् । हिमारुणाः—हिम-धूसराः । शीत-वृद्धतराः—शीतं वृद्धतरं यासु ताः । आ-यामाः—दीर्घाः । त्रि-यामाः—रजन्यः । १३ । रवि-संक्रान्त-सौभाग्यः—रवौ संक्रान्तं (गतं) सौभाग्यं (सु-भगत्वम् उपभोग्यत्व-रूपं) यस्य सः । स-निःश्वासः—निःश्वास-मलिनः । १५ । शीत-संस्पर्शः—शीतस्पर्शः ।

हिम-च्छन्नान्यरण्यानि यव-गोधूमवन्ति च
शोभन्ते, ऽभ्युदिते सूर्ये, नदद्भिः क्रौञ्च-सारसैः। १६

खर्जूर-पुष्पाकृतिभिः शिरोभिः, पुष्प-मण्डितैः,
शोभन्ते, किञ्चिदालम्बैः, शालयः, कनक-प्रभाः। १७

शालि-शूक-परि-त्रासात् किञ्चिदामीलितेक्षणः,
वृषः पिबति केदारे निःश्वासाकुलितं पयः। १८

मयूखैरुपसर्पद्भिर्, हिम-नीहार-संवृतैः,
दूरादभ्युदितः सूर्यश्चन्द्रमा इव दृश्यते। १९

अ-ग्राह्य-वीर्यः पूर्वाह्णे, मध्याह्ने स्पर्शतः सुखः,
सं-रक्तः किञ्चिदा-पाण्डुरपराह्णे तथातपः। २०

अवश्याय-निपातेन किञ्चित् प्र-क्लिन्न-शाद्वला,
वनानां दृश्यते भूमिर्, निविष्ट-तरुणातपा। २१

अवश्याय-परि-क्लिन्ना, नीहार-तमसावृताः,
प्रसुप्ता इव दृश्यन्ते समन्ताद् वन-राजयः। २२

बाष्प-सं-छन्न-सलिला, रुत-विज्ञेय-सारसाः,
हिमार्द्र-वालुकैस्तीरैः सरितो भान्ति साम्प्रतम्। २३

१७। आलम्बैः—नम्रैः। कनक प्रभाः—[परिपक्वत्वात्] सुवर्ण-वर्णाः। १८। शूकाः—सस्यानां सूच्याग्राणि। केदारे—क्षेत्रे। आकुलितम्—क्षुभितम्। १९। मयूखैः—किरणैः [उपलक्षितः]। चन्द्रमा इव—प्रभाव-रहितः। २०। वीर्यम्—उत्तापः प्रभावः। सं-रक्तः—लोहित-वर्णः। २१। अवश्यायः—हिम-बिन्दुः। प्र-क्लिन्न-शाद्वला—प्र-क्लिन्नः (सम्यक् आर्द्रः) शाद्वलः (हरित-तृण-समावृतो देशः) यस्यां सा। निविष्ट-तरुणातपा—निविष्टः (प्राप्तः) तरुणातपः याम् सा। २२। परि क्लिन्नाः—सर्वतः

तुषार-पतनाच्चैव, मृदुत्वाद् भास्करस्य च,
शैत्याद् अगाग्र-स्थमपि प्रायेण रसवज् जलम् । २४

जराजर्जरितैः पत्रैः, शीर्ण-केसर-कर्णिकैः,
नाल-शिष्टा, हिमैर् दग्धा, न भान्ति कमलाकराः । २५

"अस्मिन्, स, पुरुष-व्याघ्र, काले, दुःख-समन्वितः,
तपश्चरति धर्मात्मा, त्वद्-भक्त्या, भरतः, पुरे । २६

त्यक्त्वा राज्यं च भोगांश्च विषयांश्चैव सर्वशः,
तपस्वी, नियताहारः, शेते शीते मही-तले । २७

सोऽपि, नूनमिमां वेलाम्, अभिषेकार्थमुद्यतः,
वृतः प्रकृतिभिर्, भक्त्या प्रयाति सरयूं नदीम् । २८

अत्यन्त-सुख-संवृद्धः, सु-कुमारो, हिमार्दितः,
कथं चापर-रात्रेषु सरयूमवगाहते ? २९

धर्म-ज्ञः सत्य-वादी च, ह्री-निषेवी, जितेन्द्रियः,
सन्त्यज्य विविधं सौख्यम्, आर्यं सर्वात्मनाश्रितः । ३०

'न पित्र्यम्—अनुवर्तन्ते मातृकं द्वि-पदा', इति
ख्यातो लोक-प्रवादोऽयं भरतेनान्यथा कृतः । ३१

भर्ता दशरथो यस्याः, साधुश्च भरतः सुतः,
कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी, मनुजेश्वर ?" ३२

---

२४ । अ-गः—पर्वतः । रसवत्—स्वादु । २५ । जरा—वार्धक्यम् । कर्णिका—पद्म-मध्यस्थ-बीज-कोषः । २९ । अपर-रात्रेषु—शेष-रात्रिषु । ३० । ह्रीः—लज्जा । सौख्यम्—सौख्य-साधनम्, सुख-हेतुः । ३१ । पित्र्यम्—पितुः [स्व-भावम्] । अनुवर्तन्ते—अनुसरन्ति । मातृकम्—मातुः [स्व-भावम्] । द्वि-पदाः—मनुष्याः । ३२ । कथं नु—सम्भवतः किं-प्रकारम् ।

इत्यथो, लक्ष्मणे वाक्यं स्नेहाद् ब्रुवति, धार्मिके,
परिवाद-निवृत्तात्मा वचनं राघवोऽब्रवीत्,— ३३

"न तेऽम्बा मध्यमा, तात, गर्हितव्या ममाग्रतः ;
तस्यैवेक्ष्वाकु-नाथस्य भरतस्य कथां कुरु । ३४

निश्चितैव हि मे बुद्धिर् वन-वासाय, लक्ष्मण,—
भरत-स्नेह-सन्तप्ता बालिशा क्रियते पुनः ।" ३५

इत्यसौ प्रवदन्नेव, प्राप्य गोदावरीं नदीम्,
कृताभिषेकः, काकुत्स्थः, सानुजः, सह सीतया, ३६

तर्पयित्वा तु विधिवत् पितॄन् देवांश्च, राघवः,
उपास्त, सानुजः, सूर्यमुद्यन्तं, सह सीतया । ३७

आश्रमं समुपागम्य, राघवः, पर-वीर-हा,
कृत्वा पौर्वाह्णिकं कर्म, पर्ण-शालामुपाविशत् । ३८

सप्तमः सर्गः ।

राक्षसी-प्रणयः ।

स रामः, पर्ण-शालायामासीनः सह सीतया,
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा चकार विविधाः कथाः । १

तं देशं राक्षसी काचिदाजगाम यदृच्छया ।
सा तु शूर्प-णखा नाम दश-ग्रीवस्य रक्षसः २

३३ । परिवादः, परीवादः—अपवादः । ३४ । गर्हितव्या—निन्दनीया । ३५ । भरत-स्नेह-सन्तप्ता—भरतस्य वियोगम् अ-सहमाना । बालिशा—चापल्यं प्राप्ता । ३७ । उपास्त—उपासाञ्चक्रे । ३८ । पौर्वाह्णिकम्—प्रातः-कालिकम् ।

२ । शूर्प-णखा—शूर्पाणि नखानि यस्याः, संज्ञायाम् । पाणिनिः, ८।४।३ ।

भगिनी रामम्, आगम्य, ददर्श, त्रिदशोपमम्,
सिंह-स्कन्धं, महा-बाहुं, पद्म-पत्र-निभेक्षणम् । ३

तं दृष्ट्वा, देव-सङ्काशं, राक्षसी, मदनार्दिता,
सु-मुखं दुर्मुखी रामं, वृत्त-पार्श्वं महोदरी, ४

विशालाक्षं वि-रूपाक्षी, सु-केशं ताम्र-मूर्ध-जा,
अति-रूपं वि-रूपा सा, सु-स्वरं भैरव-स्वना, ५

तरुणं दारुणा वृद्धा, दक्षिणं वाम-भाषिणी,
तं न्याय-वृत्तं दुर्वृत्ता, प्रियम-प्रिय-दर्शना— ६

सु-कुमारं, महा-सत्त्वं, पार्थिव-व्यञ्जनान्वितम्,
काम-भार-समाविष्टा दृष्ट्वा राममचिन्तयत्,— ७

“अस्याहं श्लाघ्य-रूपस्य रामस्याद्भुत-कर्मणः
काममुत्पादयिष्यामि, रूपेणान्येन, कामिनी” । ८

साभिगम्य महा-बाहुं, भूत्वा वै काम-रूपिणी,
स्त्री-स्व-भावं पुरस्कृत्य, स-स्मितं वाक्यमब्रवीत्,— ९

“कस्त्वं, तापस-रूपेण, स-भार्यः, शर-चाप-धृक्,
इमं देशमनुप्राप्तो, दुर्गं, राक्षस-सेवितम् ?” १०

एवमुक्तस्तु राक्षस्या शूर्पणख्या, स राघवः,
ऋजु-बुद्धितया सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे,— ११

---

४ । वृत्तम्—वर्त्तुलम्, rounded. ५ । ताम्र-मूर्ध-जा—रक्त-केशा । ६ । दारुणा—अ-दारुणम् इति शेषः । दक्षिणम्—सु-भाषिणम् । वाम-भाषिणी—दुष्ट-भाषिणी । ७ । पार्थिवः—राजा । व्यञ्जनम्—चिह्नम् । ११ । उपचक्रमे—आरेभे । ‘उप-पराभ्याम् [क्रम आत्मने-पदम्]’,—पाणिनिः, १।३।३९ ।

"राजा दशरथो नाम, धर्मात्मा, विश्रुतः क्षितौ ;
तस्याहमग्र-जः पुत्रो, राम इत्यभि-वि-श्रुतः। १२
सीतेयं मम भार्या च, भ्रातायं लक्ष्मणस्तथा।
नियोगात् तु नरेन्द्रस्य पितुर्, मातुश्च शासनात्, १३
धर्मात्मा धर्म-कामश्च वने वस्तुमिहागतः।
वने घोरतमे, भीरु, का त्वं चरसि दण्डके ?" १४

सात्रवीत्, तद् वचः श्रुत्वा, राक्षसी, मद-विह्वला,—
"अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी, काम-रूपिणी, १५
अरण्ये विचराम्येका, सर्व-भूत-भयङ्करी,
उत्सादयन्ती पुण्यानि तीर्थान्यायतनानि च। १६
रावणो नाम मे भ्राता राक्षसो राक्षसेश्वरः ;
वि-भीषणश्च धर्मात्मा राक्षसाचार-वर्जितः ; १७
प्र-सुप्त-निद्रश्च तथा कुम्भ-कर्णो महा-बलः ;
प्रख्यात-बल-वीर्यौ च राक्षसौ खर-दूषणौ। १८

"साहं त्वद्-दर्शनाद्, राम, काम-वैक्लव्यतां गता ;
भजस्व भजमानां मां। सीतया किं तवानया ? १९
विकृतेयं वि-रूपा च, न चैव सदृशी तव ;
अहमेवानु-रूपा ते भार्या, रूप-गुणान्विता। २०

१३। नियोगात्—आज्ञा-वशात्। १४। धर्म-कामः—पितृ-वाक्य-पालन-रूप-धर्माभिलाषी। आगतः—'अहम्' इति कर्तृ-पदमुह्यम्। १५। मदः—प्रिय-जन-दर्शनजानन्द-सम्भूत-मोहः। १६। उत्सादयन्ती—उन्मूलयन्ती, वि-नाशयन्ती। तीर्थानि—पुण्य-क्षेत्राणि। आयतनानि—यज्ञ-स्थानानि। १९। वैक्लव्यता—वैक्लव्यम्, वि-वशता। अत्र तल्-प्रत्ययोऽतिरिक्त एव। २०। वि-कृता—कुरूपा। वि-रूपा—कुत्सिता।

इमाम-रूपाम-सतीं भक्षयिष्यामि मानुषीम्,
अनेन ते सह भ्रात्रा, द्वितीयेन, गतायुषा। २१
ततः पर्वत-शृङ्गाणि वनानि रुचिराणि च
पश्यन्, मह मया, कान्त, दण्डकान् विचरिष्यसि।" २२

अष्टमः सर्गः।

प्रणय-विघातः।

एतत् तु वचनं श्रुत्वा राक्षस्याः, अति-दारुणम्,
ईक्षाञ्चक्रे तदा सीतां लक्ष्मणं च, महा-भुजः। १
नर्म्महास-निमित्तं च, रामः शूर्पणखां ततः
इदं वचनमारेभे वक्तुं, वाक्य-विशारदः,— २
"कृत-दारोऽस्मि, भवति; भार्येयं दयिता मम;
त्वद्-विधा तु न वै नारी स-पत्नीं मर्षयेदिमाम्। ३
अनुजस्त्वेष मे भ्राता, शीलवान्, प्रिय-दर्शनः,
श्रीमान् अ-कृत-दारश्च, लक्ष्मणो नाम, वीर्यवान्। ४
एषोऽनु-रूपो भर्ता ते रूपस्यास्य भविष्यति;
एनं भज, विशालाक्षि, भर्तारं, भ्रातरं मम।" ५
इत्युक्त्वा साथ रामेण, राक्षसी, काम-रूपिणी,
विसृज्य रामं सहसा, ततो लक्ष्मणमब्रवीत्,— ६
"तवानु-रूपा रूपस्य, भार्या मां भज, मान-द;
मया सह, सुखी, रम्यं दण्डकं विचरिष्यसि।" ७

२। नर्म्महासः—परिहासः। ३। कृत-दारः—विवाहितः। मर्षयेत्—सहेत।
४। अ-कृत-दारः—अ-विवाहितः। न रामे परिहासादिष्वपि मिथ्या-भाषणं युज्यते

एवमुक्तस्तु सौमित्री राक्षस्या, वाक्य-को-विदः,
वीक्ष्य शूर्पणखां, वाक्यं ततस्तामिदमब्रवीत्,— ८
"कथं दासस्य दासी त्वं भार्या भवितुमर्हसि ?
आर्यस्यैव, विशालाक्षि, भार्या भव यवीयसी । ९
एताम-रूपाम-सतीं करालां निर्णतोदरीम्
भार्यां वृद्धां परित्यज्य, त्वामेवार्य्यो भजिष्यति । १०
को हि रूपमिदं त्यक्त्वा, दिव्यं, तव, विलासिनि,
मानुषीषु, वरारोहे, भावं कुर्य्याद्, विचक्षणः ?" ११
ततः सा राघवं भूयः, समुत्पत्य, महा-द्युतिम्,
सीतया सह, दुर्धर्षमब्रवीत्, काम-मोहिता,— १२
"अहं त्वदभिकामा च, राम, त्वत्-पूर्व-दर्शना ;
वृद्धां भार्यामवष्टभ्य त्वं मां न बहु मन्यसे । १३
अद्येमां भक्षयिष्यामि, पश्यतस्तेऽति-मानिनः ;
ततस्त्वया रमिष्येऽहं, निः-सपत्ना, यथा-सुखम् ।" १४
इत्युक्त्वा, मृग-शावाक्षीमलात-सदृशेक्षणा
अभ्यधावत वैदेहीं, महोल्का रोहिणीमिव । १५
तां मृत्यु-पाश-प्रतिमामापतन्तीं, महा-बलः,
निवार्य रामः कुपितस्ततो लक्ष्मणमब्रवीत्,— १६

इति वक्तव्यम्। ८। कोविदः—पण्डितः, निपुणः। ९। यवीयसी—कनीयसी। ११। भावं कुर्य्यात्—अनुरज्येत। भावः—प्रेम, अनुरागः। १३। अवष्टभ्य—आलम्ब्य, आश्रित्य। १४। अति-मानिनः—अत्युद्धतस्य। पश्यतस्तेऽति-मानिनः—पश्यन्तं त्वामति-मानिनम् अनादृत्य। अनादरे षष्ठी। निः-सपत्ना—शत्रु-रहिता। स-पत्न्यो भार्य्याः शत्रुः। १५। शावः—शावकः, शिशुः। अलातम्—अर्धदग्धकाष्ठम्।

“क्रूरैः सु-दुष्टैः, सौमित्रे, सम्प्रहासः कथञ्चन
न कार्यः। पश्य, वैदेही कथञ्चित्, सौम्य, जीवति! १७
इमां वि-रूपां दुर्वृत्तामति-मत्तां महोदरीम्
राक्षसीं, पुरुष-व्याघ्र, निवर्तयितुमर्हसि।” १८

इत्युक्तो लक्ष्मणः, क्रुद्धम्, तस्य रामस्य पश्यतः,
खड्गेन तस्याश्चिच्छेद कर्ण-नासां, निकृत्य ताम्। १९
सा च, क्षरन्ती रुधिरं बहुधा, रुधिरोक्षिता,
प्रगृह्य बाहू, गर्जन्ती, प्र-विवेश महा-वनम्। २०

ततस्तु सा राक्षस-सङ्घ-सं-वृतम्
खरं, जन-स्थान-गतं, वि-रूपिता,
उपेत्य वै, भ्रातरमुग्र-तेजसम्,
पपात भूमौ, गगनादिवाशनिः। २१

नवमः सर्गः।

खराभिगमनम्।

तां तथा पतितां दृष्ट्वा, वि-रूपां, शोणितोक्षिताम्,
भगिनीं क्रोध-ताम्राक्षः खरः पप्रच्छ, राक्षसः,— १
“बल-विक्रम-सम्पन्ना, यथा-काम-विचारिणी,
इमामवस्थां नीतासि, केनान्तक-समा, भुवि?” २

१९। कर्ण-नासामिति एकवद्भावेऽपि क्लीवत्वाभाव आर्षः। नि-कृत्य—प्र-हृत्य।
२०। उक्षिता—सिक्ता। प्रगृह्य—प्रसार्य। २१। सं-वृतम्—परि-वृतम्।
१। ताम्राक्षः—रक्त-नयनः, आरक्त-नेत्रः। २। अन्तकः—यमः।

इति भ्रातुर् वचः श्रुत्वा, क्रुद्धस्य, वदतस्तथा,
ततः, शूर्पणखा वाक्यं बाष्प-गद्गदमब्रवीत्,— ३
"पुण्डरीक-विशालाक्षौ चीर-कृष्णाजिनाम्बरौ—
देवौ वा तौ मनुष्यौ वा, न तर्कयितुमुत्सहे। ४
त्वदीयं वनमाक्रम्य, कृत्वा चाश्रम-मण्डलम्,
तत्र तौ बल-सम्पन्नौ वसतो, रावणानुज! ५
तरुणी, रूप-सम्पन्ना, सर्वाभरण-भूषिता,
दृष्टा तत्र मया नारी तयोर्मध्ये, सु-मध्यमा। ६
तां च तौ चाहमारब्धा बलाद् भक्षयितु वने—
इमामवस्थां नीतास्मि, यथानाथवती तथा।" ७
एवमाधर्षितः शूरः शूर्पणख्या खरस्तदा
उवाच, रक्षसां मध्ये, खरः, खरतरं वचः,— ८
"अद्य रामं, सह भ्रात्रा, नयामि यम-सादनम्;
रामस्य रुधिरं व्यक्तमुष्णं पास्यसि, राक्षसि!" ९
राक्षसानां सु-घोराणां सहस्राणि चतुर्दश
निर्यातानि जन-स्थानात्, खरस्य वश-वर्तिनाम्। १०
निर्गच्छतस्तु तान् दृष्ट्वा, राक्षसान्, भीम-विक्रमान्,
खरोऽपि स्व-रथेनाशु निर्ययौ, बल-दर्पितः। ११

४। पुण्डरीकम्—श्वेत पद्मम्। तर्कयितुम्—अनुमातुम्। ७। आरब्धा—आरब्धवती। क्रियारम्भे स-कर्मकात् कर्तर्यपि क्तः। अ-नाथवती—अ नाथा, रक्षक हीना। ८। आधर्षितः—आक्रान्तः, तिरस्कृतः। चतुर्थ पादे, खरः—उग्रः, क्रूरः, निष्ठुरः। ९। सादनम्—सदनम्, यम. मरणम्। १०। निर्यातानि—युद्धाय बहिर्गतानि।

तानि शूर्पणखा दृष्ट्वा, सहस्राणि चतुर्दश,
हतान्येकेन रामेण, मानुषेण पदातिना, १२
खरं त्रि-शिरसं चैव दूषणं च निपातितम्,
आजगाम, समुद्विग्ना, लङ्कां, रावण-पालिताम्। १३
सा ददर्श विमानाग्रे रावणं, लोक-रावणम्,
आसीनं सूर्य-सङ्काशे काञ्चने परमासने, १४
रुक्म-वेदी-गतं, देवं ज्वलन्तमिव पावकम्,
दशास्यं, विंशति-भुजं, दर्शनीय-परिच्छदम्, १५
ताम्राक्षं, विपुलोरस्कं, राज-लक्षण-लक्षितम्,
स्निग्ध-जीमूत-सदृशं, तप्त-काञ्चन-भूषणम्, १६
सु-भुजं, शुक्ल-दशनं, महास्यं, पर्वतोपमम्,
देव-दानव-यक्षाणाम् ऋषीणां च महात्मनाम् १७
अजेयं, समरे शूरं, व्यात्ताननमिवान्तकम्,
देवासुर-वि-मर्देषु वज्राशनि-कृत-व्रणम्, १८
ऐरावत-विषाणाग्रैर् बहुशः क्षत-लक्षणम्
विष्णु-चक्र-निपातैश्च बहुशो देव-संयुगे, १९
भेत्तारं पर्वताग्राणां सुराणां च, महा-बलम्,
उच्छेत्तारं च धर्माणां, पर-दाराभिमर्दनम्, २०

१३। समुद्विग्ना—नितरामुत्कण्ठिता। १४। विमानाग्रे—सिंहासन-पृष्ठे। लोक-रावणम्—लोकानां (पृथिव्यादीनां) रावणं (रोदन-कारकम्)। १५। रुक्म-वेदी—सुवर्ण-मञ्चः। देवः—दीप्यमानः। परिच्छदः—छत्र-चामर-वस्त्रादि। १६। विपुलोरस्कः—विशाल-वक्षाः। जीमूतः—मेघः। तप्तम्—उज्ज्वलम्। १८। व्यात्ताननः—प्रसारित-मुखः। वि-मर्देषु—सङ्घर्षेषु, युद्धेषु। १९। विषाणम्—गज-दन्तः। संयुगे—

दैत्यानां दानवानां च राक्षसानां च सं-युगे
हन्तारम्, अथ चास्त्राणां प्रयोक्तारं, महा-रथम्,— २१
येन, भोगवतीं गत्वा, पराजित्य च वासुकिम्,
तक्षकस्य प्रिया भार्या विक्रमेण हृता पुरा ; २२
येन वैश्रवणो राजा, रणे विक्रम्य, निर्जितः,
कैलासं पर्वत-श्रेष्ठमध्यासीनो, महा-बलः ; २३
विमानं पुष्पकं तस्य काम-गं च जहार यः,
प्रसाद-द्रुम-चित्राङ्गं, नाना-खग-मृगाकुलम् ; २४
वनं चैत्ररथं दिव्यं, नलिनीं, नन्दनं वनम्
यो विनाशितवान् क्रोधाद्, देवोद्यानानि, वीर्यवान् । २५
ततः शूर्पणखा दीना रावणं, लोक-रावणम्,
अमात्य-मध्ये, सं-क्रुद्धा, परुषं वाक्यमब्रवीत्,— २६
"प्र-मत्तः, काम-भोगेषु स्वैर-वृत्तो, निरङ्कुशः,
समुत्पन्नं भयं घोरं बोद्धव्यं नावबुध्यसे । २७
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां, दीप्त-तेजसाम्,
हतान्येकेन रामेण, मानुषेण पदातिना ; २८
ऋषीणामभयं दत्तं, कृताः क्षेमाश्च दण्डकाः ;
धर्षितं च जन-स्थानं रामेणाक्लिष्ट-कर्मणा । २९

सङ्गे, युद्धे । २१ । महा-रथः—'आत्मानं सारथिं चाश्वान् रक्षन् युध्येत यो नरः, स महा-रथ-संज्ञः स्यादित्याहुर्नीति-कोविदः ।' २४ । विमानः—नभो-रथः । प्रसाद-द्रुमः—कल्प-वृक्षः । २५ । नलिनी—चैत्ररथ-वन-मध्य-वर्तिनी सरसी । नन्दनम्—इन्द्र-वनम् । 'नलिनी-नन्दनम्' इति गोरेसियो-प्रभृतयः पठन्ति । २७ । प्र-मत्तः—अतिमात्र-प्रसक्तः । स्वैर-वृत्तः—स्वेच्छा-चारी । २९ । क्षेमाः—लब्ध-रक्षणाः, निरापदः । धर्षितम्—

नानुतिष्ठसि कार्याणि, भयेषु न बिभेषि च,—
क्षिप्रं राज्य-च्युतो दीनस्तृण-तुल्यो भविष्यसि ।" ३०

अमात्य-मध्ये, सं-क्रुद्धः, परि-पप्रच्छ रावणः,—
"कश्च रामः, कुतो रामः, किं-वीर्यः, किं-पराक्रमः ?" ३१

इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण, राक्षसी, क्रोध-मूर्च्छिता,
ततो, रामं यथा-तत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे,— ३२

"दीर्घ-बाहुर् विशालाक्षश्चीर-कृष्णाजिनाम्बरः,
कन्दर्प-सम-रूपश्च रामो दश-रथात्मजः । ३३

नाददानं शरान् घोरान्, न मुञ्चन्तं, महा-बलम्,
कार्मुकं वा विकर्षन्तं, रामं पश्यामि सं-युगे । ३४

हतमेव तु तत् सैन्यं पश्यामि, शर-वृष्टिभिः,
राघवेणोत्तमं शस्यमिन्द्रेणेवाश्म-वृष्टिभिः । ३५

भ्राता चास्य, महा-तेजा, गुणवां स्तुल्य-लक्षणः,
अनुरक्तश्च भक्तश्च, लक्ष्मणो नाम, वीर्यवान् । ३६

रामस्य तु विशालाक्षी धर्म-पत्नी, यशस्विनी,
सीता नाम, वरारोहा, वेदी-प्रतिम-मध्यमा । ३७

नैव देवी, न गन्धर्वी, न यक्षी, न च किन्नरी,
तथा-रूपा मया नारी दृष्ट-पूर्वा मही-तले । ३८

एवं सीता, महा-राज, रूपेणाप्रतिमा भुवि ;—
तवानु-रूपा भार्या सा, त्वं च तस्याः पतिस्तथा ।" ३९

आक्रामन् । ३४ । आददानम्—गृह्णन्तम् । ३५ । तत्—'येन युध्यते' इति शेषः । अश्म-वृष्टिभिः—शिला-वृष्टिभिः । ३७ । वेदी-प्रतिम-मध्यमा—वेदीवत् तनु-मध्यमा, 'सु-मध्यमा'।

दशमः सर्गः।

हैमो मृगः।

आगत्य दण्डकारण्यं, राघवस्याश्रमं, ततः,
ददर्श सह-मारीचो रावणो, राक्षसेश्वरः।

हस्ते सं-गृह्य मारीचं, रावणो वाक्यमब्रवीत्;—
"क्रियतां तत्, सखे, शीघ्रं, यदर्थं वयमागताः"। २

स, रावण-वचः श्रुत्वा, मारीचस्त्वरयान्वितः,
तत्-क्षणाद्, राक्षसं रूपं त्यक्त्वा, हैमोऽभवन् मृगः; ३
रौप्य-विन्दु-शत-चित्रः, सर्व-भूत-मनो-हरः,
मृगो भूत्वाश्रम-द्वारि रामस्य विचचार ह। ४

तं तु सीता मृगं दृष्ट्वा वने, काञ्चन-सु-प्रभम्,
हेम-राजत-चित्राभ्यां पार्श्वाभ्यां समलङ्कृतम्, ५
शृङ्गाभ्यां हेम-वर्णाभ्यां कान्तिमद्भ्यां विभूषितम्,
वैदूर्य-मणि-वर्णाभ्यां कर्णाभ्यां चारु-दर्शनम्, ६
प्रभया परिराजन्तं, सूक्ष्म-रोम-तनु-त्वचम्,
नाना-रत्न-विचित्राङ्गं, सा, व्यस्मयत, भाविनी। ७

सा, विस्मितानवद्याङ्गी मृगेण, जनकात्मजा,
उवाच राघवं सीता, स्मित-पूर्वाभिभाषिणी,— ८
"इमं, मणि-विचित्राङ्गं, पश्य हैममयं मृगम्,
आश्चर्य-भूतं, काकुत्स्थ, कामात् स्वयमिहागतम्"। ९

२। 'हस्ते'—अवच्छेदे सप्तमी। सं-गृह्य—प्रणयेन गृहीत्वा। ७। व्यस्मयत—विस्मिता बभूव। ८। अनवद्यम्—अ-निन्दनीयम्। ९। कामात्—स्वेच्छया।

शङ्कमानस्तु, तं दृष्ट्वा, तारा-मृग-सम-प्रभम्,
विचार्य बहुधा बुद्ध्या, लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्,— १०

"यथा न: कथितं पूर्वमृषिभि: पावकोपमै:,
एवं माया-धरो, वीर, मारीचो नाम राक्षस: । ११

चरन्तो मृगयां, हृष्टा, रथिनो, धन्विनो, वने,
अनेन, मृग-रूपेण, राजानो बहवो हता: । १२

मृगो हेममयो नैव ! हेमकस्य मृगस्य च
कुतो लोके, नर-व्याघ्र, सं-योग: ? साधु चिन्तय । १३

प्रवाल-मणि-शृङ्गोऽयं, न मृगो, रत्न-लोचन: ।
एतं माया-मृगं मन्ये—राक्षसं मृग-रूपिणम् ।" १४

एका-दश: सर्ग: ।

राम-निर्गमनम् ।

एवं ब्रुवाणं काकुत्स्थं प्रतिवार्य, शुचि-स्मिता,
उवाच, सीता, संहृष्टा, छद्मना हृत-चेतना,— १

"आर्य-पुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मन: ;
आनयैनं, महा-बाहो—क्रीडार्थं नो भविष्यति । २

इहाश्रम-पदेऽस्माकं, बहव: पुण्य-दर्शना:
मृगाश्चरन्ति सहिताश्चमरा: सृमरास्तथा । ३

---

१० । तारा-मृग:—मृग-शिरा नाम नक्षत्र पुञ्ज: । १३ । सं-योग:—मेलनम् ।

१ । प्रतिवार्य—निवार्य । छद्मना—वञ्चनेन, मायया । ३ । सहिता:—मिलिता: । चमरा:—चमर-पुच्छा: [मृगा:] । सृमरा:—क्षम-पुच्छा: [मृगा:] ।

न चास्य सदृशो, राम, दृष्ट-पूर्वो मृगो मया,
तेजसा क्षमया दीप्त्या, यथायं मृग-सत्तमः । ४

यदि ग्रहणमभ्येति जीवन्नेव मृगस्तव,
आश्चर्य-भूतं भवति, विस्मयं जनयिष्यति । ५

समाप्त-वन-वासानां राज्यस्थानां च नः, पुनः,
अन्तः-पुरेऽपि भूषार्थो मृग एष भविष्यति । ६

जीवन् न यदि तेऽभ्येति ग्रहणं मृग-सत्तमः,
अजिनं, नर-शार्दूल, रुचिरं तु भविष्यति । ७

निहतस्यास्य सत्त्वस्य जाम्बूनद-मय-त्वचि
शष्प-बृस्यां विनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम् । ८

कामवृत्तमिदं रौद्रं स्त्रीणाम-सदृशं मया ;
वपुषा त्वस्य सत्त्वस्य लोभेनापहृतं मनः ।" ९

इति सीता-वचः श्रुत्वा, दृष्ट्वा च मृगमद्भुतम्,
मोहितो राघवः श्रीमानिदं लक्ष्मणमब्रवीत्,— १०

"इहाप्रमत्तस्त्वं, वीर, परि-पालय मैथिलीम् ;
तावन् न चलितव्यं ते, यावन् नाहमिहागतः" । ११

क्वचिद् दृष्टः, क्वचिन् नष्टः, क्वचित् त्रासाच् च वि-द्रुतः—
भयेन महताच्छन्नो—मारीचो याति कानने । १२

४। तेजसा—विचित्र गति-सामर्थ्येन । क्षमया—शान्त्या, सौम्य-भावेन । दीप्त्या—देह-कान्त्या । ५। आश्चर्य-भूतम्—जीवतो ग्रहणमिति शेषः । ७। अजिनम्—हतस्येति शेषः । ८। जाम्बूनदम्—सुवर्णम् । त्वचि—चर्मणि । शष्प-बृस्याम्—बाल-तृण-परिकल्पित-तापसासने । विनीतायाम्—प्रसारितायाम् । उपासितुम्—[तत्र] समीपे उपवेष्टुम् । ११। परि-पालय—रक्ष । १२। नष्टः—अन्तर्हितः ।

हतो गतोऽसौ दृष्टश्च, पुनरन्तर्हितो मृग:—
इति तां मृगाम् वनोद्देशान् काकुत्स्थ: पर्यधावत । १३

राघवस्तु तत: क्रुद्धो—मुहूर्तं तेन मोहित:—
मुमोच ज्वलितं दीप्तमस्त्रं ब्रह्म-वि-निर्मितम् । १४

तेन मर्मणि निर्विद्ध: शरेणाप्रतिमेन च,
तालमात्रमथोत्पत्य, न्यपतत् स, शरातुर: ; १५

व्यनदद् भैरवं नादं, धरण्यां, शर-पीड़ित: ।
म्रियमाणस्तु मारीचश्, चिन्तयन् स्वामिन: प्रियम्, १६

रामस्य सदृशं व्यक्तं स्वरमालम्ब्य, पाप-कृत्,
हा लक्ष्मणेति चुक्रोश, त्रायस्वेति, महा-वने । १७

द्वा-दश: सर्ग: ।

लक्ष्मण-निर्गमनम् ।

आर्त-स्वरं तु वि-ज्ञाय, तं, भर्तु: सदृशं, वने,
उवाच लक्ष्मणं सीता,—"गच्छ, जानीहि राघवम् । १

न हि मे जीवितं स्थाने हृदयं चावतिष्ठते ;—
क्रोशत: परमार्तस्य श्रुत: शब्दो मया भृशम् । २

सहायं, भ्रातरं ज्येष्ठं, सह पन्थानमागतम्,
क्रन्दन्तमेवं, सौमित्रे, परित्रातुं त्वमर्हसि । ३

१५ । ताल-मात्रम्—'अर्ह . ताल-हय-प्रमाणम्' इति लोक-नाथ: । उत्पत्य—उत्प्लुत्य, उल्लम्फ्य ।

२ । स्थाने—स्व-स्थाने । अवतिष्ठते—'समव-प्र-विभ्य: स्थ: [आत्मने-पदम्]'—पाणिनि:, १।३।२२ । 'मोहो जायते' इति प्रथम-पङ्क्तेरर्थ: । क्रोशत:—रुदत: [रामस्य] ।

३ । सह—त्वया सह ।

तं क्षिप्रमभिधावस्व भ्रातरं, शरणैषिणम्,
रक्षसां वशमापन्नं, सिंहानामिव गो-पतिम् ।" ४

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा, स्त्री-स्व-भाव-प्र-दूषितम्,
उवाच लक्ष्मणः सीतां, त्रासादुत्फुल्ल-लोचनाम्,— ५
"न मे शक्यस्त्रिभिर् लोकैः—सेन्द्रैरपि सुरासुरैः—
भ्राता धर्षयितुं बाढ़म्", इत्युवाच स जानकीम्, ६
"कनिष्ठायामप्यङ्गुल्यां भ्रातुर् मम स राक्षसः
दुःखं कर्तुमपर्याप्तो । देवि, कस्माद् विषीदसि ?" ७

तमुवाच ततः सीता, कुपिता, जनकात्मजा,—
"अ-मित्रो, मित्र-रूपेण, भ्रातुस्त्वमसि, लक्ष्मण,
यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे । ८
व्यसनं ते प्रियं मन्ये, स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते,
येन तिष्ठसि विस्रब्धस्, तमपश्यन्, महा-द्युतिम् । ९
वर्तयेयं न, रामेण मुहूर्तमपि वर्जिता ;
कुरु मे वचनं, वीर,—भ्रातरं पाहि मा चिरम् ।" १०

इति ब्रुवाणां वैदेहीं, बाष्प-शोक-परिप्लुताम्,
अब्रवील् लक्ष्मणस्त्रस्तां सीतां, मृग-वधूमिव,— ११
"देवि, देव-मनुष्येषु गन्धर्व-पतगेषु च,
राक्षसेषु, पिशाचेषु, किन्नरेषूरगेषु च, १२

४ । शरणैषिणम्—आश्रयार्थिनम् । गो-पतिः—वृषः । ६ । धर्षयितुम्—अभिभवितुम् । बाढ़म्—तत्त्वतः । ७ । सः—स्वत्र-रूपः राक्षसः । ८ । अभिपद्यसे—अभिगच्छसि । ९ । विस्रब्धः, विस्रम्भः—विश्वस्तः, निःशङ्कः । १२ । पतगेषु—पक्षिषु । उरगेषु—सर्पेषु ।

दानवेषु च घोरेषु विद्यते न च, शोभने,
यो रामं प्रतियुध्येत, महेन्द्रमिव मानुष: । १३

अवध्य: समरे रामो । नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ।
नोत्सहे त्वां विरहितुं शून्येऽहं राघवं विना । १४

कृत-वैराश्च, कल्याणि, वयमेतैर् निशा-चरै:—
रक्षांसि विविधा वाचो विसृजन्ति महा-वने । १५

हृदयं निर्वृतं तेऽस्तु । सन्तापस्त्यज्यतामयम् ।
आगमिष्यति भर्ता ते शीघ्रं, हत्वा मृगोत्तमम् । १६

न तस्यायं स्वरो, देवि, वि-स्वरो यस्त्वया श्रुत:—
कष्टायामप्यवस्थायां न रामो गर्हितं वदेत् ।" १७

एवमुक्ता तु वैदेही, क्रुद्धा, सं-रक्त-लोचना,
अब्रवीत् परुषं वाक्यं लक्ष्मणं, पथ्य-वादिनम्— १८

"ह्यनार्य-करुणारम्भ ! नृ-शंस ! कुल-पांसन !
अहं तव प्रिया, मन्ये, येनैवं त्वं प्र-भाषसे ! १९

नैतच् चित्रं, स-पत्नेषु पापं, लक्ष्मण, यद् भवेत्
त्वद्विधेषु मनुष्येषु, नित्यं प्रच्छन्न-चारिषु । २०

सन्दुष्टस्त्वं वने नूनं राममेकोऽनुधावसि
मम हेतो:, प्रतिच्छन्न:, प्रयुक्तो भरतेन वा । २१

---

१३ । प्रतियुध्येत—समरे बाधेत । १४ । विरहितुम्—परित्यक्तुम् । १६ । निर्वृतम्—शान्तम् । १८ । पथ्य-वादिनम्—हित-वादिनम् । १९ । अनार्य-करुणारम्भ:—अनार्यया (कुत्सितया) करुणया [राम-व्यसनेऽपि मद्विषयया] आरम्भ: (मद्-रक्षणारम्भ:) येन स: । पांसन:—दूषक: । २० । सपत्नेषु—शत्रुषु [ज्ञातिष्वपि] । प्रच्छन्न चारिषु—गुप्त चारिषु । २१ । प्रतिच्छन्न:—गुप्त: ।

कथमिन्दीवर-श्यामं रामं, कमल-लोचनम्,
उप-सं-गृह्य भर्तारं, कामयेयं पृथग्-जनम्? २२
अपि चाहं प्रवेक्ष्यामि प्र-दीप्तं हव्य-वाहनम्,
न चापि राघवादन्यं पादेनापि नरं स्पृशे।" २३
इति लक्ष्मणमाक्रुश्य, सीता, सुर-सुतोपमा,
पाणिभ्यां, रुदती, तत्र, उरः परि-पिपेष सा। २४
इत्युक्तः परुषं वाक्यं सीतया, लोम-हर्षणम्,
अब्रवील् लक्ष्मणः सीतां, प्राञ्जलिर्, चलितेन्द्रियः,—२५
"उत्तरं नोत्सहे वक्तुं—दैवतं भवती मम;
वाक्यम-प्रति-रूपं हि न चित्रं स्त्रीषु, मैथिलि। २६
स्व-भावस्त्वेव नारीणामेष लोकेषु दृश्यते,—
वि-मुक्त-धर्माश्चपला भ्रातृ-भेद-करास्त्रियः। २७
उपशृण्वन्तु मे सर्वे साक्षि-भूता वने-चराः,
न्याय-वादी यथान्यायमुक्तोऽहं परुषं त्वया। २८
धिक् त्वामस्तु, विनश्य त्वं, यन् मामेवं विशङ्कसे
स्त्री-स्व-भावेन दुष्टेन, गुरु-वाक्ये व्यवस्थितम्।" २९
उक्त्वेति परुषं वाक्यं, पश्चात् ताप-समन्वितः,
साम-पूर्वं पुनः सीतां वक्तुमारब्धवानिदम्,— ३०

२२। उप-सं-गृह्य—परि-गृह्य। २३। स्पृशे—स्पृशामि, स्प्रक्ष्यामि इत्यर्थः। आत्मनेपदमार्षम्। २४। आक्रुश्य—निर्भर्त्स्य। उरः—वक्षः। २५। चलितेन्द्रियः—विचलितमनाः। २६। अ-प्रतिरूपम्—अत्यन्तानुचितम्। २८। वने-चराः—देवाः इति शेषः। न्याय-वादी—यथार्थ-वादी। अ-न्यायम्—अनुचितम्। ३०। साम—प्रिय-वचनम्।

"गच्छामि यत्र काकुत्स्थ: ; स्वस्ति तेऽस्तु, वरानने ;
रक्षन्तु त्वां, विशालाक्षि, समग्रा वन-देवता: । ११
निमित्तानि हि घोराणि, यानि प्रादुर्भवन्ति मे ।
अपि त्वां सह रामेण पश्येयं, पुनरागत: ।" १२

त्रयो-दश: सर्ग: ।

छद्म-तापस: ।

तथा परुषमुक्तस्तु, कुपितो, राघवानुज:
जगाम यत्र रामोऽसौ, सीतां त्यक्त्वा महा-वने । १
एतदन्तरमासाद्य दश-ग्रीव:, प्रतापवान्,
अभि-चक्राम वैदेहीं, परिव्राट्-छद्मना, तदा, २
सूक्ष्म-काषाय-संवीत:, शिखी, छत्री, स-पादुक:,
सव्यांसासक्त-भारश्च, स-त्रि-दण्ड-कमण्डलु: ; ३
तामपश्यत् ततो बालां, भ्रातृभ्यां रहितां वने,
रहितामर्क-चन्द्राभ्यां सन्ध्यामिव महत् तम: । ४
तमुग्र-तेज:-कर्माणं जन-स्थान-रुह-द्रुमा:,
तथैव विविधा वल्लय:, सत्त्वानि सह पक्षिभि:, ५
समीक्ष्य न व्यकम्पन्त ; प्र-ववौ न च मारुत: ।
शीघ्र-वेगागतं दृष्ट्वा विष्ठितं राक्षसेश्वरम्, ६

१२ । अपि—इच्छामि, I wish. पश्येयम्—'इच्छार्थेषु लिङ्-लोटौ'—पाणिनि:, ३।३।१५७।

२ । अन्तरम्—अवकाश: । परिव्राट्-छद्मना—कपट परिव्राजक-रूपेण । ३ । सव्य:—वाम: । अंस:—स्कन्ध: । त्रि-दण्डम्—यतिरन्योन्य-बद्धं दण्ड-त्रयम् । ६ । विष्ठितम्—

स्तिमितं गन्तुमारेभे तदा गोदावरी नदी ।
पक्षिणो ये मृगाश्चैव, भयात् तस्य, प्रदुद्रुवुः । ७

स पापस्तेन रूपेण, तृणैः कूप इवावृतः,
अतिष्ठत्, प्रेक्ष्य रामस्य पत्नीं सीतां तु, रावणः— ८

स तां, रुचिर-दन्तोष्ठीं, पूर्ण-चन्द्र-निभाननाम्,
आसीनां पर्ण-शालायां, बाष्प-शोक-परिप्लुताम् । ९

ददर्श यद् यद् वैदेह्या गात्रं चक्षुर्-मनो-हरम्,
न शशाक ततो हर्तुं दृष्टं, मन्मथमिवात्र, सः । १०

अभ्यागच्छत वैदेहीं दुष्ट-चेता निशा-चरः,
तां, मन्मथ-शराविष्टो, ब्रह्म-घोषमुदीरयन् । ११

अब्रवीत् प्रश्रितं वाक्यं रहिते राक्षसेश्वरः,—
"अतीव भ्राजसे, भीरु, वन-राजीव पुष्पिता । १२

मणि-प्रवेकाभरणौ, रुचिरौ ते पयो-धरौ,
वृत्तावुपचितौ श्लक्ष्णौ संहतौ ते नि-[illegible] । १३

का त्वं, काञ्चन-गर्भाभे, पीत-कौषेय-वासिनि,
मालां पद्मोत्पल-युतां बिभ्रती, प्रिय-दर्शना ? १४

ह्रीः कीर्तिः श्रीः शुभा लक्ष्मीर्, आसां का त्वं, वरानने ?
भूतिर् वा त्वं, वरारोहे ? रतिर् वा स्वैर-चारिणी ? १५

विरोधेन स्थितम् । ७ । स्तिमितम्—मन्दम् । प्र दुद्रुवुः—पलायामासुः । ११ । अभ्यागच्छत—अभ्यागच्छत् । आत्मने-पदमार्षम् । ब्रह्म-घोषम्—वेद-ध्वनिम् । उदीरयन्—उच्चारयन्, कुर्वन् इत्यर्थः । १२ । मणि-प्रवेकः—मणि-श्रेष्ठः । उपचितौ—प्र-वृद्धौ । संहतौ—परस्पर-सन्निहितौ । १४ । उत्पलम्—कुवलयम्, a water-lily. १५ । ह्रीः—गौरी । श्रीः—ऐश्वर्य-प्रधाना भगवच्छक्तिः । लक्ष्मीः—सौभाग्य-प्रधाना भगवच्छक्तिः ।

समा: शिखरिण: स्निग्धा: पाण्डरा दशनास्तव ;
सु-सं-स्थिते च कान्ते च भ्रुवौ नयन-भूषणे । १६

सु-पीनौ दर्शनीयौ च संहतौ च, वराननि,
अनुरूपौ च वक्त्रस्य कपोलौ तव, सुन्दरि । १७

तप्त-काञ्चन-संवीतौ स्व-भावात् संस्कृतौ, शुभौ,
श्रवणौ ते विराजेते, प्रमाणेन समुन्नतौ । १८

करौ च तव, सु-श्रोणि, पद्म-पत्रारुणौ, शुभौ ।
अनु-रूपं च ते मध्यं, दुर्बलं, चारु-हासिनि । १९

सु-कुमाराङ्गुली, दिव्यौ, सु-कुमार-तलौ, शुभौ,
चरणौ संहतावेतौ, परस्पर-वि-भूषणौ । २०

विशाले वि-मले नेत्रे, रक्तान्ते, नील-तारके ;
कर-संहत-मध्यासि, सु-केशी संहत-स्तनी । २१

नैव देवी, न गन्धर्वी, न यक्षी, न च किन्नरी
एवं-रूपा मया नारी दृष्ट-पूर्वा मही-तले ! २२

रूपमग्र्यं च ते लोके, सौकुमार्यं च शाश्वतम्,
इह वासश्च कान्तारे चिन्तामुत्पादयन्ति मे । २३

सं-प्रतीक्ष्य च भद्रं ते, न त्वं वस्तुमिहार्हसि—
राक्षसानामयं वासो, घोराणां, काम-चारिणाम् । २४

भूति:—अणिमादि: सिद्धि: । रति:—काम पत्नी । स्वैर-चारिणौ—स्वेच्छा-विहारिणौ [वने आगमनात्] । १६ । समा:—सम-संस्थाना: । शिखरिण:—कुन्द-कुड्मलवत् प्रशस्ताग्रा: । १८ । संस्कृतौ—सज्जितौ । १९ । पत्रम्—दलम् । २० । संहतौ—मिलितौ । २१ । कर-संहत-मध्या—करेण (अङ्गुष्ठ मर्दिमनी-पञ्च प्रमाणेन) सं-हतम् (आहतं) मध्यं यस्या: सा । २२ । अग्र्यम्—आद्यम्, श्रेष्ठम् ।

प्रासादाग्राणि रम्याणि नगरोपवनानि च,
नन्दनादीनि दिव्यानि युक्तान्यासेवितुं त्वया । २५

वरं माल्यं, वरं रत्नं, वरं वस्त्रं च, शोभने,
भर्तारं च वरं मन्ये ते युक्तम्, असितेक्षणे । २६

भूमि-शय्या-परिक्लिष्टा, वने,मूल-फलाशना,
वस्तुं नार्हसि, कल्याणि, सुखार्हा, सुख-वर्जिता । २७

का ' भवसि ? रुद्राणां, मरुतां वा, शुचि-स्मिते,
वसूनां वा ? वरारोहे, देवता प्रतिभासि मे ! २८

नेहागच्छन्ति गन्धर्वा न देवा, न च मानुषाः ।
राक्षसानामयं वासः । कथं नु त्वमिहागता ? २९

इमे शाला-मृगाः सिंहा व्याघ्रा द्वीपि-मृगास्तथा,
ऋक्षास्तरक्षवः, कोकाः । कथं तेऽभ्यो न ते भयम् ? ३०

मत्तानां गिरि-कल्पानां कुञ्जराणां, तरस्विनाम्,
कथमेका महारण्ये न बिभेषि, शुचि-स्मिते ? ३१

कासि, कस्य, कुतश्च त्वं ? किं-निमित्तं च दण्डके
एकाकिनी प्रविष्टासि, घोरे, राक्षस-सेविते ?" ३२

२५ । आसेवितुम्—उपभोक्तुम् । २६ । असितेक्षणा—नील नेत्रा । ३० । शाला-मृगः—शृगालः । द्वीपी—चित्रकः । द्वीपि व्याघ्रौ स-बिन्दु-निर्बिन्दू । तरक्षुः—मृगादनः, एक रकम नेकड़े बाघ, a hyena. कोकः—वृकः, a wolf, एक रकम नेकड़े बाघ । ३१ । कुञ्जराणाम्—हस्तिनाम् । तरस्विनाम्—बलवताम्, वेगवतां वा ।

चतुर्दशः सर्गः।

अतिथि-सत्कारः।

इत्यसौ, रावणेनोक्ता दुष्टेन, जनकात्मजा,
अ-विश्वास-भयात् तत्र, शङ्किता, पर्यसर्पत। १

द्वि-जाति-दर्शनं साथ दृष्ट्वा, राक्षसमागतम्
सर्वैरतिथि-सत्कारैः पूजयामास, मैथिली। २

उपनीयोदकं पूर्वं, वन्येनोपनिमन्त्र्य च,
चिन्तयित्वा तु, वैदेही ततो वचनमब्रवीत्,— ३

"दुहिता जनकस्याहं, मैथिलस्य, महात्मनः,
सीता नाम्नास्मि—भद्रं ते!—भार्या रामस्य धीमतः; ४

सं-वत्सरं चाध्युषिता राघवस्य निवेशने,
भुञ्जाना मानुषान् भोगान्, सर्व-काम-समृद्धिनी। ५

ततः सं-वत्सरादूर्ध्वं सममन्यत मे पतिम्
अभिषेचयितुं राजा, सं-मन्त्र्य सचिवैः सह। ६

तस्मिन् सं-क्रियमाणे तु राघवस्याभिषेचने,
कैकेयी नाम भर्तारमनार्या श्वशुरं मम ७

प्रतिग्राह्य, प्रणयिनी, प्रथमं, सु-कृतेन वै,
मम प्रव्राजनं भर्तुर् देवी वरमयाचत,— ८

१। पर्यसर्पत—पर्यसर्पत्, इतस्ततश्चचाल, moved round about. आत्मने-पदमार्षम्। २। द्वि-जाति-दर्शनम्—ब्राह्मणाकृतिम्। ५। सर्व-काम-समृद्धिनी—सकल-काम्य-समृद्धि-सम्पन्ना। ७। सं-क्रियमाणे—सम्पाद्यमाने। ८। प्रतिग्राह्य—वशी-कृत्य, आयत्ती-कृत्य। सु-कृतेन—वर-रूपेण इति शेषः।

'न शयिष्ये, न पास्यामि, न च भोक्ष्ये कदाचन,—
एष मे जीवितस्यान्तो, रामो यद्यभिषिच्यते। ९

अनेनैवाभिषेकेण भरतो मेऽभिषिच्यताम्,
राघवश्च वनं घोरमद्यैव प्रतिपद्यताम्।' १०

अथाभिषेकाय पितुः समीपं राममागतम्,
कैकेयी मम भर्तारमित्युवाच, दृढ़-व्रतम्,— ११

'तव पित्राभ्यनुज्ञातं ममेदं शृणु, राघव,—
भरताय प्र-दास्यामि पितृ-राज्यम-कण्टकम्। १२

त्वया च खलु वस्तव्यं नव वर्षाणि पञ्च च
वने; प्रव्रज, काकुत्स्थ—पितरं मोचयानृतात्।' १३

तथेत्युवाच तां रामः कैकेयीं पितुरग्रतः;
चकार वचनं तस्या मम भर्ता, दृढ़-व्रतः। १४

तं भ्राता लक्ष्मणो, धीमान्, धर्म-चारी, महा-बलः,
अन्वगच्छ[illegible], [illegible]। १५

ते वयं, प्रच्युता राज्यात्, कैकेय्या वचनात्, त्रयः,
विचरामो, द्विज-श्रेष्ठ, वनं गम्भीरमोजसा। १६

समाश्वसिहि तावत् त्वं—शक्यं वस्तुमिह त्वया;
आगमिष्यति मे भर्ता, वन्यमादाय, पुष्कलम्। १७

स त्वं नाम च गोत्रं च कुलं चाचक्ष्व तत्त्वतः,
एकश्च दण्डकारण्ये किमर्थं चरसि, द्विज। १८

१६। ते वयम्—'अतो वयम्' इति भावः। ओजसा—तेजसा।

रामो, मे समयो नास्ति, यथा त्वां सत्-करिष्यति ;
यतयश्च प्रियास्तस्य, भर्ता प्रिय-कथश्च मे ।" १८

पञ्च-दशः सर्गः ।

प्रार्थना-भङ्गः ।

काम-बाणार्दितस्तत्र राक्षसस्त्विदमब्रवीत्,—
"येन विद्राविता लोकाः सामराः सामराधिपाः,
अहं स, रावणो नाम, सर्व-लोक-प्र-तापनः । १
त्वां तु, काञ्चन-गर्भाभां, पीत-कौषेय-वासिनीम्,
रतिं स्वकेषु दारेषु नाधिगच्छामि, चिन्तयन् । २
बह्वीनामुत्तम-स्त्रीणां भार्याणां मम, मैथिलि;—
सर्वासामेव तासां त्वं ममाग्र-महिषी भव । ३
लङ्का नाम समुद्रस्य द्वीप-श्रेष्ठा पुरी मम,
सागरेण परिक्षिप्ता, निविष्टा गिरि-मूर्धनि, ४
तप्त-हेममयैः शृङ्गैरुच्छ्रितैरभ्यलङ्कृता,
खात-गम्भीर-परिखा, प्रासादाट्टावतंसका । ५
तत्र, सीते, मया सार्धं, वनेषु विचरिष्यसि ;
न चास्यारण्य-वासस्य स्पृहयिष्यसि, भाविनि ! ६
पञ्च दासी-शतानि त्वां, सर्वाभरण-भूषिताम्,
सीते, परिचरिष्यन्ति—भार्या मे भव, शोभने ।" ७

---

१ । विद्राविताः—पलायिताः, driven off. ३ । अग्र-महिषी—प्रधाना महिषी । ४ । परिक्षिप्ता—वेष्टिता । ५ । उच्छ्रितैः—उन्नतैः ।

प्रत्युवाचानवद्याङ्गी, तमनादृत्य राक्षसम्,—
"महाचलमिवाकम्प्यं, महेन्द्र-सदृशं पतिम्,
महोदधिमिवाक्षोभ्यमहं राममनु-व्रता। ८

पूर्ण-चन्द्र-निभं, शूरं, राज-पुत्रं, जितेन्द्रियम्,
पृथु-कीर्तिं, महा-वीर्यमहं राममनु-व्रता। ९

महा-बलं, महोरस्कं, सिंह-विक्रान्त-गामिनम्,
सिंहं सिंहीव विक्रान्तमहं राममनु-व्रता। १०

त्वं पुनर् जम्बुको व्याघ्रीं मामिच्छसि, सु-दुर्लभाम्—
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा। ११

सिंहस्य, खादतो, मांसं मुखादादातुमिच्छसि,
यो रामस्य प्रियां भार्यां बलात् त्वं हर्तुमिच्छसि। १२

त्वं क्षुरं जिह्वया लेक्षि, सूच्या स्पृशसि लोचने,
यो रामस्य प्रियां भार्यां पाप-बुद्ध्या निरीक्षसे। १३

व्याघ्रयास्तरुण-पुत्राया: प्रजामादातुमिच्छसि,
यो रामस्य प्रियां भार्यां विध्वंसयितुमिच्छसि। १४

अवसज्य शिलां कण्ठे, सागरं तर्तुमिच्छसि,
रामस्य दयितां भार्यां यस्त्वं हर्तुमिहेच्छसि। १५

अयो-मुखानां शूलानामग्रे चरितुमिच्छसि,
रामस्य सदृशीं भार्यां यदि त्वं नेतुमिच्छसि। १६

८। अनवद्याङ्गी—अनिन्द्यावयवा। महोदधि:—महा-समुद्र:। ९। पृथु-कीर्ति:—महा-यशा:। १०। सिंह-विक्रान्त-गामिनम्—सिंहस्य पद-क्षेपवत् पद-निक्षेपेण स-गर्व-गमन-शीलम्। अत्र, विक्रान्तम्—पद-क्षेप:। तृतीय-पादे तु, विक्रान्तम्—विक्रम-शीलम्। १४। प्रजाम्—सन्तानम्। १५। अवसज्य—बद्ध्वा।

अग्निं प्र-ज्वलितं दृष्ट्वा वस्त्रान्ते नेतुमिच्छसि,
कल्याण-वृत्तां, रामस्य भार्यां यो हर्तुमिच्छसि। १७

कृष्ण-सर्पमति-क्रुद्धं, निःश्वसन्तं, महा-विषम्,
स्प्रष्टुमिच्छसि हस्तेन, यत् मां त्वमभिकाङ्क्षसे।" १८

षोडशः सर्गः।

बलात्-कारः।

अथः सौम्यं परित्यज्य भिक्षु-रूपं, निशाचरः
स्वं रूपं काल-रूपाभं भेजे, वैश्रवणानु-जः,— १

महा-ललाटो, रक्ताक्षो, व्यूढोरस्को, महा-भुजः,
सिंह-दंष्ट्रो, वृष-स्कन्धविलाङ्गो, दीप्त-मूर्ध-जः, २

कृष्णः, सं-हृष्ट-रोमाङ्गः, कृष्णाञ्जन-गिरि-प्रभः,
रक्ताम्बर-धरो, घोरस्, तप्त-काञ्चन-कुण्डलः। ३

स ताम्, अ-सित-केशान्तां, वि-प्र-नष्ट-विशेषकाम्,
रुचिराभरणोपेतां, प्रत्युवाच निशाचरः,— ४

१८। अभिकाङ्क्षसे—अभिकाङ्क्षसि। आत्मने-पदमार्षम्। १२—१८। निदर्शनालङ्कारः। तल्लक्षणं यथा, साहित्य-दर्पणे,—"सम्भवन् वस्तु-सम्बन्धोऽसम्भवन् वापि कुत्रचित्, यत्र बिम्बानुबिम्बत्वं बोधयेत् सा निदर्शना।" बिम्बानुबिम्बत्वम्—प्रणिधान-गम्य-सादृश्यम्।

४। अ-सित-केशान्ताम्—अ-बद्ध-केशाग्राम्, मुक्त-केशाम्। वि-प्र-नष्ट-विशेषकाम्—वि-लुप्त-ललाट-तिलककाम्। 'चित्त-चाञ्चल्य-समुत्थात् पत्र-मकर-रचनात् अ-कार-स्पर्शेन' इति शिवः। 'विलुप्त-तिलकाम्' इति केषाञ्चिदभिमतोऽर्थः।

"राज्य-च्युतम-सिद्धार्थं रामं, परिमितायुषम्,
कैर् गुणैरनुरक्तासि, मूढ़े, पण्डित-मानिनि ?" ५

इत्युक्त्वा मैथिलीं वाक्यं, दुष्टात्मा, काम-मोहितः,
जग्राह रावणः सीतां, खे बुधो रोहिणीमिव । ६

प्रत्युवाच ततः सीता, क्रुद्धा, साश्रु-परिप्लुता,—
"हतस्त्वं तेजसा, पाप, राघवस्य महात्मनः" । ७

एवमुक्तस्य वैदेह्या, रावणस्य, दुरात्मनः,
भृशं जीमूत-वर्णानि वदनानि चकाशिरे । ८

अग्नि-ज्वाला-प्रभैर् नेत्रैर्, भ्रू-जिह्मैः, सु-वि-भीषणैः,
वैदेहीं रावणः क्रुद्धो निर्दहन्निव, राक्षसः, ९

सव्येन सीतां पद्माक्षीं मूर्धजेषु करेण, सः,
ऊर्वोस्तु दक्षिणेनैनामग्रहीत् पाणिना, शुभाम् । १०

सा, गृहीता, वि-चुक्रोश, राक्षसेन बलीयसा,—
'हार्य-पुत्र ! न मां पासि', वीर-हा लक्ष्मणेति च । ११

तं दृष्ट्वा, गिरि-शृङ्गाभं, तीक्ष्ण-दंष्ट्रं, महा-बलम्,
व्यद्रवन्त, सु-सं-त्रस्ता, भयार्ता वन-देवताः । १२

राम-कामां स कामार्तः, पन्नगेन्द्र-वधूमिव,
चेष्टमानां, परिगृह्य, उत्पपात ततो नभः । १३

---

५ । पण्डित-मानिनी—पण्डिताभिमानिनी । ६ । रोहिणी—बुधस्य माता, चन्द्रस्य पत्नी च । अतिशयोक्तिः । ८ । चकाशिरे—प्रकाशमेव । ९ । जिह्मैः—कुटिलैः । ११ । वि-चुक्रोश—उच्चैर् चक्रन्द । वीर-हा—वीर-हन् । सम्बोधने 'वीर-हा' इति पदमार्षम् । १२ । व्यद्रवन्त—व्यद्रवन्, पलायामासुः । आत्मने-पदमार्षम् । १३ । पन्नगेन्द्रः—सर्प-राजः, सर्प-वरः, तक्षकः, इत्यर्थः । (उपरिष्टात्

स च मायामयो, दिव्यः, खर-युक्तः, खर-स्वनः,
प्रत्यदृश्यत हेमाङ्गो रावणस्य महा-रथः। १४

ततस्तां, परुषैर् वाक्यैरभितर्ज्य, महा-स्वरः
अङ्केनादाय वैदेहीं रथमारोपयत्तदा। १५

सा, गृहीता, प्र-चुक्रोश, राक्षसेन, मनस्विनी,—
हार्य-पुत्रेति, दुःखार्ता, पतिं, दूर-चरं वने। १६

ततः सा, राक्षसेन्द्रेण ह्रियमाणा विहायसा,
मत्तेव, मन्दं प्रोवाच, भ्रान्त-चित्तेव चातुरा,— १७

"हा लक्ष्मण, महा-बाहो, गुरु-चित्त-प्रसादक !
ह्रियमाणां न जानीषे राक्षसेन, दुरात्मना। १८

ननु रामाविनीतानां विनेतासि, परन्तप—
ह्रियमाणाम-नाथां मां, राक्षसेन, न पश्यसि। १९

तस्य-धर्मोपनीतस्य दृश्यते कर्मणः फलम्—
जीवितान्त-फलं नूनं रावणः समवाप्स्यति। २०

इदानीं स-कामास्तु कैकेयी, सह बान्धवैः,
ह्रियेऽहं धर्म-कामस्य धर्म-पत्नी चिराय यत्। २१

३।८।२२श. श्लोको द्रष्टव्यः।) चेष्टमाना—[आत्मानं मोचयितुं] इतस्ततो अङ्गानि विक्षिपन्ती। १४। सः—चित्र-विचित्रः इत्यर्थः। खरः—अश्वतरः। १७। मत्ता—[अति दुःख वशात्] उन्मत्ता। १८। प्रसादकः—प्रफुल्लता साधकः। १९। अविनीतानाम्—अशिक्षितानाम्, दुर्वृत्तानाम्। विनेता—शिक्षकः, शास्ता। अनाथाम्—रक्षक-हीनाम्। २०। अधर्मोपनीतस्य—अधर्मेण अपनीतस्य (उत्पथं गमितस्य) [जनस्य]। तस्य-धर्मोपनीतस्य—'न तु यथोऽपनीतस्य' इति गौड़ीयं पाठान्तरम्। अपनीतस्य—'नीति-भ्रष्टस्य' इति लोक-नाथः। 'ननु यथोऽ-विनीतस्य' इति दाक्षिणात्याः पठन्ति। 'न तु यथोऽविनीतस्य' इति मनीषाः। जीवितान्तः—मरणम्।

"आमन्त्रये जन-स्थानं, वन्दे वृक्षांश्च पुष्पितान् ;
क्षिप्रं रामाय शंसध्वं,—'सीतां हरति रावणः' । २२

टङ्कवन्तं, शिखरिणं, वन्दे प्रस्रवणं गिरिम् ;
क्षिप्रं रामाय शंसेथाः—'सीतां हरति रावणः' । २३

सुख-गन्धाश्च वन्देऽहं वन-राजीः, सु-पुष्पिताः ;
क्षिप्रं रामाय शंसध्वं,—'सीतां हरति रावणः' । २४

हंस-सारस-सङ्घुष्टां वन्दे गोदावरीं नदीम् ;
क्षिप्रं रामाय शंस त्वं,—'सीतां हरति रावणः' । २५

दैवतानि च यान्यस्मिन् वने, विविध-पादपे,
नमस्करोम्यहं तेभ्यो,—भर्तुः शंसत मां हृताम् । २६

यानि कानिचिदप्यस्मिन् निवसन्ति महा-वने,
सर्वाणि शरणं यामि सत्त्वानि विविधान्यहम् । २७

यावान् पक्षि-गणः कश्चिद् दंष्ट्रिणश्च महा-बलाः,
तिष्ठन्तीह महा-रण्ये, तानहं शरणं गता । २८

ह्रियमाणां, प्रियां, भर्तुः प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम्,
वि-वशां, रक्षसानेन, शंसध्वं राघवाय माम् । २९

मां विदित्वा महा-बाहुर् हृतेति, स महा-मनाः
आनयिष्यति, विक्रम्य, यमस्य विषयादपि ।" ३०

अथ रम्ये गिरि-प्रस्थे, कानने विविधाश्रये,
पक्षि-राजो, महा-तेजा, महा-बल-पराक्रमः, ३१

---

२२ । आमन्त्रये—अभिनन्दामि । शंसध्वम्—शंसत, कथयत । आत्मने-पदमार्षम् । २३ । टङ्कः—वि-दीर्णः प्रस्तरः । शंसेथाः—शंस, कथय । आत्मने-पदमार्षम् । २५ । सङ्घुष्टाम्, सङ्घुषिताम्—शब्दिताम् । ३० । विषयात्—देशात् । ३१ । गिरि-प्रस्थे—

प्रसुप्तः, पृष्ठतः कृत्वा दीप्यमानं दिवा-करम्,
तं शब्दं शुश्रुवे तत्र, स्वप्ने वाक्यमिवाहृतम्। ३२

तेन वाक्येन, पक्षीन्द्रः, प्रविष्टेन श्रुतेः पथम्,
वज्रस्येव निपातेन, ताड़ितो हृदये भृशम्। ३३

स, निरीक्ष्य दिशः सर्वा, जटायुः, क्रमशो, नभः,
अपश्यद् रावणं सोऽथ, क्रन्दन्तीं तां च जानकीम्। ३४

समुत्पत्य ततः, पक्षी स बली, तस्य रक्षसः
रथ-मार्गमवष्टभ्य, स्थितः, क्रोधादिव ज्वलन्। ३५

तुण्ड-पक्ष-प्रहारेण जटायुश्, चरणायुधः,
रावणश्च महा-वीर्यौ युयुधाते परस्परम्। ३६

तस्य, प्रयतमानस्य रामस्यार्थे, स रावणः
पक्षौ पादौ च पार्श्वं च चिच्छेदोद्यम्य सायकम्। ३७

स, छिन्न-पक्षः सहसा रक्षसा, रौद्र-कर्मणा,
निपपात ततो गृध्रो धरण्यां, मन्द-जीवितः। ३८

स तु तां, राम रामेति रुदन्तीं लक्ष्मणेति च,
जगामाकाशमादाय, रावणो, जनकात्मजाम्। ३९

तप्ताभरण-जुष्टाङ्गी, पीत-कौषेय-वाससी
राज-पुत्री रराजाथ व्योम्नि, सौदामिनी यथा। ४०

पर्वत-सानुनि, on the table-land of a mountain ३२। शुश्रुवे—शुश्राव। आत्मने-पदमार्षम्। ३५। समुत्पत्य—तेजसा उड्डीय। अवष्टभ्य—अवरुध्य। ३९। रुदन्तीम्—रुदतीम्। नुमागम आर्षः। ४०। जुष्टानि—सेवितानि, अलङ्कृतानि। पीत कौषेय-वाससी—पीतं पट्ट-वस्त्रं परिदधाना।

तस्यास्तद् वि-मलं वक्त्रमाकाशे, रावणाङ्कगम्,
बभूव जलदं नीलं भित्त्वा चन्द्र इवोदितः । ४१

तस्यास्तान्यग्नि-वर्णानि भूषणानि मही-तले
सद्यः खान् निर्-व्यशीर्यन्त, क्षीणास्तारा इवाम्बरात् । ४२

प्र-धर्षितायां सीतायां, बभूव स-चराचरं
जगत् सर्वम-मर्यादमन्धेन तमसावृतम् । ४३

"नास्ति धर्मः—कुतः सत्यं ?—नार्जवं, नानृशंसता,
यत्र रामस्य वैदेहीं सीतां हरति रावणः,"— ४४

इति सर्वाणि भूतानि गगने पर्यदेवयन्,
दृष्ट्वा सीतां, परामृष्टां रावणेन, यशस्विनीम् । ४५

स, सागरमतिक्रम्य, लङ्कामासाद्य, रावणः
विवेशादाय तां शीघ्रं सीतां, मृत्युमिवात्मनः । ४६

इत्यार्षे श्री-लघु-रामायणे, वाल्मीकीये, त्रि-साहस्र्यां संहितायाम्,
अरण्य-काण्डम् ।

४२ । निर्-व्यशीर्यन्त—धक्किरयन्त । ४३ । प्र धर्षितायाम्—बलात् हृतायाम् । अ मर्यादम्—उत्पथ प्रस्थितम्, सदाचार भ्रष्टम् । ४४ । आर्जवम्—ऋजुता, सरलता । अ नृशंसता—अ हिंसा । ४५ । भूतानि—जन्तवः । पर्यदेवयन्—पर्यदेवयन्त, व्यलपन् । परस्मै-पदमार्षम् । परामृष्टाम्—स्पृष्टाम् ।

इति मणि-किरणं नाम लघु-रामायण-इत्तावरस्य काण्डम् ।

अथ

श्री-लघु-रामायणे

किष्किन्ध्या-काण्डम्।

प्रथमः सर्गः।

हनूमत्-समागमः।

राक्षसं, मृग-रूपेण चरन्तं, काम-रूपिणम्,
निहत्य रामो मारीचम् अथारण्यान् न्यवर्तत। १

अनासादयमानस्तु सीतां, दशरथात्मजः
सन्धारयितुमात्मानं न शशाक, नरोत्तमः। २

पर्वतं, बहु-कूटं, तु, नाना-धातु-शतैश्चितम्,
स-कानन-वनं रामो व्यचिनोत्, सह-लक्ष्मणः। ३

ततः शून्यं जन-स्थानं परित्यज्य, महा-बली
अन्वेषमाणौ तौ सीतां, जग्मतुः पश्चिमां दिशम्। ४

तौ, गत्वा दूरमध्वानं, विचित्र-वन-भूषितम्,
पम्पायाः पश्चिमं तीरं राघवावुपतस्थतुः। ५

२। अनासादयमानः—अ-प्राप्नुवन्। ३। बहु कूटम्—बहु-शृङ्गम्। चितम्—आच्छादितम्, व्याप्त, रचितं वा। काननम्—प्रशस्त जलाशय-युतमरण्यम्। ५। पम्पा—ऋष्यमूकमभित हृदामोस्मने चन्देर-दुर्गे स्थितः पाषाण दह्रः सरी-वरः। तस्माद् विनिर्गता नद्यपि गच्छति काले पम्पेति नाम्ना प्रसिद्धिमगच्छत्।

तौ तु दृष्ट्वा, महात्मानौ, भ्रातरौ राम-लक्ष्मणौ,
सुग्रीवः परमोद्विग्नः, सर्वैरनुचरैः सह। ६

उवाच हनुमान्, प्राज्ञः, सुग्रीवं वाक्यमर्थवत्,—
"तं घोर-दर्शनं क्रूरं नेह पश्यामि वालिनम्!" ७

सुग्रीवस्तु, शुभं वाक्यं श्रुत्वा तत्र हनूमतः,
ततः शुभतरं वाक्यं हनूमन्तमुवाच ह,— ८

"एतौ दृष्ट्वा, महा-वीर्यौ धन्विनौ, विपुलौजसौ,
दीर्घ-बाहू, विशालाक्षौ, न स्यात् कस्य महद् भयम्? ९

वालि-प्रणिहितावेतौ शङ्केऽहं पुरुषोत्तमौ;
तदिमौ प्राकृतैरेव त्वया ज्ञेयौ, प्लवङ्गम।" १०

स तत्र गत्वा, हनूमान्, बलवान्, वानरोत्तमः,
उपचक्राम तौ वाग्भिर् मृह्वीभिः, सत्य-विक्रमः,— ११

"प्रभया पर्वतेन्द्रोऽयं युवयोरवभासितः।
राज्यार्हावमर-प्रख्यौ प्राप्तौ देशमिमं कथम्? १२

सुग्रीवो नाम धर्मात्मा कश्चिद् वानर-यूथ-पः
वीरो, वि-निकृतो भ्रात्रा, जगद् भ्रमति, दुःखितः। १३

दूतोऽहं प्रेषितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना,
राज्ञा वानर-मुख्यानां, हनूमान् नाम वानरः। १४

१०। प्राकृतैरेव—उदासीनैरेव, निःसम्बन्धैरेव। प्लवङ्गमः, प्लवगः—वानरः। (प्लवः—उल्लम्फनम्)। ११। उपचक्राम—वशीचकार। १२। अमर-प्रख्यौ—देव-सदृशौ। १३। वि-निकृतः—वञ्चितः। मनुः, ८।२१२ पठ्यताम्।

युवाभ्यां सह धर्मात्मा सुग्रीवः सख्यमिच्छति ।
तस्य मां सचिवं वित्तं, वानरं पवनात्मजम् ।" १५

ततस्तद् वचनं श्रुत्वा, लक्ष्मणो, राम-चोदितः,
चाचचक्षे महात्मानं वानरं, पवनात्मजम्,— १६
"राजा दशरथो नाम, द्युतिमान्, धर्म-वत्सलः ।
तस्यायमग्र-जः पुत्रो, रामो नाम, महा-यशाः । १७
पित्रा ह्येष महा-तेजाः, सत्य-सन्धेन, राघवः
राज्य-भ्रष्टो, वने न्यस्तो—मया सार्धमिहागतः, १८
भार्यया च विशालाक्ष्या सीतयानुगतः स्वयम् ।
भ्रातरं लक्ष्मणं नाम मां च विद्धि, प्लवङ्गम । १९
रक्षसापहृता भार्या छलेनास्य महा-द्युतेः—
तत् तु न ज्ञायते रक्षो, येनास्यापहृता प्रिया । २०
सोऽयं, दत्त्वा बहु द्रव्यं, प्राप्य चानुत्तमं यशः,
लोक-नाथः पुरा भूत्वा, सुग्रीवं नाथमिच्छति ।" २१

एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं, करुणं, साश्रु-लोचनम्,
हनूमान् प्रत्युवाचेदं, लक्ष्मणाभिमुखः स्थितः,— २२
"करिष्यति स साहाय्यं रामस्य, करुणात्मनः,
सुग्रीवः, सहितोऽस्माभिर्, वैदेह्याः परि-मार्गणे ।" २३
एवमुक्त्वा, महा-कायो हनूमान्, पवनात्म-जः,
जगामादाय तौ वीरौ, सुग्रीवो यत्र वानरः । २४

१६ । राम चोदितः—राम प्रेरितः । इङ्गितेन इति शेषः । आचचक्षे—उवाच । २१ । लोक-नाथः—नराधिपः, भुवनाधिपो वा । नाथः—नेता । २३ । परि-मार्गणे—समन्तात् अन्वेषणे ।

द्वितीयः सर्गः ।

सख्य-बन्धनम् ।

ऋष्यमूकात् तु हनूमान् गत्वा मलय-पर्वतम्,
कथयामास तौ वीरौ सुग्रीवाय महात्मने,— १

"अयं रामो, महा-बाहुर्, धीमान्, दशरथात्मजः,
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा, शरणं त्वामुपागतः । २

राजसूयाश्वमेधाभ्यां वह्निर् येनाभितर्पितः,
दक्षिणार्थं ददौ चापि यो गाः शत सहस्रशः, ३

धर्मतः सत्य-वाक्येन वसु-धा येन पालिता,
स्त्री-हेतोस्तस्य पुत्रोऽयं रामस्त्वां शरणं गतः । ४

इक्ष्वाकूणां कुले जातः, पित्रा, क्षेष, महात्मना
नियुक्तः सत्य-सन्धेन वन-वासाय राघवः । ५

तत्रास्य वसतोऽरण्ये पितुरादेश-कारिणः,
रावणेन हृता सीता, मायामास्थाय, रक्षसा । ६

भवता राम-सौमित्री राघवौ सख्यमिच्छतः—
परिगृह्यार्चयस्त्वेमौ, यथावत् प्रति-नन्द्य च ।" ७

श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं, सुग्रीवो, हृष्ट-मानसः,
दर्शनीयस्ततो भूत्वा, प्रत्युवाच, स, राघवम्,— ८

---

१ । ऋष्यमूकात्—ऋष्यमूकस्य पश्चिमे भागे राम लक्ष्मणाभ्यां हनूमतः समागमो बभूव तस्मात् । मलय-पर्वतः—ऋष्यमूकैकदेशः मलयाख्यो गिरिः यत्र सुग्रीव आसीत् ।

६ । रक्षःसु रावणादृते कस्तां रघु-कुल-धुरन्धर पत्नीं हरेत् ? इति शेषः । ७ । प्रति-नन्द्य—संवर्ध्य ।

"भवान् धर्म-विनीतश्च, विक्रान्त:, साधु-वत्सल: ;
आख्याता वायु-पुत्रेण तत्त्वतो मे भवद्-गुणा:। ९

तन् ममैवैष सत्-कारो लाभश्च, वदतां वर,
यदीच्छसि सखित्वं त्वं वानरेण मया सह। १०

यदि ते रोचते सख्यं, बाहुरेष प्रसारित:,—
गृह्यतां पाणिना पाणिर्—मर्यादा बध्यतां, स्थिरा।" ११

एतत् तु वचनं श्रुत्वा, राम:, सुग्रीव भाषितम्,
सं प्र-हृष्ट-मना, हस्तं पीडयामास पाणिना। १२

ततो रामस्य सुग्रीव: पाणिं जग्राह पाणिना,
हार्दं सौहृदमालम्ब्य, परिष्वज्य च पीडितम्। १३

ततस्तु हनूमान्, दृष्ट्वा तयो: सम्बन्धमीप्सितम्,
विधिवत् सोऽथ काष्ठाभ्यां जनयामास पावकम्। १४

दीप्यमानं ततो वह्निं पुष्पै: सत्-कृत्य, सत्-कृतम्
तत्रोपन्यस्य च प्रीतस्तयोर् मध्ये, समेधितम्, १५

तमग्निं दीप्यमानं तु चक्रतुस्तौ प्रदक्षिणम्,
सुग्रीवो राघवश्चैव, वयस्यत्वमुपागतौ। १६

९। धर्म-विनीत:—धर्मे शिक्षित:। तत्त्वतो मे—'तत्त्वमिमे' इति पठन् गोरेसियोरभिमतम्। ११। मर्यादा—अन्योन्य-कार्य-सम्पादन-विषय: नियम:। स्थिरा—अनुल्लङ्घनीया। बध्यताम्—प्रतिज्ञायताम्। १२। हस्तम्—दक्षिणमिति शेष:। पाणिना—[दक्षिणेन] हस्तेन। पीडयामास—गृहीतवान्। १३। हार्दम्—हृद्-गतम्। पीडितम्—गाढम्। १५। उपन्यस्य—निधाय, स्थापयित्वा। समेधितम्—संवर्धितम्। १६। वयस्यत्वम्—सख्यम्।

प्र-हृष्ट-मानसौ वीरौ तावुभौ राम-वानरौ,
अन्योन्यमभिपश्यन्तौ, न तृप्तिमुपजग्मतुः । १७

ततो रामं स्थितं दृष्ट्वा, लक्ष्मणं च महा-बलम्,
सुग्रीवः सर्वतश्चक्षुर् वने लोलमपातयत् । १८

स ददर्श ततः सालम-विदूरे, हरीश्वरः,
स-पुष्पमीषत् पर्णाढ्यं भ्रमरैरुपशोभितम् । १९

तस्यैकां पर्ण-बहुलां शाखां भङ्क्त्वा, सु पुष्पिताम्
सालस्यास्तीर्य, सुग्रीवो निषसाद, स-राघवः । २०

तावासीनौ ततो दृष्ट्वा, हनूमानपि लक्ष्मणम्,
शाखां चन्दन-वृक्षस्य समाक्षिप्य, न्यवेशयत् । २१

ततः, प्र-हृष्टः, सुग्रीवः श्लक्ष्णं, मधुरया गिरा,
उवाच, प्रणयाद् वाक्यमीषद्-व्याकुलिताक्षरम्,— २२

"अहं, वि-निकृतो, राम, चरामि वसुधामिमाम्,
हृत-दारः, समासाद्य, ऋष्यमूकं समाश्रितः, २३

बलिनो वालिनो भीतो, वने वि-त्रस्त-मानसः ।
सोऽहं सु-निकृतो, भ्रात्रा कृत-वैरश्च, राघव । २४

वालिनस्तु भयार्तस्य, सर्व-लोक-भयङ्करात्,
ममापि त्वम-नाथस्य नाथो भवितुमर्हसि ।" २५

१८। लोलम्—लोलुपम्, सतृष्णम् । २०। आस्तीर्य—विस्तीर्य, spreading over (रघु., ४।६५)। २१। समाक्षिप्य—Snatching away. न्यवेशयत्—उपवेशयामास। २४। सु-निकृतः—वि निकृतः, वञ्चितः ।

एवमुक्त:, स तेजस्वी, धर्म-ज्ञो, धर्म-वत्सल:,
प्रत्यभाषत काकुत्स्थ: सुग्रीवं, प्र-हसन्निव,— २६
"उपकार-फलं मित्रं विदितं मे भवान् यथा,
अद्यैव तं हनिष्यामि, तव भार्यापहारिणम्। २७
इमे हि मे महा-भागा: पत्रिणस्तिग्म-तेजस:,
कार्तिकेय-वनोद्भूता: शरा, हेम-वि-भूषिता:, २८
कङ्क-पत्र-प्रतिच्छन्ना, महेन्द्राशनि-सन्निभा:,
सु-पर्वाण:, सुतीक्ष्णाग्रा:, स-रोषा इव पन्नगा:। २९
तमद्य वालिनं पश्य क्रूरैराशी-विषोपमै:
शरैर् वि-नि-हतं भूमौ, विशीर्णमिव पर्वतम्।" ३०

तृतीय: सर्ग:।

वालि-वध:।

किष्किन्ध्यां त्वरितं गत्वा, देशे पादप-सङ्कटे,
वृक्षैरात्मानमावृत्य ते ऽतिष्ठन् गहने वने। १
सुग्रीवो, विपुल-ग्रीव:, क्रोधमाहारयत् परम्,
ननादोच्चैर् गुहां सर्वां शब्देनापूरयन्निव ; २
गाढं निरसित: श्रीमानाह्वयद् वालिनं युधि।
तेन शब्देन वि-त्रस्ता बभ्रमुर् मृग-पक्षिण:। ३

२८। पत्रिण:—पक्ष-युक्ता:। तिग्म-तेजस:—तीक्ष्ण-तेजस:। २९। कङ्क:—वकी नाम पक्षी। पत्रम्—पक्ष:। प्रतिच्छन्ना:—आच्छन्ना:। सु-पर्वाण:—अ-विश्लिष्ट-ग्रन्थय:। ३०। विशीर्णम्—विश्लिष्टम्।

१। पादप-सङ्कटे—वृक्ष-सङ्कुले, वृक्ष-समाहते। २। आहारयत्—समाचिनोत्। ३। निरसित:—निर्गत: असित: (कृष्ण-वर्ण:) यस्मात् स:, निरस्तकृष्ण: गौर-वर्ण:।

अथ तस्य निनादं तु सुग्रीवस्याभि-गर्जितम्
शुश्रावान्तः-पुर-गतो वाली भ्रातुर-मर्षणः । ४
स रोष-ताम्र-नयनो वाली, सन्ध्यातप-प्रभः,
उपरक्त इवादित्यः सद्यो निष्प्रभतां गतः, ५
दंष्ट्रा-कराल-वदनः, क्रोध-ताम्रतराकृतिः,
बभ्राजोत्फुल्ल-नयनः, स-मृणाल इव ह्रदः । ६
सोऽमर्ष-वशमापन्नो, निष्पपात हरीश्वरः,
वेगेन चरण-न्यासैः कम्पयन्निव मेदिनीम् । ७

तमुवाच ततस्तारा, भर्तारं, वानरेश्वरम्,
परिष्वज्य भयादित्थं, निष्पतन्तं गुहा-मुखात्,— ८
"साधु, क्रोधमिमं, वीर, नदी-वेगमिवागतम्,
शयनादुत्थितः कल्यं माल्यं भुक्तमिव, त्यज । ९
पूर्वमापतितः क्रोधात्, त्वां स चाक्रान्तवान् युधि,
भयाद् द्रुतस्, त्वया सङ्ख्ये बलान् निःसत्त्व निर्जितः । १०
त्वया तस्य निरस्तस्य, सूदितस्य विशेषतः,
इहैव पुनराह्वानं शङ्कां जनयतीव मे । ११

"दर्पश्च व्यवसायश्च यादृशस्तस्य नर्दतः,
निनादस्य च संह्लादो—नैतदल्प-प्रयोजनम् । १२

४ । अ-मर्षणः—असहनः । ५ । उपरक्तः—राहुग्रस्तः । ७ । अ-मर्षः—क्रोधः । निष्पपात—निर्जगाम । १० । आपतितः—आगतः । द्रुतः—पलायितः । निर्जितः—पराजितः । ११ । निरस्तस्य—निराकृतस्य, निक्षिप्तस्य । सूदितस्य—सूदयिष्यमाणस्य, हनिष्यमाणस्य । 'आशंसायां भूतवच्च' (पा. ३।३।१३२) इति भविष्यति अतीतार्थे प्रत्यय-प्रयोगः । १२ । व्यवसायः—यत्नः, उद्यमः । संह्लादः—महा-शब्दः ।

स-सहायमहं मन्ये सुग्रीवमति-तेजसम्—
सु-व्यक्तमाश्रयं लब्ध्वा बलिनं, पुनरागतः । १३

सु-परीक्षित-वीर्येण लब्ध-लक्ष्येण, धीमता,
परिश्रुतो मया पूर्वं रामेणैव सहायवान् । १४

तव भ्रातुर् हि वि-ख्यातः सहायो रण-कर्कशः
रामः पर-बलामर्दी, युगान्ताग्नि-समः, किल, १५

निवास-वृक्षः साधूनाम्, आर्तानामार्ति-नाशनः,
धातूनामिव शैलेन्द्रो गुणानामाकरो महान् । १६

“तत् क्षमं न विरोद्धुं ते, सह तेन महात्मना
दुर्जयेनाप्र-मेयेण वीरेण, रण-कर्मणि । १७

सुग्रीवं प्लवग-श्रेष्ठं यौवराज्येऽभिषेचय ;
विग्रहं मा कृथा, वीर, रामेणामित-तेजसा । १८

अहं हि ते क्षमं मन्ये रामेण सह सौहृदम्,
सुग्रीवेण च सम्प्रीतिं, वैरमुत्सृज्य दूरतः । १९

लालनीयो हि ते भ्राता यवीयान्, वानरेश्वर ;
विधेयो वाविधेयो वा, सर्वथा बन्धुरेव सः । २०

यदि वा मत्-प्रियं कार्यं, यदि वावैषि ते हितम्,
याच्यमानः प्र-यत्नेन साधु मे कुरु भाषितम् ।” २१

तामेवं ब्रुवतीं तारां, तारा-पति-निभाननाम्,
वाली निर्भर्त्सयामास, वाक्यमेतदुवाच ह.— २२

---

१४ । परिश्रुतः—श्रुतः । १५ । रण-कर्कशः—युद्धे कठिनः (निर्दयः, भयावहः) । २० । यवीयान्—कनीयान् । विधेयः—अधीनः । अ-विधेयः—अनधीनः । २१ । अवैषि—अवगच्छसि, जानासि । २२ । तारा-पतिः—चन्द्रः ।

"गर्जतोऽस्य सु-विस्रब्धं, शत्रोर्—नित्याततायिनः,
मर्षयिष्यामि सं-रब्धं, जात-क्रोधः, कथं, प्रिये ? २३

अ-धर्षितानां शूराणां, संयुगेष्व-निवर्तिनाम्,
धर्षणा-मर्षणं, कान्ते, मरणादति-रिच्यते। २४

सोढुं न च समर्थोऽहं योद्धु-कामस्य, संयुगे,
सुग्रीवस्याति-सं-रब्धं, पीन-ग्रीवस्य, गर्जतः।" २५

भूयश्च सिंह-विक्रान्तस्तारामाह हरीश्वरः,—
"न बिभीयामहं रामात्, सुग्रीव-सहितादपि। २६

न तु कार्यो विषादस्ते राघवं प्रति मत्-कृते—
धर्म-ज्ञश्च कृत-ज्ञश्च, न स पापं करिष्यति। २७

प्रति-योत्स्याम्यहं गत्वा सुग्रीवं ; त्यज सम्भ्रमम् ;
दर्पं चास्यापनेष्यामि, न च प्राणैर् वि-मोक्ष्यते। २८

निवर्तस्व सह स्त्रीभिः। किं वा भूयोऽनु-गच्छसि ?
सौहृदं दर्शितं, भद्रे, मम ; तत् सु-कृतं त्वया।" २९

तं तु तारा परिष्वज्य वालिनं, प्रिय-दर्शनम्,
चकार, रुदती, मन्दं, वेपमाना, प्रदक्षिणम्। ३०

ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रवद्, विजयैषिणी,
अन्तः-पुरं, सह स्त्रीभिः, प्र-विवेश, सु-मध्यमा। ३१

२३। सु-विस्रब्धम्—निःशङ्कम्। आततायिनः—'अग्नि-दो गर-दश्चैव शस्त्र-पाणिर्धनापहः, क्षेत्र-दारापहारी च षडेते आततायिनः'। २४। अ-धर्षितानाम्—अ-पराभूतानाम्। धर्षणा—अवज्ञा। मर्षणम्—सहनम्। २५। पीन-ग्रीवः—स्थूल-स्कन्धः, broad-shouldered. २८। प्रतियोत्स्यामि—प्रतियोत्स्ये। परस्मै-पदमार्षम्। सम्भ्रमः—भयम्। वि-मोक्ष्यते—वियोजयिष्यते। ३१। मन्त्रवत्—मन्त्रैः।

निश्चक्राम ततो वाली, महा-सर्प इव श्वसन्,
सर्वतश्चारयन् दृष्टिं शत्रु-दर्शन-काङ्क्षया। ३२

स ददर्श ततो दूरात् सुग्रीवं, हेम-पिङ्गलम्;
तमेवाभि-मुखश्चापि ययौ योद्धुम्, अति-त्वरन्। ३३

सु-सन्नद्धं योद्धु-कामं रामस्याश्रय-गर्वितम्,
स तं दृष्ट्वा, महा-वीर्यः, सुग्रीवं प्रत्युपस्थितम्, ३४

गाढ़ं संहननं चक्रे, करिष्यन् कर्म दुष्करम्;
उवाच चाति-ताम्राक्षः सुग्रीवं, रोष-मूर्च्छितः,— ३५

"दुर्बुद्धे, पाप सुग्रीव, का त्वरा मरणे पुनः?
एष मुष्टिर् मया बद्धस्तद्-वधार्थं समुद्यतः, ३६

यस्ते मूर्ध्नि वि-निर्मुक्तः प्राणानपहरिष्यति।"
एवमुक्त्वा तु सुग्रीवो हृदये तेन ताड़ितः। ३७

स क्रुद्धस्ताड़ितस्तेन, समभि-द्रुत्य, वेगितः,
अभवच् छोणितोद्गारात् सोत्पीड़ इव पर्वतः। ३८

सुग्रीवेण तु निः-शङ्कं, सालमुत्पाट्य तेजसा,
हृदये निहतो वाली, वज्रेणेव महा-गिरिः। ३९

स तु वाली, रण-गतः, साल-ताड़न-विह्वलः,
गुरु-भार-समाक्रान्तश्चचाल च जुघूर्ण च। ४०

३४। सु-सन्नद्धम्—सु वर्मितम्। ३५। गाढ़म्—दृढ़म्। संहननम्—देहम्। रोष-मूर्च्छितः—प्रवृद्ध-क्रोधः। ३८। वेगितः—वेगवान्। सोत्पीड़ः—स-निःस्रवः।

तौ, भीम-बल-विक्रान्तौ, सु-पर्ण-गति-वेगितौ,
प्र-वृद्धौ, घोर-रूपौ च, ख-स्थौ पाप-ग्रहाविव । ४१

बालिना भग्न-दर्पे तु सुग्रीवे, मन्द-तेजसि,
बालिनं प्रति सामर्षश्चुक्रोधातीव राघवः । ४२

ततः सन्धाय रामेण शरमाशी-विषोपमम्,
निर्हतो हृदये बाली, हेम-माली, महा-बलः । ४३

स तेन हृदये बाली निहतो नि-पपात ह,
हा हतोऽस्मीति विक्रुश्य, भ्रष्ट-मार्गश्च, विह्वलः । ४४

चतुर्थः सर्गः ।

धर्म-सङ्कटम् ।

बहु-मानाच्च तं वीरं, कर्कशं, रण-शोभितम्,
लक्ष्मणानु-चरो रामो ददर्शोपससर्प च । १

स, दृष्ट्वा राघवं, बाली, लक्ष्मणं च महा-बलम्,
अब्रवीत् परुषं वाक्यं, प्रश्रितं, धर्म-संहितम्,— २

"'कुलीनः', 'सत्त्व-सम्पन्नस्तेजस्वी', 'चरित-व्रतः',
रामः 'कारुण्य-वेदी' च, 'प्रजानां च हिते रतः,' ३

'सानुक्रोशो', 'महोत्साहः', 'समय-ज्ञो', 'दृढ़-व्रतः'—
इति ते सर्व-भूतानि कथयन्ति यशो भुवि । ४

---

४१ । सु-पर्ण-गति-वेगितौ—गरुड़-गति-वेग-विशिष्टौ । ४२ । सामर्षः—क्रुद्धः । ४३ । आशी-विषोपमम्—विष-धर-सर्प-सदृशम् । आशीः—सर्पस्य विष-दन्तः ।

१ । बहु-मानात्—सम्मानात् । हेतौ पञ्चमी । कर्कशः—साहसिकः । उपससर्प—समीपं जगाम । ४ । समय-ज्ञः—उचितानुचित-काल-ज्ञः ।

तान् गुणान् सम्प्रधार्याहमग्र्यं चाभिजनं तव,
तारया प्रतिषिद्धोऽपि, सुग्रीवेण समागतः । ५

इयं चासीन् मम मतिस्,—त्वयि सम्भाविता गुणाः ।
न त्वहं त्वां वि-जानामि धर्म-च्छद्म-वृतं शठम् । ६

नगरे वा पुरे वापि यदि नापकरोम्यहम्,
न च तेऽहं विरुध्यामि, कस्मान् मां हतवानसि ? ७

वयं शाखा-मृगा, राम, पुष्प-मूल-फलाशनाः ।
सं-प्रवर्तामहे नैवं यथा, राम, प्रवर्तसे । ८

भूमिर् हिरण्यं रूप्यं च विग्रहे कारणानि च ।
तत्र कस्ते मदीयेऽस्मिन् वने लोभः फलेषु वा ? ९

फल-मूलाशनं, राम, वालिनं, वन-गोचरम्,
मामिहायुध्यमानं त्वमन्येन च समागतम्, १०

हत्वा बाणेन तीक्ष्णेन ज्वलतानपकारिणम्—
किं वक्ष्यसि सतां मध्ये, कृत्वा कर्म जुगुप्सितम् ? ११

अ-धार्यं चर्म मे सद्भिः । करिष्यसि किमस्थिभिः ?
अ-भक्ष्यं चैव मे मांसं त्वादृशैर् ब्रह्म-चारिभिः । १२

त्वया नाथेन, काकुत्स्थ, न स-नाथा वसुन्धरा,
प्रमदा शील-सम्पन्ना धूर्तेन पतिना यथा । १३

५ । तान्—'राज-योग्यान्' इति शेषः । अभिजनः—वंशः ६ । सम्भाविता—सम्भावना-विषया, possible. छद्म—व्याजः । ७ । विरुध्यामि—विरुध्ये । परस्मै-पदमार्षम् । हतवानसि—आदिपदवे (क्रिया-समाप्तौ फल-प्राप्तौ च) क्तः प्रयोगः । अतीत-वर्तमान-योर्योगः अव्यवहितातीतं बोधयति । ८ । शाखा-मृगः—वानरः । १० । वन-गोचरः—कानन-विहारी । ११ । जुगुप्सितम्—निन्दितम् । १३ । शीलम्—सद्-वृत्तम् । पतिना

शठो, नैकृतिकः, क्षुद्रो, धर्म-वैतंसिकोऽनृजुः,
कथं दशरथेन त्वं जातः, पापो, महात्मना ? १४

त्वया अ-दृष्टेन रणे निहतोऽहं, दुरात्मना,
प्रसुप्तः पन्नगेनेव नरः, काल-वशं गतः । १५

दृश्यस्त्वं यदि युध्येथा मया सह, नृपात्मज,
अद्य वैवस्वतं पश्येस्त्वं ध्रुवं, निहतो मया । १६

सुग्रीव-प्रिय-कामेन यदहं हिंसितस्त्वया,—
कण्ठे बद्धा प्रदत्तः स्यान् मया तव स रावणः । १७

न्यस्तां सागर-तोये वा पाताले वापि, मैथिलीम्
आनयेयमहं, दर्शे श्वेतामश्वतरीमिव । १८

अहं यदर्थं निहतस्त्वया वै कार्य-गौरवात्,
अहमेव त्वया तत्र किमर्थं न नियोजितः ? १९

"युक्तं, यत् प्राप्नुयाद् राज्यं सुग्रीवः, स्वर्गते मयि ।
तदयुक्तम्, अ-धर्मेण यत् त्वयाहं हतो रणे । २०

सुग्रीवमङ्गदं चैव, तारां चैव, सु-दुःखिताम्,
भवान्, परिग्रहैः प्राणैर्, यथावदनु-पश्यतु ।" २१

—पन्था । 'पतिमा' इति पदमार्षम् । १४ । शठः—गूढ़-विप्रिय-कृत् । नैकृतिकः—निकृतिं (परापकारं) चरति यः सः । क्षुद्रः—अधमः । धर्म-वैतंसिकः {धर्मे वैतंसिकः (मांस-विक्रेता) इव}—पाप-कर्मणा धनमादाय आत्मनो धार्मिकत्व-ख्यापनाय दान-कर्ता । दशरथेन—दशरथात् । तृतीया आर्षी । 'जनि-कर्तुः प्रकृतिः [अपादानं स्यात्]'—पा. १।४।३० । १५ । कालः—यमः । १८ । सागर-तोये—सागर-मध्य-वर्तिनि द्वीपे इत्यर्थः । पाताले—मधु-कैटभाभ्यां पाताले नीतं वेदं यथा हय-ग्रीवो नाम विष्णोरवतार आनयति स्म तद्वत् । दर्शः—अमावस्या, तत्र आहर्तव्यो याग-विशेषो वा । श्वेतामश्वतरीम्—'श्वेताश्वतरी-रूपिणीं श्रुतिम्' इति रामानुजः । २० । स्वर्गते—स्वर्गं गते, मृते

उक्त-वाक्यं हरि-श्रेष्ठम्, उपशान्तमिवानलम्,
अधिक्षिप्तस्तदा रामस्तथा वचनमब्रवीत्,— २२

"धर्ममर्थं च कामं च, समयं चापि लौकिकम्
अ-विज्ञाय कथं, बालिन्, मां धर्षयितुमर्हसि ? २३

अ-पृष्ट्वा बुद्धि-सम्पन्नान् वैद्यान्, वानर-चापलात्
यत् किञ्चन प्रलापी त्वं वाक्-शरैरुपकृन्तसि। २४

इक्ष्वाकूणामियं भूमिः स-शैल-वन-कानना—
मृग-पक्षि-मनुष्येषु निग्राह्या धर्म-दूषकाः। २५

तामिमां पालयत्यद्य भरतः पृथिवी-पतिः,
धर्म-कामार्थ-तत्त्व-ज्ञो, निग्रहानुग्रहे रतः। २६

ते वयं, शासनात् तस्य, चरन्तः पृथिवीमिमाम्,
धर्मातिक्रमिणां धर्म्यं कुर्महे दण्ड-धारणम्। २७

स त्वं वि-क्लिष्ट-धर्मा च, पाप-कर्मा, वि-गर्हितः,
काम-तन्त्र-प्रधानश्च, प्राकृतो वानरो यथा। २८

वागुराभिश्च पाशैश्च कूटैश्च विविधैर् नराः,
प्रतिच्छन्नाश्च दृश्याश्च, निघ्नन्ति स्म बहून् मृगान्। २९

इत्यर्थः। २१। परिबर्हैः—साधनैः। २२। हरिः—वानरः। अधिक्षिप्तः—परुषम् उक्तः। २३। लौकिकः समयः—लोकाचारः। धर्षयितुम्—आक्रमितुम्। २४। वैद्यान्—पण्डितान्। यत् किञ्चन प्रलापी—शीलार्थ-णिनेः कर्मणि द्वितीया। उपकृन्तसि—छिनत्सि। 'माम्' इति शेषः। २५। इक्ष्वाकूणाम्—रघु-कुलस्य आदि-पुरुषेण मनुना आदौ अधिकृता पश्चात् स्व-सन्ततये कुलाय दत्ता इत्यर्थः। २६। ताम्—पितृ-पितामहादि-क्रमागताम् भुवम् इत्यर्थः। निग्रहानुग्रहे—[दुष्टस्य] निग्रहे (दण्डे) [शिष्टस्य] अनुग्रहे च। २८। वि-क्लिष्ट-धर्मा—वि-क्लिष्टः (पीडितः) धर्मो येन सः। काम-तन्त्र-प्रधानः—काम-तन्त्रम् (काम-रूपः पुरुषार्थः) एव प्रधानं (मुख्यं) यस्य सः। २९। पाशैः—रज्जुभिः।

प्र-धावितान्-वित्रस्तान् विस्रब्धानप्य-वि-प्लुतान्,
प्रमत्तान-प्रमत्तांश्च, घ्नन्ति मांसार्थिनो मृगान्। ३०

यान्ति राजर्षयश्चात्र मृगयां, धर्म-को-विदाः—
लिप्यन्ते न च दोषेण निघ्नन्तोऽपि मृगान् बहून्। ३१

तस्मात्, त्वं निहतो युद्धे मया बाणेन, वानर।
अ-युध्यन् प्रतियुध्यन् वा, सौम्य, शाखा-मृगो ह्यसि! ३२

कारणं चापरं पश्य, मया येनासि हिंसितः—
भार्यायां वर्तसे भ्रातू रुमायां त्वम-धार्मिकः। ३३

ज्येष्ठो भ्राता, पिता चैव, यश्च विद्यां प्र-यच्छति,—
त्रयस्ते पितरो ज्ञेया, धर्मं चेदनुरुध्यते। ३४

यवीयान् सोदरः, पुत्रः, शिष्यश्च गुणवानपि,—
पुत्रवत् तेऽपि सं-चिन्त्या, धर्मश्चेदस्ति कारणम्। ३५

तद्, व्यतीतस्य ते धर्मात्, कपि-वृत्तस्य, वानर,
भ्रातुर् भार्यापहर्तुस्ते दण्डोऽयं वि-नि-पातितः। ३६

न हि धर्म-विरुद्धस्य लोभ-वृत्तस्य पापिनः
दण्डादन्यं न पश्यामि निग्रहं, हरि-यूथ-प। ३७

औरसस्य च पुत्रस्य, पत्न्याश्चैवानु-जस्य च,
स्वैर-वृत्तस्य, कर्तव्यं राजभिर् दण्ड-धारणम्। ३८

कूटैः—यन्त्रैः, पाश पाशा। ३२। अ-युध्यन्—अ-युध्यमानः। प्रति युध्यन्—प्रति युध्यमानः, युध्यमानेन अन्येन युद्धं कुर्वन्। उभयत्र परस्मै-पदमार्षम्। ३४। अनुरुध्यते—अनुसरति। 'अनः' इति शेषः। ३६। व्यतीतस्य—भ्रष्टस्य। 'ध्रुवमपायेऽपादानम्'—पा. १।४।२४। कपिः—वानरः। ३७। न-द्वयमत्र एकान्त-निषेधं द्योतयति। निग्रहः—शिक्षितृत्वा, निवारण-हेतुः। ३८। च—'अपि' इत्यर्थः।

भरतश्च मही-पालो, वयं चादेश-कारिणः,
त्वं च धर्म-व्यतिक्रान्तः—कथं शक्यमुपेक्षितुम् ? ३९

सुग्रीवश्चैव रक्ष्योऽयं, सख्यश्चोऽयं यथा तथा ।
दार-राज्य-हरोऽस्य त्वमतोऽसि निहतो मया । ४०

प्रतिज्ञातं मया तस्य तदा वानर-सन्निधौ
राज्यं दाराश्च । तच् छक्यं कथं कर्तुं मयान्यथा ? ४१

अलं ते परितप्तस्य । पूतोऽसि निहतो मया—
स्वर्गं प्राप्नुहि दुष्प्राप्यं—कार्यार्थं निहतोऽप्यसि ।" ४२

स वानरो, महा-तेजाः, शयानः, शर-वि-क्षतः
प्रत्युक्तो हेतुमद् वाक्यं, नोत्तरं प्रत्यपद्यत । ४३

सा, स-पुत्रा, वधं श्रुत्वा, तारा, भर्तुः, सु-दारुणम्,
निष्पपात द्रुतं तस्माद्, रुदती, गिरि-गह्वरात् ; ४४

हा हतास्मीति वि-क्रुश्य पपात धरणी-तले ;
व्यावर्तत च सा भूमौ, लुब्धेनेव हता मृगी । ४५

पञ्चमः सर्गः ।

सुग्रीवाभिषेकः ।

ततः शोकाभिसन्तप्तं सुग्रीवं, क्लिन्न-वाससम्,
शाखा-मृग-महा-मात्राः परिवव्रुः, क्षतोदकाः । १

अभिगम्य च काकुत्स्थं रामम-क्लिष्ट-कारिणम्,
तस्थुः, प्राञ्जलयः, सर्वे, पितामहमिवर्षयः । २

३९ । उपेक्षितुम्—अ-स्वीकर्तुम् । 'तत्' इति शेषः । ४२ । अलं ते परितप्तस्य—अलं त्वया परितप्तेन । षष्ठी आर्षी । अलम्—किम् । ४५ । व्यावर्तत—अलुठत् । लुब्धेन—व्याधेन ।

ततः शैल-वपुर् धीमां स्तरुणादित्य-सन्निभः,
अब्रवीत्, प्राञ्जलिर्, वाक्यं हनूमान् रघु-नन्दनम्,— ३
"तव प्रसादात् सुग्रीवः पितृ-पैतामहं महत्,
वानराणां सु-दुष्प्रापं, प्राप राज्यं, परन्तप ; ४
भवता समनुज्ञातः, प्रविश्य नगरीमिमाम्,
सं-विधास्यति कार्याणि सर्वथा, स-सुहृज्जनः। ५
स्नातोऽयं, विविधै रत्नैरौषधैश्च, समन्ततः,
अर्चयिष्यति दिव्यैश्च गन्धैस्त्वां, प्रीत-मानसः। ६
इमां गिरि-गुहां दिव्यामभियातुं त्वमर्हसि ;
कुरुष्व स्वामि-सम्बन्धं, वानरान् सं-प्र-हर्षयन्।" ७
एवमुक्तो हनूमता, रामो, दशरथात्मजः,
प्रत्युवाच हनूमन्तं, बुद्धिमान्, वाक्य-को-विदः,— ८
"चतुर्दश समाः, सौम्य, ग्रामं वा यदि वा पुरम्
न प्रवेक्ष्यामि, हनूमन्,—पितुरादेश एष मे। ९
युयं प्रविशत क्षिप्रं ; कुरुध्वं यदनन्तरम् ;
सुग्रीवो विधिना, तात, एष राज्येऽभिषिच्यताम्।" १०
एवमुक्त्वा हनूमन्तं रामः सुग्रीवमब्रवीत्,—
"एतमप्यङ्गदं, राजन्, यौवराज्येऽभिषेचय। ११

१। क्लिन्न-वाससम्—आर्द्र-वस्त्रम्। शाखा-मृग-महा-मात्राः—वानर बल प्रधानाः। कृतोदकाः—कृत-तर्पणाः। ५। संविधास्यति—सम्पादयिष्यति। कार्याणि—राज-कार्याणि इत्यर्थः। ६। औषधैः—ओषधि-समूहैः। ७। स्वामि-सम्बन्धम्—[राज्याभिषेकेण सुग्रीवस्य] वानर-स्वामित्व-सम्बन्धम्। ९। यदि वा पुरम्—पुरं वा। गीता, २।६ पठ्यताम्।

प्रथमो वार्षिको मासः श्रावणः, सलिलागमः ।
प्रवृत्ताः, सौम्य, चत्वारो मासाश्च वार्षिका इमे । १२

नायमुद्योग-समयः—प्रविश त्वं पुरीमिमाम् ।
इह वत्स्याम्यहं, सौम्य, पर्वते, नियतेन्द्रियः । १३

इयं गिरि-गुहा रम्या, विशाला, युक्त-मारुता ।
इह वत्स्याम्यहं, सौम्य, वर्षां, सौमित्रिणा सह । १४

प्रसन्न-सलिलां रम्यां प्रभूत-कमलोत्पलाम्
कार्तिकीं समतिक्रम्य, त्वं रावण-वधे यत ।" १५

इति रामाभ्यनुज्ञातः, सुग्रीवो, वानरर्षभः,
प्र-विवेश पुरीं रम्यां, प्र-हृष्टो, वि-गत-ज्वरः । १६

तं वानर-सहस्राणि, प्रविष्टं, वानरर्षभम्,
अभिवाद्य, प्र-हृष्टानि, सर्वतः पर्यवारयन् । १७

ततः प्रकृतयः सर्वा, वन्दयित्वा हरीश्वरम्,
जयेति पतिता भूमौ शिरोभिः, सु-समाहिताः । १८

ताः समुत्थाप्य, सुग्रीवः, सम्मान्य च यथा-विधि,
भ्रातुरन्तः-पुरं रम्यं प्र-विवेश महा-कपिः । १९

प्र-विश्य चाभि-निष्क्रान्तं सुग्रीवं, वानरर्षभाः
अभ्यषिञ्चन् महा-मात्राः, सहस्राक्षमिवामराः । २०

१२ । वार्षिकः—वर्षुकः । १४ । वर्षाम्—वर्षाः । एक-वचनमार्षम् । १५ । कार्तिकीम्—कार्तिकस्य पौर्णमासीम् । यत —यतस्व । परस्मै-पदमार्षम् । १६ । ज्वरः —सन्तापः । १७ । पर्यवारयन्—परिवव्रुः, अवेष्टन्त । १८ । प्रकृतयः—अमात्याः । वन्दयित्वा—वन्दित्वा, प्र-णम्य । णेरागम आर्षः । शिरोभिः पतिताः—दण्डवत् प्रणताः । २० । अभिनिष्क्रान्तम्—प्रतिनिवृत्तम्, सभामागतमित्यर्थः । महा-मात्राः—प्रधान-राज-

तस्य पाण्डुरमाजह्रुश्छत्रं, कनक-भूषणम्,
शुक्ले च वाल-व्यजने हेम-दण्ड-परिष्कृते, २१

दिव्यानि मणि-रत्नानि, सर्व-बीजौषधानि च
स-क्षीराणां च वृक्षाणां प्ररोहं कुसुमानि च, २२

सु-गन्धीनि च माल्यानि, स्थल-जान्यम्बु-जानि च,
वासांसि चाथ मुख्यानि, गन्धांश्च विविधान् वरान्, २३

अक्षतं जात-रूपं च, प्रियङ्गुं, मधु-सर्पिषी,
दधि, चर्म च वैयाघ्रं, वरार्हे चैव पादुके। २४

समालम्भनमादाय, लाजाश्च शुभ-दर्शनाः,
आजग्मुस्तत्र, सहिता, वराः कन्याश्च षोडश। २५

ततस्ते वानर-श्रेष्ठा यथा-भागं, यथा-विधि,
रत्नैर् वस्त्रैश्च भक्ष्यैश्च तोषयित्वा द्विजर्षभान्, २६

ततः कुश-परिस्तीर्णं समिद्धं जात-वेदसम्
मन्त्र-पूतेन हविषा हुत्वा, मन्त्र-विदो जनाः, २७

ततो, हेम-प्रतिष्ठानं वरास्तरण-संवृतम्
प्रासाद-शिखराकारं चित्र-माल्योपशोभितम्
प्राङ्मुखं विधिवन् मन्त्रैः स्थापयित्वा वरासनम्, २८

पुरुषाः। मरुत्वान्—इन्द्रम्। २१। परिष्कृते—विभूषिते। २२। प्ररोहम्—अधो-जटाम्। २३। गन्धान्—गन्ध-द्रव्याणि। २४। अक्षतम्—लाजाः, fried grain. जात-रूपम्—स्वर्णम्। वरार्हे—वर-योग्ये। २५। समालम्भनम्—अनुलेपन-द्रव्यम्। २६। विधिः—बौधायनादि-ज्ञात-विधिः। २७। कुश-परिस्तीर्णम्—कुश-शय्यायां सर्वतः स्थापितम्। समिद्धम्—प्र-ज्वलितम्। जात-वेदसम्—अग्निम्। मन्त्र-विदः—वेद-ज्ञाः। २८। प्रतिष्ठानम्—पदम्। प्राङ्-मुखम्—पूर्व-मुखम्। मन्त्रैः—'वसवस्त्वा गायत्रेण

नदी-नदेभ्यः सं-हृत्य जलं दिव्यं च शोभनम्,
आहृत्य च समुद्रेभ्यः सर्वेभ्यो, वानरर्षभाः, २९

अपः कनक-कुम्भेषु निधाय, विमलाः शुभाः,
शुभैस्ताम्रैश्च रौप्यैश्च कलशैश्चापि पार्थिवैः, ३०

गयो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः
मैन्दश्च द्विविदश्चैव हनूमान् जाम्बवां स्तथा ३१

अभ्यषिञ्चन्त सुग्रीवं वि-मलेन सु-गन्धिना
सलिलेन, स-पद्मेन, वसवो वासवं यथा। ३२

अभिषिक्ते तु सुग्रीवे, सर्वे ते वानरर्षभाः
प्र-चुक्रुशुर्, महात्मानो, हृष्ट-रूपाः, सहस्रशः। ३३

रामस्य वचनं कुर्वन्, सुग्रीवो, वानरर्षभः,
अङ्गदं सं-परिष्वज्य यौवराज्येऽभ्यषेचयत्। ३४

अङ्गदे चाभिषिक्ते तु सानुक्रोशाः प्लवङ्गमाः
साधु साध्विति सुग्रीवं महात्मानोऽभ्यपूजयन्। ३५

तुष्ट-हृष्ट-जनाकीर्णा, पताका-ध्वज-मालिनी
बभूव नगरी रम्या किष्किन्धा, चित्र-कानना। ३६

षष्ठः सर्गः।

माल्यवति जलदागमः।

स, तथा वालिनं हत्वा सुग्रीवमभिषिच्य च,
वसन् माल्यवतः पृष्ठे, रामः सौमित्रिमब्रवीत्,— १

छन्दसा सम्पृञ्चन्तु' (पञ्च-विंश ब्राह्मणम्, १।२।७) इत्यादि-मन्त्रैः। ३०। निधाय—[निधयित्वा] संस्थाप्य। पार्थिवैः—मृन्मयैः। ३३। प्र-चुक्रुशुः—नेदुः।

"अयं, लक्ष्मण, सं-प्राप्तः समयो जलदागमः।
पश्याद्य गगनं मेघैरावृतं, गिरि-सन्निभैः। २
अष्ट-मास-धृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः,
रसं सर्व-समुद्राणां, द्यौः प्रसूते, रसायनम्। ३
एषा, घर्म-परिक्लिष्टा, नव-वारि-परि-प्लुता,
सीता सन्ताप-तप्तेव, मही वाष्पं विमुञ्चति। ४
एष फुल्लार्ज्जुनः शैलः, केतकैरधि-वासितः,
सुग्रीव इव शान्तारिर्, धाराभिरभिषिच्यते। ५
नील-मेघाश्रिता विद्युत्, स्फुरन्ती, प्रतिभात्यसौ,
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के क्रियमाणेव मैथिली। ६
घनैः समुदितैः रुद्धो, दीन-रूपः, प्रकाशते
सूर्यः, प्र-नष्टो, धर्म-ज्ञ, शोकेनाहमिवावृतः। ७
मासः प्रौष्ठपदो रम्यो ब्राह्मणानां विवक्षताम्;
अयं स्वाध्याय-समयः साम-गानामुपस्थितः। ८
निवृत्त-कर्मा, प्र-यतो, नूनं, सञ्चित-सञ्चयः,
आषाढीमभ्युपगतो भरतः कोशलाधिपः। ९
नूनमापूर्यमाणायाः सरय्वा वर्धते रवः,
मां समीक्ष्य वनं यान्तमयोध्याया इव स्वनः। १०

३। गर्भम्—'जल-रूपम्' इति शेषः। गभस्तिभिः—किरणैः। प्रसूते—सृजति। रसायनम्—जीवनौषधम्। ५। फुल्लार्ज्जुनः—फुल्लाः (पुष्पिताः) अर्ज्जुनाः यस्मिन् सः। ८। प्रौष्ठपदः—भाद्रपदः। ब्राह्मणानाम्—वेद-ज्ञानाम्। विवक्षताम्—अध्येतुमिच्छताम्। साम-गानाम्—सामवेदाध्यायिनाम्। ९। प्र-यतः—नियममास्थितः। सञ्चित-सञ्चयः—सञ्चिताः सञ्चयाः (जीवन-साधनानि) येन सः। आषाढीम्—

इमाः स्फीत-गुणा वर्षाः सुग्रीवः सुखमेधते,
विजितारिः स-दारश्च, राज्ये च महति स्थितः। ११

अहं तु हृत-दारश्च राज्याच् च महतश्च्युतः,
नदी-कूलमिव क्लिन्नमवसीदामि, लक्ष्मण। १२

अपि चाति-परिक्लिष्टं, चिराद् दारैः समागतम्,
आत्म-कार्य-गरीयस्त्वाद् वक्तुं नेच्छामि वानरम्। १३

स्वयमेव हि, विश्रम्य, ज्ञात्वा कालमुपस्थितम्
उपकारं च, सुग्रीवो वेत्स्यते, नात्र संशयः। १४

तस्य संकल्प्य विश्वासं, स्थितोऽहमिदमन्तरम्,
सुग्रीवस्य नदीनां च प्रसादं प्रतिपालयन्।" १५

सप्तमः सर्गः।

सीतान्वेषणम्।

एतस्मिन्नन्तरे रामो घोरं तद् बलमाययौ,
मुष्णच् च तां सहस्रांशोर् गगने विपुलां प्रभाम्। १

दिशः पर्याकुलाश्चासन् रजसा तत्र संवृताः,
चचाल च मही कृत्स्ना स-शैल-वन-कानना। २

आषाढस्य पौर्णमासीम्। अभ्युपगतः—प्राप्तः, प्राप्य कृत-व्रत-सङ्कल्पः इत्यर्थः। ११। वर्षाः—प्राप्य इति शेषः। १२। गरीयस्त्वात्—अल्पेन कालेन अल्प-यत्नेन च अ-साध्यत्वात्। नेच्छामि—न ऐषिषम्। 'वर्तमान-सामीप्ये वर्तमानवद्वा' (पा. ३।३।१३१) इति आसन्नातीते वर्तमान-प्रयोगः। १४। विश्रम्य—निरातङ्को भूत्वा। 'विश्रब्ध' इति पाठान्तरम्। वेत्स्यते—विचारयिष्यति, चिन्तयिष्यति। 'कृत्यम्' इति शेषः। १५। तस्य—तस्मिन्। अन्तरम्—व्यवधानम्, मध्य-वर्ति-कालम्। प्रतिपालयन्—प्रतीक्षमाणः।
१। मुष्णन्—चोरयन्, अपहरन्। सहस्रांशोः—सूर्यस्य। २। पर्याकुलाः—

प्लवमाना व्रजन्तश्च गर्जन्तश्च, प्लवङ्गमाः,
दिग्-विदिग्भ्यः समागम्य, सुग्रीवं पर्यवारयन्। ३

प्रहृष्टाश्च विनीताश्च, समेत्य, हरि-यूथ-पाः
शिरोभिर् वानर-श्रेष्ठं सुग्रीवं ते प्र-षेमिरे। ४

विनतं नाम यूथेशं समाहूय, वचोऽब्रवीत्,
शैलाभं, मेघ-निर्घोषं, सुग्रीवः प्लवगेश्वरः,— ५

"वृतः कोटी-सहस्रेण वानराणां तरस्विनाम्,
मृगयस्व दिशं पूर्वां, स-शैल-वन-काननाम्। ६

तत्र सीतां च वैदेहीं निलयं रावणस्य च
मार्गध्वं वन-दुर्गेषु गुहासु च वनेषु च। ७

यमुनामापगां दिव्यां यामुनं च महा-गिरिम्,
नदीं भागीरथीं चैव सरयूं कौशिकीमपि, ८

मेकल-प्रभवं शोणं नदं मणि-निभोदकम्,
ततः शक-पुलिन्दां श्च कलिङ्गां श्चैव मार्गत, ९

अन्विष्य दण्डकारण्यं, स-शैल-वन-काननम्,
सुह्मान् मान्ध्यान् विदेहां श्च मलयान् काशि-कोशलान्, १०

व्याकुलाः। ३। प्लवमानाः—उल्लम्फनः। ४। विनीताः—शिक्षिताः। ६। मृगयस्व—अन्विष्य। ७। मार्गध्वम्—मार्गत, मार्गयध्वम्, अन्विष्यत। आत्मने-पदमार्षम्। ८। आपगाम—नदीम्। कौशिकी—इदानीं विहार-प्रदेश-स्था कोशी। ९। मेकलः—नागपुर-स्थः पर्वत-विशेषः। शोणः—नागपुराद् वि-निर्गत्य पाटनामुत्तरेण गङ्गया सङ्गच्छति। शकाः—शक-जात्यधिकृतो देशः (४० पृ.)। सर्गेऽस्मिन् शकादयः शब्दाः पुं-लिङ्गत्वाद् बहु-वचनत्वाच्च देश वाचकाः। पुलिन्दाः—पर्वोध्य-आदि म्लेच्छ-जाति-विशेषाधिकृतो वन-भूमिः मध्य-प्रदेशस्य। वन-भूमिरयं प्रायेण नर्मदामभितो विन्ध्याचले स्थिता। कलिङ्गाः—जगन्नाथादारभ्य कृष्णा-तटावधिः प्रदेशः, इदानीन्तन गञ्जाम-

मागधान् दण्डकूलांश्च वङ्गानङ्गांस्तथैव च,
महा-नादं च लौहित्यं, शैल-कानन-शोभितम्, ११

समुद्रमवगाढ़ानि पत्तनानि गिरीनपि,
रत्नवन्तं जल-द्वीपं, फल-भोज्योपशोभितम्।” १२

अथ प्रस्थाप्य स हरीन् दिशं पूर्वां हरीश्वरः
अपरान् प्रेषयामास वानरान् दक्षिणां दिशम्। १३

अब्रवीद् गिरि-सङ्काशं हनूमन्तमुपस्थितम्,
पितामह-सुतं चैव जाम्बवन्तं महा-कपिम्, १४

गयं गवाक्षं गवयं कुमुदमृषभं तथा—
अङ्गद-प्रमुखानेतान् हरीन्, कपि-गणेश्वरः,— १५

“सहस्र-शिखरं विन्ध्यं नाना-द्रुम-लतावृतम्,
नर्मदां च नदीं दुर्गां विचिन्वन्तु वनौकसः। १६

मेकलानुत्कलांश्चेदीन् दशार्णान् कुकुरानपि,
ततो भोजांश्च पाण्ड्यांश्च विचित्य, गिरिभिर् वृतान्, १७

विजागापटामाख्यं जिलाद्वयम्। १०। सुह्माः—न जानीमः कुत्राय प्रदेश इति। विदेहाः—जनक-राज्यम्, इदानीन्तनं नेपालं चम्पारनं मजःफरपुरं द्वारवङ्गं च व्याप्तोऽधिष्ठाय स्थितम्। मिथिला (अधुनातनं जनकपुरम्) तस्य राजधानी आसीत्। मलयाः — इदानीन्तन-गञ्जाम-जिलास्थ मलयाख्य-शैलमालाभिरुपलक्षितः प्रदेशः। काशि-कोशलाः—गङ्गा-तीर-वर्ती काशिरित्याख्यो जनपदः, सरयू-तीर-वर्ती कोशल इत्याख्यो जनपदश्च। ११। मागधाः—इदानीन्तन-विहारस्य दक्षिणो भागः। दण्डकूलाः—नाम्न प्रदेशस्य स्थितिर् ज्ञायते। वङ्गाः—समुद्रादारभ्य ब्रह्मपुत्रान्तः प्रदेशः। अङ्गाः—इदानीन्तनं भागलपुरं परितः स्थितः प्रदेशः। तस्य हि प्रदेशस्य चम्पा नाम नगरी राजधानी आसीत्। लौहित्यः—ब्रह्मपुत्रः। १२। समुद्रमवगाढ़ानि—समुद्रान्तर्गतानि। पत्तनानि—नगराणि। जल-द्वीपम्,—‘यव-द्वीपम्’ इति प्रतीच्यां पाठोऽपि समीचीनो भाति। १६। विचिन्वन्तु—अन्विष्यन्तु। १७। मेकलाः—विन्ध्यपर्वतस्थः मेकलाख्य-

गन्तव्यो मलयः श्रीमान् पर्वतो धातु-मण्डितः ।
विदर्भान् ऋष्टिकांश्चैव रम्यां माहिषिकीमपि १८

अन्विष्य, दण्डकारण्यं स-निर्झर-नदी-गुहम्,
नदीं गोदावरीं चैव प्रसन्नाम्बु-वहां, शिवाम्, १९

तथोड्रान् द्राविडान् पुण्ड्रां श्चोलां श्चैव स-केरलान्
गत्वा, द्रक्ष्यथ कावेरीं, वृतामप्सरसां गणैः ।" २०

विशेषेण तु सुग्रीवो हनूमन्तमुवाच ह,—
"न भूमावन्तरीक्षे वा पाताले वा सुरालये, २१

अप्सु वा गति-भङ्गं ते पश्यामि, हरि-पुङ्गव ।
तद् यथा लभ्यते सीता, तथा त्वं कर्तुमर्हसि ।" २२

स तं कार्य-समासङ्गमवसज्य हनूमति,
कृतार्थ इव संहृष्टः, प्रहृष्टेन्द्रिय-मानसः । २३

आन्ध्र-युषित: प्रदेश: । उत्कला:—ओडिष्या । चेदय:—प्रायेण इदानीन्तनो मध्य-प्रदेश: (The Central Provinces). दशार्णा:(दश + ऋणा:(दुर्गाणि))—'दश-दुर्गो[देश:]', इदानीन्तन्याश्चान्दर्या: पूर्व: प्रदेश: । कुकुरा:—यदव:, यदु-वंशीय-क्षत्रियाध्युषित: प्रदेश: । पर-युगे देव-गिरि: (दौलताबाद) यादवानां राजधानी बभूव । भोजा:—नर्मदामभितो विन्ध्यं अनु-कङ्कणापकूल पश्चिम-घाटं वा स्थितो भोज-जात्यध्युषित: प्रदेश: । पाण्ड्या:—इदानीन्तनं टिनिवेल्ली-मादुराख्या जिला-द्वयम् । बौद्ध-युगे तस्य हि कर्काइ: नाम राजधानी आसीत् । १८ । विदर्भा:—इदानीन्तनी वेरार-खान्देशौ । ऋष्टिका:—प्रायेण बौद्ध-युगस्य राष्ट्रिका:, गुप्त-युगस्य देव-राष्ट्र:, इदानीन्तनो महा राष्ट्रश्च । 'ऋषिकान्' इति गोरेसिओ: पठति । माहिषिकौ—प्रायेण इदानीन्तनो माइसुर: । १९ । अम्बु-वहम्—पद्मम् । २० । ओड्रा:—ओडिष्या । द्राविडा:—दक्षिणापथस्य पूर्व-प्रान्ते स्थित: तामिल-प्रदेश:, 'तामिलकम्' । काञ्ची नाम नगरी (इदानीन्तन: कञ्जिभेराम:) तस्य राजधानी बभूव । पुण्ड्रा:—पुण्ड्र-जात्यध्युषित: प्रदेश: । न जानीम: क्वायमासीदिति । चोला:—'चोल-मण्डलम्', सिन्धु-कृष्णयोर् मध्ये स्थित: नेलोर समारभ्य पदुकोटायावन्त: प्रदेश: । बौद्ध-युगे प्राचीना त्रिचिन-पल्ली चोलानां राजधानी बभूव । केरला:—नदात् चन्द्रगिरे: दक्षिणं मालाबारोपकूलम, इदानीन्तना मालाबारजिला-ट्रेवाङ्कोर-कोचिना: । २१ । कार्य-

ततः कार्य-समासङ्गमवसक्तं हनूमति
विदित्वा, स महा-बुद्धिश्चिन्तयामास राघवः,— २४
"सर्वथा निश्चितार्थोऽयं हनूमति कपीश्वरः ;
निश्चितानुभवश्चापि हनूमान् कार्य-साधने।" २५
स समीक्ष्य, महा-तेजा, व्यवसायोत्तरं कपिम्,
करिष्यति ध्रुवं कार्यमयमित्यन्ववैक्षत ; २६
ददौ चास्य तदा, प्रीतः स्व-नामाङ्काभिचिह्नितम्
अङ्गुरीयमभिज्ञानं राज-पुत्र्याः परन्तपः ;— २७
"अस्य सा, हरि-शार्दूल, दर्शनाज् जनकात्मजा
मंस्यते मत्-नियुक्तं त्वां, न चोद्वेगं करिष्यति।" २८
स, तं गृहीत्वा, हनूमान्, कृत्वा मूर्ध्नि, कृताञ्जलिः,
सहायैः सहितो व्योम पुप्लुवे, वानरर्षभः। २९
अथाहूय महा-तेजाः सुषेणं नाम यूथ-पम्,
तारायाः पितरं, राजा, श्वशुरं, भीम-विक्रमम्, ३०
अब्रवीत्, प्राञ्जलिर्, वाक्यमभिपूज्य प्रणम्य च,—
"साहाय्यं कुरु रामस्य कृत्येऽस्मिन् समुपस्थिते। ३१
वृतः शत-सहस्रेण वानराणां तरस्विनाम्,
अभिगच्छ दिशं, सौम्य, पश्चिमां, वारुणीं, प्रभो— ३२

समासङ्गः—कार्य-सिद्धि-सम्बन्धः। (समासङ्गः—संयोगः)। अवसज्य—योजयित्वा। २४। अवसक्तम्—योजितम्। २५। निश्चितार्थः—एतदर्थ-विषयक-निश्चयवान्। निश्चितानुभवः—स्वयमनुभूत्या कार्य-साधने निश्चितार्थः। २६। व्यवसायोत्तरम्—व्यवसायि (उद्यमी, अनुष्ठानि, कार्य-साधने समर्थः) उत्तरम् (श्रेष्ठम्)। अन्ववैक्षत—आलोचयामास। २७। अभिज्ञानम्—आरक्षं चिह्नम्। ३२। वारुणीम्—वरुण-

सु-राष्ट्रान् सह-वाह्लीकान् भद्राभीरां स्तथैव च,
प्रभासादीनि तीर्थानि तथा द्वारवतीमपि । २३

तत्र, केतक-षण्डेषु तथा ताली-वनेषु च,
हरयो विहरिष्यन्ति, नारिकेल-वनेषु च । २४

मरीचि-पत्तनं चैव रम्यं च जटिल-स्थलम्,—
गिरि-जालावृतां दुर्गां मार्गध्वं पश्चिमां दिशम् । २५

सिन्धु-सागरयोश्चैव सङ्गमे पर्वतो महान्;
तस्य प्रस्थेषु रम्येषु सिंहाः क्रीड़न्ति सर्वशः ।" २६

वीरं, शत-बलिं नाम वानरं वानरर्षभः
उवाच, राजा, राजानं, सर्व-वानर-सम्मतम्,— २७

"वृतः शत-सहस्रेण वानराणां तरस्विनाम्,
वैवस्वत-सुतैः सार्धं, मृगयस्वोत्तरां दिशम् । २८

तत्र मत्स्यान् पुलिन्दां श्च शूर-सेनां स्तथैव च,
प्रचरान् भद्रकां श्चैव कुरूं श्च सह माद्रकैः, २९

देवताधिष्ठिताम् । २३ । सुराष्ट्राः—प्रायश इदानीन्तना काठियावाड़ः । वाह्लीकाः—इदानीं बाल्ख् इति नाम्ना ख्यातः प्रदेशः । भद्राभीराः—आभीर (cowherds)-जाति-विशेषैरध्युषितः प्रदेशः । आभीराः किल खृष्टीयायां अस्तु अब्द-पर-शताब्द्याम् उत्तर पश्चिमस्या दिशो भारत वर्षमभिदुद्रुवुः चतुर्थ्यां च पूर्वं राजपुताना मालवञ्चाध्यूषुः । प्रभासः—द्वारकायाः समीपे स्थितस्तीर्थ-विशेषः । द्वारवती—द्वारका । इयमेव पुरा श्रीकृष्णस्य राजधानी बभूव । २४ । केतक-षण्डेषु—केतकी-कदम्बकेषु । २५ । मरीचि-पत्तनम्—नगरमिदमज्ञात-संस्थानम् । जटिल-स्थलम्—गहन वन-समावृतो देशः । २६ । प्रस्थेषु—पार्वत्य-सम-तल-भूमिषु । २८ । वैवस्वत-सुतैः—यम-पुत्रैः । न ज्ञायते क इमे यम-पुत्रा इति । २९ । मत्स्याः—इदानीन्तनं जयपुर-राज्यं राजपुताना-स्थम् । शूर-सेनाः—इदानीन्तनीं मथुरां परितः स्थितः प्रदेशः । प्रचराः—प्रचर-जातिभिः (by nomadic tribes) अध्युषितः प्रदेशः । भद्रकाः—भद्रकाख्य-ग्रामप्रभृतीऽ-ञ्चल-स्थितिः प्रदेशः । कुरवः—इदानीन्तनीं दिल्लीं परितः स्थितो देशः । माद्रकाः—

गान्धारान् यवनांश्चैव शकानोड्रान् स-पारदान्,
वाह्लीकानृष्टिकांश्चैव पौरवानथ किङ्करान्, ४०
चीनानपर-चीनांश्च तुषारान् वर्वरानपि,
काञ्चनैः कमलैश्चैव काम्बोजानपि संवृतान्,— ४१
एतानत्यद्भुतान् देशान् स-पर्वत-नदी-वनान्
अन्विष्य, दरदांश्चैव, हिमवन्तं गमिष्यथ, ४२
लोध्र-पद्मक-षण्डैश्च देव-दारु-वनैस्तथा
सालैस्तालैस्तमालैश्च भूर्जैश्च बहुभिर् वृतम् । ४३
किरातांश्च टङ्कणान् भद्रान् पशु-पालांश्च दारुणान्
अन्विष्याथ भृगोस्तुङ्गं गमिष्यथ महाश्रमम् । ४४
ताम्राकरमतिक्रम्य, हेम-गर्भं महा-गिरिम्,
ततः सु-दर्शनं नाम गमिष्यथ शिलोच्चयम् । ४५

मध्य पञ्जावे स्थितो देशः। 'मद्रकैः' इति गोरेसिओ-प्रभृतयः पठन्ति । ४० । ऋष्टिकाः —ऋष्टिकाख्य-आत्यभ्युषितः प्रदेशः (२२८ पृ.)। गान्धाराः—काबुलोपत्यकायां स्थित कान्दाहार-प्रदेशः । यवनाः—काबुलोपत्यकायां स्थितः ग्रीक्-आत्यभ्युषितो देशः । अतोऽत या कापि जातिः भारतवर्षाद् उत्तर पश्चिमां दिशमध्युवास सैव भारतवर्षे यवन इति नाम्ना प्रसिद्धिमगच्छत् इति केषाञ्चिन् मतम् । ओड्राः—ओड़िया-आत्यध्युषितो देशः। पारदाः—कास्पीय-सागराद् दक्षिण-पूर्वः पारदाख्य-मुक्त-केश-धनुष्पाणि-घोटकारोहि-मेषपालाध्युषितः, पर-युगे 'पार्थिया' इति नाम्ना ख्यातो, देशः । पौरवाः—भारतवर्षस्य पश्चिमोत्तर-भागे स्थितो देश-विशेषः । किङ्कराः—दासोपजीवि-आत्यध्युषितो देशः । ४१ । अपर-चीनाः—प्रतीच्य-चीन-आत्यध्युषितो देशः इदानीन्तनचाइनिज-तुर्कि-स्थानादिः । तुषाराः—विन्ध्य-पर्वत-स्थः तुषार-आत्यध्युषितो जन-पदः । वर्वराः—नीच-आत्यध्युषितो देशः । ४२ । दरदाः—हिमवत्-प्रस्थे सिन्धु-तटे स्थितः इदानीं दर्दिस्थान इति नाम्ना ख्यातो देशः । ४४ । किराताः—धनुष्पाणि-वनेचर-कोल-जाति-विशेषाध्युषितो देशः । टङ्कणाः—टङ्कणाख्येन पुराचीन-मरा-वनेनोपलक्षितो देशः । भद्राः—हिमवति विनीत-वैश्य-आत्यध्युषितो देशः । ४५ । शिलोच्चयः—पर्वतः ।

तं तु शीघ्रमतिक्रम्य कान्तारं लोम-हर्षणम्,
पाण्डुरं द्रक्ष्यथ, ततः, कैलासं नाम पर्वतम्। ४६

तत्र पाण्डुर-मेघाभं, जाम्बूनद-परिष्कृतम्
कुवेर-भवनं, दिव्यं, निर्मितं विश्व-कर्मणा। ४७

विशाला नलिनी तत्र प्रभूत-कमलोत्पला
हंस-कारण्डवाकीर्णा मुक्ता-वैदूर्य-बालुका। ४८

क्रौञ्चं पर्वतमासाद्य—गिरिस्तस्य वनं महत्,
वसन्ति हि महात्मानस्तत्र सूर्य-सम-प्रभाः ४९

देवैरभ्यर्चिताः शश्वद् देव-रूपा महर्षयः—
मैनाकस्तु विचेतव्यः, स-सानु-प्रस्थ-कन्दरः। ५०

तत्राश्रम-पदं रम्यमृषीणामूर्ध्व-रेतसाम्,
दीप्तं, सप्तर्षि-चरितं, धर्मैक-कृत-निश्चयैः। ५१

तान् गच्छथ, हरि-श्रेष्ठा, विशालानुत्तरान् कुरून्।
अ-भास्करम-मर्यादं न जानामि ततः परम्। ५२

"अवगम्य तु वैदेहीं, निलयं रावणस्य च,
मासादूर्ध्वं न वस्तव्यं—वसन् वध्यो भवेन् मम।" ५३

इत्यार्षे श्री-लघु-रामायणे, वाल्मीकीये, त्रि-साहस्र्यां संहितायां,
किष्किन्ध्या-काण्डम्।

४६। 'ततः तु तं (सु-प्रसिद्ध) लोम-हर्षणं (अति-भयङ्करं) कान्तारं (महारण्यम्) शीघ्रमतिक्रम्य' इत्यन्वयः। ४७। जाम्बूनदम्—स्वर्णम्। (जम्बु-नदी—मेरोः विनिर्गता स्वर्ण-वर्णा नदी)। ५०। सानु—प्रस्थम्। कन्दरः—गुहा। ५१। सप्तर्षि-चरितम्—सप्तर्षि-सेवितम्। ५२। उत्तराः कुरवः—उत्तर-मेरुमभितः स्थिताः देशाः। अ-मर्यादम्—अ-सीमम्, boundless.

इति नचि-किरणे नाम लघु-रामायण-वृत्तौ किष्किन्ध्या-काण्डम्।

अथ

श्री-लघु-रामायणे

सुन्दर-काण्डम्।

प्रथमः सर्गः।

अशोक-वनम्।

अन्वेषमाणास्तु तथा सर्वे ते हरि-यूथ-पाः
न सीतां ददृशुर् वीरा मैथिलीं जनकात्मजाम्। १

ततः स हनूमान्, क्रान्तः सागरं मकरालयम्,
ददर्श तां पुरीं लङ्कां, त्रि-कूट-शिखरे स्थिताम्। २

स, रत्न-वसनां लङ्कां, कोष्ठागारावतंसकाम्,
सु-न्यस्तां, सु-समृद्धार्थां, प्रमदामिव रूपिणीम्, ३

प्र-नष्ट-तिमिरां दीप्तैर् भास्वरैश्च महा-गृहैः,
नगरीं राक्षसेन्द्रस्य, प्रविशन्, ददृशे कपिः। ४

स, संक्षिप्यात्मनः कायं, प्र-विष्टोऽनुपलक्षितः
रावणस्य पुरीं, गुप्तां मार्गिष्यन् जनकात्मजाम्। ५

एवं सर्वम्-अशेषेण रावणान्तः-पुरं कपिः
अन्वियेष, महा-तेजा—न चापश्यत् स जानकीम्। ६

२। त्रि-कूटः—पर्वत-विशेषः। ३। रत्न-वसनाम्—रत्नाकर-वाससम्, समुद्र-वसनाम्। कोष्ठाः—अन्नागाराणि। अवतंसाः—भूषणानि। ४। ददृशे—शुशुभे। ५। मार्गिष्यन्—अन्वेषिष्यन्; अन्वेषितुकामः इत्यर्थः।

ततो, लङ्कां प्र-यत्नेन विचित्य, पवनात्म-जः
रजन्यामर्ध-शेषायां प्राकारे निषसाद, सः। ७

स तु, शोक-समाविष्टः, प्राकार-स्थो महा-कपिः
पुष्पिताग्रानथापश्यदेकत्र विविधान् द्रुमान्— ८

सालानशोकान्भव्यांश्च चम्पकानतिमुक्तकान्,
ददर्श नाग-पुष्पांश्च चूतान् कपित्थकानपि। ९

तां तु दृष्ट्वा महा-बाहुरशोक-वनिकां शुभाम्,
चिन्तयामास मेधावी हनूमान्, मारुतात्मजः,— १०

"अशोक-वनिका हीयं, महती, सु-महा-द्रुमा।
इमामपि विचेष्यामि—न ह्येषा विचिता मया।" ११

ततः पादप-सङ्कीर्णां, लता-शत-समावृताम्
अशोक-वनिकां, स्फीतां, प्र-विवेश महा-कपिः। १२

स, प्र-विश्य, वि-चित्रां, तां, विहगैरुपशोभिताम्,
राजतैः काञ्चनैश्चैव पादपैरनुसन्तताम्, १३

अ-चिरोदित-सूर्याभामपश्यन् मारुतात्मजः,
कोकिलैर् भृङ्ग-राजैश्च मत्तैर् नित्य-निषेविताम्। १४

शिला-गृह-परिक्षिप्तां, नाना-गृह-समावृताम्,
ददर्श वन-मध्य-गां नदीं निह्लादिनीं कपिः। १५

८। प्राकारः—प्राचीरम्। ९। अतिमुक्तकान्—तिनिशान्। नाग-पुष्पान्—पुन्नागान्। चूतान्—आम्रान्। कपित्थकान्—कपित्थान्, [illegible], wood apple trees. १०। अशोक-वनिका—क्षुद्रम् अशोक-वनम्। १३। राजतैः—रजतमयैः, रौप्य-निर्मितैः। काञ्चनैः—काञ्चनमयैः, स्वर्ण-निर्मितैः। अनुसन्तताम्—निरन्तरं समाकीर्णाम्। १४। अ-चिरोदित-सूर्याभाम्—'पुष्पैः' इति शेषः।

बाल-पल्लव-शाखायां स ददर्श नगोत्तमे,
क्रीड़न्तीं दोलया, जुष्टां प्रमदामिव सुन्दरीम्। १६

ततां प्रवालैस्तरुभिः पर्वैश्च बहुभिर् वृताम्,
काञ्चनीं शिंशपामेकां ददर्श महतीं कपिः। १७

समारुह्य महा-तेजाः शिंशपां तामचिन्तयत्,—
"इतो द्रक्ष्यामि वैदेहीं, राम-दर्शन-लालसाम्।" १८

परीक्षमाणस्तत्राथ मार्गमाणश्च जानकीम्,
अपश्यद् भूमि-भागांश्च, सर्वतः सु-समाश्रितान्। १९

सु-संसृष्टेषु देशेषु विन्यस्तान् मणि-वेदिकान्
ददर्श हनुमांस्तत्र मणि-काञ्चन-राजतान्; २०

सन्तानक-लताभिश्च पादपाननुवेष्टितान्,
सृजतः पुष्प-वर्षाणि, जीमूतानिव वर्षतः; २१

केशरांश्चाप्यशोकांश्च तथा शाल्मलि-किंशुकान्,
ज्वलनार्क-निभान्, फुल्लान्, समन्तादनु-शोभिनः। २२

शातकुम्भ-प्रभाः केचित्, केचिदग्नि-शिखोपमाः,
नीलाञ्जन-निभाः केचित् तत्राशोकाः समन्ततः। २३

पुष्पितानामशोकानां प्रभां, सूर्योदयं प्रति,
प्रदीप्तामिव, तत्र-स्थो मारुतिः समुदैक्षत। २४

सोऽपश्यद-वि-दूर-स्थं प्रासादं—चैत्यमुत्तमम्—
धृतं स्तम्भ-सहस्रेण, रम्यं, कैलास-पाण्डरम्, २५

१७। तताम्—व्याप्ताम्। १९। मार्गमाणः—मार्गन्। आत्मने-पदमार्षम्। समाश्रितान्—वि-निर्मितान्। २०। संसृष्टेषु—मिलितेषु, सम्बद्धेषु। २२। ज्वलनार्क-निभान्—दीप्यमान सूर्य-सदृशान्। २३। शातकुम्भम्—स्वर्णम्। (शतकुम्भः—स्वर्ण-वर्णः पर्वत-

प्रवाल-क्कत-सोपानं, तप्त-काञ्चन-वेदिकम्,
मुष्णन्तमिव चक्षूंषि, द्योतयन्तमिव श्रिया,
विपुलं, प्रांशुतायोगादुल्लिखन्तमिवाम्बरम् । २६

ददर्श विकृतास्तत्र राक्षसीः कपि-कुञ्जरः,
ह्रस्व-नासाति-नासाश्च, तिर्यग्-नासा अ-नासिकाः, २७
असि-मुद्गर-शूलानि दधतीर्, मांस-भोजनाः,
मांस-शोणित-दिग्धाङ्गीर्, वसा-दिग्ध-करानना: । २८
ताभिः परिवृतां, तत्र, स-ग्रहामिव रोहिणीम्,
उपवास-कृशां, दीनां, निःश्वसन्तीं पुनः पुनः, २९
ध्यान-शोक-परां, देवीं, भर्तृ-व्यसन-कर्शिताम्,
वृक्ष-मूले, निरानन्दां, ददर्श कपिरङ्गनाम्, ३०
सीदन्तीं शुक्ल-पक्षादौ चन्द्र-रेखामिवाविलाम्,
पिनद्धां धूम-जालेन प्रभामिव विभा-वसोः, ३१
पीतेनैकेन संवीतां क्लिष्टेनोत्तर-वाससा,
भुजाभ्यां साधु-वृत्ताभ्यां प्रतिच्छन्न-कुचोदरीम्, ३२
नील-नागाभया वेण्या जघनं गतयैकया
भूमौ देवीं तदासीनां नियतां तापसीमिव, ३३
यूथ-पेन मृगीं हीनां शार्दूलानुवृतामिव,
प्रभां नक्षत्र-राजस्य काल-मेघैरिवावृताम् । ३४

विशेषः) । २६ । प्रांशुतायोगात्—उन्नतत्वात् । २९ । स-ग्रहाम्—केतुना पीड़िताम् । ३१ । सीदन्तीम्—अवसीदन्तीम, drooping, sinking. आविलाम्—कलुषिताम, मलिनाम् । पिनद्धाम्—आवृताम् । विभा-वसुः—अग्निः । ३२ । क्लिष्टेन—मलिनेन वस्त्रेण । ३३ । नील-नागाभया—कृष्ण-सर्प-तुल्यया । जघनम्—कटिम् । एकया वेण्या

स, मुहूर्तमिव ध्यात्वा, बाष्प-पर्याकुलेक्षणः,
सीतामाश्रित्य, तेजस्वी विललाप, सु-दुःखितः,— ३५

"इयं सा धर्म-शीलस्य मैथिलस्य महात्मनः
सुता जनक-राजस्य, सीता, भर्तृ-दृढ़-व्रता । ३६

विक्रान्तस्यार्य-शीलस्य, संयुगेष्व-निवर्तिनः,
स्नुषा दशरथस्यैषा, चारित्राढ्या, यशस्विनी । ३७

धर्म-ज्ञस्य कृत-ज्ञस्य रामस्य, विदितात्मनः,
इयं सा दयिता भार्या, राक्षसी-वशमागता । ३८

सेयं कनक-वर्णाभा, नित्यं स-स्मित-भाषिणी,
सहते यातनां घोराम-नाथा, मन्द-भागिनी । ३९

पीतं कनक-वर्णाभमस्यास्तद् वसनोत्तमम्
उत्तरीयं, नगे त्यक्तं, दृष्टं मे वानरैः सह । ४०

भूषणानि च मुख्यानि दृष्टानि धरणी-तले,
अनयैवापविद्धानि, स्वनवन्ति महान्ति च । ४१

सु-कृतौ कर्ण-वेष्टौ च कुण्डले च सु-संस्कृते,
मणि-विद्रुम-युक्तानि हस्तयोर् भूषणानि च— ४२

यानि चैव विमुक्तानि तथा संस्थानवन्ति च—
तान्यस्या एव मन्येऽहं यानि रामोऽन्वकीर्तयत् । ४३

—उपलक्षितताम् इति शेषः । नियताम्—भू-शयनादि-रूप-नियमवताम् । ३७ । आर्य-शीलस्य—पूज्य-चरित्रस्य । ३८ । विदितात्मनः—आत्म-ज्ञस्य । ४० । दृष्टं मे—दृष्टं मया । षष्ठी आर्षी । पा. २।३।६९ । ४१ । अपविद्धानि—प्र-क्षिप्तानि । स्वनवन्ति—निर्मल-स्वर्ण-परिचायक-ध्वनि-समन्वितानि । ४२ । कर्ण-वेष्टौ—कर्ण-वलयौ, ear-rings, कान-बाला । सु-संस्कृते—सु-निर्मिते, अत्युत्कृष्टे । विद्रुमाः—प्रवालाः । ४३ । संस्थानवन्ति—अवयव-संघात-विशिष्टानि ।

यस्या देव्या मनस्तस्मिं स्तस्य चास्यां प्रतिष्ठितम्,
तेनेयं स च धर्मात्मा मुहूर्त्तमपि जीवति । ४४

इयमिन्दीवर-श्यामा, रामस्य महिषी प्रिया,
चिर-प्र-नष्टापि सती, हृदयान् न प्रणश्यति । ४५

काम-भोग-विहीनेयं, हीना बन्धु-जनेन च,
धारयत्यात्मनो देहं तत्-समागम-काङ्क्षया । ४६

तुल्य-रूप-वयो-युक्तां, तुल्याभिजन-लक्षणाम्,
राघवोऽर्हति वैदेहीं, तं चेयमसितेक्षणा ।" ४७

द्वितीयः सर्गः ।

अभिज्ञानम् ।

एवं बहु विचिन्त्यार्थं चिन्तयित्वा, महा-कपिः
शनैः सं-श्रवणे वाक्यं सीताया व्याजहार वै,— १

"राजा दशरथो नाम, प्रभूत-बल-वाहनः,
पुण्य-शीलो, महाकीर्त्तिर्, देव-दर्शी, महा-यशाः । २

तस्य पुत्रः प्रियो, ज्येष्ठस्तारा-पति-निभाननः,
रामो नाम, विशेष-ज्ञः, श्रेष्ठः सर्व-धनुष्मताम्, ३

रक्षिता जीव-लोकस्य, धर्मस्य परिरक्षिता,
रक्षिता स्वस्य वंशस्य, सु-जनस्य च रक्षिता । ४

स च, सत्याभिसन्धस्य वृद्धस्य वचनात् पितुः,
स-भार्यः सह भ्रात्रा च रामः प्रव्रजितो वनम् । ५

---

४५ । प्र-नष्टा—अन्तर्हिता ।

१ । सं-श्रवणे—सम्यक् श्रवण-योग्ये समीप-देशे यथोक्तं सीतेव शृणुयात्, नान्यः । अनेन सीता-हनूमतोः संलापेन निशा-जागरण-क्लान्तानां राक्षसीनां प्रतिनिद्रा अभवत् ।

तत्र तस्य, महारण्ये, मृगयां परिधावतः,
रक्षसापहृता भार्या, मिथिलाधिपतेः सुता।"   ६

विरराममेवमुक्त्वा तु हनूमान्, मारुतात्मजः;
जानकी चापि तच् छ्रुत्वा जहर्ष च ननन्द च।   ७

ततः सा, चारु-केशान्ता, शोक-संहृत-चेतना,
उन्नम्य वदनं, भीरुः, शिंशपां तामुदैक्षत।   ८

ततः, शाखान्तरे लीनं, त्रस्ता, चलित-मानसा,
ददर्श प्रहृता सीता वानरं प्रिय-वादिनम्।   ९

सा च, दृष्ट्वा हरि-वरं विनीतवदुपस्थितम्,
मैथिली चिन्तयामास स्वप्नोऽयमिति, भाविनी।   १०

ततः स हनुमान् भूयो जानकीमभ्यभाषत,
शिरस्यञ्जलिमाधाय वैदेहीं प्रतिपूजयन्,—   ११

"का त्वं, पद्म-पलाशाक्षि, पीत-कौशेय-वासिनी,
द्रुम-शाखामथालम्ब्य, तिष्ठस्यमर-वर्णिनि?   १२

किमर्थं तव नेत्राभ्यां वारि स्रवति, शोक-जम्,
पुण्डरीक-पलाशाभ्यां सु-प्रसन्नमिवोदकम्?   १३

रावणेन जन-स्थानाद् बलादपहृता यदि
सीता त्वमसि वैदेही, तत् त्वमाख्याहि, भाविनि।"   १४

सा, तस्य वचनं श्रुत्वा, राम-कीर्तन-हर्षिता,
उवाच वाक्यं वैदेही वृक्षान्तर-गतं कपिम्,—   १५

६। मृगयां परिधावतः—मृगयामुद्दिश्य धावतः। ११। प्रतिपूजयन्—सम्मानयन्।
१२। पलाशम्—पत्रम्, दलम्।

"दुहिता जनकस्याहं, वैदेहस्य, महात्मनः,
सीतेति नाम्ना वि-ख्याता, भार्या रामस्य धीमतः । १६

वसतो दण्डकारण्ये, तस्याहम-मितौजसः,
रक्षसापहृता, भार्या, रावणेन दुरात्मना ।" १७

सीतायास्तद् वचः श्रुत्वा, वायु-पुत्रः, प्रतापवान्,
श्रोत्रानु-कूलैर् वचनैरथ तां समभाषत,— १८

"यः स विग्रहवान् धर्मः, साधुः, सत्य-पराक्रमः,
न चिराद् रावणं सङ्ख्ये स हनिष्यति वीर्यवान् । १९

तेनाहं प्रेषितो दूतस्त्वत्-सकाशमिहागतः ।
त्वद्-वियोगेन शोकार्तः, स त्वां कौशल्यमब्रवीत् । २०

लक्ष्मणश्च, महा-तेजाः, सुमित्रानन्दि-वर्धनः,
अभिवाद्य, महा-बाहुः, स त्वां कौशल्यमब्रवीत् । २१

रामस्य च सखा, वीरः, सुग्रीवो नाम, वीर्यवान्,
राजा वानर-मुख्यानां । स त्वां कौशल्यमब्रवीत् । २२

नित्यं स्मरति ते रामः, सुग्रीवः सह-लक्ष्मणः ।
दिष्ट्या जीवसि, वैदेहि, राक्षसी-वशमागता ! २३

न चिराद् द्रक्ष्यसे रामं, सुग्रीवं सह-लक्ष्मणम्,
मध्ये वानर-कोटीनां, मरुतामिव वासवम् । २४

अहं सुग्रीव-सचिवो, हनूमान् नाम वानरः ।
दूतोऽहं राज-सिंहस्य रामस्याक्लिष्ट-कर्मणः । २५

१९। विग्रहवान्—स-शरीरः, दृश्यमानः स्वयं। २०। कौशल्यम्, कौशलम्—कुशलम्, मङ्गलम्। २४। द्रक्ष्यसे—द्रक्ष्यसि। आत्मने पदमार्षम्।

राम-नामाङ्कितं चेदं प्र-श्लक्ष्णाथाङ्गुरीयकम्,
तदभिज्ञान-हेतोर् हि दत्तं तेन महात्मना ।” २६

अथ हर्ष-परीताङ्गी, वाष्पेणापिहितानना,
प्रतिजग्राह तं देवी, चक्रे शिरसि चैव हि । २७

श्रुत्वा च राम-सन्देशं, दृष्ट्वा चैवाङ्गुरीयकम्,
नेत्राभ्यां कृष्ण-साराभ्यां मुमोचानन्द-जं जलम् । २८

तस्याश्च विमलं वक्त्रं, सु-दन्तं, सु-गुणैर् युतम्,
यथा राहु-वि-निर्मुक्तमभवच् चन्द्र-मण्डलम् । २९

तृतीयः सर्गः ।

प्रत्यभिज्ञानम् ।

सा, प्रमृज्यायते नेत्रे कराभ्यां, करुणावती
उपपन्नैरभिज्ञानैर् दूतं तमवगच्छत । १

वाष्प-सं-दिग्धया वाचा, शोक-हर्ष-वि-मिश्रया,
उवाच मधुरं वाक्यं हरिं हरिण-लोचना,— २

“यजेयं देवताः काले चस्यार्थे, प्लवगोत्तम,—
दिष्ट्या जीवति मे भर्ता, दिष्ट्या जीवति लक्ष्मणः ! ३

कपे, त्वामभिनन्दामि—चिरं जीव ! सुखी भव !
सानुजः कुशली भर्ता येन मेऽद्य निवेदितः । ४

---

२८ । नेत्राभ्यां कृष्णसाराभ्याम्—कृष्णसार-नेत्राभ्याम्, कृष्णसार-नेत्र-तुल्याभ्यां नेत्राभ्याम् ।

१ । उपपन्नैः—युक्ति-सिद्धैः । अवगच्छत—अवागच्छत् । आत्मने-पदम् अडागमाभावश्च आर्षः । २ । सं-दिग्धया—सं-मिश्रितया । ३ । काले चस्यार्थे—सम्भेरभाव आर्षः । c. f. १।१।५ & ६, &c.

बलेन यशसा चैव वर्धस्व, प्रज्ञया तथा !
विक्रान्तस्त्वं, समर्थस्त्वं, प्राज्ञस्त्वं, प्लवगर्षभ, ५

येनायं राक्षसावासस्त्वयैकेन प्रधर्षितः,
शत-योजन-विस्तीर्णः सागरश्च महोदधिः । ६

न हि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं, वानरर्षभ,
यस्य ते नैव सं-त्रासो, रावणान् न च सम्भ्रमः । ७

अर्हसे च, कपि-श्रेष्ठ, मया समभिभाषणम्,—
प्रेषयिष्यति मेधावी रामो न ह्य-परीक्षितम् । ८

कच्चिन् न व्यथते रामः, कच्चिन् न परितप्यते ।
अपि मां व्यसनादस्मात् सु-घोरादुद्धरिष्यति ? ९

यदि जीवति काकुत्स्थः, किमर्थं रावणालयम्
न निर्दहति कोपेन, युगान्ताग्निरिवोत्थितः ? १०

किमर्थं मर्षयति मामरि-सं-स्थाम-मर्षणः—
न रावण-वि-नाशाय प्रयत्नमनुतिष्ठति ? ११

कच्चिदक्षौहिणी, भीमा, भरतस्य महात्मनः
ध्वजिनी, मन्त्रिभिर् गुप्ता, क्षिप्रमेष्यति मत्-कृते । १२

कच्चित् स लक्ष्मणः, श्रीमान्, सुमित्रानन्द-वर्धनः,
अस्त्र-वित्, शर-जालेन प्रमथिष्यति राक्षसान् । १३

५ । विक्रान्तः—शूरः । समर्थः—कृत्य-चतुरः । प्राज्ञः—शास्त्र-ज्ञः । ६ । प्रधर्षितः—पराभूतः, अवमानितः । ७ । संत्रासः—'समुद्रात्' इति शेषः । ८ । समभिभाषणम्—सम्भाषणम् । प्रेषयिष्यति—प्रेषयेत् । सम्भावनायां लृट् । ११ । मर्षयति—सहते । अरि-संस्थाम्—शत्रु-पुर-वासिनीम् । 'किं···अमर्षणः'—कथं प्रकृत्या अ-सहनोऽपि रामो मे शत्रु-पुरे वासं सहेत ? १२ । अक्षौहिणी—२१८७० हस्तिनः, २१८७० रथाः, ६५६१० घोटकाः, १०९३५० पदातयश्च इति समुदायेन २१८००० संख्या-युक्ता सेना । ध्वजिनी—ध्वजोपलक्षिता । गुप्ता—रक्षिता, परिचालिता इत्यर्थः । १३ । प्र-मथिष्यति—चातुरन्त

रौद्रेण परमास्त्रेण रामेण निहतं रणे
द्रक्ष्यामि रावणं द्रष्टुं, स-पुत्र-ज्ञाति-बान्धवम्।" १४

एतत् श्रुत्वा शुभं वाक्यं सीतायाः, मारुतात्मजः
इदं मधुरया वाचा कृताञ्जलिरभाषत,— १५
"न तावद्, देवि, जानीते त्वामिह-स्थां स राघवः;
धक्ष्यते सायकैराशु, मयि प्रतिगते, पुरीम्। १६
मम श्रुत्वैव तु वचः, क्षिप्रमेष्यति राघवः,
प्र-कर्षन् महतीं सेनां वानराणां महात्मनाम्। १७
तत्र यद्यन्तरा मृत्युर्, यदि सेन्द्रा दिवौकसः
स्थास्यन्ति, तानपि रणे काकुत्स्थो नि-हनिष्यति। १८

"तवादर्शन-शोकेन महता समभिप्लुतः,
न शान्तिं लभते रामः, सिंहार्दित इवर्षभः। १९
क्षिप्रं द्रक्ष्यसि रामस्य पूर्ण-चन्द्र-निभं मुखम्—
त्वामेव ध्यायति सदा, विशालाक्षि, स राघवः। २०
सुप्तस्यैव हि रामस्य निद्रा नैवोपतिष्ठति।
न भक्षयति मांसानि, न मधूनि च सेवते; २१
नैव दंशान् न मशकान् नान्यानपि सरीसृपान्
राघवो वारयेदङ्गात् तवार्थे, वर-वर्णिनि! २२

भ्वादि-गणीयौ विलोडनार्थौ मथ्, न तु क्र्यादि-गणीयो मन्थ्। १४। रौद्रेण—अ-मोघ-क्रूरेण। १६। धक्ष्यते—धक्ष्यति। आत्मने-पदमार्षम्। १७। प्र-कर्षन्—मथ्नन्, परिचालयन्। महात्मनाम्—महा-कायानाम्। १८। अन्तरा—[राक्षस-वानरयोः] मध्ये। मृत्युः—यमः। दिवौकसः—देवाः। (दिवम्—स्वर्गः, आकाशः। ओकः—स्थानम्।) २१। सुप्तस्य—शयितस्य।

त्वामेव चिन्तयन् रामः सुप्तोऽपि प्रतिबुध्यते,
सीतेति मधुरां वाणीं व्याहरन्, पुरुषर्षभः । २३

फलं चालोक्य, पुष्पं वा—यच्चान्यत् स्त्री-मनो-हरम्—
गृहीत्वा, हा प्रियेत्येवं निश्वास-परमोऽभवत् । २४

"यत् तु रामोऽभिजानीयादभिज्ञानम-निन्दिते,
प्रीति-सं-जननं तस्य, तत् प्रदातुं त्वमर्हसि ।" २५

सा, निरीक्ष्य ततः सर्वं, वेण्यां ग्रथितमुत्तमम्,
विमुच्य प्रददौ तस्मै मणि-रत्नं हनूमते । २६

मणि-रत्नं हरि-वरः प्रतिगृह्याभिवन्द्य च,
प्र-वरान् राक्षसान् हत्वा, नाम विश्राव्य चात्मनः, २७

आकुलां नगरीं कृत्वा, व्यथयित्वा च रावणम्,
आरुरोह गिरिं मुख्यमरिष्टं, रिपु-सूदनः । २८

चतुर्थः सर्गः ।

सन्देश-हरणम् ।

स मारुत इवाकाशे मारुतस्यौरसः सुतः
प्रपेदे, हरि-शार्दूलः, पितुः पन्थानमुत्तमम् । १

तस्य बाहूरु-वेगं च नि-नदं च महात्मनः,
सं-श्रुत्य, हरयो, हृष्टाः, समुत्पेतुः समन्ततः । २

२४ । प्रियेत्येवम् (प्रिय + इत्येवम्)—प्रिय इत्येवम् । सन्धिरार्षः । पदान्ते य-व-लोपे न स्वर-सन्धिः । पा. ६।१।७८, ८।३।१८, ८।२।१ । निश्वास-परमः—'विश्वास-परमः' इति मोनियरोः पठति । स्त्री-मनो-हरम्—स्त्रीणां मनो-हरम्, नारी-चित्त-हारि । २७। प्र-वरान्—श्रेष्ठान् । २८ । अरिष्टम्—अरिष्टाख्यम् ।

१ । पितुः पन्थानम्—येन पथा [हनूमतः] पिता (पवनः) प्रयाति तम् । उत्तमम्

ते नगाग्रान् नगाग्राणि शिखराच् छिखराणि च,
प्र-हृष्टाः, समपश्यन्त, हनूमन्तं दिदृक्षवः। ३

स, किञ्चिदनु-सं-प्राप्तः, समालोक्य महा-गिरिम्,
ननदद् हनुमान्, नादं, मेघ-नाद-सम-स्वनम्। ४

तमभ्रि-चय-सङ्काशमापतन्तं महा-कपिम्
दृष्ट्वा, ते वानराः सर्वे तस्थुः प्राञ्जलयस्तदा। ५

स, तस्यैव गिरेः शृङ्गे निपत्य, सु-महा-जवः,
निषसाद महेन्द्रस्य, मारुतिः, पादपाकुले। ६

तेऽङ्गद-प्रमुखाः सर्वे सं-प्र-हृष्ट-मुखास्तदा
निपेतुर् हरि-राजस्य पादयो, राघवस्य च। ७

हनूमांश्च महा-बाहुः, प्र-णम्य शिरसा, ततः,
अभ्यवादयत, प्रह्वो, रामं कमल-लोचनम्; ८

उवाच वाक्यं वाक्य-ज्ञः सीताया दर्शनं प्रति,—
"समुद्रं लङ्घयित्वाहं, शत-योजनमायतम्,
अगच्छं, जानकीं सीतां मार्गमाणो, विहायसा। ९

लङ्का नाम पुरी तत्र रावणस्य, दुरात्मनः,
दक्षिणस्य समुद्रस्य तीरे वसति दक्षिणे। १०

तत्र सीता मया दृष्टा रावणान्तः-पुरे, सती,
राक्षसीभिर् वि-रूपाभी रक्षिता प्रमदा-वने, ११

एक-वेणी-धरा, दीना, त्वद्-चिन्ता, त्वत्-परायणा,
अधः-शय्या, विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे, १२

—'उत्तमम्' इति प्रतीच्यां पाठः। ५। आपतन्तम्—आगच्छन्तम्। ७। हरि-राजस्य

रावणाद् वि-निष्क्रान्ता, मर्तव्ये कृत-निश्चया ।
कथञ्चिदेव, काकुत्स्थ, तव सान्त्वादिता मया ।" १३

तं मणिं दिव्य-रूपं च, दीप्यमानं स्व-तेजसा,
दत्त्वा रामाय, हनूमांस्ततः प्राञ्जलिरब्रवीत्,— १४

"'जहि पापमिमं रक्षः, क्रूरं, दारापहारिणम्',
इति मामब्रवीत् सीता, धर्म-ज्ञा, धर्म-चारिणी । १५

उपायो दृश्यतां कश्चिद्, यथा नद-नदी-पतिम्,
न चिरेण भवान् घोरं, स-सैन्यः, सागरं तरेत् ।" १६

एवमुक्तो हनूमता रामो, दशरथात्म-जः,
तं मणिं हृदये कृत्वा, प्र-रुरोद, स-लक्ष्मणः । १७

निरीक्ष्य तं मणि-श्रेष्ठं, राघवः, शोक-कर्शितः,
नेत्राभ्यां बाष्प-पूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत्,— १८

"यथैव धेनुः स्रवति, स्नेहाद् वत्सस्य, वत्सला,
एवं मे मणि-रत्नस्य, वैदेह्या इव, दर्शनम् । १९

मणि-रत्नमिदं दत्तं वैदेह्याः श्वशुरेण वै
वधू-काले । तदा बद्धमधिकं मूर्ध्नशोभत । २०

अयं हि जल-सम्भूतो मणिः, परम-पूजितः,
राज्ञे, परम-तुष्टेन, दत्तः शक्रेण धीमता । २१

—सुग्रीवस्य । १२ । भक्त-शय्या—भू-शय्या । १३ । मर्तव्ये—मया मर्तव्यम् इति, मरणे । १५ । इमम् & दारापहारिणम्—रक्षः-शब्दस्य क्लीबत्वेऽपि पुं-वाचित्वादनयोर विशेषणयोः सु-स्पष्टं पुंस्त्वमार्षम् । १९ । द्वितीया पङ्क्तिः—'तथा ममापि हृदयं मणि-रत्नस्य दर्शनात्' इति दाक्षिणात्याः पठन्ति । २० । श्वशुरेण—'मम' इति शेषः । वधू-काले—वधूत्व-सम्पादके काले, विवाह-काले ।

किमाह सीता वैदेही, ब्रूहि, सौम्य, पुनः पुनः—
शोकाग्निना दह्यमानं सिञ्च मां वाक्य-वारिणा । २२

अतस्तु किं दुःखतरं, यदिमं वारि-सम्भवम्
मणिं पश्यामि, हनूमन्, वैदेहीमागतां विना ? २३

नय मां तत्र, हनूमन्, यत्रास्ते सा मम प्रिया ;
मुहूर्तं नावतिष्ठेयं प्रवृत्तिमुपलभ्य हि । २४

कथं सा मम, सु-श्रोणी, भीरुरेकाकिनी सती,
भयावहानां घोराणां मध्ये तिष्ठति रक्षसाम् ? २५

शारदस्तिमिरान् मुक्तो, नूनं, चन्द्र इवाम्बुदैः,
आवृतं, वदनं तस्या न विराजति, राक्षसैः । २६

किमाह सीता, हनूमं, स्तत्त्वतः कथयस्व मे ।
एतेन खलु जीविष्ये, भेषजेन यथातुरः ।” २७

इत्युक्त्वा बाष्प-पूर्णाक्षो, राघवः, पर-वीर-हा,
हनूमन्तं परिष्वज्य, भूयश्चिन्ता-परोऽभवत् । २८

ततः शोक-परिच्छन्नं रामं, दशरथात्म-जम्,
उवाच वचनं श्रीमान् सुग्रीवः, शोक-नाशनम्,— २९

“इमे समर्थाः शूराश्च सर्वे ते हरि-यूथ-पाः
त्वत्-प्रियार्थं कृतोत्साहाः प्रवेष्टुमपि पावकम् । ३०

सेतुर् बद्धः समुद्रे च, लङ्का च वशमागता—
सर्वं तीर्णं च नः सैन्यं—जितमित्यवधार्यताम् ।” ३१

२४। नावतिष्ठेयं—नावतिष्ठेय, स्थातुं न शक्नोमि। 'शकि लिङ् च' (पा. ३।३।१७२) इति शक्तौ विधिलिङ्। परस्मै-पदमार्षम्। प्रवृत्तिः—वार्त्ता, वृत्तान्तः। उपलभ्य—प्राप्य। २७। जीविष्ये—जीविष्यामि। आत्मने-पदमार्षम्। ३१। जितम्—'तेन' इति शेषः।

पञ्चमः सर्गः ।

अभियानम् ।

अथाहृत्य महीं कृत्स्नां, जगाम महती चमूः,
ऋक्ष-वानर-शार्दूलैर् नख-दंष्ट्रायुधैर् वृता ।

कराग्रैश्चरणाग्रैश्च वानरैरुद्धतं रजः
भौममन्तर्दधे लोकमाहृत्य सवितुः प्रभाम् ।

शतैः शत-सहस्रैश्च, कोटिभिश्च सहस्रशः
वानराणां सु-घोराणां, श्रीमान्, परिवृतो, ययौ ।

सा स्म याति दिवा-रात्रं महती हरि-वाहिनी,
हृष्टा प्र-मुदिता सर्वा, सुग्रीवेणाभिपालिता ।

जवेन त्वरितं याता सर्वा, युद्धाभिकाङ्क्षिणी,
सा, मुमोचयिषुः सीतां, मुहूर्तं क्वापि नासत ।

सा, महार्णवमासाद्य, हृष्टा वानर-वाहिनी ।
वायु-वेग-समुद्धूतं प्रेक्षमाणा महार्णवम्—
दूर-पारम-सम्बाधं, यादो-गण-निषेवितम्,
पश्यन्तो वरुणावासं, निषेदुर् हरि-यूथ-पाः,— ७
चण्ड-नक्र-ग्राह-घोरं, चरन्तं दिवस-क्षये,
चन्द्रोदय-समुद्धूतं, प्रतिचन्द्र-समाकुलम्,

१। चमूः—सेना। २। उद्धतम्—उत्क्षिप्तम्। भौमं लोकम्—पृथिवीम्। सवितुः—जगत्-प्रसवितुः, सूर्यस्य। ३। श्रीमान्—'रामः' इति शेषः। ४। हरि-वाहिनी—वानर सेना। अभिपालिता—रक्षिता। ५। जवः—वेगः। आसत—आस, उपाविशत्, व्यश्राम्यत्। अवाप्तम मार्गः। ६। समुद्धूतम्—उत्क्षिप्तम्। ७। अ-सम्बाधम्—मध्ये प्रेक्षास्थान्तर-रहितम्। यादो-गणः—जल-जन्तु-समूहः। वरुणावासः—समुद्रः। ८। चण्ड-नक्र-ग्राह-

चण्ड-वेगं, महावर्तम्, अन्तः पङ्क्ति-विहारिभिः
दीप्त-भोगैः समाकीर्णं भुजङ्गैर्, भुजगालयम्, ८
अवगाढं महा-सत्त्वैर्, नाना-ग्रह-समाकुलम्,
दुर्गं दुर्गम-मार्गं तमगाधमसुरालयम्, १०
अग्नि-चूर्णमिवाविद्धं भास्वराम्बु-महोरगम्,
सुरारि-विषयं घोरं, पाताल-विषयं सदा। ११
मकरैर्, नाग-भोगैश्च विगाढा, वात-क्षोडिताः,
उत्पेतुश्च निपेतुश्च प्र-हृष्टा जल-राशयः। १२
सागरं चाम्बर-प्रख्यमम्बरं सागरोपमम्,—
अम्बरं सागरं चोभौ निर्-विशेषमपश्यत। १३

घोरम्—चण्डैः (भयङ्करैः) नक्रैः (कुम्भीरैः) ग्राहैः (हाङ्गरैः) च घोरम् (भयावहम्)। 'चण्ड-नक्र-ग्रहं घोरं' इति गौरेसियोः पठति। चरन्तम्—सञ्चलन्तम्। दिवस-क्षये—प्रदोषे, सायं काले। प्रतिचन्द्र-समाकुलम्—[ऊर्मि-स्थैः] प्रति-चन्द्रैः (कृत्रिम-चन्द्रैः) समाकुलम् (व्याप्तम्)। ८। पङ्क्ति-विहारिभिः—पङ्क्त्या (श्रेणी बद्धः सन्) विहर्तुं (विचरितुं) शीलं येषां तैः। दीप्त-भोगैः—उज्ज्वल शरीरैः। भुजगालयम्—सर्पावासं [पातालमिव]। १०। अवगाढम्—अवगाहितम्, अन्तः-प्रविष्टम्। ग्रहाः—ग्राहकाः, हिंस्र-जन्तवः। दुर्गम-मार्गम्—दुष्प्राप-पथम्, दुष्प्राप पर-पार-प्राप्त्युपायम्। ११। अग्नि-चूर्णम्—'विस्फुलिङ्ग-रूपम्' इत्यर्थः। 'अग्नि-पूर्णम्' इति गौरेसियोः पठति। आविद्धम्—निक्षिप्तम्। भास्वराम्बु-महोरगम्—भास्वराः (फण मणिभिः भासमानाः) अम्बु-महोरगाः (महान्तो जल-सर्पाः) यस्मिन् तम्। सुरारि-विषयम्—दैत्य-राज्यम्। पाताल-विषयम्—पाताल गोचरम्। १२। नाग भोगैः—सर्प-शरीरैः। विगाढा—अवगाहिता। क्षोडिताः—चालिताः। जल-राशयः—'ऊर्मि-रूपाः' इति शेषः। १३। सागरम्—कौषत्वम् आर्षम्। अम्बर-प्रख्यम्—[वैपुल्येन च-नलत्वेन च] आकाश-तुल्यम्। निर्-विशेषम्—परस्परातिरिक्त-सादृश्य-रहितम्। अपश्यत—अदृश्यत। दर्शनार्थ-पश् धातोः कर्मणि लङ्-तः। धातुरयम् अ-सार्व-प्रत्ययिकः। 'उभौ' इति पदे वर्तमानेऽपि अम्बरं सागरं चेत्यनयोः अपश्यतेति क्रियया

सम्पृक्तं नभसा ह्यम्भः, सम्पृक्तं च नभोऽम्भसा,
तादृग्-रूपे स्म दृश्येते तारा-रत्न-समाकुले । १४

समुत्पतित-मेघस्य वीचि-मालाकुलस्य च,
विशेषो न द्वयोरासीत् सागरस्याम्बरस्य च । १५

अन्योन्यैराहताः सक्ताः, सस्वनुर् भीम-निस्वनाः
ऊर्मयः सिन्धु-राजस्य, महा-भेर्य इवाहताः । १६

रत्नौघं जल-सन्नादैर् वियुक्तमिव वायुना
उत्पतन्तमिव क्रुद्धं, यादो-गण-समाकुलम्, १७

अपश्यं स्ते महात्मानं वाताहत-जलाशयम्,—
अनिलोद्धूतमाकाशे, प्रवल्गन्तमिवोर्मिभिः,
भ्रान्तोर्मि-जल-सन्नादं, प्रलोलमिव, सागरम् । १८

सा तु नीलेन विधिवत्, स्ववेशा, सु-समाहिता,
सागरस्योत्तरे तीरे सेना साधु निवेशिता । १९

पृथक्क्रमान्वयः। उभौ—सागर-शब्दस्यापि क्लीवत्वेन उभ शब्दस्य पुंस्त्वम विहितं प्रतीयते। अम्बरं सागरं चोभौ—'सागरस्याम्बरस्येति' इति प्रतीच्यामवाच्यां च पाठः। उपमेयोपमालङ्कारः। तल्लक्षणं यथा साहित्य-दर्पणे—'उपमानोपमेयत्वमेकस्यैव त्वनन्वयः, पर्यायेण द्वयोरेतदुपमेयोपमा मता।' १४। सम्पृक्तम्—संसृष्टम्, तुल्यम् इत्यर्थः। तादृग् रूपे—परस्पर-सदृश-रूपे। तारा-रत्न-समाकुले—नभस् पक्षे, मुक्ता-पक्षेय समाकुले। १५। 'समुत्पतित-मेघस्य अम्बरस्य वीचि-मालाकुलस्य सागरस्य च—द्वयोर् विशेषो न आसीत्', इत्यन्वयः। १७। 'वायुना वियुक्तं रत्नौघम् (रत्न-प्रवाहम्) इव उत्पतन्तम् जल-सन्नादैः क्रुद्धमिव' इत्यन्वयः। १८। वाताहत-जलाशयम्—वात्या-ताड़ितं वारि निधिम्। प्रवल्गन्तम्—प्लवमानम्, उल्लम्फन्तम्। 'प्रलपन्तम्' इति प्रतीच्यां पाठः। भ्रान्तोर्मि-जल-सन्नादम्—भ्रान्तानां (घूर्णताम्) ऊर्मीणां जलस्य सन्नादः (महान् नादः) यत्र तम्। प्रलोलमिव—प्र-चलमिव खिन्नम्। १९। स्ववेशा—सु (सु-क्लृप्ता) अवेशा (रचना) यस्याः सा। सु-समाहिता—सम्यक् रचिता।

षष्ठः सर्गः।

मन्त्रि-सभा।

लङ्कायां तत् कृतं कर्म दृष्ट्वा घोरं भयावहम्,
राक्षसेन्द्रो, हनूमता, शक्रेणेव, महात्मना, १

अमात्यानब्रवीत्, सर्वान्, राक्षसान्, स-विभीषणान्,
रोष-संरक्त-नयनः, कोपात् किञ्चिदवाङ्-मुखः,— २

"आगतश्च प्रविष्टश्च हनूमान् नगरीमिमाम्;
दृष्टा तेन च वैदेही, प्रविश्यान्तः-पुरं मम। ३

प्रासाद-शिखरं भग्नं, प्र-वरा राक्षसा हताः,
आकुला च पुरी लङ्का सर्वा हनूमता कृता। ४

किं करिष्यामहे तत्र? किं वा युक्तमनन्तरम्?
उच्यतां, यत् समर्थं नः। किमत्र सु-कृतं भवेत्? ५

मन्त्र-मूलं हि वि-जयं प्राहुरार्या मनस्विनः।
तस्माद् वो रोच्यतां मन्त्रो रामं प्रति, महा-बलाः। ६

मन्त्रिभिर् हित-सं-युक्तैः, समर्थैर् मन्त्र-निश्चये,
मित्रैर् वापि समानार्थैर्, बान्धवैर् वा हिते रतैः ७

सह सं-मन्त्र्य यो मन्त्रं कर्मारम्भं प्रवर्तयेत्,
दैवे वा कुरुते यत्नं, तमाहुः पुरुषोत्तमम्। ८

एकोऽर्थं विमृशत्येको, धर्मस्य कुरुते मतिम्,
एकः कार्याणि कुरुते, तमाहुर् मध्यमं नरम्। ९

५। युक्तम्—योग्यानुष्ठानम्। समर्थम्—उपयुक्तम्, प्रशस्तम्, अभीष्टम् इत्यर्थः। सु-कृतम्—सम्यगनुष्ठितम्, श्लाघनीयम्। ६। मनस्विनः—बुधाः। ८। दैवे—दैव सहाये। वा—च। ९। विचारोऽस्य गुणः, इतर-निरपेक्षता दोषः।

गुण-दोषमचिन्त्यैव त्यक्तं, दैव-व्यपाश्रयः,
करिष्यामीति यः कार्यं कुरुते स नराधमः। १०

ऐकमत्यमुपागम्य शास्त्र-दृष्टेन वर्त्मना
मन्त्रिणो यत्र निरतास्तमाहुर् मन्त्रमुत्तमम्। ११

बह्वीरपि मतीर् दत्त्वा मन्त्रिणां मन्त्र-निर्णये,
पुनर् यत्रैकतां याति, स मन्त्रो मध्यमः स्मृतः। १२

गर्हितान्योन्य-मतयो मन्त्रिणो ब्रुवते सदा,
न चैकमत्य-शेषोऽस्ति मन्त्रः—सोऽधम उच्यते। १३

तस्मात्, सु-मन्त्रितं, साधु, भवन्तो मन्त्रि-सत्तमाः
कार्यं सं-प्रतिपद्यन्तां। तद् वै कार्यतमं मतम्। १४

"वानराणां हि वीराणां सहस्रैः परिवारितः,
तरिष्यति परिव्यक्तं राघवः सागरं सुखम्। १५

तरसा महता युक्तः, स-बलः, स-पदानुगः,
करिष्यत्याकुलां लङ्कां व्यक्तं रामो, न संशयः। १६

१०। गुण-दोषम्—युक्तायुक्तत्व-हिताहितत्वादिकम्। समाहारे द्वन्द्वैक-वचनम्। दैव-व्यपाश्रयः—दैवम् व्यपाश्रयः (आश्रयः) यस्य सः। ११। शास्त्र-दृष्टेन—नीति शास्त्र-(Science of Politics)-प्रतिपादितेन। निरताः—प्रतिष्ठिताः। १२। बह्वीः मतीः—बहु-विकल्प-मतित्वम् इत्यर्थः। दत्त्वा—प्रकटय्य (प्रकाश्य) इत्यर्थः। एकताम्—ऐकमत्यम्। १३। ऐकमत्य-शेषः—ऐकमत्यम् शेषः (फलम्) यस्य सः। 'ऐकमत्यः शेषः' इति गोरेसियोः पठति। १४। तस्मात्—यत् कार्यं सु-मन्त्रितं भवति तदेव साधु भवति, तस्मात्। सत्तमाः—श्रेष्ठाः। 'सु मन्त्रितं साधु कार्यम्' इत्यन्वयः। सं-प्रतिपद्यन्ताम्—ऐकमत्येन निश्चिन्वन्तु। कार्यतमम्—कर्तव्यतमम्। १५। परिव्यक्तम्—प्रकाशम्। १६। तरसा—बलेन, तपो-बलं शारीर-बलं दिव्यास्त्र-रूप-बलञ्चेति बल-त्रयेन। स-बलः—[वानर-] सेना-सहितः। स-पदानुगः—सुग्रीवादि-सहितः।

तस्मिन्नेवं-विधे, कार्ये विरुद्धे, मम, राक्षसाः,
हितं पुरे च सैन्ये च सर्वं सं-मन्त्र्यतामिह।" १७

सप्तमः सर्गः।

समरोत्साहः।

ततो नीलाम्बुद-निभः प्रहस्तो नाम राक्षसः
अब्रवीत्, प्राञ्जलिर्, वाक्यं, शूरः, सेना-पतिस्तथा,—१
"देव-दानव-गन्धर्वाः पिशाच-पतगोरगाः
न त्वां धर्षयितुं शक्ताः—किं पुनर् वानरा ?—रणे। २
सर्वे प्र-मत्ता विश्वस्ता वञ्चिताः स्म हनूमता ;
न हि नो जीवतां गच्छेज् जीवन् स वन-गोचरः। ३
सर्वां सागर-पर्यन्तां स-शैल-वन-काननाम्
कुर्मो निर्-वानरामुर्वीम्—आज्ञापयतु नो भवान्। ४
रक्षां प्रति विधास्यामश्चारं च, जयतां वर ;
नागमिष्यति नो दुःखं किञ्चिदात्मापराध-जम्।" ५
अब्रवीद् वज्र-दंष्ट्रस्तु राक्षसो राक्षसेश्वरम्,
प्रगृह्य परिघं, घोरं मांस-शोणित-रूषितम्,— ६

१७। तस्मिन्—एकस्मिन् वानरे हनुमति। एवं-विधे—एवं-विध-व्यापारे सति। विरुद्धे कार्ये—[इदानीं महत्या वानर-सेनया सह रामेण करिष्यमाणे] विरुद्धे कर्मणि। वैषयिकाधारत्वात् विषयाधिकरणम्। हितम्—यत् हितम् तत्।

३। प्र-मत्ताः—भोगादि पर-वशाः। विश्वस्ताः—[शत्रु-धर्षणासम्भव-बुद्ध्या] निः-शङ्कतया स्थिताः। नो जीवताम्—जीवतो नः (अस्मान्) अनादृत्य, अस्मासु जीवत्सु इत्यर्थः। 'षष्ठी चार्थे' इति रामानुजः। ५। चारः—प्रणिधिः, अपसर्पः, गूढ़-पुरुषः, a scout, a spy. ६। परिघः—परिघातनः, a bludgeon. रूषितम्—दूषितम्।

"किं नो हनूमता कार्यं, कृपणेन, निशा-चराः,
रामे तिष्ठति दुर्धर्षे, सुग्रीवे च स-लक्ष्मणे ? ७

अद्य रामं निहत्याहं, सह-सुग्रीव-लक्ष्मणम्,
परिघेण, परान् हन्मि, विक्षोभ्य हरि-वाहिनीम् ।" ८

अब्रवीत् तु सु-संक्रुद्धस्त्रि-शिरा नाम राक्षसः,—
"इदं न क्षमणीयं नः—सर्वेषां वै प्र-धर्षणम् । ९

अयं परिभवो घोरो—वानरेण विशेषतः—
श्रीमतो राक्षसेन्द्रस्य पुरस्यान्तः-पुरस्य च । १०

अस्मिन् मुहूर्ते हत्वाहं, निवर्तिष्यामि, वानरान् ;
न ह्यहं धर्षणां घोरां मर्षयिष्यामि भर्तरि ।" ११

ततो यज्ञ-हनो नाम राक्षसः, पर्वतोपमः,
क्रुद्धः, परिलिहन् वक्त्रं जिह्वया, वाक्यमब्रवीत्,— १२

"मोदन्तां राक्षसाः सर्वे, प्रियाभिः सह सङ्गताः ;
एकोऽहं भक्षयिष्यामि सर्वांस्तान् हरि-यूथ-पान् । १३

कामयस्व यथा-कामं, राक्षसेन्द्र, तव प्रियाम् ;
अहं रामं हनिष्यामि, स-सहायं, रणाजिरे ।" १४

सुतोऽथ कुम्भकर्णस्य, कुम्भः, परम-कोपनः,
अब्रवीत्, परम-क्रुद्धो, रावणं, लोक-रावणम्,— १५

"तिष्ठन्त्विमे, महा-राज, सचिवाः सङ्गतास्तव,
सुस्थाः क्रीडन्तु, निश्चिन्ताः पिबन्तु वर-वारुणीम् । १६

७ । कृपणेन—दीनेन (च लघुत्वात्) । ८ । परः—शत्रुः । ९ । प्र धर्षणम्—परिभवः । ११ । निवर्तिष्यामि—निवर्तस्यामि । इडागम आर्षः । पा. ७।२।५९ । १४ । रणाजिरे—युद्ध-क्षेत्रे । अजिरम्—अङ्गनम् । १६ । सङ्गताः—मिलिताः । वर-वारुणीम्—

अहमेको हनिष्यामि सुग्रीवं, सह-लक्ष्मणम्,
अङ्गदं स-हनूमन्तं, रामं शत्रु-निवर्हणम्।" १७

परिघान् पट्टिशान् प्रासान् शक्ति-शूलासि-मुद्गरान्,
चापानि निशितान् बाणान् गदाश्च कनकाङ्गदाः १८

प्र-गृह्य, परम-क्रुद्धाः, समुत्पत्य च, राक्षसाः
अब्रुवन् रावणं, सर्वे, प्रदीप्ता इव तेजसा,— १९

"अद्य रामं हनिष्यामः, स-सुग्रीवं, स-लक्ष्मणम्,
कृपणं च हनूमन्तं लङ्का येन प्र-धर्षिता।" २०

अष्टमः सर्गः।

सभ्युपदेशः।

तान् गृहीतायुधान् सर्वान् वारयित्वा, विभीषणः
अब्रवीत्, प्राञ्जलिर्, वाक्यं, पुनः प्रत्युपवेश्य तान्,—१

"प्रमत्तेष्वभियुक्तेषु दैवेनोपहतेषु च
विक्रमास्, तात, सिध्यन्ति, परीक्ष्य विधिवत् कृताः।२

अ-प्र-मत्तं कथं रामं, वि-जिगीषुं, रणे स्थितम्,
जात-कोपं, दुराधर्षं, प्र-धर्षयितुमिच्छसि? ३

श्रेष्ठ-सुराम्। १७। निवर्हणम्—उच्छेदकम, वि-नाशकम्। १८। पट्टिशान्—परशून्, battle-axes. शक्तिः, शक्ती—कासूः, an iron spear. शूलः—अयः-कीलः, a trident or a pike. असिः—खड्गः, a scimitar. मुद्गरः—द्रुघनः, घनः, a mallet. चापानि—धनूंषि, bows. गदाः—मुद्गरा लौहमयाः। कनकाङ्गदाः—कनकमयानि अङ्गदानि (केयूराणि, वेष्टनानि इत्यर्थः) यासां ताः।

१। प्रत्युपवेश्य—आसनेषु स्थापयित्वा। प्राञ्जलिः—[रावणं प्रति] प्राञ्जलिर् [भूत्वा]। २। प्र-मत्तेषु—अ-सावधानेषु। अभियुक्तेषु—अन्यनृपाक्रान्तेषु। दैवेनोपहतेषु—महा-रोगाद्याक्रान्तेषु। विधिवत्—नीति-शास्त्रोक्तेन विधिना। ३। वि-जिगीषुम्—

समुद्रं लङ्घयित्वा हि घोरं नद-नदी-पतिम्,
गतिं हनूमतो लोके कश्चिल्लयितुमर्हति ? ४

बलान्यपरिमेयानि वीर्याणि च, निशा-चराः,
परेषां—सहसावज्ञा न कर्तव्या कथञ्चन । ५

किं च राक्षस-राजस्य रामेणापकृतं पुरा,
आजहार जनस्थानाद् भार्यां यस्य महात्मनः ? ६

खरो यद्यति-वृत्तस्तु रामेण निहतो रणे,—
अवश्यं प्राणिभिः प्राणा रक्षितव्या यथा-बलम् । ७

राज-पुत्री-निमित्तं तु महद् भयमुपागतम् ;
तस्मात् सीता परित्याज्या कुलार्थे, नात्र संशयः । ८

कुलं राक्षस-राज्यं च लङ्कां चेमां स-राक्षसाम्,
ऐश्वर्यं चैव दुष्प्राप्यं मत्वा सीता प्र-दीयताम् । ९

न ते क्षमं वीर्यवता तेन धर्मानुवर्तिना,
वैरं निरर्थकं कर्तुं—दीयतां तस्य मैथिली । १०

यावन् नाश्व-गजाकीर्णां, बहु-रत्न-समाकुलाम्,
पुरीं दारयते, तावन् मैथिली तस्य दीयताम् । ११

यावल् लक्ष्मण-बाणौघैर् भिन्न-प्राकार-तोरणा
न भस्मी-क्रियते लङ्का, तावत् सीता प्र-दीयताम् । १२

विजेतुमिच्छुम्, अतएव भयकार-रहितम्। दुराधर्षम्—पराभवितुम् अ-शक्यम्, अत एव दिव्यास्त्रादि दैव-सम्पद्-युक्तम्। ६। किम् अपकृतम्?—कोऽपकारः कृतः? न कोऽपि इत्यर्थः। ७। अति-वृत्तः—स स्थानमति-क्रम्य तद्देशं गत्वा तत्-पाकार्थे प्रवृत्तः [सन्]। ११। दारयते—भिनत्ति। 'रामः' इति शेषः।

यावत् सु-घोरा महती दुर्धर्षा हरि-वाहिनी
नावस्कन्दति नो लङ्कां, तावत् सीता प्र-दीयताम्। १३

विनश्येत पुरी लङ्का, शूराः सर्वे च राक्षसाः,
रामस्य यदि पत्नी सा न स्वयं प्रतिदीयते। १४

प्रसादये त्वां बन्धुत्वात्, कुरुष्व वचनं मम;
ब्रवीम्यहं हितं—पथ्यं—दीयतां तस्य जानकी।" १५

नवमः सर्गः।

भ्रातृ-भेदः।

अथ, रोषाद् वि-निष्पिष्य भृशं कर-तले करम्,
अब्रवीद् रावणः क्रोधाद् विभीषणमिदं वचः,— १

"प्रकृतिः शाश्वती चैषां भीरूणामल्प-चेतसाम्
युद्ध-काले भवत्येव, त्वद्-विधानां, दुरात्मनाम्। २

को हि नाम, महा-सत्त्वः, पूर्वमाधर्षितः परैः,
दीनं वचनमादद्याद्, वर्जयित्वा विभीषणम्?" ३

ततः सागर-गम्भीरः सत्त्ववान् विजितेन्द्रियः,
अब्रवीद् रावणं, धीमान्, पुनरेव, विभीषणः,— ४

"एतदेव वि-नाशस्य लक्षणं ब्रुवते बुधाः—
धर्मिष्ठ-वाक्यमुत्-सृज्य का-पथेन प्रवर्तनम्।" ५

एवं ब्रुवाणे, राजेन्द्रो, भ्रातरि तु विभीषणे,
उत्पपात स-निस्त्रिंशस्ततः क्रोधात् स रावणः, ६

१३। अवस्कन्दति—अवरुणद्धि। १४। विनश्येत—विनश्येत्। आत्मने-पदमार्षम्।
१५। बन्धुत्वात्—अ-त्याग सहमन्वात्, भ्रातृत्वात् इत्यर्थः।
६। निस्त्रिंशः (निर्गतः त्रिंशतोऽङ्गुलिभ्यः इति)—त्रिंशदधिकाङ्गुलि-परिमितं

महा-विद्युद्-गुण: कृष्ण: स-नाद इव तोय-द: ;
आसनात् तूर्णमुत्पत्य पदा चाभि-जघान तम् । ७

अभवत् पतितो भूमावासनात् स विभीषण:,
वज्र-पात-हत: श्रीमान् विशीर्ण इव पर्वत: । ८

अभवन् मन्त्रिणां तेषां, विवादमनु-पश्यताम्,
पूर्ण-चन्द्रे ग्रह-ग्रस्ते प्रजानामिव, सम्भ्रम: । ९

प्रहस्त: सासि-हस्तं तं कुपितं राक्षसेश्वरम्
शनैर् निवारयामास, कोषे चाप्यकरोदसिम् । १०

अथ कोपाग्निमुद्भूतं शमयन्, स विभीषण:
चिन्तयामास, धर्मात्मा, मनसा हितमात्मन:— ११

मार्दवेन च सम्पन्नस्तेजसा चैव रञ्जित:,
सदश्व इव, मर्यादां कौलीनां नात्यवर्तत । १२

स मुहूर्तं विनिश्चित्य, मुहु: कृत्वा च निश्चयम्,
अब्रवीद् वाक्यमुत्थाय धर्म-युक्तं विभीषण:,— १३

"मम धर्मार्थमुत्थानं, न काम-क्रोध-संश्रितम् ;
तस्मात् पाद-प्रहारोऽपि नायं मम पराभव: । १४

उपस्थित-विनाशं त्वामात्म-वंश-विनाशनम्,
क्रोधाद् यास्यामि, हित्वाद्य, जलौघ इव सागरम् ।" १५

विभीषण-वच: श्रुत्वा, रावण:, क्रोध-मूर्च्छित:,
अब्रवीत् परुषं वाक्यं भ्रातरं, काल-चोदित:,— १६

जलम्, खड्ग: । ९ । सम्भ्रम:—भयम्, भय-जनित आवेग: । १२ । कौलीनाम्—सद्-वंशोचिताम् । १४ । पराभव:—पराजय: ।

"वसेत् सह स-पत्नेन, क्रुद्धेनाशी-विषेण च,
न तु मिथ्या-प्रतिज्ञेन सं-वसेच् छत्रु-सेविना। १७

जानामि शीलं ज्ञातीनां सर्व-कार्येषु, राक्षस,—
हृष्यन्ति व्यसनेष्वेते ज्ञातीनां ज्ञातयः सदा। १८

प्रधानं साधनं वैद्यं धर्मज्ञं सज्जने रतम्
ज्ञातयो ह्यवमन्यन्ते, शूरं परिभवन्ति च। १९

नित्यमन्योन्य-संहृष्टा व्यसनेष्वाततायिनः,
प्रच्छन्न-हृदया घोरा ज्ञातयो नो, भयावहाः। २०

श्रूयन्ते हस्तिभिर् गीताः श्लोकाः पद्म-वने क्वचित्,
पाश-हस्तान् नरान् दृष्ट्वा। तान् शृणु त्वं, विभीषण,—२१

'नाग्निर् नान्यानि शस्त्राणि न नः पाशा भयावहाः—
घोराः स्वार्थ-प्रयुक्तास्तु ज्ञातयो नो भयावहाः। २२

उपायं ते प्रवक्ष्यन्ति ग्रहणे नो, न संशयः;
सर्वैर् भयैर् ज्ञाति-भयं सदा कष्टतमं मतम्। २३

सम्भाव्यं गोषु सम्पन्नं, सम्भाव्यं ब्राह्मणे तपः,
चापल्यं स्त्रीषु सम्भाव्यं, सम्भाव्यं ज्ञातितो भयम्।' २४

१७। शत्रु-सेविना—शत्रु-पक्ष-पातिना। १८। शीलम्—स्व-भावः। १९। प्रधानम्—[श्रेष्ठत्वादिना] प्राप्त-राज्यम्। साधनम्—[राज्य-रक्षादेः] उपायम्। वैद्यम्—विद्यावन्तम्, पण्डितम्। अवमन्यन्ते—गुणवन्तमपि न गुणवन्तं मन्यन्ते। परिभवन्ति—[रन्ध्रमन्विष्य] अवजानन्ति। २०। अन्योन्य-संहृष्टा व्यसनेषु—एकेषां व्यसनेषु (विपत्सु) अन्ये संहृष्टाः। आततायिनः—आततायि-रूपाः। २२। स्वार्थ-प्रयुक्ताः—स्वार्थं प्रणोदिताः। स्वार्थश्चात्र हस्ति-पक्षादिग्राह्य-करणेन उत्तम-भोजन-लाभादिः। २३। ते—अस्मज्-ज्ञातयः पूर्व-गृहीता गजाः। सर्वैर् भयैः—सर्वेषु भयेषु। तृतीया चार्षी। पा. २।३।४१। २४। सम्पन्नम्—हव्य-कव्य-साधन-सम्पत् घृत-दुग्धादिः।

न ते प्रियमिदं, पाप, यदहं लोक-सत्कृतः,
ऐश्वर्यमभियातश्च, रिपूणां मूर्ध्नि च स्थितः ।" २५

उक्त-वाक्ये दशग्रीवे, जात-कोपो विभीषणः,
मन्त्रि-मध्ये स्थितः, श्रीमानिदं वचनमब्रवीत्,— २६

"अन्यस्तु यदि मामेवं ब्रूयाद् वाक्यं निशा-चरः,
सोऽस्मिन् मुहूर्ते न भवेत्; त्वां तु धिक् कुल-पांसनम्!" २७

इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं, न्याय-वादी विभीषणः
उत्पपात, स-निस्त्रिंशश्चतुर्भिः सचिवैः सह । २८

अब्रवीच्च ततो भूयो जात-कोपो विभीषणः,
अन्तरीक्ष-गतः, श्रीमान्, भ्रातरं राक्षसेश्वरम्,— २९

"सु-लभाः पुरुषा, राजन्, सततं प्रिय-वादिनः;
अ-प्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः । ३०

यो हि, धर्ममुपाश्रित्य, हित्वा भर्तुः प्रियाप्रियम्,
अ-प्रियाण्याह पथ्यानि, तेन राजा सहायवान् । ३१

स त्वं भ्रातासि मे, राजन्,—ब्रूहि त्वं यद् यदिच्छसि;
सर्वं तत् परुषं वाक्यं क्षमिष्यामि मुमूर्षतः । ३२

राममेव गमिष्यामि शरणं, राक्षसेश्वर—
न त्वामिच्छाम्यहं द्रष्टुं रामेण निहतं रणे । ३३

आत्मानं परिरक्षस्व, पुरीं चेमां स-राक्षसाम् ।
स्वस्ति तेऽस्तु—गमिष्यामि; सुखी भव मया विना ।" ३४

---

२७ । न भवेत्—न जीवेत् । कुल-पांसनम्—कुल-दूषकम् । 'कुल-पांसनम्' इति गौरेशियाः पठन्ति । ३० । पथ्यस्य—हितस्य । ३१ । आह—ब्रवीति ।

दशमः सर्गः ।

सेतु-बन्धनम् ।

अथ दाशरथी रामो, हृष्टात्मा, वाक्यमब्रवीत्
हनूमन्तं च विक्रान्तमङ्गदं च महा-बलम्, १
सुहृदं वानर-श्रेष्ठं, आत्मवन्तं च विस्मितम्,—
"यदत्राशु-विधातव्यं तत् सर्वं सं-विधीयताम्" । २

एतच् छ्रुत्वा ततो वाक्यं, सुग्रीवो वानरेश्वरः
वरन् वानर-सैन्यानि प्रेषयामास सर्वतः । ३
"पर्वतांश्च द्रुमांश्चैव लता-गुल्मांस्तथैव च,
सर्वमानयत क्षिप्रं ; न विलम्बितुमर्हथ"— ४
इत्युक्तास्ते तु हरयः सुग्रीवेण, त्वरान्विताः;
अभिपेतुस्तदारण्यं, हृष्टाः, शत-सहस्रशः । ५
ततः शाखा-मृगा वृक्षान्, पुष्पितान्, विहगायुतान्,
स-मूलांस्तूर्णमुत्पाट्य चिक्षिपुर् लवणाम्भसि । ६
गुल्मैः शलभ-सन्तानैस्तथा वेत्र-लता-चयैः
सेतुं बबन्धुः कीर्णेषु वृक्षेषु च महा-बलाः । ७
अन्ये, तु, सकृदादाय गिरीणां शिखराणि च
सागरस्य जले, चक्रुः सेतुं, शत-सहस्रशः । ८
बलिभिर् वेगिभिर् वेगात् कपिभिस्तीर-जा द्रुमाः
कम्पिताः पातिताश्चैव समुद्रे, सरितां पतौ । ९

७। गुल्मैः—एक मूलैः लता-गुच्छैः। शलभ सन्तानैः—पतङ्ग-श्रेणी समूह-समावृतैः। cf. 'मेताभ्यां कृष्ण-साराभ्याम्' (५।३।२८, प. २५१)। कीर्णेषु—विक्षिप्तेषु। ९। सरितां

शिलानां क्षिप्यमाणानां शिखराणां च, भिद्यताम्,
बभूव तुमुलः शब्दस्तदा तस्मिन् महार्णवे। १०

उत्क्षिप्त-भूतः क्षुभितो विघूर्णित इवोदधिः
कुर्वद्भिस्त्वरितं सेतुं वानरैस्तैः सहस्रशः। ११

गिरीणां भिद्यमानानां वानरैः सेतु-कर्मणि
भुवि दिव्यन्तरीक्षे च शुश्रुवे निनदो महान्। १२

तेन वित्रासिताः सर्वे मृग-पक्षि-गणा वने,
अशक्नुवन्तः पतितुं, शिखरेषु व्यशेरत। १३

ततो देवाः स-गन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः
आहृत्य गगनं तस्थुर् द्रष्टु-कामास्तदद्भुतम्। १४

सेतुः स्वल्पेन कालेन निष्ठां प्राप्तोऽभवत् तदा
कूले तूत्तर आरब्धो लङ्का-कूले प्रतिष्ठितः। १५

विशालः, सु-कृतः, श्रीमान्, सर्व-भूत-समाहितः,
अशोभत ततः सेतुः, सीमन्त इव, सागरे। १६

तानि कोटि-सहस्राणि वानराणां महात्मनाम्,
बन्धनादेव सेतोस्तु, जग्मुर् मासेन सागरम्। १७

इत्यार्षे श्री-लघु-रामायणे, वाल्मीकीये, त्रि-साहस्र्यां संहितायां,

सुन्दर-काण्डम्।

पतौ—सरित्-पतौ, समुद्रे। अ-समासेऽपि समासवद् रूपमार्षम्। पा. १।४।८

१०। भिद्यताम्—भिद्यमानानाम्। कर्मणि परस्मै-पदमार्षम्। १६। सर्व-भूत-समाहितः—सर्वेभ्यः भूतेभ्यः (प्राणिभ्यः) समाहितः (सम्पादितः), सर्व-प्राणि-गमन-निमित्तं विनिर्मितः इत्यर्थः। १७। जग्मुः—उत्तेरुः।

इति मणि-किरणं नाम लघु-रामायण-वृत्ती सुन्दर-काण्डम्।

अथ

श्री-लघु-रामायणम्

युद्ध-काण्डम्।

प्रथमः सर्गः।

अवरोधः।

तौ त्व-दीर्घेण कालेन भ्रातरौ राम-लक्ष्मणौ
रावणस्य पुरीं लङ्कामापेदतुररिन्दमौ। १

तां, सुरैरपि दुर्धर्षां, दृष्ट्वा, राम-प्रचोदिताः,
यथा-निवेशं, सम्पाद्य, न्यविशन्त वनौकसः। २

लङ्कायास्तूत्तरं द्वारं, मेरोः शृङ्गमिवोच्छ्रितम्,
रामः, सहानुजो, धन्वी, रुरोध च जुगोप च। ३

पूर्व-द्वारमथोऽरक्षन् नीलो, हरि-चमू-पतिः;
अङ्गदो दक्षिण-द्वारमरक्षत्, प्लवगेश्वरः। ४

हनूमान् पश्चिमं द्वारं ररक्ष, बलवान् कपिः;
मध्यमे तु स्वयं गुल्मे सुग्रीवः समतिष्ठत। ५

२। यथा-निवेशम्—निर्दिष्टेषु निवेशेषु (शिबिरेषु)। सम्पाद्य—साधयित्वा। 'निविशन्' इति शेषः। वनौकसः—वन-वासिनः, वानराः इत्यर्थः। ३। जुगोप—ररक्ष। ५। गुल्मे—सेना-सन्निवेशे। समतिष्ठत—अवातिष्ठत। 'समव-प्र-विभ्यः स्थः [आत्मने-पदम्]'—पा. १।३।२२।

आसनेन तु रामस्य, सुग्रीवः, स-विभीषणः,
द्वारि द्वारि प्लवङ्गानां कोटिं कोटिं न्यवेशयत् । ६

ततस्ते राक्षसास्तत्र, गत्वा रावण-मन्दिरम्,
न्यवेदयन् पुरीं रुद्धां रामेण, सह वानरैः । ७

संरुद्धां नगरीं श्रुत्वा, जात-क्रोधो, निशा-चरः,
विधानं द्वि-गुणं कृत्वा, प्रासादं समरोहत । ८

स ददर्श ततो लङ्कां, स-शैल-वन-काननाम्,
अ-सङ्ख्येयैर् हरि-वरैः संवृतां, युद्ध-काङ्क्षिभिः । ९

स, दृष्ट्वा वानरैः सर्वं काननं कपिली-कृतम्,
कथं क्षपयितव्याः स्युरिति चिन्ता-परोऽभवत् । १०

सु-चिरं चिन्तयित्वा तु, धैर्यमालम्ब्य, रावणः
राघवौ हरि-यूथांश्च ददर्शायत-लोचनः । ११

पश्यतो राक्षसेन्द्रस्य, तान्यनीकानि, भागशः,
राघव-प्रिय-कामानि लङ्कामारुरुहुस्तदा । १२

ते, ताम्र-वक्त्रा, हेमाभा, रामार्थे त्यक्त-जीविताः,
लङ्कामेवाभ्यधावन्त, साल-ताल-शिलायुधाः । १३

ते द्रुमैः पर्वताग्रैश्च मुष्टिभिश्च महा-बलाः
प्राकाराग्राण्य-शक्यानि ममन्थुस् तोरणानि च । १४

८। विधानम्—द्वाराणां रक्षा-विधानम्। समरोहत—समरोहत्, आरोहत्। आत्मने-पदमार्षम्। 'परिरक्षत' (५।८।१४, पृ. २००) इत्यत्रापि। १०। क्षपयितव्याः—क्षयं प्रापयितव्याः। 'चर्वयितव्याः' इति गोरेसियो: पठति। 'क्षपयितव्याः' इति प्रतीचामवाचां च पाठः। १२। पश्यतो राक्षसेन्द्रस्य—पश्यन्तं राक्षसेन्द्रमनादृत्य। अनादरे षष्ठी। अनीकानि—सैन्यानि। लङ्काम्—लङ्का प्राकारम् इत्यर्थः। १४। प्राकाराः—वप्राः, ramparts.

परिखाः पूरयन्तश्च प्रसन्न-सलिलोदकाः
पांशुभिः पर्वताग्रैश्च, समयुध्यन्त वानराः । १५

"जयत्यति-बलो रामो लक्ष्मणश्च महा-बलः,
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः"— १६

इत्येवं घोषयन्तश्च गर्जन्तश्च, प्लवङ्गमाः
अभ्यधावन्त लङ्कायाः प्राकारं, काम-रूपिणः । १७

सन्नद्धस्तु महा-बाहुर् गदा-पाणिर् विभीषणः,
आज्ञा-प्रतीक्षो, रामस्य तस्थौ पार्श्वे, स-किङ्करः । १८

द्वितीयः सर्गः ।

इन्द्रजितो निर्याणम् ।

ततः क्रोध-परीतात्मा, रावणो, राक्षसाधिपः,
निर्याणं सर्व-सैन्यानां द्रुतमाज्ञापयत् तदा । १

शूरास्ततो वि-निष्पेतुर्, हृष्टा, रावण-चोदिताः,
सर्व-द्वारैर्-विच्छिन्ना, वेगा इव महोदधेः । २

एतस्मिन्नन्तरे घोरः संग्रामः समपद्यत,
रक्षसां वानराणां च, यथा देवासुरस्तथा । ३

---

१५ । प्रसन्न-सलिलोदकाः—प्रसन्नं (निर्मलं) सलिलं (प्रवहमाणं) च उदकं (जलं) यासु ताः । १६ । जयति—जयतु इत्यर्थः, चिन्ताया अत्र इच्छा-निमित्तत्वात् । १८ । सन्नद्धः—वर्मितः, सज्जः ।

१ । क्रोध-परीतात्मा—क्रोध-व्याप्त-चित्तः, क्रुद्धः । २ । वेगाः—प्रवाहाः, स्रोतांसि । ३ । देवासुरः—देवासुराणां [संग्रामः] । विशेषणार्थे विशेष्य-प्रयोगः । 'देवासुरे' इति प्रतीच्यानां च पाठः । c. f. 'देवासुरे युद्धे' (२।९।११) ।

ते गदाभिः प्रदीप्ताभिः शूल-शक्ति-परश्वधैः
नि-जघ्नुर् वानरान्, घोराः, कथयन्तः स्वकान् गुणान् । ४

तथा वृक्षैर् महा-कायैः पर्वताग्रैश्च सर्वतः
नि-जघ्नुस्तानि रक्षांसि, नखैर् दन्तैश्च, वानराः । ५

राक्षसास्त्वपरे भीमाः, प्राकार-स्था, मही-गतान्
वानरान् भिन्दिपालैश्च शक्तिभिश्च व्यदारयन् । ६

वानराश्चापि, सं-क्रुद्धा, राक्षसांस्तान्, महा-बलाः,
प्राकारात् पातयामासुस्तरसाप्लुत्य, मुष्टिभिः । ७

स सम्प्रहारस्तुमुलो, मांस-शोणित-कर्दमः,
रक्षसां वानराणां च सम्बभूवाद्भुतोपमः । ८

युध्यतामेव तेषां तु तदा वानर-रक्षसाम्,
रविरस्तं गतो, रात्रिः प्रवृत्ता प्राण-हारिणी । ९

अन्योन्य-बद्ध-वैराणां शूराणां, जयमिच्छताम्,
सं-प्रवृत्तं निशा-युद्धं तदा परम-दारुणम् । १०

राक्षसोऽसीति हरयो वानरोऽसीति राक्षसाः
अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तस्मिंस्तमसि दारुणे । ११

४ । परश्वधः—परशुः, कुठारः, a battle-axe. ६ । भिन्दिपालः—सृगः, a short arrow thrown by the hand or shot through a tube. ७ । आप्लुत्य—उल्लम्फ्य । ८ । सम्प्रहारः—युद्धम् । मांस-शोणित-कर्दमः—मांस-शोणितमेव कर्दमो यत्र सः । अद्भुतोपमः—अद्भुतं (प्रकृति-विरुद्ध-घटना, a miracle) उपमा यस्य सः, अ-लौकिकः । ९ । युध्यतामेव···रक्षसाम्—युध्यमानान्येव···वानर-रक्षांसि अनादृत्य । अनादरे षष्ठी । परस्मै-पदमार्षम् ।

भिन्धि दारय देहीति कर्ष विद्रावयेति च—
इत्येवं तुमुलः शब्दस्तस्मिं स्तमसि शुश्रुवे। १२

कृष्णास्तिमिर-सञ्चायास्तस्मिं स्तमसि दारुणे
परिपेतुः, सु-संरब्धा, भक्षयन्तो निशा-चरान्। १३

तस्मिं स्तमसि दुष्पारे राक्षसाः क्रोध-मूर्च्छिताः
परिपेतुर्, महा-वीर्या, भक्षयन्तः प्लवङ्गमान्। १४

रामश्च लक्ष्मणश्चैव शरैरग्नि-शिखोपमैः,
आदिश्यादिश्य, रक्षांसि प्र-वराणि नि-जघ्नतुः। १५

ततो भेरी-मृदङ्गानां पटहानां च नि-स्वनः,
शङ्खानां वाहनानां च, सम्बभूवाति-दारुणः। १६

ततस्ते राक्षसाः सर्वे तस्मिं स्तमसि दारुणे
राममेवाभ्यवर्तन्त, प्र-हृष्टाः, शर-वृष्टिभिः। १७

वज्र-दंष्ट्रो महा-कायस्तौ चोभौ शुक-सारणौ—
एते रामेण निशितैर् बाणैर् मर्मसु ताड़िताः। १८

ये त्वन्ये राक्षसा वीरा रामस्याभिमुखे स्थिताः,
ते वि-नष्टाः, समासाद्य पतङ्गा इव पावकम्। १९

ततः, काञ्चन-चित्राङ्गैः शरैराशी-विषोपमैः,
तत् तमो रात्रि-जं रामः किञ्चित् समुदसारयत्। २०

इन्द्रजित् तु दिशः सर्वा रथेन विचरन्, बली,
विव्याध तौ दाशरथी, लघु-हस्तः, शितैः शरैः। २१

१३। सु-संरब्धाः— अति-क्रुद्धाः। १६। भेरी—दुन्दुभिः, a kettle-drum. मृदङ्गः—मुरजः, খোল, a tabour. पटहः—ढक्का, a double drum.

नास्य वेद गतिं कश्चिन्, न रूपं, न धनुः-स्वनम् ;
न चास्य लक्षणं किञ्चित्, सूर्यस्येवाभ्र-संप्लवे । २२

तेन विद्धाश्च हरयो नि-हताश्च, गतासवः,
राघवार्थे, पराक्रान्ता, धरण्यामुपशेरते ! २३

लक्ष्मणोऽथ, सु-संक्रुद्धः, क्रोधाद् भ्रातरमब्रवीत्,—
"ब्राह्ममस्त्रं प्रयोक्ष्यामि वधार्थं सर्व-रक्षसाम् ।" २४

तमुवाच ततो रामो लक्ष्मणं, शुभ-लक्षणम्,—
"एकस्य रक्षसो हेतोः पृथिव्यां सर्व-राक्षसान्— २५

अ-युध्यमानान्, प्रच्छन्नान्, प्राञ्जलीन् समुपस्थितान्,
पलायमानान्, मत्तांश्च—न त्वं तान् हन्तुमर्हसि । २६

तस्यैव तु वधे यत्नं करिष्यामि, नरर्षभ ;—
आदेक्ष्यावो महा-वेगान् काम-गान् हरि-यूथ-पान् ।" २७

बद्धौ तु शर-बन्धेन, भ्रातरौ, रण-मूर्धनि,
निमेषान्तरमात्रेण, न शेकतुरुदीक्षितुम् । २८

ततो निर्भिन्न-सर्वाङ्गौ, शर-शल्य-चितावुभौ,
ध्वजाविव महेन्द्रस्य रज्जु-युक्तावचेष्टताम् । २९

तौ तु, प्रज्वलितैर् बाणैरर्दितौ, मर्म-भेदिभिः,
निपेततुर् महेष्वासौ जगत्यां, जगती-पती । ३०

२२ । अभ्र-संप्लवे—मेघेषु निमज्जने, मेघाच्छादने । २३ । गतासवः—गत-प्राणाः, मृताः । २६ । समुपस्थितान्—उपासीनान्, स्तुवतः । २८ । शर-बन्धेन—शर-परिवेष्टन-मात्र-पाश-बन्धनेन । रण-मूर्धनि—[वानर-] सेना-मुखे । २९ । चितौ—आच्छादितौ । रज्जु-युक्तौ—रज्जु-बद्धौ, पाश-बद्धौ ।

न ह्य-विद्धं तयोर् गात्रे बभूवाङ्गुलमन्तरम्,
नानिर्भिन्नं न चाध्वस्तमपि सूक्ष्म-जिह्म-गैः। ३१
निहतो लक्ष्मणः शेते, दिव्यमादाय कार्मुकम्,
भिन्न-मुष्टि-परिध्वस्तं, त्रि-नतं, रुक्म-रञ्जितम्। ३२
बाण-पातान्तरे रामः, पतितं पुरुषर्षभम्
शयानं लक्ष्मणं दृष्ट्वा, निराशो जीवितेऽभवत्। ३३

तृतीयः सर्गः।

सीता-विलापः।

इन्द्रजित्, तु, महा-मायः, सर्व-सैन्य-समन्वितः,
प्र-विवेश पुरीं लङ्कां, जीमूतमिव भास्करः। १
तत्र रावणमासाद्य सोऽभिवाद्य, कृताञ्जलिः,
आचचक्षे प्रियं पित्रे,—'नि-हतौ राम-लक्ष्मणौ'। २
उत्पपात, ततो, हृष्टः, पुत्रं च परिषस्वजे
रावणो रक्षसां मध्ये, श्रुत्वा शत्रू निपातितौ ; ३
मूर्ध्नि चैनमुपाजिघ्रत् परितुष्टेन चेतसा।
ततः पुष्पकमारोप्य सीतां, त्रि-जटया सह, ४
घोषयामास, सं-हृष्टो, लङ्कायां राक्षसेश्वरः,—
रामश्च लक्ष्मणश्चैव हताविन्द्रजितेति ह। ५

३१। अ-विद्धम्—वेध रहितम्। अङ्गुलम्—अङ्गुल-प्रमाणम्। अ-निर्भिन्नम्—अ-विदीर्णम्। अ-ध्वस्तम्—अ-क्षोभितम्। अ-जिह्म-गैः—सरल-गामिभिः, बाणैः। ३२। भिन्न-मुष्टि-परिध्वस्तम्—मुष्टेः शिथिलत्वात् पतनोन्मुखम्। त्रि-नतम्—त्रिषु स्थानेषु नतम्। रुक्म-रञ्जितम्—स्वर्ण-चित्रितम्। ३३। बाण-पातान्तरे—शर क्षेप-मध्ये।

१। महा-मायः—महती माया (इन्द्रजालं कुहकम्) यस्य सः।

ततः सीता ददर्शोभौ, शयानौ शर-तल्पयोः,
रामं रामानुजं चैव, वि-संज्ञौ, शर-पीडितौ ।

विललाप भृशं सीता, करुणं, जनकात्म-जा,
निष्पिषन्ती स्व-चरणौ, क्रोशन्ती, मधुर-स्वरा,— ७

"ऊचुर् लाक्षणिका ये मां पुत्रिण्य-वि-धवेति च,
तेऽद्य सर्वे, हते रामे, ज्ञानिनो ऽनृत-वादिनः । ८

एतौ, हित्वा जनस्थानं, प्रवृत्तिं चोपलभ्य च,
तीर्त्वा सागरम-क्षोभ्यं, भ्रातरौ, गोष्पदे हतौ । ९

न नु वारुणमाग्नेयमैन्द्रं वायव्यमेव च
अस्त्रं ब्रह्म-शिरश्चैव राघवौ प्रत्यपद्येताम् ? १०

अदृश्यमानेन रणे मायया, वासवोपमौ,
मम नाथाव-नाथाया, निहतौ राम-लक्ष्मणौ । ११

न हि, दृष्टि-पथं प्राप्य, राघवाभ्यां, रणे, रिपुः
जीवन् प्रतिनिवर्तेत, यद्यपि स्यान् मनो-जवः । १२

न कालस्याति-भारोऽस्ति—कृतान्तः खलु दुर्जयः—
यत्र रामः, सह भ्रात्रा, शेते, रिपु-वि-निर्जितः । १३

६। शर-तल्पयोः—शर-शय्ययोः। ७। निष्पिषन्ती—निष्पिषती। नुमागम आर्षः। 'निःश्वसन्तीम्' (५।१।२९ ; पृ. २४६) इत्यत्रापि। क्रोशन्ती—रुदती। ८। लाक्षणिकाः—सामुद्रिक-लक्षण-ज्ञाः। ९। सागरम्—समुद्रम्, राक्षस-सेना-सागरञ्च। गोष्पदे—गो-खुर-प्रमाणे [अल्पमर्थे] स्थाने, स्वल्पायासेऽपि सैन्ये इत्यर्थः। १०। नु—किम्। प्रत्यपद्येताम्—अजानताम्। ११। माया—इन्द्रजालं, कुहकम्। १२। राघवाभ्याम्—राघवयोः। तृतीया चार्षी। मनो-जवः—मनसः जवः (वेगः) इव जवो यस्य सः, मानस-चिन्तावत् द्रुत-गामी। १३। कालस्य—[शुभाशुभ-फल-प्रापकस्य] समयस्य। अति-भारः—[शुभाशुभ-फल-प्रापणे] श्रेष्ठत्वम्। कृतान्तः—यमः, मृत्युः। खलु—निश्चयेन। यत्र—यस्मात् इत्यर्थः

नाहं शोचामि भर्तारं निहतं, न च लक्ष्मणम्,
नात्मानं जननीं वापि, यथा श्वश्रूं तपस्विनीम् । १४
सा चिन्तयति नूनं हि,—'समाप्त-व्रतमागतम्,
कदा द्रक्ष्यामि काकुत्स्थं, स-सीतं, सह-लक्ष्मणम्' ।" १५

परिदेवयमानां तां राक्षसी त्रिजटाब्रवीत्,—
"मा विषादं कृथा, देवि ;—भर्ता हि तव जीवति । १६
न हि कोप-परीतानि हर्ष-वीर्योत्सुकानि च
भवन्ति अधि-योधानां मुखानि, निहते पतौ । १७
हत-प्र-वीरा वि-ध्वस्ता निरुत्साहा निरुद्यमा
सेना भवति संग्रामे, हत-कर्णेव नौर् जले । १८
इयं पुनर-सम्भ्रान्ता मुख्य-यूथा तरस्विनी
सेना रक्षति काकुत्स्थौ, प्रयाणौ बल-मूर्धनि । १९
सा त्वमेवं सु-वि-स्पष्टैरनुमानैः सुखावहैः
न हतौ विद्धि काकुत्स्थावेतत् सत्यं ब्रवीमि ते । २०
अनृतं नोक्त-पूर्वं मे, न च वक्ष्यामि, मैथिलि ;
चारित्र्य-दुःख-शीलत्वात् प्रविष्टासि च मे मनः । २१

१६ । परिदेवयमानाम्—विलपन्तीम् । १७ । कोप-परीतानि—'सर्वेन प्रव हनिष्यामः', 'क्व गच्छति' इत्येवं-भाव-सहचर-कोप-परिचायक मुख-वर्ण-वैलक्षण्यादि समन्वितानि । हर्ष-वीर्योत्सुकानि—[जयाशा-जनित-] हर्ष वीर्य-प्रदर्शनोत्सुकानि । भवन्ति अधियोधानाम्—सन्ध्य-भाव आर्षः । अधि-योधानाम्—प्रधान योधानाम्, सेना-पतीनाम् । पतौ—पत्यौ । अ-समासेऽपि समासवद् रूपम् आर्षम् । पा. १।४।८ । १८ । हत-प्र-वीरा—हत-वीर-प्रधाना, हत-नायका । हत-कर्णा—भग्न कर्णा । १९ । अ-सम्भ्रान्ता—अ-संवेगा । तरस्विनी—त्वरान्विता । 'काकुत्स्थौ'—अयमेव प्रतीचामप्राचां च पाठः । 'काकुत्स्थम्' इति गौरेसियो: पठति । बल-मूर्धनि—सेना-मुखे । २१ । चारित्र्यम्—

इदं च सुमहच् चिह्नं समवेक्षस्व, मैथिलि,—
निः-संज्ञौ चाप्युभावेतौ लक्ष्मीर् नैव प्रमुञ्चति । २२

प्रायेण गत-सत्त्वानां पुरुषाणां, गतायुषाम्,
दृश्यमानेषु वक्त्रेषु परं भवति वैकृतम् । २३

त्यज शोकं च दुःखं च मानसं, जनकात्म-जे,
राम-लक्ष्मणयोरर्थे ;—नैतौ वीरौ वि-जीवितौ ।” २४

श्रुत्वा तु वचनं तस्याः, सीता सुर-सुतोपमा
कृताञ्जलिरुवाचेदमेवमस्त्विति, दुःखिता । २५

विमानं पुष्पकं तत् तु सं-निवर्त्य, मनो-जवम्,
दीना, त्रिजटया, सीता लङ्कामेव प्र-वेशिता । २६

ततो मुहूर्ताद् गगने वैनतेयं महा-बलम्
वानरा ददृशुः, सर्वे, ज्वलन्तमिव पावकम् । २७

शर-रूपास्तदा सर्वे नागा जग्मुर् मही-तलम्,
यैस् तौ सत्-पुरुषौ बद्धौ, शरीर-स्थैर्, महा-बलौ । २८

वैनतेयेन सं-स्पृष्टाः, सर्वे ते रुरुहुर् व्रणाः ;
सम-वर्णाश्च तेऽभूवं स्तयोर् गात्रे क्षणेन ह । २९

पातिव्रत्यम् इत्यर्थः। दुःख-शीलत्वम्—दुःख-जनक-स्वभावत्वम्, चञ्चलत्वमित्यर्थः। मनः—हृदयम्। २२। समवेक्षस्व—परि-पश्य। लक्ष्मीः—कान्तिः। २३। गतसत्त्वानाम्—गत-प्राणानाम्, मृतानाम्। गतायुषाम्—अतीत-जीवित-कालानाम्। २४। वि-जीवितौ—मृतौ। २७। वैनतेयम्—विनता-नन्दनम्, गरुडम्। २९। रुरुहुः—सं-रूढ़ मांसाः अभूवन्। व्रणाः—क्षतानि, wounds. सम-वर्णाः—‘शरीरैः’ इति शेषः।

चतुर्थः सर्गः।

राक्षस-निर्याणम्।

नीरुजौ राघवौ दृष्ट्वा, तच् चापरं, प्लवङ्गमाः,
प्र-हृष्टाः, सञ्जुर् नादं, राक्षसानां भयावहम्। १

धूम्राक्षस्तु, धनुष्पाणिर्, वानरान्, रण-मूर्धनि,
हसन्, विद्रावयामास दिशः, सायक-वृष्टिभिः। २

विद्राव्य राक्षसानीकं, हनूमान् मारुतात्म-जः
धूम्राक्षस्य शिरो-मध्ये गिरि-शृङ्गमपातयत्। ३

स, विह्वलित-सर्वाङ्गो, गिरि-शृङ्गेण पोथितः,
पपात सहसा भूमौ, विकीर्ण इव पर्वतः। ४

रथमास्थाय, तु, श्रीमान् तप्त-काञ्चन-कुण्डलः
अ-कम्पनो, वृतो भीमै राक्षसैरभिनिर्ययौ। ५

स, प्र-हस्य, महा-तेजा हनूमान्, पवनात्म-जः,
अभिदुद्राव तद् रक्षः, कम्पयन्निव मेदिनीम्। ६

सोऽश्व-कर्णं, महा-वेगात्, महान्तमुदपाटयत्,
शिरस्यभिजघानाशु निशा-चरमकम्पनम्। ७

स, वृक्षं, शिरसा, घोरं, प्र-सह्य, प्लवगेरितम्,
राक्षसः सहसा भूमौ पपात च ममार च। ८

आरुरोह रथं दिव्यं प्रहस्तः, सज्य-कार्मुकः,
लङ्काया निर्ययौ तूर्णं, बलेन महता वृतः। ९

१। नीरुजौ—नीरोगौ, सु-स्थौ। २। रण-मूर्धनि—[राक्षस-] सेना-मुखे [स्थित्वा]। सायकः—बाणः। ४। विह्वलितानि—आत्मधारणाक्षमाणि। अत्र इतच्-प्रत्ययोऽतिरिक्त एव। पोथितः—निपातितः। 'ताडितः' इति अन्यत्र पाठः। ८। ईरितः—क्षिप्तः, प्रेरितः।

तमुग्र-वेगं संरब्धमापतन्तं महा-कपिः
नीलः, सं-प्रेक्ष्य, जग्राह, महा-कायो, महा-शिलाम् । १०
सा, तेन कपि-सिंहेन विमुक्ता, महती शिला
बिभेद बहुधा, घोरा, प्रहस्तस्य शिरस्तदा । ११

प्रहस्तस्य वधं श्रुत्वा, रावणो, भ्रान्त-मानसः,
राक्षसानादिदेशाशु, राक्षसेन्द्रो, महा-बलः,— १२
"कार्या यत्नेषु नावज्ञा, यैरिन्द्र-बल-सूदनः,
सूदितः सैन्य-पालो मे, सानु-यात्रः, स-कुञ्जरः । १३
राम-लक्ष्मणयोर् वैरं स्वयं निर्यातयामि वै ;
स्वयमेव गमिष्यामि रण-शीर्षमभित्वरम् ।" १४

संग्राममभिकाङ्क्षन्तं रावणं श्रुत्य, भाविनी,
तदोत्थाय ययौ देवी, नाम्ना मन्दोदरी, शुभा ; १५
प्राविशच् च सभां दिव्यां, प्रभयोद्द्योतमानया ।
प्राप्तां देवीं, ततो राजा, प्रियां मन्दोदरीं, शुभाम्, १६
दृष्ट्वा, स-सम्भ्रमं तूर्णं परिष्वज्य, दशाननः,
यथावच् चाभिनन्द्याथ तदासन-गतोऽभवत् । १७
अब्रवीद् विधिवत् सोऽथ, महा-गम्भीर-निस्वनः,—
"किमागमन-कृत्यं ते, देवि, शीघ्रं तदुच्यताम् ।" १८

१० । संरब्धम्—क्रुद्धम् । १२ । भ्रान्त-मानसः—उद्भ्रान्त-चित्तः, घूर्णित-मानसः । १३ । सूदनः—वि-नाशकः । सूदितः—वि-नाशितः । १५ । श्रुत्य—श्रुत्वा । क्त्वो ल्यबादेश आर्षः । पा. १।१।३७ । भाविनी—प्रणयवती । १६ । प्रभयोद्द्योतमानया—'उपलक्षिता' इति शेषः । १७ । स-सम्भ्रमम्—सादरम् । १८ । कृत्यम—प्रयोजनम् ।

एवमुक्ते, तु, वचने, देवी वचनमब्रवीत्,—
"विज्ञाप्यं शृणु, राजेन्द्र,—याचे त्वाहं, कृताञ्जलिः । १९
नापराधश्च कर्तव्यो वदन्त्या मम, मान-द ।
श्रुता मे नगरी दग्धा, श्रुता मे राक्षसा हताः । २०
पति-व्रतापराधस्तु दोषमावहते महत्,—
राम-भार्या सती—सा तु रामाय प्रतिदीयताम् । २१
स्व-जनस्य क्षयं ज्ञात्वा, पुत्र-भ्रातृ-वधं तथा,
संशयं परमं गत्वा, किं जितेन करिष्यसि ? २२
चञ्चला युद्ध-सिद्धिस्तु—हन्ति वा हन्यतेऽपि वा ।
तस्माद् युद्धं न रोचेत,—सन्धिं कुरु, दशानन ।" २३

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा प्रियाया, राक्षसेश्वरः,
हस्ते मन्दोदरीं गृह्य, वाक्यमेतदुवाच ह,— २४
"त्वयाहं, हित-काङ्क्षिण्या, वचो यदभिभाषितः,
न तन् मनसि मे, देवि, प्र-विशत्यप्रियं, प्रिये । २५
देवान् जित्वा रणे पूर्वमसुरोरग-दानवान्,
प्र-णमे मानुषं कस्माद्, वानरं यः समाश्रितः ? २६
राक्षसान् घातयित्वा, तु, लङ्कां सम्पीड्य सर्वतः,
राघवं प्र-णमे कस्माद्, क्षीण-वीर्य इवाबलः ? २७
राघवं प्र-णमे कस्मान्, मूर्ध्नि स्थित्वा तु देहिनाम् ?
मा कृथा हृदि सन्तापं—सं-जयिष्ये, शुचि-स्मिते । २८

२० । मे—मया । षष्ठी चार्थे । पा. २।३।६९ । २१ । दोषं महत्—क्रोधत्वमार्षम् ।
२२ । जितेन—जयं लब्धा । २४ । गृह्य—गृहीत्वा । क्त्वो ल्यबादेश आर्षः । पा.१।३।२७ ।
२६ । प्र-णमे—प्र-णमामि । आत्मने-पदमार्षम् । २८ । सं-जयिष्ये—सं-जेष्यामि । आत्मने-

हनिष्ये राघवं चैव, लक्ष्मणं वानरां श्च तान्—
वैदेहीं नार्पयिष्यामि राघवस्य भयादहम् । २९

साम्प्रतं च न सन्धिं तु करिष्यति स राघवः ;—
सागरं सु-महद् बद्ध्वा, दग्ध्वा लङ्कां स-काननाम्,
राक्षस-प्रवरान् हत्वा, सन्धिं कुर्यात् कथं, प्रिये ? ३०

मा कृथा हृदि सन्तापमहं यास्ये रणाजिरम् ;
अन्तः-पुराय गच्छ त्वं ; सुखिनी भव, स-स्नुषा ।" ३१

स, एवमुक्त्वा, ज्वलन-प्रकाशं
रथं, तुरङ्गोत्तम-राज-युक्तम्,
प्रकाशमानं वपुषा वरेण,
समारुरोहामर-राज-शत्रुः । ३२

स, शङ्ख-भेरी-पटह-प्रणादैर्
आक्ष्वेडितास्फोटित-सिंह-नादैः
पुण्यैः स्तवैश्चाप्यभिपूज्यमानस्
तदा ययौ राक्षस-राज-मुख्यः । ३३

स, शैल-जीमूत-निकाश-कायैर्
मांसाशनैः पावक-दीप्त-नेत्रैः,
बभौ, वृतो राक्षस-योध-मुख्यैर्,
भूतैर् वृतो रुद्र इवामरेशः । ३४

पदमिदमनर्थार्थं । २९ । हनिष्ये—हनिष्यामि । आत्मने-पदमार्षम् । ३१ । यास्ये—यास्यामि । आत्मने-पदमार्षम् । स्नुषा—पुत्र-वधूः । ३२ । ज्वलन-प्रकाशम्—अग्निवत् दीप्यमानम् । तुरङ्गः—अश्वः । वपुः—शरीरम् । अ-मर-राजः—देव-राजः, इन्द्रः । ३३ । प्रणादैः—तार-शब्दैः । आक्ष्वेडितानि—स्व-वीर्य-प्रकाशकाः शब्दाः । आस्फोटितानि—भुजास्फालनानि । 'आस्फोटित-क्ष्वेडित-सिंह-नादैः' इति अपरो पाठः । ३४ । मांसाशनैः

ततो नगर्याः सहसा महौजा,
निष्क्रम्य, तद् वानर-सैन्यमुग्रम्,
समुद्यतं, पादप-शैल-हस्तं,
महार्णवाम्भः-स्तनितं, ददर्श। १५

पञ्चमः सर्गः।

रावणस्य युद्धम्।

तद् राक्षसानीकमति-प्र-चण्डम्
आलोक्य रामो, ऽ-मर-तुल्य-रूपः,
विभीषणं, शस्त्र-भृतां वरिष्ठम्,
उवाच शैलाग्र-गतो महात्मा,— १

"नाना-पताका-ध्वज-शस्त्र-जुष्टं
प्रासासि-शूलाशनि-चक्र-जुष्टम्,
कस्येदम-क्षोभ्यम-भीरु सैन्यं,
नागेन्द्र-राजोपम-नाग-जुष्टम्?" २

ततः स रामस्य वचो निशम्य,
विभीषणः, शक्र-समान-वीर्यः,
शशंस रामाय बल-प्रवीरान्,
दुरासदान्, राक्षस-पुङ्गवां स्तान्,— ३

—मांस-भक्षकैः। अ-मरः—मृत्यु-रहितः, देवः। १५। महौजाः—महा-तेजाः। उग्रम्—दुर्धर्षम्, दुर्जयम्। महार्णवाम्भः-स्तनितम्—महार्णवस्य (महा-सागरस्य) अम्भसः (जलस्य) स्तनितम् (शब्दः) इव स्तनितं यस्य तत्।

२। नागेन्द्र-राजः—नागेन्द्राणां (हस्ति-श्रेष्ठानां) राजा, ऐरावतः। ३। बल-प्रवीरान्—सेना-नायकान्।

"योऽसौ गज-स्कन्ध-गतो, महात्मा,
नवोदितार्कोपम-ताम्र-चक्षुः,
प्र-कम्पयन् नाग-शिरोऽभ्युपैति,
प्रवीर-बाहुं तमवेहि, राजन्। ४

योऽसौ रथ-स्थो, मृग-राज-केतुर्,
धुन्वन् धनुः, शक्र-धनुः-प्रकाशम्,
करीव भात्युग्र-विवृत्त-दंष्ट्रः,
स इन्द्रजिद्, राक्षस-राज-पुत्रः। ५

यश्चैष विन्यस्त इवेन्द्र-कल्पो,
धन्वी, रथ-स्थो, ऽति-रथो, ऽति-वीरः,
विस्फारयन् वै धनुरुग्र-नादम्,
एषोऽति-कायो, ऽति-विवृद्ध-कायः। ६

योऽसौ, नवार्कोपम-ताम्र-चक्षुर्,
आरुह्य घण्टा-निनद-प्रवादम्,
स्वरं स्वरं गर्जति वै, दुरात्मा,
महोदरो नाम स एष वीरः। ७

४। अर्कः—सूर्यः। प्र-कम्पयन्—'स्व-शरीर भारेण' इति शेषः। ५। मृग-राज-केतुः—सिंह-ध्वजः। मृग-राजः—सिंहः। धुन्वन्—कम्पयन्। उग्र-विवृत्त-दंष्ट्रः—उग्राः (भयानकाः) विवृत्ताः (तिर्यक् चलिताः) च दंष्ट्राः (दाढ़ाः, कदल-दन्ताः) यस्य सः। ६। विन्यस्तः—स्थापितः। अति-रथः—'अमितान् योधयेद् यस्तु संप्रोक्तोऽतिरथस्तु सः'। अति-वीरः—प्रतियोगि-रहितो वीरः। विस्फारयन्—टङ्कारयन्, ज्याकर्षणेन ध्वनिं कारयन्। ७। घण्टा-निनद-प्रवादम्—घण्टा-निनद एव प्र-वादो (शब्द-ध्वनिः) यस्य तम्। 'गजम्' इति शेषः। स्वरं स्वरम्—अति-स्वरम्, अति-गर्जनम्।

योऽसौ हयं, काञ्चन-चित्र-भाण्डम्,
आरुह्य, सन्ध्याभ्र-घन-प्रकाशम्,
प्रासं समुद्यम्य, मरीचि-नद्धं,
पिशाच एषोऽशनि-तुल्य-वेगः। ८

यश्चैष कालानल-तुल्य-वेगः,
खड्गी, धनुष्मान्, कवची, किरीटी,
गजेन्द्रमास्थाय, गिरि-प्रकाशं,
खरात्म-जोऽयं मकराक्ष-नामा। ९

यश्चैष चापासि-शरौघ-जुष्टं,
पताकिनं, पावक-तुल्य-रूपम्,
रथं समास्थाय वि-भात्युदग्रो,
नरान्तकोऽयं नग-शृङ्ग-योधी। १०

यश्चैष, नाना-विध-घोर-रूपैर्
व्याघ्रोष्ट्र-नागेन्द्र-मृगेन्द्र-वक्त्रैः
भूतैर् वृतो, ऽभ्येति, विवृत्त-नेत्रैः,
सोऽयं सु-दंष्ट्रो, विजितारि-सूनुः। ११

८। काञ्चन चित्र भाण्डम्—काञ्चनानि (सुवर्णमयानि) चित्राणि (विचित्राणि) च भाण्डानि (अश्वाभरणानि) यस्य तम्। सन्ध्याभ्र-घन-प्रकाशम्—सन्ध्याभ्राणां (सान्ध्य-मेघानां) घनः (ओघः, समूहः); तेन प्रकाशम् (सदृशम्)। मरीचि-नद्धम्—किरण-व्याप्तम्, ज्योतिर्मयम्। पिशाचः—पिशाच नामा। अशनिः—विद्युत्। ९। कालानलः—प्रलयाग्निः। किरीटः—मुकुटः। गिरि प्रकाशम्—पर्वत-तुल्यम्। १०। उदग्रः—दीर्घः। नग-शृङ्ग-योधी—'प्रतियोद्धुरभावात् भुज-कण्डु-निरसनार्थम्' इति शेषः। ११। विवृत्त-नेत्रैः—घूर्णित-लोचनैः। सूनुः—पुत्रः।

यश्चैष, घोरं बहु-वज्र-जुष्टं
स-काञ्चनं पावक-तुल्य-रूपम्
शूलं समुद्यम्य, वि-भाति, वेगाद्,
देवान्तकोऽसौ, नर-सिंह, योधी । १२

यश्चैष, शूलं निशितं प्रगृह्य,
विद्युत्-प्रभं, किङ्किणि-वज्र-जुष्टम्,
नागेन्द्रमास्थाय, गिरि प्रकाशम्,
आयाति सोऽयं त्रिशिरास्तरस्वी । १३

यस्तु, जीमूत-निकाश-रूपः,
क्रुद्धः, प्रतिव्यूढ-सुजात-वक्षाः,
समाहितः, पन्नग-राज-केतुर्,
विस्फारयन्, भाति, धनुर्, धनुष्मान् । १४

यश्चैष, जाम्बूनद-वज्र-जुष्टं
दीप्तं सु-घोरं परिघं प्रगृह्य,
आयाति, रक्षो-बल-केतु-भूतो,
निकुम्भ एषो, ऽद्भुत-घोर-कर्मा । १५

यश्चैतदिन्दु-प्रतिमं वि-भाति
छत्रं सितं सूक्ष्म-शलाकमग्र्यम्,
अत्रैष रक्षो-ऽधिपतिर्, महात्मा,
भूतैर् वृतो रुद्र इवाभ्युपैति । १६

---

१२ । वज्रम्—हीरकम् । १३ । किङ्किणिः—क्षुद्र-घण्टिका । तरस्वी—वेगवान् । १४ । जीमूत-निकाशम्—मेघ-सदृशम् । प्रतिव्यूढ-सुजात-वक्षाः—प्रतिव्यूढम् (स्फीतं महतश्च) सुजातं (शोभनं) च वक्षो यस्य सः । पन्नग-राज-केतुः—वासुकि-ध्वजः । १६ । इन्दु-

योऽसौ, किरीटी, ज्वलनोज्ज्वलास्यो,
महेन्द्र-विन्ध्योपम-भीम-रूपः,
महेन्द्र-वैवस्वत-दर्प-हन्ता,
रक्षो-ऽधिपः सोऽयमुपैति, दृष्टः।" १७

विभीषण-वचः श्रुत्वा, रावणं प्रति भाषितम्,
प्रत्युवाच ततो रामो विभीषणमिदं वचः,— १८

"अहो दीप्तो महा-तेजा रावणो राक्षसाधिपः,
आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यो, रश्मिभिर् भाति, वीर्यवान्! १९

न व्यक्तं लक्ष्यते ह्यस्य रूपं तेजः-समन्वितम्।
देव-दानव-वीराणां वपुरेवं-विधं किल। २०

यादृशं राक्षसेन्द्रस्य वपुरेतद् वि-राजते,
तथैवास्यानु-गास्तुल्याः पुत्राः पौत्रास्तथानु-जाः। २१

सर्वे पर्वत-सङ्काशाः, सर्वे विक्रान्त-योधिनः,
सर्वे दीप्तायुध-धरा योधाश्चास्य महौजसः। २२

भाति राक्षस-राजोऽयं प्रदीप्तैर् भीम-विक्रमैः
योधैः परिवृतो, भूतैर् देहवद्भिरिवान्तकः।" २३

एवमुक्त्वा ततो रामो, धनुरादाय, वीर्यवान्,
लक्ष्मणानु-चरस्तस्थौ, समुद्धृत्य शरोत्तमान्। २४

प्रतिमम्—चन्द्र-सदृशम्। वज्र-प्रताशनम्—सर्व-दमनम्। १७। आस्यम्—मुखम्
२०। वपनम्—सूक्ष्मावयव-संस्थानम्। २२। विक्रान्त-योधिनः—विक्रान्तेन (सिंहेन)
सह योद्धुं शीलं येषां ते। २३। देहवद्भिः—प्रशस्त देहैः। प्रशंसायां मतुप्।

ततः स रक्षो-ऽधिपतिर्, महात्मा,
रक्षांसि तान्याह, महा-बलानि,—
"द्वारेषु पुर्या, गृह-गोपुरेषु
सु-निर्वृतास्तिष्ठत, निर्वि-शङ्का: ।" २५

स एवमुक्त्वा त्रिदशेन्द्र-शत्रुर्,
उद्यम्य चापं, स-शरं, प्र-दीप्तम्,
व्यदारयद् वानर-सागरौघं
महा-कष: पूर्णमिवार्णवौघम् । २६

बलात् समुत्पाट्य मही-धराग्रं,
दुद्राव रक्षो-ऽधिपतिं हरीश: ।
तं शैलमग्रं, बहु-वृक्ष-सानुं,
प्र-गृह्य, चिक्षेप स रावणाय । २७

तमापतन्तं प्र-समीक्ष्य, राजा
बिभेद बाणैर्, यम-दण्ड-कल्पै: ;
बाणं महेन्द्राशनि-तुल्य-वेगं
चिक्षेप राजा हरि-यूथ-पाय । २८

स सायकार्तो, विपरीत-चेता:,
कूजन्, व्यथार्तो निपपात भूमौ ;
ततो गवाक्षो गवय: सु-दंष्ट्रो,
मैन्दो, नलो, ज्योतिर्मुखोऽङ्गदश्च, २९

---

२५ । पुरी—नगरी । गो पुरम्—द्वारम् । सु-निर्वृता:—नितरां शान्ता: । २६ । त्रि-दशेन्द्र:—देवेन्द्र:, इन्द्र: । महा-कष:—महती कष पट्टिका, महा-ग्राव:, a large touch-stone. २७ । मही-धराग्रम्—पर्वत-शृङ्गम् । हरीश:—वानर-राज:, सुग्रीव: । शैलमग्रम्—पर्वत-शृङ्गम् । २९ । विपरीत-चेता:—[युद्ध-] प्रतिकूल-चित्त: ।

शिलाः समुत्पाट्य, वि-वृद्ध-कायाः,
प्र-दुद्रुवुस्तं प्रति राक्षसेन्द्रम्।
ते वानरेन्द्रास्त्रिदशारि-बाणैर्,
भिन्ना निपेतुर् भुवि, भीम-रूपाः। ३०

तमाह सौमित्रिर्-दीन-सत्त्वो,
विस्फारयंस्तं धनुर्-अप्रमेयम्,—
"आगच्छ, मां योधय, राक्षसेन्द्र—
न वानरांस्त्वं प्रतियोद्धुमर्हसि।" ३१

स, एवमुक्तः, कुपितः, ससर्ज
रक्षोऽधिपः सप्त शरान्, सु-पुङ्खान्।
तान् लक्ष्मणः काञ्चन-चित्र-पुङ्खैश्
चिच्छेद बाणैर् निशितैः, सु-पर्वैः। ३२

स लक्ष्मणस्यापि शरान्, शिताग्रान्,
महेन्द्र-वज्राशनि-तुल्य-वेगान्,
सन्धाय चापे, ज्वलन-प्रकाशान्,
ससर्ज रक्षो-ऽधिपतेर् वधाय। ३३

स तान् प्र-चिच्छेद निशा-चरेन्द्रश्;
छित्त्वा ततो लक्ष्मणमाजघान
शरेण, कालाग्नि-सम-प्रभेण,
स्वयम्भु-दत्तेन, ललाट-देशे। ३४

३०। त्रिदशारिः—देव-शत्रुः। ३२। पुङ्खः—बाणस्य पश्च-स्थानम्, बाण-मूलम्।
३३। वज्राशनिः—वज्रस्य अशनिः (विद्युत्)। ३४। स्वयम्भुः—ब्रह्मा।

स लक्ष्मणो, रावण-सायकार्त्तश्,
चचाल, चापं शिथिलं प्र-मुञ्च,
पुनश्च संज्ञां प्रतिलभ्य कृच्छ्रात्,
चिच्छेद चापं त्रिदशेन्द्र-शत्रोः । ३५

तं छिन्न-चापं, त्रिभिराजघान
बाणैस्तदा दाशरथिः, शिताग्रैः ।
स, सायकार्त्तो, विचचाल राजा,
कृच्छ्रात् च संज्ञां पुनराससाद । ३६

स, छिन्न-चापः, शर-पीड़िताङ्गः,
स्वेदार्द्र-गात्रो, रुधिरावसिक्तः,
जग्राह शक्तिं, समर-प्र-चण्डां,
स्वयम्भु-दत्तामथ देव-शत्रुः । ३७

स तां, वि-धूमानल-सन्निकाशां,
वि-त्रासनीं वानर-यूथ-पानां,
चिक्षेप शक्तिं, तरसा ज्वलन्तीं,
सौमित्रये राक्षस-राष्ट्र-नाथः । ३८

तां, दीप्यमानां, रघु-नन्दनस्तदा
जघान बाणैरनल-प्रकाशैः ;
तथापि सा, तस्य, विवेश शक्तिर्
भुजान्तरं दाशरथेर्, विशाला । ३९

---

३५ । कृच्छ्रात्—कष्टेन । ३६ । छिन्न-चापम्—छिन्न धनुष्कम् । ३८ । वि-धूमानल-सन्निकाशाम्—धूम-हीन-वह्नि-सदृशीम् । तरसा—वेग-वशात् । ३९ । अनल-प्रकाशैः—वह्निवत् दीप्यमानैः । भुजान्तरम्—भुजयोः (बाह्वोः) अन्तरम् (मध्य-देशम्) ।

वि-संज्ञं पतितं दृष्ट्वा सौमित्रिं, रावणेश्वरः
अवतीर्य रथात् तूर्णमभिदुद्राव लक्ष्मणम्। ४०

लक्ष्मणं तु ततः, श्रीमान्, जिघृक्षन्तं, स मारुतिः
आजघानोरसि, व्यूढे, वज्र-कल्पेन मुष्टिना। ४१

तेन मुष्टि-प्रहारेण रावणो, भीम-विक्रमः,
आजानुभ्यामगमद् भूमिं, मुमोह च चचाल च। ४२

हनूमानपि तेजस्वी लक्ष्मणं शुभ-लक्षणम्
आनयद् राघवाभ्याशे, बाहुभ्यां परिरभ्य वै। ४३

निपातित-महा-वीरां वानराणां महा-चमूम्
दृष्ट्वा, रामो रणे तस्मिन्नभिदुद्राव रावणम्। ४४

तस्याभिसङ्क्रम्य रथं स-चक्रं
साश्वं, ध्वजं चाथ महा-पताकम्,
छत्रं सितं तस्य, स-रुक्म-दण्डं,
रामः प्र-चिच्छेद शरैः, शिताग्रैः। ४५

अथेन्द्र-शत्रुं तरसा जघान
बाणेन, वज्राशनि-सन्निभेन।
स, राम-बाणाभिहतो, व्यथार्तश्,
चचाल, चापं च मुमोच, दीनः। ४६

४१। जिघृक्षन्तम्—ग्रहीतुमिच्छन्तम्। मारुतिः—मरुतः (पवनस्य) पुत्रः, हनूमान्। व्यूढे—विपुले [illegible] दृढे च।

स, विह्वलं तं च समीक्ष्य, रामः
समाददे दीप्तमथार्ध-चन्द्रम् ;
तेनार्क-वर्णं, सहसा, किरीटं
चिच्छेद रक्षो-ऽधिपतेर् महात्मा । ४७

तं निर्विषाशी-विष-सन्निकाशं,
शान्तार्चिषं सूर्यमिवाप्रकाशम्,
गत-श्रियं, कृत्त-किरीट-मौलिं,
प्रत्याह रामो युधि राक्षसेन्द्रम्,— ४८

"कृतं त्वया कर्म महत् सु-दुष्करं,
हत-प्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम् ।
तस्मात् परिश्रान्तमिव प्र-पश्यन्,
न त्वां शरैर् मृत्यु-पथं नयामि ।" ४९

स, एवमुक्तो, हत-मान-दर्पो,
निकृत्त-चापो, निहताश्व-सूतः,
शोकार्दितः, कृत्त-महा-किरीटो,
विवेश लङ्कां सहसा, गत-श्रीः । ५०

तस्मिन् प्र-विष्टे रजनी-चरेशे,
महा-बले दानव-देव-शत्रौ,
हरीन् वि-शल्यान्, सह लक्ष्मणेन,
चकार रामः परमाहवाग्रे । ५१

४७ । महात्मा—महा-मनाः । ४८ । अ-प्रकाशम्—अ-दीप्यमानम्, अ-भासमानम् । कृत्त-किरीट-मौलिम्—कृत्त-किरीटः (छिन्न-मुकुटः) मौलिः (मस्तकं) यस्य तम् । ४९ । तस्मात्—युद्ध-धर्म-शासनात् । ५० । निकृत्त-चापः—छिन्न-धनुष्कः । ५१ । रजनी-चरः—

षष्ठः सर्गः।

कुम्भकर्ण-वधः।

स, प्रविश्य पुरीं लङ्कां, राम-बाण-भयार्दितः,
निरीक्षमाणः सचिवान्, रावणो वाक्यमब्रवीत्,— १

"सज्जा, भवन्तो रक्षन्तु नगरीं वै समन्ततः ;
निद्रा-वश-समाविष्टः कुम्भकर्णः प्र-बोध्यताम्।" २

अथ दृष्ट्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णमुपस्थितम्,
तमीषत् परिरक्ताभ्यां नेत्राभ्यां, कुपितो, ऽब्रवीत्,— ३

"नगरं शत्रुणा रुद्धं, हतो युद्धे सुहृज्-जनः,
कोषश्च क्षयितः सर्वः ;—सत्त्वमभ्युपपद्यताम्। ४

यदेतद् भयमुत्पन्नं व्यसनं च, महा-बल,
तस्माद् भय-वि-नाशार्थं मया सम्बोधितो भवान्। ५

निर्गच्छ, शूलमादाय, पाश-हस्त इवान्तकः ;
वानरान् राज-पुत्रौ च भक्षयस्व, प्र-मर्द च।" ६

स, पुर-द्वार-निर्यातः, कुम्भकर्णो, महा-बलः,
राक्षसैर् बहुभिः क्रुद्धैर् नदमानैः पुरस्कृतः, ७

निशा-चरः, राक्षसः। परमाहवार्थे— परमाहवस्य (महा-युद्धस्य) अर्थे (सम्मुखे, अग्रे)। (आहवः—युद्धम्)। वि-शल्यान्—उद्धृत-शल्यान्, [शल्य-जनित-व्रण-व्यथा-मुक्तां च]।

२। प्र-बोध्यताम्—जागर्यताम्, वि-निद्रः क्रियताम्। ३। परिरक्ताभ्याम् (घूर्णिताभ्याम्) नेत्राभ्याम्—'उपलक्षितः' इति शेषः। ४। सत्त्वम्—बलम्, पराक्रमः। अभ्युपपद्यताम्—सहायी-क्रियताम्, अवलम्ब्यताम्। ५। सम्बोधितः—वि-निद्रः कृतः। ६। प्रमर्द—प्रमृदान, चूर्णी-कुरु। ७। पुरस्कृतः—अग्रे स्थापितः।

सं-ननाद महा-नादं, समुद्रमभिनादयन्,
जनयन्निव निर्घातं, कम्पयन्निव पर्वतान्। ८
तम-वध्यं मघवता यमेन वरुणेन च
प्रेक्ष्य, भीमाक्षमायान्तं, वानरा वि-प्र-दुद्रुवुः। ९

तां स्तु वि-द्रवतो दृष्ट्वा, वालि-पुत्रो ऽङ्गदो ऽब्रवीत्
गवाक्षं शरभं नीलं कुमुदं च, महा-बलम्,— १०
"आत्मानमिव विस्मृत्य, वीर्याण्यभिजनानि च,
क्व गच्छत, परित्रस्ता, हरयः, प्राकृता इव? ११
आगच्छत, निवर्तध्वं। किं प्राणान् परिरक्षथ?
मर्तव्ये सति, संग्रामे वरं मृत्युर् भयाहयाम्! १२
महतीमुत्थितामेतां वानराणां वि-भीषिकाम्,
विक्रम्य, वि-धमिष्यामो—निवर्तध्वं, प्लवङ्गमाः।" १३

कृच्छ्रेण च समाश्वस्ताः, संस्तभ्य च परस्परम्,
निजघ्नुः, परम-क्रुद्धाः, कुम्भकर्णं वनौकसः। १४
तस्य गात्रेषु पतिता व्यशीर्यन्त महा-शिलाः;
पादपाः पुष्पिताग्राश्च, भग्नाः, पेतुर् मही-तले। १५

८। निर्घातम्—अशनि घोषम्। ९। मघवता—मंहति (पूज्यति) यः तेन, इन्द्रेण। भीमाक्षम्—भीषण-नेत्रम्। वि-प्र-दुद्रुवुः—पलायामासुः। ११। वीर्याणि—पराक्रमान्। अभिजनानि—अभिजनान् (क्लीवत्वमार्षम्), कुलानि, वंशान्। परि-त्रस्ताः—नितरां भीताः। १२। वरम्—मनाक् प्रियः। १३। विधमिष्यामः—विनाशयामः, निरसिष्यामः, वि-द्रावयिष्यामः। धातुरत्र आर्षोऽ-सार्वप्रत्ययिको धम् (to blow away). c. f. पा. ७।३।७८। १४। समाश्वस्ताः—स्थिरी-भूताः। संस्तभ्य—निबध्य। १५। व्यशीर्यन्त—अनेकधा अभिद्यन्त।

स तु सैन्यानि, सं-क्रुद्धो, वानराणां महौजसाम्,
ममन्थ परमायस्तो, वनान्यग्निरिवोत्थितः। १६

वानरा, वध्यमानास्ते राक्षसेन, जघन्यतः
सागरं येन सन्तीर्णाः पथा तेनैव दुद्रुवुः। १७

केचिद् वृक्षान् समारूढा, ममज्जुः केचिदर्णवे,
केचिद् गिरीनारुरुहुर्, गुहाः केचित् समाश्रिताः। १८

हनूमान् शैल-शृङ्गाणि वृक्षांश्च विविधान् बहून्
ववर्ष कुम्भकर्णस्य शरीरे, वानरर्षभः। १९

तानि पर्वत-शृङ्गाणि शूलेन तु बिभेद सः,
बभञ्ज वृक्ष-वर्षं च कुम्भकर्णो, मदोत्कटः। २०

स शूलमाविध्य, तडित्-प्रकाशं,
गिरिं यथा प्र-ज्वलिताग्र-शृङ्गम्,
बाह्वन्तरे मारुतिमाजघान,
गुहो ऽचलं क्रौञ्चमिवोग्र-शक्त्या। २१

स शूल-निर्भिन्न-महा-भुजान्तरः,
सु-विह्वलः, शोणितमुद्गिरन् मुखात्,
ननाद भीमं हनुमान् महाहवे,
तपान्त-मेघ-स्तनितोपम-स्वरः। २२

१६। आयस्तः—कुपितः। १७। जघन्यतः—[सेनायाः] पृष्ठात्, [सेनायाः] पाश्चात्य-भागात्। २०। मदोत्कटः—मदोद्धतः। २१। आविध्य—क्षिप्त्वा। अग्र-शृङ्गम्—शृङ्गस्य अग्रम्। बाह्वन्तरे—बाह्वोः (भुजयोः) अन्तरे (मध्य-प्र-देशे)। गुहः—कार्तिकेयः। उग्रा—प्र-चण्डा। २२। आहवः—युद्धम्। तपान्तः—वर्षाः। (तपः—ग्रीष्मो नाम ऋतुः)। स्तनितम्—मेघ-ध्वनिः।

ऋषभः शरभो नीलो गवाक्षो गन्धमादनः,
पञ्च वानर-शार्दूलाः, कुम्भकर्णमुपाद्रवन् । २३

प्रहारैर् व्यथितास्ते ते मुमुहुः, शोणितोक्षिताः,
निपेतुश्चापि मेदिन्यां, निकृत्ता इव किंशुकाः । २४

तेषु वानर-मुख्येषु पतितेषु, महात्मसु,
वानराणां सहस्राणि कुम्भकर्णं प्र-दुद्रुवुः । २५

बाहुभ्यां वानरान् सर्वानाक्रम्य स, महा-बलः,
भक्षयामास, सं-क्रुद्धो, गरुडः पन्नगानिव । २६

तस्मिन् काले सुमित्रायाः पुत्रः, पर-बलार्दनः,
प्रादुश्चक्रे महा-घोरमस्त्रमस्त्र-विशारदः । २७

अतिक्रम्य तु सौमित्रिं, कुम्भकर्णो, महा-बलः,
राममेवाभिदुद्राव, नादयन्निव मेदिनीम् ; २८

रामोऽयमिति विज्ञाय जहास विपुल-स्वनम्,
पाटयन्निव सर्वेषां हृदयानि वनौकसाम् । २९

अथाददे सूर्य-मरीचि-कल्पं,
स, ब्रह्म-दण्डान्तक-काल-तुल्यम्
अरि-प्रमर्दं निशितं सु-पुङ्खं,
रामः शरं, मारुत-तुल्य-वेगम् । ३०

२४ । ते ते—[ते] नाना-विधाः [वानराः], [ते] नाना-विध-बल-विक्रम-रूप-कौशल-सम्पन्नाः । Cf. गीता, ७।२० । २५ । प्र दुद्रुवुः—अभि-दधावुः, उद्दिश्य दधावुः । २७ । पर-बलार्दनः—शत्रु सेना-विध्वंसी । प्रादुश्चक्रे—प्रकाशयामास, दर्शयामास । २९ । पाटयन—वि-दारयन् । ३० । ब्रह्म-दण्डः—रुद्रः । कालः—भाग्य-कर्ता देवः ।

स, विसृष्टो बलवता रामेण, निशितः शरः,
कुम्भकर्णस्य हृदयं भित्त्वा, धरणिमाविशत्। ३१

वि-नद्य सु-महा-नादं, न्यपतद् राक्षसो, हतः,
वानराणां सहस्रे द्वे कायेनाथ न्यपोथयत्। ३२

सं-प्राकम्पन्त लङ्कायाः प्राकारास्तोरणानि च,
तस्मिन् निपतिते भूमौ, चुक्षुभे च महोदधिः। ३३

सप्तमः सर्गः।

निकुम्भिला।

कुम्भकर्णं हतं श्रुत्वा राघवेण महात्मना,
रावणः, शोक-सन्तप्तो, मुमोह च पपात च। १

ततस्तु राजानमुदीक्ष्य दीनं,
शोकार्णवौघे वि-नि-मज्जमानं,
रथर्षभो राक्षस-राज-सूनुर्
अथेन्द्रजिद् वाक्यमिदं बभाषे,— २

"न, तात, मोह-प्रतिपत्ति-कालो,
यदिन्द्रजिज् जीवति, नैरृतेन्द्र!
नेन्द्रारि-बाणाभिहतो हि कश्चित्
प्राणान् रणे धारयितुं समर्थः। ३

३२। न्यपोथयत्—न्यपातयत्। ३३। महोदधिः—महा सागरः। ५।२।६४ श्लोके तु 'महान् जलाशयः' इत्ययं एव सङ्गच्छते।

२। वि-नि-मज्जमानम्—वि-नि-मज्जन्तम्। आत्मने-पदम् आर्षम्। रथर्षभः—रथि-श्रेष्ठः, 'महा-रथः' इत्यर्थः। मध्य पद-लोपः। ३। प्रतिपत्तिः—प्राप्तिः। यत्—यस्मात्। नैरृताः—राक्षसाः। इन्द्रारिः—इन्द्र-जित्।

पश्चाच्च रामं, सह लक्ष्मणेन,
मद्-बाण-निर्भिन्न-विकीर्ण-देहम्,
नष्टायुधं, भूमि-तले शयानं,
शरैः शितैराचित-सर्व-गात्रम्। ४

इमां प्रतिज्ञां शृणु चेन्द्र-शत्रोः,
सु-निश्चितां पौरुष-दैव-युक्ताम्,
यथाद्य रामं, सह लक्ष्मणेन,
सन्तापयिष्यामि शरैर-मोघैः। ५

रुद्रेन्द्र-वैवस्वत-विष्णु-मित्राः
साध्याश्च वैश्वानर-चन्द्र-सूर्याः
द्रक्ष्यन्ति मे विक्रमम-प्रमेयं,
यथा पुरा विक्रममिव विष्णोः।" ६

स एवमुक्त्वा त्रिदशेन्द्र-शत्रुर्,
आपृच्छ्य राजानम-दीन-सत्त्वः,
समारुरोहानिल-तुल्य-वेगं,
रथं, सु-चित्रं, हय-श्रेष्ठ-युक्तम्। ७

स सं-प्राप्य, महा-तेजा, यज्ञ-भूमिमरिन्दमः,
स्थापयामास रक्षांसि रथं प्रति समन्ततः। ८

४। विकीर्णम्—इतस्ततः वि-क्षिप्तम्। आचितानि—आच्छन्नानि। ५। इन्द्र-शत्रोः—इन्द्रजितः। पौरुष दैव-युक्ताम्—पौरुषेण (स्वक-ज-शौर्य-बलेन) दैवेन (दैव-बलेन, भगवद्-ब्रह्म-बलेन) च युक्ताम् (क्रियमाणाम्)। ६। मित्रः—द्वादशादित्यानाम् अन्यतमः। साध्याः—मन-आदयो द्वादश गण-देवताः। वैश्वानरः—अग्निः। मे विक्रमम्—मम शौर्यातिशयम्। विक्रममिव विष्णोः—विष्णोः पाद विक्षेपमिव। 'बलि-यज्ञ-वाटे' इति शेषः। ७। त्रिदशेन्द्र-शत्रुः—इन्द्रजित्। अ-दीन-सत्त्वः—निर्भीक-चित्तः। ८। यज्ञ-

ततस्तु हुत-भोक्तारं हुत-भुक्-सदृश-प्रभः
अजुहोद्, राक्षस-श्रेष्ठो, मङ्गलैर् विधिवत् तदा । ९

शस्त्राणि शित-धाराणि, समिधांश्च विभीतकान्,
लोहितानि च वासांसि, स्रुवं कार्ष्णायसं तथा १०

सर्वतोऽग्निं परि-स्तीर्य, शरैः सह स-तोमरैः,
असृक् कृष्णस्य छागस्य कण्ठादादाय जीवतः,
जुहाव पावकं तत्र, रक्ताक्ताः समिधस्तथा । ११

ततः समिद्भिरिद्धस्य, वि-धूमस्य, महार्चिषः
बभूवुस्तानि लिङ्गानि, वि-जयं यान्यदर्शयन् । १२

प्र-दक्षिणावर्त-शिखस्तप्त-हाटक-सन्निभः,
हविस्तत् प्रतिजग्राह पावकः, स्वयमुत्थितः । १३

स समावाहयामास ब्राह्ममस्त्रमरिन्दमः,
धनुः शरान् रथं चैव—सर्वं तत्राभ्यमन्त्रयत् । १४

भूमिम्—युद्ध-जय-सम्पादक-होम-साधन-भूमिम्, निकुम्भिला-स्थानम् इत्यर्थः । ९ । हुत-भोक्तारम्—अग्निम् । हुत-भुक्—अग्निः । मङ्गलैः—लाज-माल्य-गन्धादिभिः मङ्गल-कर-द्रव्यैः । अधिकरणे कर्मत्व-विवक्षया कर्मणि करणत्वारोपः । विधिवत्—कल्पोक्त-विधिना । १० । विभीतकान्—विभीतक-वृक्ष-सम्बन्धिनः । विशेषणार्थे विशेष्य-प्रयोगः । स्रुवम्—यज्ञीय-घृत-प्रक्षेप-पात्रम् । कार्ष्णायसम् (कृष्णायस् + अण्) —चुम्बक-विनिर्मितम् । ११ । परिस्तीर्य—आस्तीर्य, स्थापयित्वा इत्यर्थः । तोमरः—सर्वला, शावल, an iron crow असृक्—शोणितम्, रक्तम् । पावकम्—पावके । अधिकरणे कर्मत्व-विवक्षया द्वितीया । १२ । इद्धस्य—ज्वलितस्य । अदर्शयन्—'पुरा' इति शेषः । १३ । प्र-दक्षिणावर्त-शिखः—दक्षिणावर्तया शिखया उपलक्षितः, प्रदक्षिणार्चिः । तप्त-हाटक-सन्निभः—गलित-स्वर्ण-सदृशः । हविः—हवनीय-द्रव्य-जातम् । १४ । समावाहयामास—दैवत-बुद्ध्या आजुहाव । अभ्यमन्त्रयत्—मन्त्र-पूतमकरोत् ।

स, सैन्यमुत्सृज्य, स-चाप-बाणो,
रथे, तदा, वानर-वाहिनीषु,
अ-दृश्यमानः, शर-जाल-वर्षं
ववर्ष, नीलाम्बु-धरो यथाम्बः । १५

ते, शक्र-जिद्-बाण-विकीर्ण-देहा,
माया-हता, वि-स्वरमुन्नदन्तः,
रणे निपेतुर् हरयः, सु-घोरा,
यथेन्द्र-वज्राभिहता नगेन्द्राः । १६

स, बाण-वर्षैरभिहन्यमानो,
धारा-निपातैरिव पर्वतेन्द्रः,
निरीक्षमाणः, परमाद्भुत-श्री
रामस्तदा लक्ष्मणमित्युवाच,— १७

"असौ पुनर्, लक्ष्मण, राक्षसेन्द्रो,
ब्रह्मास्त्रमासाद्य, सुरेन्द्र-शत्रुः,
निषूदयन् वानर-वीर-सैन्यं,
मायां, रथ-स्थो, विवृणोति वीरः । १८

कथं नु शक्यो, युधि नष्ट-देहो,
निहन्तुमद्येन्द्रजिदस्त्र-पाणिः ?
मन्ये, स्वयम्भूर् भगवान-चिन्त्यो,
यस्यैतदस्त्रं प्रभवत्य-मोघम् । १९

१७। अभिहन्यमानः—अभिभिद्यमानः। परमाद्भुत-श्रीः—अलौकिक-शोभामयः।
१८। सुरेन्द्रः—देवानां राजा, इन्द्रः। निषूदयन्—वि-नाशयन्। विवृणोति—प्रकाशयति।
१९। नष्ट-देहः—दृष्टि-बहिर्भूत-शरीरः। स्वयम्भूः—ब्रह्मा।

बाणाभिपातैस्त्वभिभाव्य भीमान्
मया सहाव्यय-मनाः सवज्र ।
प्रच्छादयत्येव हि राक्षसेन्द्रः
सर्वा दिशः सायक-वृष्टि-जालैः ।” २०

ततस्तु ताविन्द्रजितोऽस्त्र-जालैर्
बभूवतुस्तत्र तदा वि-यत्तौ ।
स, राघवौ तौ बलिनौ वि-बाध्य,
ननाद हर्षाद् युधि राक्षसेन्द्रः । २१

अष्टमः सर्गः ।

माया-सीता ।

कृत्वा क्रूरो रथ-स्थां तु सीतां मायामयीं, ततः,
वानराभिमुखोऽगच्छद् रणे रण-विशारदः । १

क्रोशन्तीं राम रामेति सीतां मायामयीं, तदा,
शित-धारेण खड्गेन तां जघानेन्द्रजित् स्वयम् । २

एवं सीतां तदा हत्वा, शक्र-जिद् रावणात्म-जः,
प्र-हृष्टो, रथमास्थाय, वि-ननाद महा-स्वनम् । ३

अभिपेतुश्च गर्जन्तो राक्षसान् वानरर्षभाः ;
परिवार्य, हनूमन्तमन्वयुश्च महाहवे । ४

---

२१ । वि-यत्तौ—वि-चलौ ।

४ । गर्जन्तः—गर्जन्तः, शब्दायमानाः । परिवार्य—वेष्टयित्वा । अन्वयुः (अनु-या + लङ्)—अनुजग्मुः ।

स, निवार्य परानीकं, वानरानिदमब्रवीत्,—

"यन्-निमित्तं हि युध्यामो, हता सा जनकात्म-जा । ५

निवेदयाम, एतस्या, राम-सुग्रीवयोर्, वधम् ।
तौ यत् प्रतिविधास्येते, तत् करिष्यामहे पुनः ।" ६

इत्युक्त्वा वानर-श्रेष्ठान्, वारयन् राक्षसान् रणे,
शनैः शनैर्-असम्भ्रान्तः, स-बलः, सं-न्यवर्तत । ७

ततः प्रेक्ष्य हनूमन्तं व्रजन्तं यत्र राघवौ,
क्षत-विक्षत-गात्रास्ते यातुधाना व्युपारमन् । ८

स, तेन सह सैन्येन, सन्निकर्षं महात्मनः
शीघ्रमागत्य रामस्य, दुःखितो, वाक्यमब्रवीत्,— ९

"प्र-यत्नाद् युध्यमानानामसिना, पश्यतां च नः,
जघान रुदतीं सीतां रावणी, रघु-नन्दन" । १०

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा, रामो, दुःखेन मूर्च्छितः,
निपपात तदा भूमौ, मूढो, विह्वल-मानसः । ११

लक्ष्मणोऽप्यथ बाहुभ्यां तं परिष्वज्य, दुःखितम्,
उवाच रामम-व्यग्रं वाक्यं हेत्वर्थ-संहितम् । १२

---

५ । परानीकम्—शत्रु-सैन्यम् । युध्यामः—युध्यामहे । परस्मै-पदमार्षम् । नेह परस्मै-पदाय 'युधः क्यष्' इति वक्तुमुचितः । नात्र इच्छायामर्थं विवक्षितम् । ६ । प्रति-विधास्येते—प्रतिक्रियानुष्ठाने नियोक्ष्यते । ७ । अ-सम्भ्रान्तः—अ-सं-भ्रान्तः, अ-भीतः । ८ । यातुधानाः—राक्षसाः । व्युपारमन्—न्यवर्तन्त । 'व्याङ्-परिभ्यो रमः [परस्मै-पदं स्यात्]' (पा. १।३।८३) इति परस्मै-पदम् । १० । युध्यमानानां पश्यतां च नः—युध्यमानान् पश्यतश्च नः (अस्मान्) अनादृत्य । अनादरे षष्ठी । ११ । मूढः—जडी-भूतः । १२ । हेत्वर्थ-संहितम्—हेतुना (प्रमाणेन) अर्थेन (विशिष्ट-प्रयोजनेन) च संहितम् (मिलितम्, युक्तम्)।

कथयन्तं तु सौमित्रिं सन्निवार्य, विभीषणः
पुष्कलार्थमिदं वाक्यं स-संभ्रं राममब्रवीत्,— १३

"अभिप्रायं वि-जानामि रावणस्य दुरात्मनः
सीतां प्रति, महा-बाहो—न स तां घातयिष्यति। १४

उच्यमानो हितार्थं हि बान्धवैर् धर्म-संहितम्
वैदेहीमुत्सृजस्वेति—न च तत् कृतवान् वचः। १५

नैव दानेन मानेन न भेदेन—कुतोऽन्यथा?—
शक्या सा द्रष्टुमन्येन राक्षसेन, नरर्षभ। १६

यदा तु खलु संग्राममुपायाति स रावणिः,
चैत्यो निकुम्भिला नाम, तत्र गत्वा प्रतिष्ठते। १७

हुतवानग्निहोत्रं वै, देवैरपि स-वासवैः
भवत्य-जेयः संग्रामे बलवान् रावणात्म-जः। १८

तेन हव्य-निमित्तं तु नूनं माया प्रवर्तिता
विघ्नमनिच्छता तत्र वानराणां पराक्रमे। १९

निकुम्भिलायां, काकुत्स्थ, स जुहोति, न संशयः।
स-बलास्तत्र गच्छामो यावत् तन् न समाप्यते। २०

त्यजेमं, नर-शार्दूल, मिथ्या-सन्तापमागतम्;
लक्ष्मणं प्रेषयास्माभिः सह, सैन्यानुकर्षिभिः।" २१

१३। पुष्कलार्थम्—श्रेष्ठाभिधेयम्। १७। चैत्य—यज्ञ-स्थानम्। चयनार्थः २।१।७ मे श्लोकेऽपि मुच्यत एव। प्रतिष्ठते—'युद्ध-क्षेमाय' इति शेषः। 'समव-प्र-विभ्यः स्थः [आत्मने-पदं स्यात्]' इति आत्मने पदम्। पा. १।३।२२। १९। हव्य-निमित्तम्—होमेन। २०। तत्—हवनम्, होम-कर्म। २१। अस्माभिः—'प्रधानैः' इति शेषः। सैन्यानुकर्षिभिः—सेनां गृहीत्वा गच्छद्भिः।

नवमः सर्गः ।

इन्द्रजिद्-वधः ।

स, सन्नद्धः—शरी, खड्गी, कवची, हेम-मालवान्—
जिघांसू रावणिं युद्धे, लक्ष्मणो निर्जगाम ह । १

वानराणां सहस्रैस्तु बहुभिर् हनूमान् वृतः
विभीषणश्च सामात्यो राम-भ्रातरमन्वयात् । २

ऋक्ष-वानर-मुख्यैश्च, महा-कायैर् महा-बलैः,
रक्षसां, वध्यमानानां, महद् भयमजायत । ३

स्वमनीकं विषण्णं तु दृष्ट्वा शत्रुभिरर्दितम्,
उत्तस्थाविन्द्रजिच् छीघ्रमसमाप्यैव कर्म तत् । ४

अति-द्रुतं ततो गत्वा, प्र-विश्य च महद् बलम्,
दर्शयामास तद् रक्षो लक्ष्मणाय विभीषणः । ५

लक्ष्मणस्तमुवाचाथ रावणिं, युद्ध-दुर्मदम्,—
"समाह्वये त्वां समरे,—सौम्य, युद्धं प्र-यच्छ मे" । ६

एवमुक्तो, महा-तेजाः, समरे, रावणात्म-जः
अब्रवीत् परुषं वाक्यं, दृष्ट्वा तत्र विभीषणम्,— ७

"इह त्वं जात-वृद्धोऽसि, साक्षाद् भ्राता पितुर् मम ।
कथं द्रुह्यसि पुत्राय, पितृव्यः सन्, निशा-चर ? ८

१। हेम-मालवान्—सुवर्ण-माल्य-भूषितः। २। अन्वयात्—अन्वगच्छत्।४। कर्म तत्—पूर्वमुक्तमग्निहोत्रम्। ५। तद् रक्षः—इन्द्रजितम्। ६। युद्ध-दुर्मदम्—युद्धे दुर्धर्षम्, समरेऽभिभवितुम-शक्यम्। ८। इह—अस्मत्-कुले। जात-वृद्धः—[पूर्वं] जातः [पश्चात्] वृद्धः (वृद्धिं प्राप्तः)। द्रुह्यसि पुत्राय—द्रुह-योगे कोप-पात्रस्य सम्प्रदानत्वम्। पा. १।४।३७।

न ज्ञातित्वं, न भ्रातृत्वं, न जातिस्तव, दुर्मते,
प्रमाणं ; न च सौहार्दं, न धर्मो, धर्म-दूषक ! ९
शोच्यस्त्वमसि, दुर्बुद्धे, निन्दनीयश्च साधुभिः,
यस्त्वं स्व-जनमुत्सृज्य पर-भृत्यत्वमागतः ।” १०
क्रुद्धेनेन्द्रजिता वाक्यं परुषं, रावणानु-जः,
उक्तः, पितृव्यः, पुत्रेण, प्रत्युवाच विभीषणः,— ११
“अजानन्निव मच्-छीलं, किं त्वमेवं ब्रवीषि माम्,
राक्षसेन्द्र-सुतानार्य, परुषं, त्यक्त-गौरवः ? १२
कुले यद्यपि जातोऽहं रक्षसां पाप-कर्मणाम्,
गुणो यः प्रथमो नॄणां तन् मे शीलम-राक्षसम् । १३
हरणं च पर-स्वानां, पर-दाराभिमर्षणम्,
महर्षीणां वधो घोरः, सर्व-देवैश्च विग्रहः,— १४
एते दोषास्तव पितुर्, जीवितैश्वर्य-नाशनाः ।
नैवास्तीयं पुरी लङ्का, नैव त्वं, न च ते पिता । १५
बद्धस्त्वं काल-पाशेन—ब्रूहि त्वं यद् यदिच्छसि ।
युध्यस्व नर-देवेन लक्ष्मणेन, रणे, सह ।” १६
विभीषण-वचः श्रुत्वा रावणिः, क्रोध-मूर्च्छितः,
उवाच, परम-क्रुद्धः, सौमित्रिं, स-विभीषणम्,— १७

९ । जातिः—जात्यभिमानः । प्रमाणम्—कर्त्तव्याकर्त्तव्य-निरूपण-हेतुः । १२ । अ-जानन्निव—जानन्नपि अ-जानन्निव । मच्-छीलम्—मत्-स्व-भावम् । १३ । प्रथमो गुणः—सत्त्वम् । अ-राक्षसम्—रजस्-तमः-प्रकृतिक-रक्षः-कुल-दुर्लभम् । १४ । पर-दाराः—परेषां भार्याः । अभिमर्षणम्, अभिमर्शनम्—अभिगमनम् । १५ । नैवास्ति—विनष्टेव, शीघ्रमेव वि-नशिष्यति इत्यर्थः ।

"सृजतः शर-जालानि, क्षिप्र-हस्तस्य, संयुगे,
जीमूतस्येव नदतः, कः स्थास्यति ममाग्रतः ?" १८

तच् छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य गर्जितं, लक्ष्मणस्तदा,
अ-भीतवद्-संक्रुद्धो, रावणिं वाक्यमब्रवीत्,— १९

"अन्तर्धान-गतेनाजौ यत् त्वया चरितो रणे—
तस्करानुचरितो मार्गो, नैव शूर-निषेवितः । २०

यदि, बाण-पथं प्राप्य, युध्यसे, राक्षसाधम,
द्रक्ष्यामः समरे वीर्यं । वाचा किं त्वं वि-कत्थसे ?" २१

सोऽभिचक्राम सौमित्रिं, क्रोध-सं-रक्त-लोचनः ;
अब्रवीच् चैनमासाद्य पुनः स परुषं वचः,— २२

"युवां खलु तदा युद्धे शक्राशनि-समैः शरैः
शायितौ स्थो मया भूमौ, वि-संज्ञौ, स-पुरः-सरौ । २३

स्मृतिर् वा नास्ति ते—मन्ये—व्यक्तं वा यम-सादनम्
गन्तुमिच्छसि, येन त्वं मां योधयितुमिच्छसि ।" २४

अभीक्ष्णं निः-श्वसन्तौ तौ प्रायुध्येतां, महा-बलौ,
शरैः संवृत-सर्वाङ्गौ, सर्वतो रुधिरोक्षितौ । २५

तयोरेव महान् कालो व्यतीतो, युध्यतो रणे ;
न च तौ युद्ध-वैमुख्यं श्रमं वाप्युपजग्मतुः । २६

२१ । वि-कत्थसे—[आत्मनि] श्लाघसे । २२ । अभि-चक्राम—उपागच्छत् ।
२३ । स-पुरः-सरौ—सुग्रीवादि-प्रधान-सहितौ । २५ । अभीक्ष्णम्—अनवरतम् ।
२६ । युध्यतोः—युध्यमानयोः । परुषं-परुषाक्षरम् ।

स, हताश्वादवप्लुत्य रथाद्, पतित-सारथेः,
शर-वर्षेण सौमित्रिमभ्यवर्षत रावणिः । २७

सौमित्रिरथ, सं-क्रुद्धः, समाधत्ताऽस्त्रं सु-दारुणम्;
आसुरास्त्रमसौ युद्धे रावणिर् व्यसृजत् तदा । २८

अथास्त्रं मार्गणं श्रेष्ठं सन्दधे राघवानु-जः,
हुताशन-सम-स्पर्शं, सु-पर्वाणं, सु-संस्थितम् । २९

"धर्मात्मा सत्य-सन्धश्च रामो दाशरथिर् यथा,
पौरुषे चाप्रति-द्वन्द्वस्तथेमं जहि रावणम्,"— ३०

इत्युक्त्वा बाणमाकर्णाद् विकृष्य, तम जिह्म-गम्,
लक्ष्मणः, समरे वीरः, ससर्जेन्द्रजितं प्रति । ३१

स शिरः, स-शिरस्त्राणं, भीमं, ज्वलित-कुण्डलम्,
प्र-मथ्येन्द्रजितः कायात्, पातयामास भु-तले । ३२

दशमः सर्गः ।

भाव-शबलत्वम् ।

ते प्र-विश्य पुरीं लङ्कां—हत-शेषा निशा-चराः,
निरस्त-कवचा, दीनाः, प्रहार-जनित-श्रमाः— १

तेऽपि सर्वे, वि-मनसो, गत्वा, तं रावणिं, तदा,
लक्ष्मणेन हतं सङ्ख्ये रावणायाचचक्षिरे,— २

२७। अवप्लुत्य—लम्फेन अवतीर्य। अभ्यवर्षत—अभ्यवर्षत्। रावणि-पदमार्षम्।
२८। अस्त्रम्—भिन्न-जातीयम्, वीरमाग्न-कर्मविशेषः। मार्गणम्—बाणम्। सु-संस्थितम्—दृढ-संस्थानम्। ३२। प्र-मथ्य—छित्त्वा।
२। तेऽपि सर्वे—ते सर्वेऽपि। आचचक्षिरे—निवेदयामासुः।

"युद्धे हतो महा-राज, लक्ष्मणेन सुतस्तव,
विभीषण-सहायेन, मिषतां सर्व-रक्षसाम् । ३

शूरः, शक्रस्य शूरैव, संयुगेष्व-पराङ्मुखः,
गतः स परमान् लोकान्, शरैः सन्तर्प्य लक्ष्मणम् ।" ४

स, पुत्र-वध-सन्तप्तः, क्रूरः, क्रोध-वशं गतः,
जहौ संज्ञां, महा-बाहुर् शुशोच च मुमूर्च्छ च । ५

उपलभ्य चिरात् संज्ञां, राजा, राक्षस-पुङ्गवः,
पुत्र-शोकार्दितो, दीनो, विललापाकुलेन्द्रियः,— ६

"हा राक्षस-चमू-मुख्य ! मम वत्स ! महा-बल
इन्द्र-जित् ! कथमद्य त्वं लक्ष्मणस्य वशं गतः ? ७

ननु त्वमिषुभिः, क्रुद्धो, भिन्द्याः, कालान्तकोपमैः,
मन्दरस्यापि शिखरं—किं पुनर् लक्ष्मणं—युधि ? ८

अद्य वैवस्वतो देवो भूयो बहु-मतो मम,
येन त्वं योजितस्तात महता काल-धर्मणा । ९

एष पन्थाः सु-योधानां सर्वामर-गणेष्वपि—
यः कृते हन्यते भर्तुः, स पुमान् स्वर्गमृच्छति । १०

३। मिषतां सर्व-रक्षसाम्—मिषन्ति (पश्यन्ति) सर्वाणि रक्षांसि अनादृत्य। अनादरे षष्ठी। ४। परमान्—[वीर-प्राप्यान्] श्रेष्ठान्। सन्तर्प्य—तृप्तिं प्रापय्य। ७। चमू-मुख्य—सेना-प्रधान, सेना-नायक। ८। भिन्द्याः—भेत्तुं शक्नोषि। शक्ती विधि-लिङ्। पा. ३।३।१७२। कालान्तकः—सर्व-संहारकः यमः। ९। भूयो बहु-मतः—अत्यन्त-आदरणीयः। महता काल-धर्मणा—संहारेण, मृत्युना इत्यर्थः। १०। कृते भर्तुः—स्वामि-निमित्तम्। ऋच्छति—गच्छति।

अद्य देव-गणाः, सर्वे लोक-पालाः, महर्षिभिः,
निहतं त्वां रणे दृष्ट्वा, सुखं स्वप्स्यन्ति, निर्भयाः । ११

अद्य लोकास्त्रयः, कृत्स्ना पृथिवी च स-कानना,
एकेनेन्द्रजिता हीना, शून्येव प्रतिभाति मे । १२

अद्य नैरृत-कन्यानां श्रोष्याम्यन्तः-पुरे रवम्,
करेणु-सङ्घस्य यथा, नदतो गिरि-गह्वरे । १३

यौवराज्यं च लङ्कां च राक्षसैश्वर्यमेव च ,
मातरं मां च भार्यां च—क्व गतोऽसि विहाय नः ? १४

मम नाम, त्वया, वीर, गतस्य यम-सादनम्,
प्रेत-कार्याणि कार्याणि। विपरीतं हि वर्तते ! १५

मम शल्यमनुद्धृत्य कस्मात् त्यजसि जीवितम् ?"
एवं स विलपन्नेव, साश्रु-नेत्रो, मुमोह वै । १६

तं मोह-गतमासीनं, रावणं, राक्षसाधिपम्,
आविवेश महान् कोपः, पुत्र-व्यसन-सम्भवः । १७

समीक्ष्य रावणो बुद्ध्या, सीतां हन्तुमवस्थितः,
दीनान्, दीन-मनाः, सर्वांस्तानुवाच निशा-चरान्,—१८

"मायया, मम वत्सेन, वञ्चनार्थं वनौकसाम्,
प्रतिमां सदृशीं कृत्वा, सीतेयमिति दर्शिता । १९

११। लोक-पालाः—राजानः। १२। लोकास्त्रयः—पातालान्तरीक्ष-स्वर्गाः। १३। रवम्—शब्दम्। 'रोदन-जम्' इति शेषः। करेणु-सङ्घस्य—हस्तिनी-यूथस्य। १७। व्यसनम्—वि-नाशः। १८। समीक्ष्य—[वैदेही खलु मे पुत्र-वध-मूलम् इति] आलोच्य।

उवाच च समीप-स्थान् राक्षसान् राक्षसेश्वरः,
भयाक्रान्तमिदं तत्र निर्दहन्निव चक्षुषा,— ४

"खरस्य कुम्भकर्णस्य प्रहस्तेन्द्रजितोस्तथा,
करिष्यामि प्रतीकारमद्य शत्रु-वधादहम् । ५

नैवान्तरीक्षं, न दिशो, न नद्यो, न च सागरः
प्रकाशा हि भविष्यन्ति, मम बाण-व्रजैर् वृताः । ६

हतो भ्राता, हतो भर्ता, यासां च तनयो हतः,
वधेनाद्य रिपोस्तासां करिष्ये ऽश्रु-प्र-मार्जनम् । ७

अद्य मद्-बाण-निर्भिन्नैः प्रकीर्णैर् गत-चेतनैः,
करिष्ये वानरैर् युद्धे परिच्छन्नां महीमिमाम् । ८

अद्य गोमायु-गृध्राश्च, ये च मांसाशिनो ऽपरे,
सर्वां स्तां स्तर्पयिष्यामि शत्रु-मांसैः, शरार्दितैः । ९

कल्प्यतां मे रथः शीघ्रं ; योधाः सज्जी-भवन्तु मे ;
अनु-यान्तु च मां युद्धे ये च शिष्टा निशा-चराः ।" १०

ततो मुहूर्तान् निष्पेतू राक्षसा, भीम-विक्रमाः,
नर्दन्तो वि-नदन्तश्च, नाना-प्रहरणायुधाः । ११

असिभिः पट्टिशैः शूलैर् गदाभिर् मुषलैरपि,
शक्तिभिः, सायकैश्चैव बहुभिः कूट-मुद्गरैः, १२

६ । प्रकाशाः—प्रकटाः, दृष्टि-गो-चराः । ८ । प्रकीर्णैः—विक्षिप्तैः । ९ । गोमायुः—शृगालः । शरार्दितैः—बाण-च्छिन्नैः । १० । कल्प्यताम्—सज्जी-क्रियताम् । शिष्टाः—अवशिष्टाः । ११ । वि-नदन्तः—भृश-नदन्तः । नाना-प्रहरणायुधाः—विविध-प्रकार-अस्त्र-शस्त्र-समन्विताः । १२ । कूट-मुद्गरैः—माया-मुद्गरैः ।

भिन्दिपालैः शत-घ्नीभिरन्यैरपि तथायुधैः,
आनयच् च बलाध्यक्षो राक्षसान् रावणाज्ञया। १३

ते तु हृष्टा वि-नर्दन्तो, भिन्दन्त इव मेदिनीम्,
निर्ययुः, सज्जिता, वीराः, सर्वे सं-त्यक्त-जीविताः। १४

अथ प्र-जविताश्वेन रथेन, स महा-रथः
द्वारेण निर्ययौ तेन यत्र तौ राम-लक्ष्मणौ। १५

ततो नष्ट-प्रभः सूर्यो, दिशश्च तिमिरावृताः ;
घोरं विनेदुर् मेघाश्च, सञ्चचाल च मेदिनी। १६

ववर्ष रुधिरं देवः, प्रास्खलंस् तुरगाः पथि,
ध्वजे ऽस्य न्यपतद् गृध्रो, विनेदुश् चाशिवं शिवाः। १७

तस्य निष्पततो युद्धे, दशग्रीवस्य रक्षसः,
रणे निधन-शंसीनि रूपाण्येतानि जज्ञिरे। १८

ममन्थ च महा-कायान् वानरान् राक्षसाधिपः,
युगान्त-वातः, सहसा प्र-वृद्धः, क्षिति-जानिव। १९

ते, ऽर्दिता निशितैर् बाणैः, क्रोशन्तो, वि-प्र-दुद्रुवुः,
पावकार्चिः-समाविष्टा यथा नागा महा-वने। २०

१३। शत-घ्नी—'शत-घ्नी तु चतुस्ताला लौह-कण्टक-सञ्चिता यष्टिः' इति मल्लिनाथ-धृत-केशव-वचनम् (रघु. १२।९५)। यद्वा, 'अयः-कण्टक-सं-छन्ना शत-घ्नी महती शिला' इति शब्द-कल्प-द्रुम-धृत-विजय-रक्षित-वचनम्। आयुधैः—'उपलक्षिताम्' इति शेषः। १४। सं-त्यक्त-जीविताः—जीवितानि त्यक्ष्यन्तः। 'आशंसायां भूतवच्च' (पाणिनिः, ३।३।१३२) इति भविष्यति भूत-कालिकः प्रत्ययः। १५। प्र-जविताश्वेन—प्रजविताः (सञ्जात-वेगाः) अश्वाः यस्य तेन। १७। देवः—मेघः। तुरगाः—अश्वाः। शिवाः—शृगाल्यः। १९। ममन्थ—पिपेष, जघान। युगान्तः—प्रलय-वातः। क्षिति-जान्—वृक्षान्। २०। क्रोशन्तः—आर्त-नादं कुर्वन्तः।

कदनं तरसा कृत्वा, राक्षसेन्द्रो, वनौकसाम्,
आससादयिषू रामं त्वरमाणस्तदा ययौ । २१

एतस्मिन्नन्तरे, क्रुद्धो, राघवस्यानु-जो, बली,
ध्वजं मनुष्य-शीर्षं तु तस्य चिच्छेद, वीर्यवान् । २२

काल-मेघ-निभां श्चैव सदश्वान्, पर्वतोपमान्,
जघान गदया तत्र रथे भ्रातुर् विभीषणः । २३

हताश्वो, वेगवान्, वेगादाप्लुत्य स महा-रथात्
क्रोधमाहारयत् तीव्रं रावणो भ्रातरं प्रति । २४

ततस्तु स महा-शक्तिं, दीप्तामग्नि-शिखामिव,
विभीषणाय चिक्षेप राक्षसेन्द्रः, प्रतापवान् । २५

अ-प्राप्तामेव तां बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद राघवः ।
सा पपात, त्रिधा भिन्ना, शक्तिः, काञ्चन-मालिनी । २६

तां दृष्ट्वा निहतां शक्तिं राघवेण महात्मना,
उदतिष्ठन् महान् नादो वानराणां, महा-रणे । २७

ततः सम्भाविततरां, कालेनापि दुरासदाम्,
जग्राह विमलां शक्तिं, दीप्यमानां स्व-तेजसा । २८

एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणस्तं विभीषणम्,
प्राण-संशयमापन्नं, तूर्णमभ्युपपद्यत । २९

२१। कदनम्—पीडनम्। आससादयिषुः—उपागन्तुमिच्छुः; प्राप्तुमिच्छुः। २८। सम्भाविततराम्—[बलीयस्त्वात्] सम्भाविततराम्। दुरासदाम्—दुः-सहाम्। २९। अभ्युपपद्यत—अनुजग्राह, [शक्ति-मुखं स्वयमागत्य] रक्षितवान् इत्यर्थः।

तं मुमोचयिषुर् वीरश्चापमानम्य, लक्ष्मणः
रावणं शक्ति-हस्तं तं शर-वर्षैरवाकिरत्। ३०

कीर्यमाणः शरौघेन विसृष्टेन महात्मना,
न प्रहर्तुं मनश्चक्रे, वि-मुखी-कृत-विक्रमः। ३१

मोक्षितं भ्रातरं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन, स रावणः
लक्ष्मणाभिमुखस्तिष्ठन्निदं वचनमब्रवीत्,— ३२

"मोक्षितस्ते बल-श्लाघी यस्मादेष विभीषणः,
वि-मुच्य राक्षसं तस्मात् त्वयि शक्तिः पतिष्यति"। ३३

इत्येवमुक्त्वा, तां शक्तिमष्ट-घण्टां, महा-स्वनाम्,
रावणः, परम-क्रुद्धः, चिक्षेप च ननाद च। ३४

ततो रावण-वेगेन सु-दूरमवगाढया
शक्त्या निर्भिन्न-हृदयः, पपात भुवि लक्ष्मणः। ३५

तदवस्थं, समीप-स्थो, लक्ष्मणं प्रेक्ष्य, राघवः
भ्रातृ-स्नेहेन महता विषण्ण-हृदयोऽभवत्। ३६

स, मुहूर्तमिव ध्यात्वा, बाष्प-व्याकुल-लोचनः,
बभूव संरब्धतरो, युगान्ताग्निरिव ज्वलन्। ३७

ततः सु-निशितैर् बाणैर् वीरो दशरथात्म-जः
चक्रे सु-तुमुलं युद्धं, रावणस्य वधोद्यतः। ३८

३०। अवाकिरत्—आच्छादयामास। ३१। कीर्यमाणः—आच्छाद्यमानः। प्रहर्तुम्—'भ्रातरम्' इति शेषः। 'रावणः' इति कर्तृ-पदमूह्यम्। वि-मुखी-कृत-विक्रमः—कुण्ठित-भ्रातृ-वध-विषयोत्साहः। ३३। मोक्षितस्ते—त्वया मोक्षितः। षष्ठी आर्षी। पा. २।३।६९। ३७। ध्यात्वा—[किमिदानीं कर्तव्यमिति] पर्यालोच्य। संरब्धतरः—युद्धे अधिकोत्साहवान्।

स, दत्त्वा सु-महद् युद्धं राघवाय, निशा-चरः
इन्द्र-युद्ध-परिश्रान्तस्ततोऽपक्रम्य वै स्थितः । १८

द्वा-दशः सर्गः ।

राम-विलापः ।

लक्ष्मणस्य शिरः क्रोडे संस्थाप्यैव, तु, राघवः
रुरोद करुणं, दुःखी, लक्ष्मणं, शुभ-लक्षणम्,— १
"हा भ्रातर् दयितात्यन्तं, हा भ्रातर्, मम जीवितम्—
सर्वान् भोगान् परित्यज्य मया सह वनं गतः— २
वनेऽपि व्यसनं प्राप्तं—सीता-हरण-दुःखितम्
मामाश्वासयसे नित्यं, भ्रातृ-स्नेहेन पीड़ितः,— ३
'राक्षसेन्द्रं विनिर्जित्य मैथिलीमानयामि ते' ।
क्व गच्छसि, महा-बाहो, सौमित्रे, भ्रातृ-वत्सल ? ४
नैव युद्धेन मे कार्यं न प्राणैर् न च सीतया ।
वक्ष्यामि मातरं किन् नु सुमित्रां पुत्र-वत्सलाम् ?— ५
'त्वया सह गतः पुत्रो लक्ष्मणो मे न दृश्यते ।
एकाकी त्वमनुप्राप्तः । क्व गतः स सुतो मम ?' ६
क्व गच्छसि, महा-बाहो, सौमित्रे, भ्रातृ-वत्सल ?
वि-चेष्टमानं मां पश्य, उच्छ्वसन्तं पुनः पुनः ।" ७

प्र-रुदन्तं ततो दृष्ट्वा राघवं, सु-महा-बलम्,
लक्ष्मणाय ददौ मन्त्रं सुषेणः, सु-समाहितः । ८

१८। अपक्रम्य—[युद्ध-देशात्] अपसृत्य। स्थितः—स्थितवान्, तस्थौ।
३। व्यसनम्—दुःखम्। ७। उच्छ्वसन्तम्—घनतरं श्वसन्तम्।

वि-शल्यो नीरुजः श्रीमानुदतिष्ठन् महा-रणात् ।
उत्थितं लक्ष्मणं दृष्ट्वा, वि-शल्यं, निरुपद्रवम्,
सिंह-नादान् व्यमुञ्चन्त वानरास्ते समन्ततः । १०

त्रयो-दशः सर्गः ।

रावण-वधः ।

दशग्रीवस्त्वपक्रम्य, मायया, राक्षसर्षभः,
कल्पयामास रुचिरं रथं पावक-सन्निभम् । १

दशग्रीवस्समारुह्य रथं, वज्रोपमैः शरैः,
अभ्यद्रवद् रणे रामं, महा-घोरैः, समाहितः । २

भूमौ स्थितस्य रामस्य, रथ-स्थस्य च रक्षसः
न समं युद्धमित्याहुर् देव-गन्धर्व-दानवाः । ३

देवतानां वचः श्रुत्वा, शतक्रतुरनन्तरम्
प्रेषयामास रामाय रथं, मातलि-सारथिम् । ४

ततः कनक-चित्राङ्गः किङ्किणी-शत-भूषितः
तरुणादित्य-सङ्काशो वैदूर्य-सम-कूबरः, ५

९। विशल्या—विशल्या नाम ओषधी, अनन्ता, फलिनी, शक्र-पुष्पी। पर-वीर-हा—शत्रु-भावापन्न-शूर-गण-विनाशी। अयमेवार्थः ३।५।१९ शे श्लोकेऽपि सङ्गच्छते (पृ. १००)। वि-शल्यः—निः-शल्यः शल्य-जनित-व्यथा-मुक्तश्च। नीरुजः—नीरोगः, प्राप्त-स्वास्थ्यः।

१। कल्पयामास—रचयामास। ५। कूबरः—युगन्धरः [यत्र रथस्य युग-काष्ठमासज्यते], the pole of a carriage to which the yoke is fixed.

सदश्वैः काञ्चनापीडैर् युक्त-श्वेत-प्रकीर्णकैः,—
हरिभिः सूर्य-सङ्काशैर् हेम-जाल-वि-भूषितैः, ६
वज्र-दण्ड-ध्वजः श्रीमान् देव-राज-रथो, वरः,
अभ्यवर्तत काकुत्स्थमवतीर्य त्रिपिष्टपात् । ७

अथाब्रवीत् तदा रामं स-प्रतोदो रथे स्थितः
प्राञ्जलिर् मातलिर् वाक्यं, सहस्राक्षस्य सारथिः,— ८
"सहस्राक्षेण, काकुत्स्थ, रथो ऽयं, वि-जयाय, वै,
प्रेषितस्ते महेन्द्रेण, श्रीमान्, शत्रु-निवर्हणः । ९
एतच् चैन्द्रं महच् चापं, कवचं चाग्नि-सन्निभम्,
शराश्चादित्य-सङ्काशाः, शक्तयश्चामलाः शिताः । १०
आरुह्येमं रथं, राम, रावणं जहि राक्षसम्,
मया सारथिना, वीर, महेन्द्र इव दानवान् ।" ११

इत्युक्तः, स, परिक्रम्य, सं-प्रहृष्ट-तनू-रुहः,
आरुरोह रथं दिव्यं जयाय, परमास्त्र-वित् । १२
कवचं च समाबध्य माहेन्द्रं, राघवस्तदा
श्रियाभि-रुरुचे रामो, लोक-रक्षाधिराजवत् । १३

६ । काञ्चनापीडैः—सुवर्णमय शिरो-माल्यैः, काञ्चन-शेखरैः । प्रकीर्णकम्—चामरम्, बाल व्यजनम् । हरिभिः—अश्वैः । 'उपलक्षितः' इति शेषः । ७ । वज्र-दण्डः—हीरक-मण्डितो यष्टिः । अभ्यवर्तत—उपागच्छत् । त्रिपिष्टपात्—स्वर्ग-लोकात् । ८ । प्रतोदः—अश्व-ताडन-दण्डः । सहस्राक्षस्य—सहस्र-नेत्रस्य, इन्द्रस्य । ११ । मया सारथिना—'उपलक्षितः' इति शेषः । १२ । परि-क्रम्य—प्रदक्षिणी-कृत्य । सं-प्रहृष्ट-तनूरुहः—रोमाञ्चितः, पुलकितः । तनू-रुहः—लोम ।

अथाभूदद्भुतं युद्धं द्वैरथं, लोम-हर्षणम्,
रामस्य च महा-बाहोर् बलिनो रावणस्य च। १४

दशग्रीवो, विंश-भुज:, प्र-गृहीत-शरासन:,
अदृश्यत तदाकम्प्यो मैनाक इव पर्वत:। १५

निरस्यमानो रामस्तु दशग्रीवेण रक्षसा,
अ-शक्नुवन् वारयितुं सायकान् रण-मूर्धनि, १६

स, कृत्वा भ्रू-कुटिं वक्त्रे, रोष-सं-रक्त-लोचन:,
जगाम सु-महा-क्रोधं, निर्दहन्निव राक्षसम्। १७

तस्य क्रुद्धस्य वदनं दृष्ट्वा रामस्य धीमत:,
त्रस्तानि सर्व-भूतानि, रावणे चाविशद् भयम्। १८

अथ क्रोध-समाविष्टो रामो, दशरथात्म-ज:,
उवाच रावणं, वीर:, प्र-हस्य, परुषं वच:,— १९

"मम भार्या जनस्थानादिह ते, राक्षसाधम,
आनीता वि-वशा यस्मात् तस्मात् त्वं न भविष्यसि"। २०

तत: प्रवृत्तमत्यर्थं राम-रावणयोस्तदा
महत् तद् द्वैरथं युद्धं, सर्व-लोक-भयङ्करम्। २१

ततो राक्षस-सैन्यं च हरीणां च महद् बलम्,
प्र-गृहीत-प्रहरणं, निश्चेष्टं व्यवतिष्ठत। २२

१४। द्वैरथम्—द्वौ रथौ ययो: तौ द्वि-रथौ; तयोरिदं द्वैरथम्। लोम-हर्षणम्—रोमाञ्च-करम्, अति-भयानकम् इत्यर्थ:। १६। निरस्यमान:—नि-वार्यमाण:। २०। ते आनीता—त्वया आनीता। अत्र क्तस्य कर्तरि षष्ठी आर्षी। पा. २।३।६९। न भविष्यसि—मरिष्यसि। २१। महत्—अनेक-दिन-व्यापि। २२। निश्चेष्टम्—निरुद्योगम्। व्यवतिष्ठत—'तद्-युद्ध-दर्शन-पारवश्यात्' इति शेष:। अथवा

क्षिपन्तौ शर-जालानि तावुभौ तु रथे स्थितौ—
चेरतुस्तौ रण-गतौ, संरब्धौ, जलदाविव । २३

ततो देवाः, स-गन्धर्वाः सिद्धाश्च, परमर्षयः,
चिन्तामभ्यगमन् सर्वे, समं युद्धं निरीक्ष्य तम् । २४

देव-दानव-यक्षाणां पिशाचोरग-रक्षसाम्,
पश्यतां तम् महद् युद्धं, सप्त-रात्रमवर्तत । २५

नैव रात्रिं न दिवसं न मुहूर्तं न च क्षणम्
राम-रावणयोर् युद्धं विश्राममगमत् तदा । २६

अथ सं-स्मारयामास राघवं मातलिस्तदा,—
"विसृजास्मै, वधाय त्वमस्त्रं पैतामहं, प्रभो" । २७

यमस्मै प्रथमं प्रादादगस्त्यो भगवानृषिः,
ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वमिन्द्रस्यार्थे ऽ-मितौजसा, २८

अभिमन्त्र्य ततो रामस्तं महेषुं, महा-बलः,
वेद-प्रोक्तेन विधिना, सन्दधे कार्मुके बली । २९

तस्मिन् सन्धीयमाने तु राघवेण शरोत्तमे,
वि-त्रेसुः सर्व-भूतानि, प्र-चचाल वसुन्धरा । ३०

संहितः परमास्त्रेण, नियोज्य, निःसृतः शरः
धूम-पूर्वं प्र-जज्वाल, प्राप्य वायु-पथं महत् । ३१

तिष्ठतेरात्मने-पदम् । पा. १।३।२२ । २४ । युद्धम् तम्—पुंस्त्वमार्षम् । २५ । पश्यतां सप्त-रात्रमवर्तत—कालेन परिमाणिनः (परिच्छेद्यात्) षष्ठी । २७ । पैतामहम्—पितामहेन (ब्रह्मणा) निर्मितम् । २९ । अभि-मन्त्र्य—'ब्रह्मास्त्र-विद्यया' इति शेषः । वेद-प्रोक्तेन—धनुर्वेद-प्रोक्तेन । विधिना—[मुष्टि दृष्टि-स्थिति-सन्धानादीनां] विधानेन । ३१ । वायु-पथं महत्—क्लीवत्वमार्षम् ।

स, वज्र इव दुर्धर्षो वज्र-पाणि-वि-सर्जितः,
कृतान्त इव चावार्यो, न्यपतद् राक्षसोपरि ; ३२
विभेद हृदयं चैव रावणस्य दुरात्मनः—
रावणस्याहरत् प्राणान्—भित्त्वा चैव क्षितिं गतः। ३३
तस्य हस्तोद्धृतं चाशु कार्मुकं तत् स-सायकम्
प्राभ्रश्यत, सह प्राणैर्, भ्रश्यमानस्य जीवितात्। ३४
गतासुर् गत-वेगो ऽसौ राक्षसेन्द्रो, गत-द्युतिः,
पपात स्यन्दनाद् भूमौ, वृत्रो वज्र-हतो यथा। ३५
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ, हत-शेषा निशा-चराः,
हत-नाथा, भय-त्रस्ताः, सर्वतो वि-प्र-दुद्रुवुः। ३६
ततो विनेदुः, सं-हृष्टा, वानरा, जित-काशिनः,
वदन्तो राम-विजयं रावणस्य वधं तथा। ३७
अथान्तरीक्षे व्यनदद् भृशं त्रिदश-दुन्दुभिः;
जयेति सु-महान् नाद आकाशे समजायत। ३८
दिव्य-गन्ध-वहश्चैव मारुतः सु-सुखो ववौ,
निपपातान्तरीक्षाच्च पुष्प-वृष्टिस्तदा भुवि। ३९

३४। प्राभ्रश्यत—प्राभ्रश्यत्, अपतत्। भ्रश्यमानस्य—भ्रश्यतः, पततः। उभयत्र आत्मने-पदमार्षम्। ३७। जित-काशिनः—जय-गर्विताः। ३८। त्रि-दशाः—त्र्यधिकाः त्रिराहत्ताश्च दश परिमाणं येषां ते, देवाः। ते चार्का द्वादश, रुद्रा एका-दश, वसवोऽष्टौ, विश्वे देवौ द्वौ चेति समुदायेन, त्रयस्त्रिंशत्।

चतुर्-दश: सर्ग: ।

मन्दोदरी-विलाप: ।

दशग्रीवं हतं दृष्ट्वा रामेणाद्भुत-कर्मणा,
पतिं मन्दोदरी तत्र करुणं पर्यदेवयत्,— १

"न नु नाम, महा-बाहो, तव, वैश्रवणानु-ज,
क्रुद्धस्य प्र-मुखे स्थातुं न समर्थ: शतक्रतु: ? २

स त्वं, मानुषमात्रेण युधि रामेण पातित:,
न व्यपत्रपसे स्वप्तुं—किमिदं, राक्षसाधिप ? ३

न चैतत् कर्म रामस्य श्रद्दधामि—चमू-मुखे
सर्वत: समुदीर्णस्य तव तेनाभि-मर्दनम् । ४

यदैव हि जनस्थाने राक्षसैर् बहुभिर् वृत:
खरस्तव हतो भ्राता तदैवासौ न मानुष: । ५

यदैव वानरैर् बद्ध: सेतुर् घोर-महार्णवे,
तदैव हृदयेनाहं शङ्के रामम-मानुषम् । ६

क्रियताम-विरोधस्तु राघवेणेति यन् मया
उच्यमानो न गृह्णीषे, तस्येयं व्युष्टिरागता । ७

अकस्माच् चाभिकामो ऽसि सीतां, राक्षस-पुङ्-गव,
ऐश्वर्यस्य वि-नाशाय, शरीरस्य—ममैव हि । ८

१ । पर्यदेवयत्—पर्यदेवयत, विललाप । परस्मै-पदमार्षम् । २ । वैश्रवणानु-ज:—वैश्रवणस्य (कुवेरस्य) अनु-ज: (कनीयान् भ्राता), रावण: । ३ । व्यपत्रपसे—लज्जसे । ४ । श्रद्दधामि—विश्वसिमि, प्रत्येमि । चमू मुखे—सेना सम्मुखे, रण-शिरसि । समुदीर्णस्य—समुद्गतस्य, समुन्नतस्य । अभिमर्दनम्—दलनम् । ७ । गृह्णीषे—अग्रहीः । वर्तमान-सामीप्यात् आसन्नातीते लट् । पा. ३।३।१३१ । व्युष्टि:—फलम् । ८ । सीतामभि-

मैथिली सह रामेण वि-शोका वि-चरिष्यति ;
अल्प-पुण्या त्वहं घोरे पतिता शोक-सागरे । ९

कैलासे, नन्दने, मेरौ, तथा चैत्ररथे वने,
देवोद्यानेषु रम्येषु विहृत्य, सहिता त्वया, १०

साद्य-प्रभृति कामेभ्य: स्पृहयिष्यामि, दु:खिता,
भ्रंशिता काम-भोगेभ्य:, साध्वी, वीर, वधात् तव ।" ११

पञ्च-दश: सर्ग: ।

प्रेत-मेध: ।

विभीषणस्त्वविन्ध्यादीन् वृद्धामात्यान्, बहु-श्रुतान्,
आज्ञापयामास तदा, राजा सत्-क्रियतामिति । १

रावणं प्रयते देशे निक्षिप्य, परिचारका:
चितां, चन्दन-काष्ठाक्तां, नाग-केशर-संयुताम्, २

उदारागुरु-सं-युक्तां, तुङ्ग-कालीयकाधिकाम्,
महतीं—सर्व-गन्धानां चितां—कृत्वा, समुच्छ्रिताम्, ३

तस्यां तु राक्षसेन्द्रं तमारोप्य, क्षौम-वाससम्,
प्रज्ञा:, सं-वेशयाञ्चक्रू राक्षसास्तरणान्वितम् । ४

काम:—सीतां प्रति कामुक: । असि—अभू: । ९ । वि-शोका—वि-गत: शोको यस्या: सा, अप-शोका । १० । चैत्ररथम्—कुवेरोद्यानम् । ११ । कामेभ्य: स्पृहयिष्यामि—'स्पृहेरीप्सित: [सम्प्रदानं स्यात्]' (पा. १।४।३६) इति सम्प्रदानत्वात् चतुर्थी (पा. २।३।१३) ।

३ । उदार:—उत्कृष्ट: । तुङ्ग:—समुन्नत: । कालीयक:— दारु-हरिद्रा, तत्-रूप: इत्यर्थ: । अधिकाम्—वर्द्धितायतनाम् । सर्व-गन्धानां चिताम्—सर्व-गन्धै: (चन्दन-काष्ठादिभि: सर्वै: गन्ध-द्रव्यै:) रचिताम् । करणे षष्ठी आर्षी । ४ । क्षौम-वाससम्—क्षौमिक-वसनम् । संवेशयाञ्चक्रु:—शाययामासु: । आस्तरणम्—शय्या ।

ततस्ते वेद-विद्वांसस्तां राज्ञः पश्चिमां क्रियाम्
चक्रिरे राक्षसेन्द्रस्य—प्रेत-मेधमनुत्तमम् ।

वेदीं च दक्षिण-प्राच्यां यथा-स्थानं च पावकम्
विभीषणस्तु सं-प्राप्य तूष्णीं समसृजत् स्रुवम् ।

ततः पश्चात् पशुं हत्वा, राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः
अयास्तरणिकं सर्वं घृताक्तं समवेशयन् ।

गन्धैर् माल्यैस्तथान्यैश्च रावणं दीप्त-मानसाः
लाजैरवकिरन्ति स्म, वाष्प-पूर्ण-मुखास्तथा ।

ददौ च पावकं तस्य विधि-दृष्टं विभीषणः ।
ततो ऽग्निः सं-प्र-जज्वाल, दशग्रीव-निवर्हणः ।

षोड़शः सर्गः ।

सीता-समागमः ।

ततः सीतां, शिरः-स्नातां, युवतीभिरलं-कृताम्,
महार्हाभरणोपेतां, महार्हाम्बर-धारिणीम्,

आरोप्य शिविकां दिव्यां, परार्ध्यास्तरणावृताम्,
राक्षसैर् बहुभिर् युक्तामाजगाम विभीषणः ।

५। पश्चिमाम्—चरमाम्, अन्तिमाम् । प्रेत-मेधम्—प्रेत-यज्ञम्, प्रेत-यज्ञ-विहितं वक्ष्यमाणं कर्म । ६। दक्षिण-प्राच्याम्—[चितायाः] दक्षिण-पूर्वस्यां [दिशि]। सं-प्राप्य—निष्पाद्य । तूष्णीम्—मौनमाश्रित्य । समसृजत्—[स्कन्ध-देशे] प्रक्षिप । स्रुवम्—[स-दध्याज्य-पूर्णं] स्रुवम् (घृत-प्रक्षेप-पात्रम्) । ७। आस्तरणिकम्—आवरकम् । ८। दीप्त-मानसाः—उत्तप्त-चित्ताः । अवकिरन्ति स्म—आच्छादयामासुः । केनातीति वद ।

१। शिरः-स्नाताम्—स्नात-शिरस्कम् । २। परार्ध्यास्तरणम्—महार्घमावरणम् ।

ततो वानर-मुख्यास्ते, कौतूहल-समन्विताः,
वैदेहीं द्रष्टुमिच्छन्तस्तस्थुः शत-सहस्रशः । ३

तामागतां परि-श्रुत्य, रक्षो-गृह-चिरोषिताम्,
रोषो हर्षश्च दैन्यं च—त्रयं राममथाविशत् । ४

कञ्चुकोष्णीषिणस्तत्र, वेत्र-झर्झर-पाणयः,
उत्सारयन्तः, सहसा समन्तात् परिचक्रमुः । ५

वानराणां च ऋक्षाणां राक्षसानां च सर्वतः,
वृन्दान्युत्सार्यमाणानि तस्थुर् दूरतरं ततः । ६

उत्सार्यमाणांस्तान् दृष्ट्वा समन्ताज् जात-सम्भ्रमान्,
दाक्षिण्याच् चानुरागाच् च वारयामास राघवः । ७

संरब्धश्चाब्रवीद् रामश्चक्षुषा निर्दहन्निव
विभीषणं, महा-प्राज्ञं, सोपालम्भमिदं वचः,— ८

"किमर्थं, मामनादृत्य, क्लिश्यते ऽयं त्वया जनः ?
उद्वेगं मा कृथा ह्येषां—जनोऽयं स्व-जनो मम । ९

पुत्र-पक्षे प्रजा राज्ञस्तवापि विदितं ध्रुवम् ।
पश्यन्तु मातरं तस्मादिमे, कौतूहलान्विताः । १०

४ । रोषो हर्षश्च दैन्यं च—रावणेन इयं रघु-कुल-वधूर् हृता आसीदिति रोषः (क्रोधः) । चिर-वियुक्ताया अद्य दर्शनमिति हर्षः । चिरमनया मत्-प्रतीक्षमाणया बहु-दुःखमनुभूतमिति दैन्यम् । ५ । कञ्चुकः—कवचः । उष्णीषः—शिरो-वेष्टः, पागड़ी । झर्झरः—चर्ममयी कशा । उत्सारयन्तः—[समीप-स्थान्] दूरी-कुर्वन्तः । परिचक्रमुः—वि-चेरुः । ६ । वानराणां च ऋक्षाणाम्—सन्धेर्-भाव आर्षः । ७ । सम्भ्रमः—भाव-जनित आवेगः, संवेगः । दाक्षिण्यात्—औदार्यात् । ८ । उपालम्भः—तिरस्कारः ।

न गृहाणि, न वस्त्राणि, न प्राकारा, न सत्-क्रिया:,
न चान्यो राज-सत्कार:—शीलमावरणं स्त्रिया:। ११
व्यसनेषु, विवाहेषु, कन्यानां च स्वयं-वरे,
क्रतौ, संसत्सु च स्त्रीणां दर्शनं सार्वलौकिकम्। १२
सैषा युद्ध-गता चैव, कृच्छ्रे च महति स्थिता,—
दर्शने नास्ति दोषो ऽस्या, मत्-समीपे विशेषत:। १३
विसृज्य शिबिकां, तस्मात्, पद्भ्यामेव समानय
समीपं मम वैदेहीं—पश्यन्त्वेनां वनौकस:।" १४

एवमुक्तस्तु रामेण, स-विमर्शो, विभीषण:
रामस्योपानयत् सीतां सन्निकर्षं, महात्मन:। १५
लज्जया त्ववलीयन्ती स्वेषु गात्रेषु, मैथिली,
विभीषणेनानुगता, भर्तारं चाभ्यवर्तत। १६
ते तां दृष्ट्वायान्तीं, श्रियं देहवतीमिव,
देवतामिव लङ्काया:, प्रभां वैवस्वतीमिव। १७
सा, वाष्प-संरुद्ध-मुखी लज्जया, जन-संसदि
तस्थौ, भर्तारमासाद्य, श्रीर् विष्णुमिव रूपिणी। १८

११। सत्क्रिया—समादर:। अन्य:—जनापसरणादि-व्यापार-व्यतिरिक्त:। शीलम्—चरित्रम्। १२। व्यसनेषु—विपत्ति कालेषु। क्रतौ—यज्ञे। १५। स-विमर्श:—चिन्ता-युक्त:। 'स-विमर्ष:' इति गोरेसियो: पठति। अत्र राज-पत्न्युचितस्य उपचारस्याननुमोदनात् पत्न्यावस्था अभिमान: जिह्वता वा नास्ति इत्याशङ्का कारणम्। १६। लज्जया—'पद्भ्यामेव जन-समक्षं भर्तृ-समीप-गमन-जन्यया' इति शेष:। अवलीयन्ती—अवलीयमाना, सङ्कोचं गच्छन्ती। परस्मै-पदमार्षम्। अभ्यवर्तत—अभिमुखमगच्छत्। १७। वैवस्वती—विवस्वत: (सूर्यस्य) इयम् इति वैवस्वती, सौरी।

राघवश्चापि तां दृष्ट्वा, दिव्य-रूप-वपुर्-धराम्,
जात-शङ्केन मनसा, स-वाष्पो, नाभ्यभाषत। १९

विवर्ण-वदनो राम:, शोक-क्रोधाब्धि-मध्य-ग:,
बभूवाधिक-ताम्राक्षो, वाष्प-निग्रहणे रत:। २०

तामग्रत: स्थितां देवीं, व्रीडोपहत-चेतनाम्,
समालोक्य, सु-दुःखार्तां, चिन्तयन्तीम-नाथवत्, २१

कथञ्चिदपि जीवन्तीं, मृत्यु-लोकादिवागताम्—
अ-पापां, निरवद्यां तां नाभ्यभाषत राघव:। २२

इत्येवं वाष्प-रुद्धाक्षी लज्जया जन-संसदि
रुरोदासाद्य भर्तारं, ह्यार्य-पुत्रेति भाषती। २३

तस्या विलपितं श्रुत्वा, सर्वे ते हरि-यूथ-पा:
रुरुदुर्, जात-सन्तापा, वाष्प-व्याकुल-लोचना:। २४

मुखं वस्त्रेण सं-छाद्य, सौमित्रिर्, जात-सम्भ्रम:,
वाष्प-निग्रहणे यत्नमकरोद्, धैर्य-संस्थित:। २५

तत: सीता, वरारोहा, भर्तुर् वैकारिकं महत्,
व्रीडामुत्सृज्य, तद् दृष्ट्वा, तस्थौ तस्य तदाग्रत:। २६

शोकमुत्सृज्य, वैदेही, सत्त्वमालम्ब्य, भाविनी,
निगृह्य मनसा वाष्पं, विशुद्धेनान्तरात्मना, २७

२०। अब्धि:—जल-धि:, समुद्र:। २२। निरवद्याम्—निर्दोषाम्, वि-शुद्धाम्। २३। भाषती—भाषमाणा। परस्मै-पदं शुमागमाभावश्चार्ष:। २६। वैकारिकम्—संक्षोभ:, भाव-शबलत्वम् इत्यर्थ:। विकार एव वैकारिकम्। स्वार्थे ठिकञ्। २७। सत्त्वम्—धैर्यम्। विशुद्धेनान्तरात्मना—विशुद्धेन मन:-करणेन [उपलक्षिता]।

विस्मयाच् च प्र-हर्षाच् च स्नेहात् क्रोधात् क्रमादपि,
बहु-रूपेण दहृशे, भर्तुर् वदनमीक्षती। २८

सप्त-दशः सर्गः।

अग्नि-प्रवेशः।

तां तु देवीं तथा दृष्ट्वा, रामः, शङ्का-समन्वितः,
हृदयान्तर्गतं भावं व्याहर्तुमुपचक्रमे,— १

"अद्य मे पौरुषं दृष्टमद्य मे स-फलः श्रमः,
अद्य तीर्ण-प्रतिज्ञो ऽहं, प्रभवामीह चात्मनः। २

यत् त्वं विरहिता नीता छल-रूपेण रक्षसा—
दैवादापतितो दोषः, पौरुषात् स समी-कृतः। ३

लङ्घनं च समुद्रस्य लङ्कायाश्चाभिमर्दनम्,
स-फलं सर्वमेवाद्य, महत् कर्म हनूमतः। ४

यत् कर्तव्यं मनुष्येण, धर्षणां प्रति-मार्जता,
तत् कृतं, त्वां वि-निर्जित्य—मयैतन् मान-रक्षणम्। ५

"विदितं चास्तु ते, भद्रे, योऽयं रण-परिश्रमः
तीर्णः स-सुहृदामर्षान्. न त्वदर्थं कृतो मया। ६

२८। ईक्षती—ईक्षमाणा। परस्मै-पदं नुमागमाभावश्च आर्षः।

२। पौरुषम्—पुरुषत्वम्, पराक्रमः। तीर्ण-प्रतिज्ञः—तीर्णा [रावण-वध-विषया] प्रतिज्ञा येन सः। प्रभवामि—प्रभुर् भवामि। ३। विरहिता—त्यक्ता। 'मया' इति शेषः। पौरुषात्—पुरुषोचित-यत्नात्। समी-कृतः—सं-शोधितः। ५। धर्षणा—अवमानना। प्रति-मार्जता—प्रातिकूल्येन अपनयता। वि-निर्जित्य—शत्रोः प्रत्याहृत्य। ६। तीर्णः—उत्तीर्णः, gone through. स-सुहृदा—सुहृद्भ्यां [सुग्रीव-विभीषणाभ्यां]

रक्षता तु मया वृत्तम्, अपवादं च सर्वशः
प्रख्यातस्यात्म-वंशस्य निन्दां च परिमार्जता, ७

निर्जितासि मया, भद्रे, शत्रु-हस्ताद-मर्षिणा,
अगस्त्येन दुराधर्षा मुनिना दक्षिणेव दिक्। ८

प्राप्त-चारित्र-सन्देहा, मम प्रति-मुखे स्थिता,
दीपो नेत्रातुरस्येव, प्रतिकूलासि मे दृढम्। ९

तद् गच्छाभ्यनुजाने त्वां यथेष्टं, जनकात्म-जे,
एता दश दिशो। भद्रे, कार्यमस्ति न मे त्वया। १०

रावणाङ्क-परिक्लिष्टां, दृष्टां दुष्टेन चक्षुषा,
कथं त्वां पुनरादद्यां, कुलं व्यपदिशन् महत्? ११

लक्ष्मणे भरते वा त्वं कुरु बुद्धिं यथा-सुखम्,
सुग्रीवे वानरेन्द्रे वा, राक्षसे वा विभीषणे! १२

न हि त्वां रावणो दृष्ट्वा, दिव्य-रूपां, मनो-रमाम्,
मर्षयेत्, तरुणीं, सीते, वर्तमानां स्वके गृहे।" १३

सा तद्-श्रुत-पूर्वं हि, जने महति, मैथिली,
श्रुत्वा भर्तुर् वचो, घोरं, लज्जयावनताभवत्। १४

मर्षितेन। 'मया' इति शेषः। आ-मर्षात्—क्रोधात्। ७। अपवादः—स्व-दारापहारिणं हन्तुं नाशक्नोत् इत्यपवादः (निन्दा)। परि-मार्जता,—अपनयता। ८। दुराधर्षा—[दानव-राक्षस-भयात्] दुर्जया। ९। नेत्रातुरस्य—नेत्र-रोगिणः। 'नेत्रान्तरस्थ' इति गोरेसियो-धृतः पाठो न समीचीनो भाति। ११। दुष्टेन—कामोपहतेन। व्यपदिशन्—कथयन्, naming. कुलं व्यपदिशन् महत्—महत् मे कुलमिति ब्रुवन्नपि। १३। मर्षयेत्—क्षमेत, उपेक्षेत। १४। जने—जनतायाम्, जन-समूहे।

प्र-विशन्तीव गात्राणि स्वानि, सा जनकात्म-जा,
वाक्-शल्यैस्तैः स-शल्येव, भृशमश्रूण्यवर्तयत् । १५

ततो वाष्प-परिक्लिन्नं प्र-मार्जन्ती स्वमाननम्,
शनैर् गद्गदया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत्,— १६

"किं माम-सदृशं वाक्यमीदृशं, श्रोत्र-दारुणम्,
रूक्षं, श्रावयसे, वीर, प्राकृतामिव योषितम् ? १७

यदहं गात्र-सं-स्पर्शं तव शत्रोर् गता, विभो,
काम-कारो न मे तत्र—दैवं तत्रापराध्यति । १८

मदधीनं तु हृदयं, तच् च मे त्वयि वर्तते ।
पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरा ? १९

प्रेषितस्ते यदा, वीर, हनूमानवलोककः,
लङ्कायां मयि तिष्ठन्त्यां—किं तदा नास्मि वर्जिता ? २०

प्रत्यक्षं वानरेन्द्रस्य, तद्-वाक्य-समनन्तरम्,
त्वया सं-त्यक्तया, वीर, त्यक्तं स्याज् जीवितं मया । २१

न वृथा ते श्रमोऽयं स्यात्, संशयश्च हि जीविते,
सुहृज्-जन-परिक्लेशो न चायं निष्फलो भवेत् । २२

१७। अ-सदृशम्—[त्वया वक्तुं मया श्रोतुं च] अ-योग्यम्। रूक्षम्—परुषम्। श्रोत्र-दारुणम्—श्रवण-कटु। १८। गता—प्राप्ता। काम-कारः—इच्छा-पूर्वकता। तत्र—बलात् स्पर्शे। अपराध्यति—अपराधं कृतवत्। कथायामासन्नातीते लट्। १९। मदधीनम्—परैर् ग्रहीतुम-शक्यम्। पराधीनेषु—परैर् ग्रहीतुं शक्येषु। अनीश्वरा—अ-समर्था। २०। अवलोककः—परिदर्शकः। अस्मि वर्जिता—वर्तमानातीते क्रिया-समाप्तौ फल-प्राप्तौ च तादृशो लट्। २१। प्रत्यक्षम्—समक्षम्। समनन्तरम्—श्रवण-मात्रमेव। त्यक्तं स्यात्—पूर्ववत् व्याख्येयम्। अध्यवसाये लिङ्।

व्यपदेशेन जनकादुत्पत्तिर् वसुधा-तलात्,
मम वृत्तं च शीलं च—सर्वं ते न समर्थितम् । २३

न प्रमाणी-कृत: पाणिर् बाल्ये बालेन पीडित: ।
मम शीलं च भक्तिश्च—सर्वं ते पृष्ठत: कृतम् ।” २४

एवं ब्रुवाणा, रुदती, वाष्प-गद्गद-भाषिणी,
अब्रवील् लक्ष्मणं सीता, दीना, ध्यान-परायणा,— २५

“चितां मे कुरु, सौमित्रे, व्यसनस्यास्य भेषजम्—
मिथ्योपघाताभिहता नाहं जीवितुमुत्सहे । २६

सु-प्रीतस्य गुणैर् भर्तुस्त्यक्ताहं जन-संसदि—
या क्षमा मे गतिर् गन्तुं, गमिष्ये, हव्य-वाहनम् ।” २७

एवमुक्तस्तु मैथिल्या, लक्ष्मण:, पर-वीर-हा,
विमर्श-वशमापन्नो, रामाननमुदैक्षत । २८

स, वि-ज्ञाय मनं तत्, तु, रामस्याकार-सूचितम्,
चितां चकार सौमित्रिर्, मते रामस्य, वीर्यवान् । २९

२३ । व्यपदेशेन जनकात्—[मैथिलीत्यादि-] नाम्ना जनकात् [मम उत्पत्ति: सूच्यते] । उत्पत्तिर् वसुधा-तलात्—[वस्तुतस्तु] भू-तलाद् [एव मम] उत्पत्ति: [अभूत्] । न समर्थितम्—[अ-परि-त्यागे हेतुत्वेन] न विवेचितम् । २४ । प्रमाणी-कृत:—अ-परि-त्यागे हेतुत्वेन स्वी-कृत: । पीडित:—निष्पिष्ट:, गृहीत: इत्यर्थ: । पृष्ठत: कृतम्—अनादृतम् । २६ । भेषजम्—औषधम् । उपघात:—आघात:, अवमानना इत्यर्थ: । २७ । सु-प्रीतस्य गुणै: भर्तु:—[मम] गुणै: सन्तुष्टेन भर्त्रा (पत्या) । षष्ठी आर्षी । पा. २।३।६९ । क्षमा—योग्या । गमिष्ये—गमिष्यामि । आत्मने-पदमार्षम् । २८ । विमर्श:—चिन्ता । 'विमर्ष:' इति गोरेसिओ: पठति । २९ । आकार:—भ्रू-भङ्गादि: ।

न हि रामं तदा कश्चित्, क्रोध-शोक-वशं गतम्,
अनुनेतुमथो वक्तुं द्रष्टुं वाप्यथ शक्नुवन्। ३०

अधो-मुखं स्थितं रामं ततः कृत्वा प्र-दक्षिणम्,
उपासर्पत वैदेही दीप्यमानं हुताशनम्। ३१

प्र-णम्य देवताभ्यः, सा, ब्राह्मणेभ्यश्च, मैथिली,
बद्धाञ्जलि-पुटा, देवमुवाचाग्निं, समीपतः,— ३२

"यथाहं कर्मणा वाचा शरीरेण च राघवम्
सततं नातिवर्तेयं प्रकाशं वा रहःसु वा, ३३

यथा मे हृदयं नित्यं नातिवर्तति राघवात्,
तथायं लोक-साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः।" ३४

एवमुक्त्वा, तु, वैदेही, परिक्रम्य हुताशनम्,
प्रविष्टु-कामा ज्वलनं, वाक्यं चैवेदमब्रवीत्,— ३५

"त्वमग्ने, सर्व-भूतानां शरीरान्तर-गोचरः ;
त्वं साक्षी मम देह-स्थस्—त्राहि मां, देव-सत्तम"। ३६

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा, सर्वे ते हरि-यूथ-पाः
वाष्प-रुद्ध-मुखाश्चासन्, रुरुदुश्च शनैर् भृशम्। ३७

३०। अशक्नुवन्—'आसं' इति शेषः। ३१। उपासर्पत—उपासर्पत्, उपागच्छत्। आत्मने-पदमार्षम्। ३२। प्रणम्य दैवताभ्यः—'चतुर्थी सम्प्रदाने' (पा. २।३।१३) इति चतुर्थी। 'क्रियया यमभिप्रैति सो ऽपि सम्प्रदानम्' इति वार्त्तिकेन अ-कर्मक-प्रणाम-क्रिययाभिप्रेतस्य सम्प्रदानत्वम्। ३३। अति-वर्तेयम्—अतिवर्तेय (अतिक्रामेयम्, उल्लङ्घेय)। परस्मै-पदमार्षम्। रहःसु—निर्जनेषु स्थानेषु। ३४। अति-वर्तति—अति-वर्तते (अपैति, अपसरति)। परस्मै-पदमार्षम्। ३६। शरीरान्तर-गोचरः—देहाभ्यन्तरे विचरण-शीलः। ३७। हरि-यूथ-पाः—वानर-सेना पतयः। भृशम्—अत्यर्थम्, अतिमात्रम्।

ततः सा राघवं सीता समलङ्ख्यायतेक्षणा
विवेश ज्वलनं दीप्तं निः-शङ्केनान्तरात्मना। ३८

तस्यामग्निं विशन्त्यां तु हा हेति विपुलः स्वनः,
रक्षसां वानराणां च सम्बभूवाद्भुतोपमः। ३९

सा तप्त-वर-हेमाभा, तप्त-काञ्चन-भूषिता,
पपात ज्वलने, दीप्ते, हुताहुतिरिवाध्वरे। ४०

अष्टा-दशः सर्गः।

वि-शुद्धिः।

वि-धूमाग्निश्चिता-स्थां तु जानकीमन्वरक्षत,
उत्तस्थौ मूर्तिमानाशु, गृहीत्वा जनकात्म-जाम्। १

तरुणादित्य-सङ्काशां, तप्त-काञ्चन-भूषिताम्,
रक्ताम्बर-धरां बालां, नील-कुञ्चित-मूर्धजाम्, २

अ-क्लिष्ट-माल्याभरणां, तथा-रूपां, मनस्विनीम्,
ददौ रामाय वैदेहीमङ्केनाङ्क विभा-वसुः। ३

अब्रवीच् च तदा रामं, साक्षी लोकस्य, पावकः,—
"एषा ते, राम, महिषी; पापमस्यां न विद्यते। ४

३८। आयतेक्षणा—दीर्घ-नेत्रा। निः-शङ्केनान्तरात्मना—निश्चिन्तेन अन्तः-करणेन [उपलक्षिता]। ४०। तप्त-वर-हेमाभा—गलित-श्रेष्ठ-स्वर्ण-वर्णा। तप्त-काञ्चन-भूषिता—उज्ज्वल-स्वर्णालङ्कृता। दीप्ते—प्र-ज्वलिते। अध्वरे—यज्ञे।

१। अन्वरक्षत—अन्वरक्षत्, अग्नि-प्रवेशात् परं ररक्ष। आत्मने-पदमार्षम्। ३। तथा-रूपाम्—पूर्वानुभूत-शोभा-युक्ताम्। विभा-वसुः—विभा (आलोकः) एव वसु (धनम्) यस्य सः, अग्निः। ४। साक्षी लोकस्य—लोकस्य (मनो-वाक्-कायैः लोकः कृतानां पुण्य-पाप-कर्मणां) साक्षी (साक्षाद् द्रष्टा)। पावकः—पावनः, शोधकः, अग्निः।

नैव वाचा, न मनसा, नैव बुद्ध्या, न चक्षुषा—
सु-वृत्ता, वृत्त-सम्पन्ना, न त्वामति-चरत्यसौ । ५

रावणेनोपनीतैषा, वीर्योत्सिक्तेन रक्षसा,
त्वया विरहिता, वीर, वि-वशा, निर्जनाद् वनात् । ६

रुद्धा चान्तः-पुरे, दीना, त्वच्-चिन्ता, त्वत्-परायणा,
रक्षिता राक्षसीभिश्च, विकृताभिः, समन्ततः । ७

प्रलोभ्यमाना विविधं, भर्त्स्यमाना च, मैथिली
न चाप्यचिन्तयद् रक्षस्त्वद्-गतेनान्तरात्मना ८

वि-शुद्धां वि-रजस्कां च प्रतिगृह्णीष्व, राघव,—
न किञ्चिदस्या वृजिनम्—अहमाज्ञापयामि ते । ९

प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा, सर्वमग्निरुदीक्षते ।
तस्मान् मे विदिता सीता, प्रत्यक्षमनु-पश्यतः ।” १०

एवमुक्तो महा-तेजा, धृतिमान्, दृढ़-विक्रमः,
अब्रवीत् त्रिदश-श्रेष्ठं रामो, धर्म-भृतां वरः,— ११

“अनन्य-हृदयां भक्तां मच्-चित्त-परिवर्तिनीम्
अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्म-जाम् । १२

---

५ । सु वृत्ता —सु-चरिता । वृत्त-सम्पन्ना—चरित्र-शालिनी । अति-चरति—अति-क्रामति, उल्लङ्घते । ६ । उपनीता —आनीता । ‘गृहाम्’ इति शेषः । वीर्योत्सिक्तेन—तेजो गर्वितेन । वि-वशा—अ-स्वाधीना, पराधीना । ७ । रुद्धा—निरुद्ध-स्वच्छन्द-गमनादि-व्यवहारा । दीना—अनुकम्प्या । त्वच्-चिन्ता—त्वयि चिन्ता यस्याः सा । [अतएव] त्वत्-परायणा—त्वद् गतिः । ८ । अचिन्तयत्—अगणयत् । त्वद्-गतेनान्तरात्मना—‘उपलक्षिता’ इति शेषः । ९ । वि-रजस्काम्—निर्मलाम्, निष्पापाम् । वृजिनम्—पापम् । १० । मे विदिता सीता—‘क्तस्य च वर्तमाने [कर्तरि षष्ठी स्यात्]’ (पा.२।३।६७) इति कर्तरि षष्ठी । अनु-पश्यतः—अवलोकयतः, आलोचयतः । १२ । मच्-

प्रत्ययार्थं तु लोकानां त्रयाणां लोक-संसदि
कृताशनं मया सीता प्र-विशन्ती न वारिता । १३

इमामपि विशालाक्षीं रक्षितां स्वेन तेजसा,
रावणो नातिवर्तेत, वेलामिव महोदधिः । १४

न हि शक्तः स दुष्टात्मा मनसापि च मैथिलीम्
सन्दूषयितुम-प्राप्यां, दीप्तामग्नि-शिखामिव । १५

वि-शुद्धा त्रिषु लोकेषु, मैथिली जनकात्म-जा
न वि-हातुं मया शक्या, कीर्तिरात्मवता यथा ।" १६

नव-दशः सर्गः ।

प्रत्यावर्तनम् ।

खे-चरेण, विमानेन, काम-गेन, वि-राजता,
प्रतीतश्च प्र-हृष्टश्च, ययौ रामः कुवेरवत् । १

पातयित्वा ततश्चक्षुः सर्वतो, रघु-नन्दनः,
अब्रवीत् मैथिलीं सीतां रामः, शशि-निभाननाम्,— २

"कैलास-शिखराकारे त्रिकूट-शिखरे स्थिताम्,
पश्य लङ्कां तु, वैदेहि, निर्मितां विश्व-कर्मणा । ३

चित्त-परिवर्तिनीम्—मच्चित्त परिता भ्राम्यन्तीम्, मच्-चित्तानुसारिणीम् इत्यर्थः । १४ । अतिवर्तेत—उल्लङ्घेत । शक्तौ लिङ् । वेलाम्—समुद्र-तीरम् । १५ । सन्दूषयितुम्—पातिव्रत्यात् भ्रंशयितुम् । अ-प्राप्याम्—अ-शक्य-ग्रहाम् । १६ । वि-शुद्धा—शुद्धेति प्रतिपन्ना ।

१ । खे-चरेण—आकाश चरेण । काम-गेन—कामेन ([आरोहिणः] इच्छया) गच्छति यः तेन । वि-राजता—शोभमानेन । प्रतीतः—प्रीतः । प्र-हृष्टः—हृष्ट-रोमा ।

एतदायोधनं पश्य, मांस-शोणित-कर्दमम्—
हरीणां राक्षसानां च, सीते, वि-शसनं महत् । ४

अत्र, लब्ध-वरः, शेते प्र-माथी राक्षसाधिपः ।
तव हेतोर्, विशालाक्षि, रावणो, नि-हतो मया । ५

अत्र मन्दोदरी नाम भार्या तं पर्यदेवयत्
पत्नी राक्षस-राजस्य, रावणस्य, दुरात्मनः । ६

एषो ऽसौ दृश्यते, देवि, समुद्रः, सरितां पतिः,
पौर्विको ज्ञातिरस्माकं, येन सख्यं कृतं मम । ७

एष सेतुर् मया बद्धः सागरे मकरालये,
तव हेतोर्, विशालाक्षि । कीर्तिरेषा भविष्यति । ८

एषा सा दृश्यते, सीते, किष्किन्धा, चित्र-कानना,
सुग्रीव नगरी रम्या, यत्र वाली हतो मया । ९

वीक्षस्व, सु-महान्, सीते, स-विद्युदिव तोय-दः,
ऋष्यमूको, गिरि-वारो, धातुभिर् बहुभिर् वृतः, १०

यत्राहं वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण समागतः,
समयश्च कृतः, सीते, वधार्थं वालिनो, मया । ११

एषा सा दृश्यते पम्पा, नलिनी, चित्र-कानना,
त्वया वि-हीनो यत्राहं तत् तद् बहु विलप्तवान् । १२

४ । आयोधनम्—युद्धम्, युद्ध-भूमिम् । वि-शसनम्—वध-साधन भूतम् । ५ । प्र-माथी—प्र-मथन-शीलः, हनन स्वभावः । विशालाक्षी—विशाले (वृहती) अक्षिणी (नेत्रे) यस्याः सा, 'वर-नारी' इत्यर्थः । ६ । पर्यदेवयत्—पर्यदेवयत, विललाप । परस्मै-पदमार्षम् । ७ । पौर्विकः—पुरा-कालीनः । ९ । चित्र कानना—विविध-काननोपेता॥ १० । तोय-दः—मेघः । वारः—समूहः । १२ । तत् तत्—नाना-विधम् ।

एषा सा पर्ण-शाला च दृश्यते, चारु-दर्शने,
यतस्त्वं राक्षसेन्द्रेण रावणेन हृता बलात् । १३

एषा गोदावरी, रम्या, प्रसन्न-सलिला, शुभा,
अगस्त्यस्याश्रमश्चैव दृश्यते, कदली-वृत: । १४

दृश्यते ऽयं च, वैदेहि, चित्रकूट:, शिलोच्चय:,
यत्र मां कैकयी-पुत्र: प्रसादयितुमागत: । १५

एषा च यमुना रम्या दृश्यते, चित्र-कानना,
भरद्वाजाश्रमश्चैव प्रयागमभित:, शिव: । १६

इयं च दृश्यते, सीते, गङ्गा, त्रि-पथ-गामिनी,
शृङ्गवेर-पुरं चैव गुहो यत्र सखा मम । १७

एषा सा दृश्यते, सीते, राजधानी पितुर् मम,
अयोध्या—कुरु, वैदेहि, प्र-णामं, पुनरागता ।" १८

विंश: सर्ग: ।

अभिनन्दनम् ।

उपगम्य, हनूमां स्तु भरतं, धर्म-चारिणम्,
अब्रवीत्, प्राञ्जलिर्, वाक्यमिदं, प्लवग-सत्तम:,— १

"क्षिप्रमुत्तिष्ठ—भद्रं ते !—पश्य भ्रातरमागतम्,
विजित्य लोकां स्त्रीन् विष्णु: सहस्राक्षमिवागतम् ।" २

एवमुक्तो हनूमता, भरत:, कैकयी-सुत:,
उत्पपात तदा, हृष्टो—हर्षान् मोहं जगाम च । ३

१४ । प्रसन्न-सलिला—निर्मल तोया ।

२ । सहस्राक्षम्—सहस्र नेत्रम्, इन्द्रम् । ३ । उत्पपात—उत्थस्थौ ।

ततो मुहूर्तादुत्थाय, भरतो, भ्रातृ-वत्सलः,
हृष्ट, आज्ञापयामास शत्रुघ्नं, पर-वीर-हा,— ४
"दैवतानि च सर्वाणि, देवता नगरस्य च—
वादित्रैर् गन्ध-माल्यैश्च ते ऽर्च्यन्तां शुचिभिर् जनैः। ५
सूताः स्तुति-पुराण-ज्ञाः, सर्वे वैतालिकास्, तथा
ब्राह्मणा वेद-विद्वांसश्चाभिगच्छन्तु राघवम्। ६
समी-क्रियन्तां निम्नानि, वि-षमाणि समानि च
स्थलानि चैव सर्वाणि नन्दि-ग्रामादितः परम्। ७
ततो ऽभ्यवकिरन्त्वन्ये पुष्पैर् लाजैः समन्ततः
समुच्छ्रित-पताकास्तु रथ्याः पुर-वरोत्तमे ;
शोभयन्तु स्म वेश्मानि सूर्यस्योदयनं प्रति। ८
अपरे युक्त-पुष्पैस्तु, सु-गन्धैः, पञ्च-वर्णकैः,
राज-मार्गम-सम्बाधं किरन्तु शतशो नराः। ९
राज-दारास्तथामात्याः सैन्याः, श्रेण्यस्तथा गणाः
अभिक्रामन्तु, रामस्य द्रष्टुं शशि-निभं मुखम्।" १०

५। दैवतानि—कुल-दैवतानि, कुल देवताः। ते—ते देवाः। दैवत-देवता शब्दयोर् न-पुंस्त्वे ऽपि पुं-वाचित्वात् तत्-प्रतिनिधि भूतस्य सर्व नाम्नः पुंस्त्वमार्षम्। ६। 'स्तुति-पुराण-ज्ञाः' इति सूत-लक्षण रूपं सूत विशेषणम्। वैतालिकाः—वंशावलि-कीर्तकाः। ७। वि-षमाणि—अत्युन्नतानि। नन्दि-ग्रामादितः परम्—'ग्रामद्वयाध्याम्' इति शेषः। ८। अभ्यव-किरन्—आच्छादयन्। पुर वरोत्तमे—अयोध्यायाम् इत्यर्थः। शोभयन्त —भूषयन्त। सूर्यस्योदयनं प्रति—सूर्योदयं प्रतीक्षमाणाः। तृतीया पंक्तिः—'श्वः सूर्योदयात् प्रागेव यथा सर्वाणि भवनानि सज्जितानि भवन्ति तथा कुर्वन्तु' इत्यर्थः। ९। अ-सम्बाधम्—निः-सङ्घर्षम्, यथा पुष्पैः सह पुष्पस्य सङ्घर्षो न भवति तथा। किरन्तु—आच्छादयन्तु। १०। राज-दाराः—अस्माकं मातरः। सैन्याः—भृतिमन्तः

भरतस्य वच: श्रुत्वा, शत्रुघ्न:, पर-वीर-हा,
सर्वं तत् कारयामास विशेषेण, नरोत्तम: । ११

अथ नाग सहस्रैश्च, शातकुम्भ-वि-भूषितै:,
अपरे हेम-कक्ष्याभि: स-घण्टाभि: करेणुभि:
निर्ययुस्त्वरया युक्ता, रथैश्च, सु-महा-रथा: । १२

तुरगाणां सहस्रैश्च मन्त्रिभिर् भरतो वृत:—
शक्तृष्टि-पाश-हस्तानां मनु-जानां, महा-यशा:, १३

पदातीनां सहस्रैश्च वीर: परिवृतस्तदा—
द्वि-जाति-मुख्यैर् धार्मिकै:, श्रेणी-मुख्यै:, शनै: शनै:, १४

माल्य-मोदक-हस्तैश्च नागरैर् भरतो वृत:,
शङ्ख-भेरी-निनादेन वन्दिभिश्चाभिनन्दित:, १५

पादुके द्वे गृहीत्वा च शिरसा, धर्म-को-विद:,
पाण्डरं छत्रमादाय शुक्ल-माल्य-वि-भूषितम्, १६

शुक्ले च वाल्-व्यजने महार्हे हेम-भूषिते,
प्रत्युद्-ययौ तदा रामं, महात्मा, मन्त्रिभि: सह । १७

ततो यानान्युपारूढा:, सर्वा दशरथ-स्त्रिय:,
कौशल्यां प्र-मुखे कृत्वा सुमित्रां चैव, निर्ययु: । १८

अश्वानां खुर-शब्देन, रथ-नेमि-स्वनेन च,
शङ्ख-दुन्दुभि-नादेन सं-चचाल च मेदिनी । १९

अभ्यन्तरा: सैनिका:, guards, sentinels. गण:—२७ गजा: २७ रथा: ८१ १३५ पदातिकाश्चेति समुदायेन २७० संख्या-युक्ता सेना । अभिक्रामन्तु—अभिमुखं गच्छन्तु । १२ । कक्ष्या—वरत्रा, हस्तिन: कटि-बन्ध: । १३ । ऋष्टि:, रिष्टि:—खड्ग: । पाश:—कूट-बन्ध:, a noose. १९ । नेमि:—चक्र-प्रान्त:, चक्रस्य भूमि-स्पर्शि-भाग: ।

हर्षेणाति-समुत्कृष्टो निस्वनो दिवमाविशत्,
बाल-स्त्री-वृद्ध-सङ्घानां, रामो ऽयमिति शंसताम्। २०
रथ-कुञ्जर-वाजिभ्यस्ते ऽवतीर्य, महीं गताः,
ददृशुस्तं विमान-स्थं नराः, सोममिवाम्बरे। २१
ततो विमानाग्र-गतं, भरतो भ्रातरं मुदा
ववन्दे, प्र-णतो भूत्वा, मेरु-स्थमिव भास्करम्। २२
आरोपितो विमानं, तु, भरतः, सत्य सङ्गरः,
राममासाद्य, मुदितो, भूय एवाभ्यवादयत्। २३
तं समुत्थाप्य काकुत्स्थश्चिरस्याक्षि-पथं गतम्,
अङ्के भरतमारोप्य, मुदितः, परिषस्वजे। २४
न्यायतश्च, समासाद्य, भरतेन महात्मना
वन्दितौ चरणौ देव्याः सीतायाः, संयतात्मना। २५
सुग्रीवं, कैकयी-पुत्रो जाम्बवन्तं तथाङ्गदम्,
मैन्दं, द्विविद-नीलौ च ऋषभं चैव सस्वजे; २६
विभीषणं च भरतः सान्त्वं वचनमब्रवीत्,—
"दिष्ट्या त्वया सहायेन कृतं कर्म्म सु-दुष्करम्।" २७
शत्रुघ्नश्च, तदा, राममभिवाद्य च लक्ष्मणम्,
सीतायाश्चरणौ पश्चाद् विनयेनाभ्यवादयत्। २८

२०। समुत्कृष्टः—समुदीरितः, उच्चैरुच्चारितः। शंसताम्—कथयताम्। २१। सोमम्—चन्द्रम्। २२। अग्रम्—उन्नतम् देशः। मेरुः—सुमेरु-पर्वतः, उदयाचलः। २३। अभ्यवादयत्—अभ्यवादयत, ववन्दे। परस्मैपदमार्षम्। २४। परिषस्वजे—आलिलिङ्ग। २५। न्यायतः—समञ्जसम्, सदाचारमनुसृत्य इत्यर्थः। संयतात्मना—संयत-मनसा। २६। च ऋषभम्—सन्ध्यभाव आर्षः। २७। सान्त्वम्—सान्त्वं मधुरम्।

रामो, मातरमासाद्य विवर्णां शोक-कर्शिताम्,
जग्राह, प्र-णतः, पादौ, मनो मातुः प्रहर्षयन्। २९

ततो, रामाभ्यनुज्ञातं, तद् विमानं, मनो-जवम्,
हंस-युक्तं महा-वेगं, निपपात मही-तले। ३०

पादुके ते तु रामस्य, गृहीत्वा, भरतः स्वयम्
चरणाभ्यां नरेन्द्रस्य योजयामास, धर्म-वित्। ३१

अब्रवीच् च तदा रामं भरतः, संहताञ्जलिः,—
"एतत् ते स-कलं राज्यं न्यासो निर्यातितो मया। ३२

अद्य जन्म यथार्थं मे, संवृत्तश्च मनो-रथः,
यस्त्वां पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम्। ३३

अवेक्षतां भवान् भोगं, कोषागारं, बलं, पुरम्—
भवतस्तेजसा सर्वं कृतं दश-गुणं मया।" ३४

मूर्धन्याघ्राय, कौशल्या, तावुभौ राम-लक्ष्मणौ,
अङ्के सीतामथारोप्य, शोकमात्म-गतं जहौ। ३५

एक-विंशः सर्गः।

अभिषेकः।

ततः, प्रभाते, वि-मले, मुहूर्ते ऽभिजिति, प्रभुः
वशिष्ठः, पुष्य-योगेन, ब्राह्मणैः परिवारितः, १

३०। हंस-युक्तम्—कृत्रिम-हंसालङ्कृतम्। ३२। एतत्—एतावत्-कालम्। 'स-कलं (समग्रम्, अ-खण्डम्) राज्यं न्यासः (उपनिधिः, a trust) [इव] ते (तुभ्यं) मया निर्यातितः (निवेदितः)' इत्यन्वयः। ३४। अवेक्षताम्—परिपश्यतु। अवेक्षणं परिदर्शने। भोगः—भोग्य-वस्तु-समूहः।

१। मुहूर्तम्—अहो-रात्रस्य त्रिंशद्-भागैक-भागः। अभिजित्—दिवसस्य अष्टमं मुहूर्तम्।

रामं रत्नमये पीठे, प्राङ्-मुखं, सह सीतया,
उपवेश्य महात्मानं, महर्षि-विहितेन तु, २

वशिष्ठो, वाम-देवश्च, जाबालिर् विजयस्तथा,
काश्यपो गोतमश्चापि, तथा कात्यायनो द्विजः, ३

विश्वामित्रश्च तेजस्वी, तथान्ये द्विज-पुङ्-गवाः
अभ्यषिञ्चन् नर-वरं प्रसन्नेन सु-गन्धिना
सलिलेन, सहस्राक्षं वसवो वासवं यथा । ४

ऋत्विग्भिर् ब्राह्मणैः पूर्वं कन्याभिश्च यथा-क्रमम्,
बल-मुख्यैः प्र-हृष्टैश्च त्वभिषिक्तः, स-नैगमैः, ५

सर्वौषधि-रसैश्चैव दैवतैर् नभसि स्थितैः
अभिषिक्तो, रराजाथ, श्रिया परमया युतः । ६

छत्रं तस्य तु जग्राह शत्रुघ्नः, पाण्डरं, शुभम् ;
शुक्लं च बाल-व्यजनं सुग्रीवो, वानरेश्वरः । ७

अपरं चन्द्र-सङ्काशं बाल-व्यजनमुत्तमम्,
हृष्टो, रामस्य, जग्राह राक्षसेन्द्रो विभीषणः । ८

मालां ज्वलन्तीं वपुषा, काञ्चनीं, शत-पुष्कराम्,
राघवाय ददौ वायुर्, वासवेन प्रदेशितः । ९

२। पीठे—आसने, सिंहासने इत्यर्थः। ४। प्रसन्नेन—निर्मलेन, [वैदिक मन्त्र-मन्त्रितत्वात्] पूत-पवित्रेण च। ५। कन्याभिः—कुमारीभिः। 'षोडश-संख्याभिः' इति शेषः। Cf. उपरिष्टात् ४।५।२५, पृ. २२२। बल-मुख्यैः—सेना-नीभिः। नैगमाः—वणिजः। ६। रराज—शुशुभे। 'सः' इति शेषः। ९। शत-पुष्कराम्—शत-मणिमय-पद्म-निर्मिताम्। प्रदेशित—आदिष्टः।

यथार्हश्च, समागम्य, मणि-रत्न-समायुतम्
मुक्ता-हारं च रामाय ददौ, शक्र-प्रचोदितः । १०

अवपयस्तुष्टुवुश् चैनं वर्धयन्तो जयाशिषा,
प्र-जगुर् देव-गन्धर्वा, ननृतुश् चाप्सरो-गणाः । ११

अवमुच्यात्मनः कण्ठाद् हारं, जनक-नन्दिनी
ऐक्षिष्ट वानरान् सर्वान् भर्तारं च मुहुर् मुहुः । १२

तानीङ्गितानि सम्-प्रेक्ष्य, बभाषे राघवः प्रियाम्,—
"प्र-यच्छ, सु-भगे, हारं यस्य तुष्टासि, मैथिलि" ।
ददौ सा वायु-पुत्राय तं हारमसितेक्षणा । १३

द्वा-विंशः सर्गः ।

राम-राज्यम् ।

अहन्यहनि रामस्तु कार्याणि स्वयमेव हि
प्रत्यवैक्षत धर्मात्मा सह भ्रातृभिर-च्युतः । १

धर्मेण रक्षतस्तस्य, हृष्ट-पुष्ट-जनाकुला,
बभूव पृथिवी सर्वा धन धान्य-समन्विता । २

निर्दस्युरभवल् लोको, नानर्थः कश्चिदस्पृशत्,
न चापि वृद्धा बालानां प्रेत-कार्याणि कुर्वते । ३

सर्वं प्र-मुदितं चासीत्, सर्वो धर्म-परो जनः—
दृष्ट्वा धर्म-परं रामं न चाहिंसत् परस्परम्, ४

१ । प्रत्यवैक्षत—परिददर्श, पर्यालोचयामास । अ-च्युतः—अ-चञ्चलः । २ । रक्षतस्तस्य—रक्षति तस्मिन् । षष्ठी चार्षी । पा. २।३।२७ । ३ । अनर्थः—अनिष्टम् । कुर्वते—

आसीद् वर्ष-शतायुश्च, तथा पुत्र-सहस्रवान्,
निरामयो वि-शोकश्च, रामे राज्यं प्र-शासति । ५

नित्य-पुष्पा नित्य-फलास्तरवस्तत्र निर्व्रणाः ;
काले वर्षति पर्जन्यः, सुख-स्पर्शश्च मारुतः । ६

स, राज्यम-खिलं प्राप्य, निहतारिर्, महा-यशाः,
ईजे बहु-विधैर् यज्ञैर् महद्भिश्च् आप्त-दक्षिणैः । ७

धन्यं यशस्यमायुष्यं, राज्ञां च विजयावहम्,
आदि काव्यं महत्त्वेतत् पुरा वाल्मीकिना कृतम् । ८

इत्यार्षे श्री-लघु-रामायणे, वाल्मीकीये, त्रि-साहस्र्यां संहितायां,
युद्ध-काण्डम् ।

चक्रिरे । कथायामतीते लट् । ६ । वर्षति—अवर्षत् । कथायामतीते लट् । सुख-स्पर्शः—'आसीत्' इति शेषः । ७ । अ-खिलम्—समग्रम् । ईजे यज्ञैः—यज्ञान् चक्रे । आप्त-दक्षिणैः—बहु-दक्षिणैः । Cf. मनुः, ७।७९,—'यजेत राजा क्रतुभिर् विविधैराप्त-दक्षिणैः' । ८ । धन्यम्—धनाय हितम्, धनस्य निमित्तं वा । एवं यशस्यमायुष्यमिति पद-द्वयमपि व्याख्येयम् । Cf. मनुः, ३।१०६,—'धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वातिथि-पूजनम्' ।

अनन्वयम्—'धृत-धनुषं रघुनन्दनं जगामि' इत्युत्तर-चरिते (१।१) महा-कवि-प्रयोग-दर्शनात् 'धनुषश्च' (पा. ५।४।१३२) इति सूत्रेणानेन समासान्त-विधेर-नित्यत्वं स्वी-कृत्य, 'शेषाद् विभाषा' (पा. ५।४।१५४) इति सूत्रेणैव, उपरिष्टात् (पृ २९४ & २९६) कृतौ सन्निवेशिते 'छिन्न-धनुष्कम्' 'छिन्न-धनुष्कः' चेति पदे, साधिते ऽपि, विमृश्यमाने, 'अधिज्य-धन्वा (रघु. ३।८) इति 'अनङ्ग-निषङ्ग-धन्वा' (कुमा. ४।२२) इति च कालि-दास-प्रयोग-बलात्, महा-भाष्य-मते शेष-शब्देन अनुक्त-समासान्त-विधेर् निर्देशाच् च, क्रमेण 'छिन्न-धन्वानम्' 'छिन्न-धन्वा' चेति भवतः इति ।

इति मणि-किरणे नाम लघु-रामायण-वृत्तौ युद्ध-काण्डम् ।

अथ

श्री-लघु-रामायणे

उत्तर-काण्डम्।

प्रथमः सर्गः।

प्रमोद-वनम्।

बह्वासन-गृहोपेतां लता-पादप-संवृताम्
अशोक-वनिकां स्फीतां प्रविश्य, रघु-नन्दनः, १

आसने सु-शुभाकारे पुष्प-प्राकार-भूषिते
कुथास्तरण-संस्तीर्णे रामः सं-निषसाद ह। २

सीतामादाय बाहुभ्यां मधुमैरेयकं, शुचि,
पाययामास काकुत्स्थः, शचीमिन्द्रो यथामृतम्। ३

मांसानि च सु-मृष्टानि, विविधानि फलानि च
रामस्याभ्यवहारार्थं किङ्करास्तूर्णमाहरन्। ४

१। बह्वासन-गृहोपेताम्—बहूनाम् आसनानाम् उपवेशन-गृह-युताम्। २। प्राकारः—वेष्टनम्। कुथास्तरण-संस्तीर्णे—कुथः (चित्र-कम्बलम्) एव आस्तरणम् (उत्तर-च्छदः); तेन संस्तीर्णे (आच्छादिते)। सं-निषसाद—उपविवेश। ३। मधु—मद्यम्। मैरेयकम्—मिरा-देश-जातं मादोद्दीपकं वा मद्यम्। पाययामास—क्रिया-फलस्य कर्त्तृ-गामित्वाभावात् परस्मैपदम्। Cf. पा. १।३।८९। ४। सु-मृष्टानि—सु-शोधितानि। अभ्यवहारः—भोजनम्। तूर्णम्—शीघ्रम्।

अप्सरो-गण-सङ्घाश्च—नृत्य-गीत-विशारदाः
दक्षिणा रूपवत्यश्च स्त्रियः—पान-वशं गताः,
उपानृत्यन्त रामस्य, सीताया हर्ष-वर्धनाः । ५

एवं रामो, मुदा युक्तः सीतां, सु-रुचिराननाम्,
रमयामास वैदेहीमहन्यहनि देववत् । ६

तथा च रममाणस्य तस्याथ शिशिरागमः
व्यतीतः, पुरुषेन्द्रस्य राघवस्य, महात्मनः । ७

द्वितीयः सर्गः ।

दोहदः ।

पूर्वाह्णे पौर-कार्याणि कृत्वा धर्मेण, धर्म-वित्
शेषं दिवस-भागार्धमन्तः-पुर-गतोऽनयत् । १

सीतापि, देव-कार्याणि कृत्वा पौर्वाह्णिकानि च,
श्वश्रूणामकरोत् पूजां सर्वासाम-विशेषतः ; २

अभ्यगच्छत् ततो रामं, विचित्राभरणाम्बरा,
त्रिपिष्टपे सहस्राक्षमुपविष्टं यथा शची । ३

दृष्ट्वा तु राघवः पत्नीं कल्याणेन समन्विताम्,
प्रहर्षम-तुलं लेभे, साधु साध्विति चाब्रवीत् ; ४

५। दक्षिणाः—दक्षाः, कुशलाः, निपुणाः । पान वशं गताः—मद्य पान-सम्भूत-मद-वशं गताः । उपानृत्यन्त रामस्य—रामस्य समीपे अनृत्यन् । आत्मने-पदमार्षम् ।
६ । सु-रुचिराननाम्—अति-सुन्दर-मुखीम् । ७ । राघवस्य—अनादरे षष्ठी ।
दोहदः—गर्भिण्या आकाङ्क्षा ।

अब्रवीच् च वरारोहां सीतां, सुर-सुतोपमाम्,—
"अपत्य-कालो, वैदेहि, तवायं समुपस्थितः।
किमिच्छसि, वरारोहे? कामः कः क्रियतां तव?" ५

स्मितं कृत्वा, तु, वैदेही रामं वाक्यमथाब्रवीत्,—
"आश्रमाणि पवित्राणि द्रष्टुमिच्छामि, राघव, ६

गङ्गा-तीर-निविष्टानि, ऋषीणामुग्र-तेजसाम्
फल-मूलाशिनां, देव, पाद-मूलमुपासितुम्। ७

पर एव हि कामो मे, यन् मूल-फल-भोजिनाम्,
अप्येक-रात्रिं, काकुत्स्थ, निवसेयं तपो-वने।" ८

तथेति च प्रतिज्ञातं रामेणाक्लिष्ट-कर्मणा।
"विस्रब्धा भव, वैदेहि,—गमिष्यसि तपो-वनम्"— ९

एवमुक्त्वा, तु, काकुत्स्थो मैथिलीं, जनकात्म-जाम्,
अन्य-कक्षान्तरं तस्मान् निर्जगामाथ वेश्मनः। १०

तृतीयः सर्गः।

अपवादः।

उपविष्टस्ततो, रामः, सुहृद्भिः परिवारितः,
कथानां बहु-रूपाणामशृणोत् सार-विस्तरम्। १

ततः कथायां कस्याञ्चिद् राघवस्तानभाषत,—
"काः कथा इह वर्तन्ते पुरे जनपदे तथा?" २

५। कामः—मनो-रथः। ७। निविष्टानि ऋषीणाम्—सम्बन्धे भाव आर्षः।
१०। अन्यकक्षान्तरम्—अन्य-शब्दो ऽत्यातिरिक्त एव। 'मध्य-कक्षान्तरम्' इति प्रतीच्यामवाच्यां च पाठः।

१। कथा—आलापः (talk), जल्पः (gossip). सार-विस्तरम्—सारस्य

एवमुक्ते तु रामेण, भद्रः प्राञ्जलिरब्रवीत्,—
"शुभाशुभाः कथा, राघव, वर्तन्ते पुर-वासिनाम्"। ३

एवमुक्तस्तु भद्रेण राघवो वाक्यमब्रवीत्,—
"कथय त्वं यथा-तत्त्वं सर्वं निरवशेषतः। ४

शुभाशुभानि वाक्यानि, यान्याहुः पुर-वासिनः,
कथय त्वं, सु-विस्रब्धो, निर्भयो, वि-गत-ज्वरः।" ५

राघवेणैवमुक्तस्तु, भद्रः सु-रुचिरं वचः
प्रत्युवाच महा-बाहुं, प्राञ्जलिर्, वाक्य-को-विदः,— ६

"शृणु, राजन्, यथा पौराः कथयन्ति शुभाशुभम्
चत्वरायन-रथ्यासु वनेषूप-वनेषु च,— ७

'दुष्करं कृतवान् रामः समुद्रे सेतु-बन्धनम्;
रावणश्च दुराधर्षो हतः स-बल-वाहनः। ८

कीदृशं हृदये तस्य सीता-सङ्गम-जं सुखम्,
अङ्कमारोप्य या पूर्वं रावणेन हृता बलात्? ९

लङ्कां चापि पुरीं नीतामशोक-वनिकां गताम्—
कथं रक्षो-वशं प्राप्तां रामः कुत्सयते न ताम्? १०

अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति।
यच्-छीलो हि भवेद् राजा, तच्-छीला च प्रजा भवेत्'।" ११

(शेषांशस्य) विस्तरः (प्रपञ्चः), तम्। ५। विगत-ज्वरः—मनः सन्ताप-शून्यः, निरुद्वेगः। ६। सु-रुचिरम्—सु-मधुरम्। वाक्य-को-विदः—वाक्-चतुरः, वाग्-विशारदः। ७। चत्वरम्—चतसृणां रथ्यानां सङ्गमः, চৌরাস্তা। अयनम्—हट्टम्। 'चत्वरापण-रथ्यासु' इति प्रतीच्यां पाठः। आपणः—हट्टः, क्रय-विक्रय-स्थानम्। १०। कुत्सयते—जुगुप्सते, abhors.

तस्य श्रुत्वाप्रियं वाक्यं, राघवः, परमार्तवत्,
उवाच सर्वान् सुहृदः कथमेतदिति, प्रभुः। १२

शिरोभिस्ते, ततो, राममभिगम्य प्रणम्य च,
ऊचुर् नरपतिं दीनम्,—"एवमेतत्, न संशयः"। १३

श्रुत्वा तु वाक्यं, काकुत्स्थः, सर्वेस् तत् समुदीरितम्,
विसर्जयामास ततः सर्वां स्तान् सुहृदः, प्रभुः। १४

चतुर्थः सर्गः।

मन्त्र-भवनम्।

विसृज्य तु सुहृद्-वर्गं, बुद्ध्या निश्चित्य, राघवः
समीपे द्वा-स्थमासीनमिदं वचनमब्रवीत्,— १

"शीघ्रमानय सौमित्रिं लक्ष्मणं शुभ-लक्षणम्,
भरतं च महा-बाहुं, शत्रुघ्नं चापराजितम्"। २

आज्ञप्तास्ते नरेन्द्रेण, कुमाराः सूर्य-वर्चसः,
प्रह्वाः, प्राञ्जलयो भूत्वा, विविशुस्ते, समाहिताः। ३

शिरोभिस् ते तदा राममभिवाद्य, नृपात्म-जाः,
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे। रामो ऽप्यश्रूण्यवर्तयत्। ४

तान् परिष्वज्य बाहुभ्यां हार्देन, मनुजाधिपः,
आसनेष्वाध्वमित्युक्त्वा, ततो, वाक्यं जगाद ह,— ५

१२। परमार्तवत्—परम-दुःखीव आकारं कृत्वा।

१। निश्चित्य,—'कर्तव्यम्' इति शेषः। द्वा-स्थः (द्वाः + स्थः)—द्वाः-स्थः, द्वार-स्थः। 'खर्परे शरि वा विसर्ग-लोपो वक्तव्यः' (पा.८।३।३६ *।) इति वार्त्तिकेन विसर्गस्य वैकल्पिको लोपः। ५। हार्देन — स्नेहेन। 'सौहार्देन' इति गोरेसियोः पठति। आध्वम्

"भवन्तो मम सर्व-स्वं, भवन्तो मम जीवितम्,
भवतां च कृते राष्ट्रं पालयामि, महा-बला: । ६
भवन्त: सर्व-शास्त्र-ज्ञा, बुद्धौ च परि-नि-ष्ठिता: ;
तद् भवद्भि: सहार्थो ऽयमन्वेष्टव्यो, नरर्षभा: ।" ७

तथा ब्रुवति काकुत्स्थे, ते च, ध्यान-परायणा:,
उद्विग्न-मनसो, दध्यु:,—'किं नो राजा वदिष्यति ?' ८
तेषां, समुपविष्टानां, सर्वेषां, दीन-चेतसाम्,
अश्रु-पूर्ण-मुखो राम इदं वचनमब्रवीत्,— ९
"सीतापवाद:, सु-महान्, पौर-जानपदै: कृत:,
चारित्रं प्रति वैदेह्या, अज्ञानात्, मन्द-बुद्धिभि: । १०
अ-यश: सु-महद्, वीरा:, पुरे जन-पदे तथा
वर्तते मयि, बीभत्सं । तन् मे मर्माणि कृन्तति । ११
अहं किल कुले जात इक्ष्वाकूणां, महात्मनाम्—
सीतां पाप-समाचारामानयेयं पुन: कथम् ? १२
प्रत्यक्षं तव, सौमित्रे, देवानां च, हुताशन:
अ-पापां मैथिलीं प्राह, वायुश्चाकाश-गोचर: । १३
अन्तरात्मा च मे वेत्ति सीताया गुण-विस्तरम् ।
अतो गृहीत्वा वैदेहीमयोध्यामहमागत: । १४

(आस्+ध्वम्)—उपविशत । 'धि च [प्रत्यये परे सस्य लोप: स्यात्]' (पा. ८।२।२५) इति आम: स-लोप: । ७ । बुद्धौ परि-नि-ष्ठिता:—विचार-चतुरा: । परि-नि-ष्ठिता: —कुशला:, निपुणा: । अन्वेष्टव्य:—अनुसरणीय: । ९ । तेषाम्—तान् । सम्बन्ध-विवक्षया कर्मणि षष्ठी । ११ । बीभत्सम्—कुत्सितम् । १३ । हुताशन:—हुतम् (अग्नौ प्रक्षिप्त घृतादि) अशनं (भक्ष्यं वस्तु) यस्य स:, अग्नि: ।

अयं महान-धर्मो मे शोकश्च हृदि वर्तते—
पौरापवादः सु-महां स्तथा जन-पदस्य च । १५

अपि स्वं जीवितं जह्यां युष्मान् वा, पुरुषर्षभाः,
अपवाद-भयाद् भीतः,—किं पुनर् जनकात्म-जाम् ? १६

ते मां भवन्तः पश्यन्तु पतितं शोक-सागरे ;
न हि पश्याम्यतो भूयः किञ्चिद् दुःखतरं मम । १७

श्वस्त्वं प्रभाते, सौमित्रे, सुमन्त्राधिष्ठितं रथम्
आरुह्य, सीतामारोप्य, विषयान्ते समुत्सृज । १८

गङ्गायास् तु परे पारे, वाल्मीकेः, सु-महात्मनः,
आश्रमो दिव्य-सङ्काशस्तमसा-तीरमाश्रितः । १९

तत्रैनां वि-जने ऽरण्ये उत्सृज्य, रघु-नन्दन,
शीघ्रमागच्छ, सौमित्रे—कुरुष्व वचनं मम । २०

न चास्मि प्रति-वक्तव्यः सीतां प्रति कदाचन ;
अ-प्रीतिर् हि परा मे स्याद्, वचने ऽस्मिन् विचारिते । २१

पूर्वं हि कामो वैदेह्या गङ्गा-तीरे यथाश्रमान्
द्रष्टुमिच्छेयमित्युक्तः, स कामः क्रियतां तथा ।" २२

पञ्चमः सर्गः ।

विसर्जनम् ।

"गङ्गा-तीरेषु रम्येषु मुनीनामाश्रमान् शुभान्
उपनेयासि मे, देवि, शासनात् पार्थिवस्य हि,"— १

१८ । विषयान्ते—विषयस्य ([स्व-] देशस्य) अन्ते (प्रान्ते, सीम्नि) । १९ । दिव्य-सङ्काशः—स्वर्गीय-[देश]-सदृशः । २० । अरण्ये उत्सृज्य—सन्ध्यभाव आर्षः ।

एवमुक्ता तु, वैदेही, लक्ष्मणेन, महात्मना,
प्र-हर्षम-तुलं लेभे, चक्रे च गमने मतिम्। २

श्वश्रूणां, सा तु, सर्वासां कृत्वा पादाभिवन्दनम्;
पुनरागमनायेति ताभिश्च प्रति-नन्दिता, ३

सु-बहूनि तु जग्राह दिव्यान्याभरणानि, सा,
वासांसि च महार्हाणि रत्नानि विविधानि च; ४

गृहीत्वा, सा च वैदेही ततो लक्ष्मणमब्रवीत्,—
"इमानि ऋषि-पत्नीभ्यो दास्याम्याभरणान्यहम्"। ५

सौमित्रिस्तु, तथेत्युक्ता, रथमारोप्य मैथिलीम्,
प्र-ययौ, शीघ्र-तुरगो, रामस्याज्ञामनु-स्मरन्। ६

ततो वासमुपागम्य गोमती-तीर आश्रमे,
प्रभाते पुनरुत्थाय, सौमित्रिः सूतमब्रवीत्,— ७

"योजयस्व हयां स्तूर्णम्—अद्य भागीरथी-जलम्
शिरसा धारयिष्यामि, त्र्यम्बकः पतितं यथा"। ८

अथार्ध-दिवसं गत्वा, प्राप्य भागीरथीं नदीम्,
निरीक्ष्य, लक्ष्मणो वीरः प्र-रुरोद, महात्मवान्। ९

सीता, तु, परम-त्रस्ता, दृष्ट्वा लक्ष्मणमातुरम्,
उवाच वाक्यं, धर्म-ज्ञा,—"किमर्थं रुद्यते त्वया? १०

५। इमानि ऋषि पत्नीभ्यः—सम्प्रदान आर्षः। ८। त्र्यम्बकः पतितं यथा—पुरा किल गङ्गा भगीरथ-प्रार्थनया सगर-पुत्रान् पावयितुमाकाशादवततार। सा स्रोतो-वेगेन मेदिनीं मा दारयतु इति शिवो हिमाचल-शृङ्गमधिरुह्य समन्ततः शैल कन्दर-सन्निभं विपुलं जटा-कलापं विनिकीर्य तां निपतन्तीं शिरसि धारयामास। त्र्यम्बकः—त्रीणि [चन्द्र-सूर्याग्नि-रूपाणि] अम्बकानि (नेत्राणि) यस्य सः, शिवः। ९। महात्मवान्—

ममापि दयितो रामो जीवितादपि, लक्ष्मण;
न चाहमेवं शोचामि यथैव बालिशो भवान्। ११
तारयस्व च मां गङ्गां दर्शयस्व च तापसान्।
तेभ्यो रत्नानि वासांसि दास्याम्याभरणानि च। १२
तत: कृत्वा महर्षीणां यथार्हमभिवादनम्,
उषित्वैकां निशां तत्र, यास्यामि नगरीं तत:।” १३

अथ नावं प्र-विस्तीर्णां नैषादीं राघवानुज:
आरुरोह, समायुक्तां, पूर्वमारोप्य मैथिलीम्। १४
ततस्तीरमुपागम्य भागीरथ्या:, स लक्ष्मण:
उवाच मैथिलीं वाक्यं, प्राञ्जलिर्, बाष्प-विह्वल:,— १५
“हृद्-गतो मे महान् शल्यो, यस्मादार्येण धीमता
अस्मिन् निमित्ते लोकस्य नीतो ऽहं वचनीयताम्। १६
मरणं हि मम श्रेयो यदन्यद् वाप्यतो ऽधिकम्,
न त्वस्मिन्नीदृशे कार्ये नियोगो, लोक-निन्दिते। १७
प्रसीद च, न मे रोषं कर्तुमर्हसि, मैथिलि।”
इति, कृत्वाञ्जलिं, भूमौ निपपात स लक्ष्मण:। १८

रुदन्तं प्राञ्जलिं दृष्ट्वा, काङ्क्षन्तं मृत्युमात्मन:,
मैथिली, भृश-संविग्ना, लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत्,— १९

परम-धैर्य-शील:। ११। बालिश:—शिशु:, ছেলে মানুষ। १४। नैषादीं—निषादस्य (चण्डालस्य)। १६। अस्मिन् निमित्ते—अस्मिन् क्रूर-कर्मणि प्रवृत्त्या। हेतुत्व-द्योतके भावेन भाव-लक्षणे सप्तमी। पा. २।३।३७। वचनीयताम्—निन्दाम्। १७। वाप्यत:—अतो ऽपि (मरणादपि) वा। 'वान्यत:' इति पठन् गोरेसियोरभ्रमत्। १८। रोष:—क्रोध:।

किमिदं—नावगच्छामि—ब्रूहि तत्त्वेन, लक्ष्मण ;
पश्यामि त्वां न हि स्व-स्थम्। अपि क्षेमं मही-पतेः ? २०

श्रापितो ऽसि नरेन्द्रेण, यदि सन्तापमात्मनः
न ब्रूयाः सन्निधौ मह्यम्—अहमाश्रापयामि ते ।" २१

वैदेह्या चोद्यमानस्तु, लक्ष्मणो, दीन-मानसः,
अवाङ्-मुखो, वाष्प-कलं वाक्यमेतदुवाच ह,— २२

"श्रुत्वा परिषदो मध्ये परिवादं, सु-दारुणम्,
पुरे जन-पदे चैव, त्वत्-कृते, जनकात्म-जे, २३

सा त्वं त्यक्ता नरेन्द्रेण, साध्वी, कुल समन्विता ।
इहाश्रमेषु च मया त्यक्तव्या त्वं भविष्यसि ।" २४

श्रुत्वा तु लक्ष्मणस्यैतद् वचनं, जनकात्म-जा
परं विषादमागच्छन्, मेदिन्यां निपपात च । २५

सा, मुहूर्तमिवासंज्ञा, वाष्प पर्याकुलेक्षणा,
लक्ष्मणं जानकी वाक्यमुवाचातीव दुःखिता,— २६

"किन् नु पापं कृतं पूर्वं, को वा दारैर् वियोजितः,
याहं, शुद्ध-समाचारा, त्यक्ता नृ-पतिना, सती ? २७

पुराहमाश्रमे वासं, निरता राम-पादयोः,
अनुरुध्यामि, सौमित्रे, दुःखे च परिवर्तिनी । २८

२१। सन्निधौ मह्यम्—'सन्निधौ' इति पदमतिरिक्तम्। २२। वाष्प-कलम्—वाष्पेण (वाष्प-वश-कण्ठतया) कलम् (मधुरम् अस्फुटं च)। २३। परिवादः, परीवादः—अपवादः, निन्दा। २४। कुल-समन्विता—सद्-वंश-जाता। आश्रमेषु च—'आश्रमान्तेषु' इति गौड़ीयं पाठान्तरम्। त्यक्तव्या भविष्यसि—'भविष्यसि' इति पदमतिरिक्तम् भाति। २७। वियोजितः—'मया' इति शेषः। सती—साध्वी, अ-दुष्टा।

सा कथं त्वाश्रमे, सौम्य, वत्स्यामि, वि-जनी-कृता ?
किं च वक्ष्यामि सिद्धेषु, किं मयापकृतं नृ-पे ? २९

न खल्वद्यैव, सौमित्रे, जीवितं जाह्नवी-जले
त्यजेयं—राज-वंशस्तु भर्तुर् मे परि-हास्यते। ३०

यथाज्ञां कुरु, सौमित्रे,—त्यज मां, दुःख-भागिनीम्।
निदेशे स्थीयतां राज्ञः। शृणु चेदं वचो मम,— ३१

श्वश्रूणाम-विशेषेण, प्राञ्जलि-प्र-ग्रहेण च
शिरसा वन्दनं कुर्याः, सर्वासामेव, लक्ष्मण। ३२

वक्तव्यश्चैव नृपतिर्,—'धर्मेण सु-समाहितः,
यथा भ्रातृषु, वर्तेथास् तथा पौरेषु नित्यशः। ३३

अहं तु नानुशोचामि स्व-शरीरं, नरोत्तम,
यथापवादं पौरेभ्यस्तथैव, रघु-नन्दन। ३४

तन् न शोके मनः कार्यं मद्-विनाशे, नराधिप ;
अपवाद-भयात् त्यक्त्वा मां, न शोको ऽस्तु ते पुनः।' ३५

अहं तु खलु नात्मानमनु-शोचामि, लक्ष्मण ;
यदहं जन-वादेन त्यक्ता—दोषेण नात्मनः। ३६

२८। अनुवर्त्स्यामि—अनुवर्त्स्ये, अन्ववर्तिषि, धर्म-बुद्ध्या अकार्षि। परस्मै-पदमार्षम्। 'वर्तमान-सामीप्ये वर्तमानवद् वा' इति आसन्नातीते लट्। पा ३।३।१३१। परिवर्तिनी—भ्राम्यन्ती। २९। वि-जनी-कृता—[इष्ट-] जन-रहिता कृता। सिद्धेषु—जीवन्मुक्तेषु [तापसेषु]। ३०। जीवितम्—'किं प्राणान्' इति गौडीयं पाठान्तरम्। राज-वंशः—राज-सन्तानः। परि-हास्यते—विच्छेत्स्यते। 'मयि गर्भस्य विद्यमानत्वात्' इति शेषः। ३२। प्राञ्जलि-प्रग्रहेण—प्रकृष्टाञ्जलि-ग्रहण-समेतेन। ३६। जन-वादः—जनेषु (लोकेषु) वादः (अपवादः)।

पतिर् हि देवता नार्याः, पतिर् बन्धुः, पतिर् गुरुः ;
प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः।" ३७

एवं तु वादिनीं सीतां लक्ष्मणो, दीन-मानसः,
मूर्धाभिवाद्य भूमौ वै, व्याहर्तुं न शशाक ह। ३८

प्रदक्षिणं तु तां कृत्वा, प्र-रुदन्नति-निस्वनम्,
आरुरोह पुनर् नावं, नाविकं चाभ्यचोदयत्। ३९

स, गत्वा चोत्तरं तीरं, शोक-भार-समन्वितः,
सम्-मूढ इव दुःखेन, रथमारूढवान् पुनः। ४०

मुहुर् मुहुरथावृत्य, पश्यन् सीताम-नाथवत्,
चेष्टमानां, परे पारे लक्ष्मणः प्र-ययौ तदा। ४१

दूर-स्थं च रथं दृष्ट्वा लक्ष्मणं च मुहुर् मुहुः,
निरीक्षमाणामुद्विग्नां सीतां शोकः समाविशत्। ४२

सा, दुःख-भारार्ति-नि-पीड़िता सती,
यशस्विनी, नाथम-पश्यती, भृशम्
रुरोद तस्मिन् बहु-बर्हिणे वने,
महा-स्वनं, वाष्प-समाकुलेक्षणा। ४३

षष्ठः सर्गः।

निर्वासिता।

सीतां तु रुदतीं दृष्ट्वा, ये तत्र मुनि-दारकाः,
दुद्रुवुस् ते तदा सर्वे वाल्मीकिं मुनि-पुङ्-गवम्। १

३८। व्याहर्तुम्—वक्तुम्। ३९। अभ्यचोदयत्—चालयामास, न्ययुङ्क्त। ४१। आवृत्य—प्रत्यावृत्य। ४३। अ-पश्यती—अ-पश्यन्ती। पुनरागमनाभाव भावः। बर्हिणाः—मयूराः।
१। दारकाः—पुत्राः। दुद्रुवुः—अभिधावन्ति स्म।

ते, ऽभिवाद्य ततः पादौ, मुनि-पुत्रा महर्षये
कारुण्यात् कथयामासुस् तां तत्र रुदतीं तदा,— २

"अ-चिन्त्य-रूपा, भगवन्, कस्याप्येका महात्मनः,
इतो लक्ष्मीरिवापन्ना, वि-रौति भृशमाकुला। ३

भगवन्, साधु, पश्यैनां, देवतामिव खाच् च्युताम्।
मन्यामहे ऽ-मानुषीं तां—सत्-क्रियास्याः प्रयुज्यताम्।"४

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा, बुद्ध्या निश्चित्य, धर्म-वित्,
तपसा दिव्य-चक्षुष्मान्, प्राद्रवद् यत्र मैथिली। ५

तं प्रयान्तमभिप्रेक्ष्य, शिष्याः सर्वे तदान्वयुः,
अर्घ्यमादाय रुचिरं, जाह्नवी-तीरमागमन्। ६

ततः सीतां सु-दुःखार्तां वाल्मीकिर्, मुनि-पुङ्गवः,
उवाच मधुरां वाणीं, साम्ना प्र-ह्लादयन्निव,— ७

"स्नुषा दशरथस्य त्वं, रामस्य महिषी प्रिया,
जनकस्य सुता राज्ञः—स्वागतं ते, पति-व्रते! ८

आयान्त्येवासि विज्ञाता मया, धर्म-समाधिना;
कारणं चैव, वैदेहि, ज्ञातं प्रागेव तन् मया। ९

अ-पापां वेद्मि, सीते, त्वां, तपो-लब्धेन चक्षुषा;
विश्रब्धा भव, वैदेहि—साम्प्रतं मयि वर्तसे। १०

३। कस्यापि—कस्यचित्। एका—एकाकिनी, अ-सहाया। इतः—अत्र, अस्मिन् [प्रदेशे]। वि-रौति (वि-रु+तिप्)—वि-क्रोशति, उच्चैः रोदिति। ४। खात्—स्वर्गात्। च्युताम्—भ्रष्टाम्। सत्-क्रिया—सत्-कारः। ५। प्राद्रवत्—दधाव। ९। धर्म समाधिना—योग ज-धर्म-लब्ध ध्यान-परि-पाकेण। कारणम्—आगमन-कारणम्। १०। विश्रब्धा—निः-शङ्का। मयि—मत्-समीपे।

आश्रमस्याविदूरे तु तापस्यस्तपसि स्थिता: ;
तास्त्वां, वत्से, यथावच्च पालयिष्यन्ति सर्वशः ; ११

सख्यश्च ते समास्तास्ता भविष्यन्ति, शुभ-व्रते ।
इदमर्घ्यं प्रतीच्छ त्वं, विस्रब्धा, विगत-ज्वरा । १२

यथा स्व-गृहमभ्येषि, तथैतद् वनमाविश ।"
श्रुत्वा तु भाषितं, सीता, मुनेः, परममद्भुतम्, १३

वन्दित्वा शिरसा पादौ, तथेत्यूचे कृताञ्जलिः,
अन्वगच्छच्च गच्छन्तं वाल्मीकिमृषि-पुङ्गवम् । १४

सौमित्रिस्तु परं दैन्यमाजगाम, परन्तपः,
राम-पादौ समासाद्य किं वक्ष्यामीति चिन्तयन् । १५

तस्य चिन्तयतस्त्वेवं भवनं, गिरि-सन्निभम्,
रामस्य, परमोदारं, पुरस्तात् समदृश्यत । १६

स, राज-भवन-द्वारि रथं सन्त्यज्य, लक्ष्मणः,
अवाङ्-मुखो, दीन-मनाः, प्र-विवेशानिवारितः । १७

स, दृष्ट्वा राघवं, दीनमासीनं परमासने,
नेत्राभ्यामश्रु-पूर्णाभ्यां दहन्तमिव मेदिनीम्, १८

जग्राह चरणौ तस्य लक्ष्मणो, दीन-मानसः ।
उवाच स, महा-तेजाः; प्राञ्जलिः, सु-समाहितः,— १९

"आर्यस्याज्ञां पुरस्कृत्य, विसृज्य जनकात्म-जाम्,
पुनरभ्यागतो, वीर, पाद-मूलमुपासितुम् । २०

१२ । तास्ता: —विविधा:, विभिन्ना:, various. प्रतीच्छ—गृहाण । १३ । अभ्येषि —गच्छसि । २० । अभ्यागत:—'अहम्' इति शेष: । पाद मूलम्—'तव' इति शेष: ।

मा शुचः, पुरुष-व्याघ्र—कालस्य गतिरीदृशी ।
त्वद्-विधा हि न शोचन्ति, सत्त्ववन्तो, मनस्विनः ।” २१

ततोऽर्ध-रात्र-समये बालका मुनि-दारकाः
वाल्मीकेः प्रियमाचख्युः सीतायाः प्रसवं शुभम्,— २२

“भगवन्, राम-पत्नी सा प्रसूता दारक-द्वयम् ;
तयो रक्षां प्र-यत्नेन कुरु, भूत-वि-नाशिनीम् ।” २३

कुश-मुष्टिमुपादाय लवनञ्चाभि-रक्षिणम्
वाल्मीकिः प्र-ददौ ताभ्यां रक्षां भूत-वि-नाशिनीम्,— २४

“एवं कुश-लवौ नाम्ना तावुभौ यम-जातकौ
मत्-कृताभ्यां तु नामभ्यां लोके ख्यातिं गमिष्यतः ।” २५

सप्तमः सर्गः ।

अश्व-मेधः ।

ततो विनीतवद् भूत्वा, राघवो, द्विज-सत्तमान्
उवाच धर्म-संयुक्तमश्व-मेधाश्रितं वचः । १

तत् तेषां द्विज-मुख्यानां रुरुचे परमाद्भुतम्
अश्व-मेध-मतं राज्ञः, साधु साध्विति चाब्रुवन् । २

२१ । सत्त्ववन्तः—बलवन्तः । मनस्विनः—स्थिर-चित्ताः । २२ । वाल्मीकेः—वाल्मीकये । सम्बन्ध-विवक्षया षष्ठी । २३ । प्रसूता—प्रसूतवती । कर्त्तरि क्तः । रक्षा (राखी)—अङ्गे धृता ऽनिष्ट-निवारका वस्तु-विशेषः, an amulet, a charm. भूत-वि नाशिनीम्—वातुः-षष्टि-बाल-ग्रह वि-नाशिनीम् । २४ । कुश मुष्टिः—छिन्न-कुशानाम् अग्र-भागः । लवनम्—छिन्न कुशानाम् अधो-भागः । ‘लवम्’ इति प्रतीच्यां पाठः । २५ । यम-जातकौ—यमलौ, यम-जौ ।

२ । अब्रुवन्—‘ते’ इति शेषः ।

विज्ञाय रुचितं तेषां, रामो लक्ष्मणमब्रवीत्,—
"ऋषयः, शिष्य-सहिता, आहूयन्तां, महा-मते। ३
पृथिव्यां पार्थिवाश्चैव ये मे हित-चिकीर्षवः,
सानुगाः, क्षिप्रमायान्तु हय-मेधमनुत्तमम्। ४
यज्ञ-वाटश्च सु-महान् गोमत्यां नैमिषे वने,
लक्ष्मण, क्रियतां साधु ; तद् धि पुण्यं तपो-वनम्। ५
पत्नीं च काञ्चनमयीं, दीक्षितां यज्ञ-कर्मणि,
अग्रतो भरतः कृत्वा यातु शीघ्रमरिन्दम।" ६
तत् सर्वं सं-वि-धायाशु, प्रस्थाप्य भरतं, नृ-पः
हयं, लक्षण-सम्पन्नं—कृष्ण-सारं, व्यमोचयत्। ७
वसतो नैमिषे तस्य, सर्व एव नराधिपाः
आजग्मुस् ते स्व-राष्ट्रेभ्यस्। तान् राजा प्रत्यपूजयत्। ८
तेषां शय्या महार्हाश्च, पार्थिवानां महात्मनाम्,
सानुगानां, निवेशार्थमादिदेश महा-बलः, ९
अन्न-पानानि वस्त्राणि सर्वोपकरणानि च।
भरतः, सह-शत्रुघ्नो, नियुक्तो राज-पूजने। १०

३। रुचितम्—रुचिम्, अभिलाषम्। ५। यज्ञ-वाटः—यज्ञ-शाला। गोमत्याम्—गोमती-तीरे। ६। दीक्षिताम्—दीक्षिष्यमाणाम्। 'आशंसायां भूतवच्च' (पा. ३।३।१३२) इति भविष्यति भूत-कालिकः प्रत्ययः। ७। सं-वि-धाय—सम्पाद्य। हयं कृष्ण-सारम्—कृष्ण-सार-मृग-समान-वर्ण-गतिम् अश्वम्। विशेषण-स्थाने विशेष्य-प्रयोगः। Cf. 'मेध्याभ्यां कृष्ण-साराभ्याम्' (४।२।२८, पृ. २५१), 'देवासुरे युद्धे' (२।७।४९, पृ. ५१), &c. 'कृष्ण-वर्णानां सार-भूतम् अश्वम्' इति केचित्। ८। वसतस्तस्य—वसति सति। षष्ठी चानादरे। पा. २।३।३८। ९। निवेशः—निवेशनम्, स्थापनम्।

वानराश्च महात्मानः, सुग्रीव-सहिताः, सदम्,
परिवेषं च विप्राणां, प्र-यताः, सम्-प्र-चक्रिरे ।   ११

विभीषणश्च, रक्षोभिर् बहुभिः, सु-समाहितः,
ऋषीणामुग्र-तपसां किङ्करः समतिष्ठत ।   १२

एवं स विहितो यज्ञो हय-मेधः प्रवर्तितः,
लक्ष्मणेनाभि-सम्-प्राप्तो, यथा शक्रस्य धीमतः ।   १३

नान्यः शब्दो ऽभवत् तस्मिन्नश्व-मेधे महात्मनः—
'दीयतां' 'भुज्यतां' चेति 'पीयतां' 'लेह्यताम्' इति । १४

एवं शत-सहस्राणां भक्ष्य-भोज्यमनुत्तमम्
राक्षसैर् वानरैश्चैव दत्तमेव ह्यदृश्यत ।   १५

ये च तत्र महात्मानो मुनयश्चिर-जीविनः,
विस्मितास्ते ऽपि तां दृष्ट्वा, राज्ञो यज्ञर्द्धिमुत्तमाम् ।   १६

रजतस्य, सुवर्णस्य, रत्नानामथ वाससाम्
अनिशं दीयमानानां नान्तः समुपलक्ष्यते ।   १७

न शक्रस्य, न सोमस्य, यमस्य, वरुणस्य वा
अभवत् ता-दृशो यज्ञो, राघवस्य यथा-विधः ।   १८

ईदृशो राज-सिंहस्य यज्ञः, परम-भास्वरः,
अ-हीनः सर्व-करणैः, सम्-वत्सरमवर्तत ।   १९

---

११ । परिवेषः—परिवेषणम्, भक्ष्य वस्तूनां विभाग पूर्वकमर्पणम् । १३ । अभि-सम् प्राप्तः—निष्पादितः । १५ । भक्ष्य-भोज्यम्—खाद्य-द्रव्यं भोग्य-वस्तु च । १६ । चिर-जीविनः—दीर्घ-जीविनः । १७ । समुपलक्ष्यते—समुपालक्ष्यत । कथायामतीते लट् । १८ । शक्रः—शक्तिमान्, इन्द्रः इत्यर्थः । १९ । परम भास्वरः—नितरां प्रकाशमानः, चिन्न विभूषमाण इत्यर्थः । करणैः—साधन-द्रव्यैः । ऊनार्थे तृतीया ।

अष्टमः सर्गः ।

वाल्मीकि-समागमः ।

वर्तमाने तथा तस्मिन् वाजि-मेधे महा-क्रतौ,
आजगामाशु वाल्मीकिः, स-शिष्यो, यज्ञ-सन्निधिम् । १

ततः सम्-पूजितो राज्ञा, मुनिभिश्च महात्मभिः,
वाल्मीकिः, सु-महा-तेजा, न्यवसत्, परमात्मवान् । २

स शिष्यावब्रवीद्, धृष्टः, कुमारौ देव-रूपिणौ,—
"कृत्स्नं रामायणं काव्यं गीयतां, परया मुदा, ३

ऋषि-वासेषु पुण्येषु, ब्राह्मणावसथेषु च,
रथ्यासु, राज-मार्गेषु, पार्थिवानां गृहेषु च, ४

रामस्य भवन-द्वारि, यत्र कर्म प्रवर्तते,
उटारेषु तथान्येषु सद्मसु विशेषतः । ५

इमानि फल-मूलानि स्वादूनि च शुभानि च,
गिरिभ्यः समुपात्तानि, भक्षं भक्षं प्र-गीयताम् । ६

न याचेतं क्वचित् किञ्चिद् । भक्षयित्वा त्विदं फलम्
मूलं च परमोदारं, युवां चैव न श्राम्यथः । ७

३ । धृष्टः—विश्वस्तः, confident. यद्वा पदमेव 'हृष्टः' इति , सन्धि-वशात् हकारस्य धकारः । कुमारौ—राज-पुत्रौ । ४ । अवसथेषु—आवासेषु । पार्थिवानाम्—पृथिवी-पतीनाम्, राज्ञाम् । ५ । सद्मसु—जनतासु, सभासु । ६ । समुपात्तानि—लब्धानि । भक्षं भक्षम्—पुनः पुनः भक्षयित्वा । पौनःपुन्ये णमुल् । ७ । परमोदारम्—अत्युत्कृष्टम् । श्राम्यथः—श्रान्तौ, क्लान्तिं गमिष्यथः । परस्मै-पदमार्षम् ।

यदि वाह्वय रामो वां शृणुयात्, स महा-रथः,
महर्षिषु परि-षेषु, ततो गेयं विशेषतः। ८

दिवसे विंशतिः सर्गा गेया मधुरया गिरा,
प्रमाणैर् बहुभिस्तत्र, यथोद्दिष्टं मया पुरा। ९

लोभश्च वां न कर्तव्यः स्वल्पोऽपि धन-काङ्क्षया।
निर्धनैः फल-मूलैश्च वस्तव्यमाश्रमे सदा। १०

यदि पृच्छेत् तु काकुत्स्थो राजा, कस्य युवामिति,
वाल्मीकि-शिष्यावावामित्यथ वाच्यः स, पुत्रकौ। ११

इमास्तन्त्रीः सु-मधुराः स्थानं वापूर्व-दर्शनम्
मूर्च्छयित्वा, सु-मधुरं ततो गेयं नृपाग्रतः। १२

आदि-प्रभृति गेयं तु, न चावज्ञाय पार्थिवम्;
पिता हि सर्व-भूतानां राजा भवति धर्मतः। १३

८। परिषेषु—समन्तात् अवस्थितेषु, सभास्थेषु इत्यर्थः। 'उपविष्टेषु' इति …डीयं पाठान्तरम्। ९। बहुभिः प्रमाणैः—नाना-संख्यैः श्लोकैः। उद्दिष्टम्—…पदिष्टम्। १०। वाम्—युवयोः। 'कृत्यानां कर्तरि वा [षष्ठी स्यात्]' (पा. २।३।७१) …ति कर्तरि षष्ठी। फल-मूलैः—फल-मूलाहारैः। 'अस्माभिः' इति शेषः; विशेषण-स्थाने विशेष्य-प्रयोगः। Cf. उपरिष्टात् २।४।४९, ४।२।८ & ६।७।७। १२। तन्त्रीः—…णा-शिराः। सु-मधुराः—सु-मधुर-शब्दाः। स्थानम्—'षड्जादि-स्वर-भेद-सिद्धये …णा-दण्डोपरि कल्पित-शिराधार-काष्ठ-पङ्क्ति-रूपम्' इति शेषः। वा—च। अ-पूर्व-…र्शनम्—अपूर्वाणां [स्वराणां] दर्शनं यत्र तादृशम्। मूर्च्छयित्वा—नाद-व्याप्ताः …त्वा। 'ततः'—पदमिदमतिरिक्तं भाति। १३। आदि-प्रभृति—अयोध्या-काण्डतः, 'कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्' इत्यारभ्य। Cf. अधस्तात् ७।९।१६, पृ. १००। अयोध्या-वर्णनमादौ अयोध्या-काण्डस्यैव प्रारम्भ आसीदिति नारद-दत्त-काव्य-बीजात् मध्य-वर्ति सर्ग-चय-पार्श्व ग्रथनाच्च प्रतीयते। न अवज्ञाय पार्थिवम्—राज-समीपे लीला-परिहासादिकं न कृत्वा।

तद् युवां हृष्ट-मनसौ श्वः प्रभाते, समाहितौ,
गायेतं मधुरं गेयं, तन्त्री-लय-समन्वितम् ।" १४

इति सन्दिश्य बहुधा मुनिः प्राचेतसः, शुभम्,
वाल्मीकिः परमोदारस्तूष्णीमासीन्, महा-यशाः । १५

नवमः सर्गः ।

रामायण-कीर्त्तनम् ।

ततो, रजन्यां व्युष्टायां, स्नातौ, हुत-हुताशनौ,
यथोक्तमृषिणा पूर्वं, तत्र तत्राभ्यगायताम् । १

तां च शुश्राव काकुत्स्थः कथां दिव्याद्भुतोपमाम्,
अपूर्वां पाठ-जातिं च गेयेन समभिप्लुताम्, २

स्वरैश्च सप्तभिर् बद्धां, तन्त्री-लय-समन्विताम्,
बालयो । राघवः, श्रुत्वा, कौतूहल-परो ऽभवत् । ३

अथ, कर्मान्तरे, राजा, समाहूय महा-मुनीन्,
पार्थिवांश्च, नर-व्याघ्रः, पण्डितान्, नैगमांस्तथा, ४

स्वराणां लक्षण-ज्ञांश्च, उत्सुकान् द्विज-पुङ्-गवान्,
पदाक्षर-समास-ज्ञान्, शब्दे च परि-नि-ष्ठितान्, ५

---

१४ । लयः—[नृत्य गीत-वाद्यानां क्रिया कालयोः परस्पर] साम्यम्, equal time in music. १५ । प्राचेतसः—प्रचेता नाम प्रजापति वंश सम्भूतः । परमोदारः—अति-गम्भीरः । तूष्णीम् आसीत्—मौनी बभूव ।

१ । व्युष्टायाम्—प्रभातायाम् । अभ्यगायताम्—'कुमारौ' इति शेषः । २ । अ-पूर्वाम्—अ श्रुत-पूर्वाम्, प्राक् अ-श्रुताम् । पाठ जातिम्—पाठानां (गेयानां) जातिम् [षड्जादीन् सप्त स्वरान्] । गेयेन—गान-धर्मेण स्वर-विशेषेण । ४ । कर्मान्तरे—कर्मणाम् (अश्वमेध प्रयोगानाम्) अन्तरे (विराम-काले) । ५ । अ उत्सुकान्—

काल-मात्रा-विभाग-ज्ञान्, ज्योतिषे च पुरस्कृतान्,
क्रिया-कल्प-विदश्चैव तथा कार्य्य-विदो द्विजान्, ६

भाषा-ज्ञान् निगम-ज्ञांश्च गीत-नृत्य-विशारदान्,
पौराणिकांश्च विविधान्, ये च वृद्धा द्वि-जातय:,—
एतान् सर्वान् समाहूय, गातारौ समवेशयत्। ७

उपविष्टा ऋषि-गणा, राजानश्च महौजस:
पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां पश्यन्ति स्म कुशीलवौ। ८

ऊचु: परस्परं चैव सर्व एव समागता:,—
"उभौ रामस्य सदृशौ, बिम्बाद् बिम्बमिवोद्धृतौ। ९

जटिनौ यदि न स्यातां, न वल्कल-धरौ यदि,
विशेषो नाधिगम्येत अनयो राघवस्य च।" १०

तेषां संवदतामेवं श्रोतॄणां विस्मितात्मनाम्
गेयमारेभतुस्तत्र तावुभौ मुनि-दारकौ। ११

सन्धभाव आर्ष:। उत्सुकान्—व्यग्रान्। 'रामायण-श्रवणे' इति शेष:। पदाक्षर-समास-ज्ञान्—पदाक्षराणां समास: (गुरु-लघु-प्रयोग-लक्षण: सम्बन्ध:), तं जानन्ति ये तान्। शब्दे—शब्द-ब्रह्मणि, वेदेषु, गायत्र्यादि-छन्द:-प्रतिपादक-शास्त्रेषु इत्यर्थ:। परिनिष्ठितान्—सम्यक् निपुणान्। ६। काल-मात्रा-विभाग-ज्ञान्—कालस्य (स्वर-कालस्य) मात्राणां [एक-द्वि-त्रि-लक्षणानां] विभागं जानन्ति ये तान्। पुरस्कृतान्—'परं मतान्' इति गौरेसियो: पठति। क्रिया-कल्प-विद:—क्रियां [तत्-प्रतिपादकं] कल्पं (विधि-निषेधात्मकं शास्त्रं) च विदन्ति (जानन्ति) ये तान्। ७। निगम-ज्ञान्—वैदिक-पादादि-लक्षण-ज्ञान्। निगम:—वेदादि-शास्त्रम्। पौराणिकान्—पुराण-ज्ञान्, सर्ग-प्रतिसर्ग-वंश-मन्वन्तर-वंशानुचरित-रूप-पञ्च-पुराण-लक्षण-ज्ञान्। ८। कुशीलवौ—चारणौ, bards. ९। बिम्बात् बिम्बम्—सूर्य-मण्डलात् [तस्य] प्रति-बिम्बम्। १०। स्याताम् & अधिगम्येत—'हेतु-हेतुमतोर् लिङ् [वा स्यात्]'—पा. ३।३।१५६। अधिगम्येत अनयो:—अधिगम्येतानयो:। सन्धेरभाव आर्ष:। ११। संवदताम्—संवदमानानाम्, युगपत्

ततः प्रवृत्तं मधुरं गान्धर्वमति-मानुषम्,
श्लोके रामायणं बद्धं, विचित्र-पदमर्थवत्— १२
प्रवृत्तमादितः, पूर्वं सर्वं नारद-दर्शितम्।
ततः प्रभृति सर्गांश्च विंशतिं तावगायताम्। १३

ततोऽपराह्ण-समये राघवः समभाषत,
श्रुत्वा विंशति-सर्गांस्तान्,भ्रातरं, भ्रातृ-वत्सलः,—१४
"आभ्यां दश सहस्राणि सुवर्णस्य, कृताकृतम्,
प्र-यच्छ शीघ्रं, काकुत्स्थ, यदन्यदभिकाङ्क्षितम्"। १५

दीयमानं सुवर्णं तु न तौ जगृहतुस्तदा,
ऊचतुश्च महात्मानौ,—"किं धनेन, विशाम्-पते ? १६
वन्येन फल-मूलेन निरतानां वनौकसाम्
किमस्माकं हिरण्येन सुवर्णेनापि वा, नृ-प ?" १७

विस्मयं परमं गत्वा, मुहूर्तं ध्यान-तत्-परः,
तयोरागमनं रामः, काव्यस्य च समुद्भवम्, १८
प्रमाणं चैव पप्रच्छ तौ तदा मुनि-दारकौ।
पृच्छन्तमेवं काकुत्स्थं तावूचतुर-तन्द्रितौ,— १९

कथयमानानाम्। व्यक्त-वाचां समुच्चारणे परस्मैपदमार्षम्। पा. १।३।४८। तेषाम्—तान् उपेक्ष्य। अनादरे षष्ठी। आरेभतुः—आरेभाते। परस्मै-पदमार्षम्। १३। आदितः—अयोध्या काण्डतः। १४। विंशति सर्गान्—अत्र च संज्ञायामपि द्विगु-समास आर्षः। पा. २।१।५०, ५१। १५। सुवर्णम्—अशीति-रत्तिका-परिमितं स्वर्णम् तत्-परिमिता स्वर्ण-मुद्रा वा। कृताकृतम्—कृतम् अकृतञ्च, अ-समासम्, यथेच्छम् इत्यर्थः। १६। विशाम्-पते—नर-पते, राजन्। १७। निरतानाम्—निरताहाराणाम्, नियमाहाराणाम्। १८। ध्यान तत्-परः—चिन्ता-मग्नः। तयोरागमनम्—कौ तौ, केन सह वा तौ आगतौ इति। काव्यस्य समुद्भवः—काव्यस्य कौ विषयः, केन चेदं विरचितम्

"आवां वाल्मीकि-शिष्यौ तु, तेन सार्धमिहागतौ ;
राजं, स्तवेदं चरितं प्रोक्तं वाल्मीकिना, शुभम्। २०

यदि बुद्धि: कृता, राजन्—श्रवणे ते कुतूहलम्,
कर्मान्तरे क्षीण-भूते, शृणु, राजन्, महा-मते।" २१

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थं तत्र, तौ मुनि-दारकौ
अभिचक्रमतुर् वासं यत्र वाल्मीकिरावसत्। २२

रामो ऽपि, मुनिभि: सार्धं, पार्थिवैश्च महात्मभि:,
श्रुत्वो गीतमिति प्रोच्य, कर्म-शालामुपागमत्। २३

दशम: सर्ग:।

परिचय:।

अहानि सु-बहून्येवं रामो गीतमनुत्तमम्
शुश्राव, मुनिभि: सार्धं, पार्थिवैश्च महात्मभि:। १

कौशल्या च सुमित्रा च कैकयी, मातरश्च या:,
प्रगृह्य बाहून्, दु:खार्ता, रुरुदुस्ता महा-स्वनम्। २

तस्मिन् गीते ऽथ विज्ञाय सीता-पुत्रौ कुशीलवौ,
तस्या: परिषदो मध्ये रामो वाक्यमुवाच ह ३

शत्रुघ्नं वीर्य-सम्पन्नं, हनूमन्तं च वानरम्,
विभीषणं च धर्म-ज्ञं, सुषेणं च परन्तपम्,— ४

इति। १९। प्रमाणम्—परिमाणम्। अतन्द्रितौ—अनलसौ। २१। क्षीण-भूते—'क्षणी-भूत:' इति गौरेसियो: पठति, प्रतीच्या दाक्षिणात्याश्च। ('कर्मान्तरे क्षणीभूत:' इति पाठे तु, क्षणीभूत:—प्राप्त-क्षणी भूत:, प्राप्तावसर:, अवकाशं प्राप्य। क्षण:—अवकाश:, अवसर:। विशेषण स्थाने विशेष्य-प्रयोग:। कर्मान्तरे—याग-प्रयोगावसर-समये।)

२। प्रगृह्य—विस्तार्य। ३। परिषद:—सभाया:।

"भगवन्तं महात्मानं वाल्मीकिमृषि-सत्तमम्
आनयध्वमिहोदारं, स-सीतं, देव-सन्निभम् । ५
श्वः प्रभाते तु शपथं मैथिली जनकात्म-जा
करोतु परिषन्-मध्ये चारित्रं प्रति, सा, पुनः ।" ६
श्रुत्वा तु राघवस्येदं वचः, परममद्भुतम्,
जग्मुस् ते, त्वरितास्, तत्र यत्र प्राचेतसो मुनिः । ७
तेषां च वचनं श्रुत्वा, रामस्य च मनो-गतम्
विज्ञाय, सु-महा-तेजा मुनिर् वाक्यमथाब्रवीत्,— ८
"एवं भवतु । वो भद्रं ! यथा वदति राघवः,
तथा करिष्यते सीता । दैवतं हि पतिः स्त्रियाः ।" ९
तथोक्ता ऋषिणा, सर्वे राम-दूता महौजसः,
प्रत्येत्य, सर्वं रामाय मुनेर् वाक्यमवेदयन् । १०
ततः, प्र-हृष्टः, काकुत्स्थः, श्रुत्वा वाक्यं महा-मुनेः,
सर्वानेव महर्षीं स्तान् नृपतीं श्चाभ्यभाषत,— ११
"मुनयश्च स-शिष्या वै सानुगाश्च नराधिपाः
पश्यन्तु सीता-शपथं, यश्चान्यो ऽपीह काङ्क्षते" । १२

एका-दशः सर्गः ।

शपथः ।

तस्यां रजन्यां व्युष्टायां, यज्ञ-वाटं गतो नृपः
सर्वानानाययामास महर्षीन्, रघु-नन्दनः । १

६ । शपथः—दिव्यम् । १० । प्रत्येत्य—प्रत्यागत्य । १२ । सानुगाः—अनुचर-सहिताः । काङ्क्षते—काङ्क्षति । आत्मनेपदमार्षम् ।

राजानश्च नर-व्याघ्रा: सर्वं एव समागता:,
वानराश्च महा-वीर्या, राक्षसाश्च महा-बला:। २

नागरश्च जनो मुख्य:, कौतूहल-समन्वित:,
सीताया: शपथं प्रेप्सु:, सर्व एव समागमत्। ३

तथा समागतं सर्वमश्म-भूतमिवाचलम्
श्रुत्वा मुनि-वरस्तूर्णं, स-सीत:, समुपागमत्। ४

तमृषिं पृष्ठत: सीता अन्वगच्छदवाङ्-मुखी,
कृताञ्जलिर्, वाष्पवती, कृत्वा रामं मनो-गतम्। ५

दृष्ट्वा श्रियमिवायान्तीं, सु-व्रतां, ब्रह्मचारिणीम्,
वाल्मीके: पृष्ठत: सीतां, साधु-वादो महानभूत्। ६

ततो मध्यं जनौघस्य प्रविश्य, मुनि-पुङ्-गव:
सीता-सहायो वाल्मीकिरिति होवाच राघवम्,— ७

"इयं, दाशरथे, सीता सु-व्रता धर्म-चारिणी
अ-पापा हि त्वया त्यक्ता ममाश्रम-समीपत:— ८

लोकापवाद-भीतेन त्वया, राम, महा-मते।
प्रत्ययं दास्यते साध्वी, तदनुज्ञातुमर्हसि। ९

इमौ च जानकी-पुत्रावुभौ च यम-जातकौ
सुतौ तव, दुराधर्ष,—सत्यमेतद् ब्रवीमि ते। १०

३। नागर:—नगर-वासी। प्रेप्सु:—प्राप्तुमिच्छु:, द्रष्टुमिच्छु: इत्यर्थ:। ४। भूतमिवाचलम्—प्रस्तर-मूर्तिवत् निश्चलम्। ५। सीता अन्वगच्छत्—सीतान्वगच्छत्। सन्धेर्-भाव आर्ष:। ७। जनौघस्य—जन-समूहस्य। ९। प्रत्ययं दास्यते—विश्वासं जनयिष्यति, शपथं करिष्यते इत्यर्थ:। १०। यम-जातकौ—यमलतया उत्पन्नौ।

प्रचेतसो ऽहं दशमः पुत्रो, राघव-नन्दन,—
अनृतं न स्मराम्युक्तं यथेमौ तव पुत्रकौ। ११
बहून् वर्ष-गणान्, सौम्य, तपश्चर्या मया कृता—
प्राप्नुयां न फलं तस्याः, दुष्टेयं यदि मैथिली। १२
कर्मणा मनसा वाचा कृत-पूर्वं न किल्बिषम्—
प्राप्नुयां न फलं तस्य, दुष्टेयं मैथिली यदि। १३
अहं पञ्चसु भूतेषु मनः-षष्ठेषु, राघव,
दृष्ट्वा सीतां तदा शुद्धां नीतवानाश्रमं पुरा। १४
इयं शुद्ध-समाचारा—निर्दोषा, पति-देवता,
लोकापवाद-भीतस्य प्रत्ययं तव दास्यति।" १५

वाल्मीकिस्तु वचः श्रुत्वा, राघवो वाक्यमब्रवीत्,
प्राञ्जलिर्, जगतो मध्ये, महर्षीणां च शृण्वताम्,— १६
"एवमेतन्, महा-भाग, यथा वदसि, सु-व्रत;
प्रत्ययो जनितस्—तुष्टस्तव वाक्यैर-किल्बिषैः। १७
प्रत्ययश्च पुरा दत्तो वैदेह्या सुर-सन्निधौ,
शपथश्च कृतस्तत्र, तेन वेश्म प्र-वेशिता। १८

दुराधर्षः—दुर्जयः। ११। प्रचेताः—दशानां प्रजा-पतीनामन्यतमः। दशमः पुत्रः—'सन्तान-परम्परया' इति शेषः। उक्तम—उक्तिम, कथनम्। न स्मरामि—'मनसापि' इति शेषः। करणं तु दूरे। यथेमौ—यथा [तथा] इमौ। १२ १३। सीता-चरित्र प्रति मुनिना शपथ करणम्। १३। किल्बिषम—पापम। कृत पूर्वं न किल्बिषम्—'न मेऽस्ति कलुषं-कृतम्' इति गोर्रेसियः पठति। अनेन सङ्कल्प-पूर्वक निषिद्ध-कर्म त्यागो ऽपि धर्माय इति सूचितम्। १४। पञ्चसु भूतेषु श्रोत्रादि-पञ्चेन्द्रियेषु। मनः-षष्ठेषु—मनः षष्ठं येषाम् तेषु, मनसि च। १६। जगतो मध्ये—लोक-मध्ये, जनता-मध्ये इत्यर्थः। १७। प्रत्ययः—विश्वासः। तुष्टः—'अहम्' इति शेषः। अ-किल्बिषैः—दोष

सेयं लोक-भयाद् ब्रह्मन्न-पापापि पुरा सती
परित्यक्ता मया सीता—तद् भवान् क्षन्तुमर्हति। १९
जानामि पुत्रकौ चेमौ मम जातौ कुशो-लवौ।
शुद्धायां जगतो मध्ये मैथिल्यां प्रीतिरस्तु मे।" २०

अभिप्रायं तु रामस्य विज्ञाय, सुर-सत्तमा:
पितामहं पुरस्कृत्य सर्व एव समागता:। २१
आदित्या वसवो रुद्रा ऋषयो मरुदश्विनौ
गन्धर्वाप्सरसश्चैव, सर्व एव समागता:। २२
नागा यक्षा: सु-पर्णाश्च तथा विद्याधरोत्तमा:,
सीता-शपथ-सम्भ्रान्ता: सर्व एव समागता:। २३
ततो वायु:, सुख-स्पर्शो, दिव्य-गन्ध-वह:, शुभ:,
तं जनौघं सुरांश्चैव प्रह्लादयति सर्वत:। २४

सर्वान् समागतान् दृष्ट्वा, सीता, काषाय-वासिनी,
अवाङ्-मुखी, बाष्प-कलं, प्राञ्जलिर्, वाक्यमब्रवीत्।—२५
"यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये,
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति। २६

स्पर्श-शून्य:, निर्मल:। १८। वेश्म—गृहम्, भवनम्। २०। मम जातौ—मत्त: उत्पन्नौ। पञ्चमी अर्थे। पा १।४।३०। शुद्धायाम्—शुद्धिं प्राप्तायाम्, अग्नि परीक्षादिना शपथेन शुद्धेति (निष्पापेति, निर्मलेति) प्रतिपन्नायाम्। २३। सु-पर्णा:—पक्षिण:। शपथ-सम्भ्रान्ता:—शपथे (शपथ-दर्शने) सम्भ्रान्ता: (त्वरान्विता:)। २४। प्रह्लादयति—प्रह्लादयामास, प्र-सादयामास, नितरां हर्षयामास। कथयामतीते लट्। २६। राघवात्—रघो: सन्तानात्, रामात्। माधवी—माधव-पत्नी, विष्णु-प्रिया, पृथिवी। विवरम्—छिद्रम्, अभ्यन्तरं स्थानम्।

मनसा कर्मणा वाचा राममेव यथार्चये,
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति । २७

यथैतत् सत्यमुक्तं मे,—'न रामात् कामये परम्',
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ।" २८

तथा शपन्त्यां सीतायां, प्रादुरासीत् महाद्भुतम्,
भू-तलं भिद्य सहसा सिंहासनमनुत्तमम् । २९

तस्मिंस्तु धरणी देवी, सीतामादाय बाहुना,
'स्वागतं ते !' तथोक्त्वा, तामासने सं-न्यवेशयत् । ३०

तामासनं गतां देवीं, प्रविशन्तीं रसा-तलम्,
पुष्प-वृष्टिर-विच्छिन्ना, दिव्या, सीतामवाकिरत् । ३१

साधु-वादश्च सु-महान् देवानां हि तदोत्थितः,—
"धन्या त्वमसि, वैदेहि, यस्यास्ते शीलमीदृशम् !" ३२

द्वा-दशः सर्गः ।

तिरो-भावः ।

अथावसाने यज्ञस्य, तदा, परम-दुर्मनाः
अपश्यन् मैथिलीं रामो मेने शून्यमिदं जगत् । १

न चासावपरां भार्यां वव्रे राघव-नन्दनः,
यज्ञे यज्ञे च पत्नीं तां काञ्चनीं समकल्पयत् । २

---

२९ । शपन्त्याम्—शपथं कुर्वत्याम् । 'वि:' इति शेषः । प्रादुरासीत्—प्रादुर्बभूव । भिद्य—भित्त्वा । अ-समासे ऽपि क्त्वो ल्यप् आर्षः । ३१ । रसा-तलम्—रसायाः (पृथिव्याः) तलम् (निम्न-भागस्थः लोकः), भू-तलम्, पातालम् । दिव्या—स्वर्ग-भवा ।

अथ दीर्घस्य कालस्य राम-माता यशस्विनी,
पुत्र-पौत्रै: परिवृता, काल-धर्ममुपागमत्। ३

अ-दृश्यं मनुजै: कैश्चित्, स-शरीरं च, वासव:,
गृहीत्वा लक्ष्मणं, हृष्टो, नाक-पृष्ठमुपागमत्। ४

विसृज्य लक्ष्मणं, रामो, दु:ख-शोक-समन्वित:,
अभ्यषिञ्चन् महात्मानावुभावेव कुशीलवौ। ५

अभिषिच्य सुतौ वीरौ, सम्-प्रस्थाप्य च, राघव:
विवेश वैष्णवं तेज:, स-शरीर:, सहानु-ज:। ६

इत्यार्षे श्री-लघु-रामायणे, वाल्मीकीये, त्रि-साहस्र्यां संहितायाम्,
उत्तर-काण्डम्।

समाप्तश्चेदं लघु-रामायणं भारतवर्षीय-वङ्ग-प्रदेश-स्थ-आसुरिया-
ग्राम-प्रभव-गुह-वंश-ज-श्रीमत्-त्रिपुरमणयुमानाथ-प्रथमा
त्मज-गोविन्दनाथ-प्रोक्तम्।

३। दीर्घस्य कालस्य—'अत्यये' इति शेष:। Cf. 'कस्यचित् कालस्य' (उपरिष्टात्, १।११।१, पृ. २५)। काल-धर्ममुपागमत्—ममार। काल-धर्म:—मृत्यु:। ४। अ-दृश्यम्—योग-बलात् अन्तर्धानमुपागतम्। वासव: (वसु+अण्+सु)—इन्द्र:। Cf. उपरिष्टात् ६।२१।४, पृ २४६। ५। अभ्यषिञ्चत् कुशीलवौ—'कोशल-राज्यं द्विधा विभज्य' इति शेष:। कुशीलवौ—कुशं च लवं च। ६। सम्-प्रस्थाप्य—'दक्षिण-कोशल-राजधानीं कुशावतीम् उत्तर-कोशल-राजधानीं श्रावस्तीं च' इति शेष:। विवेश वैष्णवं तेज:—विष्णोर् ज्योतिषि लिल्ये, रामस्य विष्णोरुपासकत्वात्। Cf. उपरिष्टात्, २।१।१—४; पृ. ४५।

६४ पृष्ठे हन्-धातु-निष्पन्नस्य 'अवधी:' इति पदस्य 'वधं'-भागस्य मुद्रण-प्रमाद-जो दोष: भवेत्। एवमेव सर्वत्र। ७९तमे 'कनीयसाम्' 'कनीयसीनाम्', १८०तमे च 'निष्पिवती' 'निष्पिंवती' भवेदिव।

इति मणि-किरणे नाम लघु-रामायण-वृत्तावुत्तर-काण्डम्।

समाप्ता चेयं मणि-किरणी नाम गोविन्दनाथ-कृता लघु-रामायण-वृत्ति:।

शब्द-सूची।

व्याख्यातानां पदानां पदाशयानाम् अनायत-वाक्यानां च पृष्ठाङ्का अत्र निर्दिश्यन्ते; न तु आयत वाक्यानां, विस्तर-भयात्।

प



प्रवर्धनी संशोधनी च ।

पृष्ठ	पङ्क्ती	भाष्यम्
१॥०	१५ (अन्ते)	भूयां
१॥/००	१६ ०	अत्र-मन्त्रिणं समाख्या कामनामि चाधिकृत्य बहुसङ्ख्यकानां विभिन्नार्थ-रामायण शब्दानामभावात् प्रायेण समर्थत्व-प्रामाण्ये-तदनुमानमर्थमिति ।
४७	१८	व्यथया—व्यथः, व्यथ । आत्मने पदमार्षम् ।
५५	१४	बाह्य—बाह्यम, externally.
१४६	२०	निःसमन्तोम्—नि समन्तम् । नुमागम आर्ष ।
१५१	२०	महाद्रोध:—महान् अन्याय ।
१५१	२०	घर्षेम—घर्षेम । आत्मने पदमार्षम् ।
१७०	११	परिरक्षस्व—परिरक्ष । आत्मने-पदमार्षम् ।
१८६	२०	सागरं सु-महत्—क्लीवत्वमार्षम् ।
२०७	१९	उत्सृजस्व—उत्सृज । आत्मने-पदमार्षम् ।
२२४	१९	‘व्यवतिष्ठत’ इत्यत्र अडागमाभाव आर्षः ।
२४८	१५	इहैव रामायण-समाप्ती उत्तर-काण्डस्य उत्तर काल-भवत्वं स्फुटम् ।
२५०	२१	ग्रन्थ-सन्धित्वात् प्रथम-सर्गस्य प्रक्षिप्तत्वं स्पष्टमेव ।

		अशुद्धम्	शुद्धम्
१॥/०	१४	मा	म
५	१९	वि २५ ।	२५ । वि-
४६	२०	बौद्ध-मठेषु	यज्ञ-स्थानेषु
५२	२०	पुनर्जन्म	पारलौकिकं देहम्
१७७	२१	श्रेष्ठ-वीर-	शूर-शत्रु-
२८०	१७	निर्विषती	निर्विंषती
२८०	१७	नुमागम आर्षः	तुदादित्वमार्षम्

२६७ २२-२४ (प्रतीयते इत्यन्ताः) पङ्क्तयो निष्कासयितव्याः ।

पृष्ठे	पङ्क्ती	अशुद्धम्	शुद्धम्
१०	(२) ९	भै	भैं
॥०	२२	पूव	पूर्वं
॥/०	२३	न्	म्
१॥/०	१० (अन्ते)	र	पं
२\	२०	ह	ह्व

पृष्ठे	पङ्क्ती	अशुद्धम्	शुद्धम्
२\	२२	एिट	एो
६	८	व	व
६	२०	व	व
७	१९	बध	वध
७	२०	षव	षव

पृष्ठं	पङ्क्तौ	अशुद्धम्	शुद्धम्
८	२१	बा	वा
७	२२	ह्र	ह्र
१२	९	श्च	श्च
१२	२०	नृष्का	न्वान
१७	३	ब	व
१७	१७	ब…ब	व…व
२२	१२	म स	म-स
४२	१४	त्	त्
६६	२०	ण	णं
७९	१७	साम्	सोमाम्
८१	१९	ह्र	ह्व
८४	२४	लम	लम्
८५	१७	म	म्
८५	२१	ग्रा	र्ग्रा
८७	२२	मुग्न	भग्न
९६	२२	न्नां	न्वां
१२०	२१	मच	मच्
१२६	२९	म	म्
१४४	२०	ह्न	ह
१४६	२४	हृ	ह्व
१४७	१८	ह्र	ह्व
१५०	१९	te	ti
१५२	१७	पम	पुम
१७०	१५	मृ	·
१७९	२१	ह्र	ह्व
१८०	२१	ह्र	ह्व
१८१	२१	म	मं
१८९	१९	मिं	मि
१९०	२३	हृ	ह्व
१९४	२१	हृ	ह्व
१९६	२१	मृ	मृ
२०१	२२	हृ	ह्व
२०२	७	·	त्वं
२०२	१८	मृ	मृ
२०२	१९	हृ	ह्व
२१४	१९	मेव	मेव
२१९	२२	हृ…हृ	ह्व…ह्व
२२६	२२	भ्यां	भ्यां
२३२	१९	व्या	व्या
२३३	२२	वै	वै
२३८	२४	ण्डाः	ण्ड्राः
२४१	१७	ध	ध्य
२४७	१९	आय	आयं
२५८	२१	बे	वे
२६२	२०	ब	व
२६५	१७	म	म्
२७३	१८	भ्य	भ्य
२९४	२१	नृष्क	न्वान
२९६	२३	नृष्काः	न्वा
२९७	१८	बि	वि
२९०	१९	भ्या	भ्या
२९७	२०	भ्या	भ्या
२९८	८	क्षत	क्षय
३०२	१८	घ	ध
३११	१२	भ	भ्र
३१४	२१	कम	कर्म
३२९	२२	भों	भो
३४३	७	मृ	म्मृ
३४३	१४	त्य	न्न
३५०	२१	ह्रा	ह्रा
३५२	२०	हे	हे
३५९	१	त्मा	मा
३६७	२५	मौ	मौ
३७७	१९	च	च

द्वितीया संशोधनी ।

पृष्ठ	पङ्क्तौ	अशुद्धम्	शुद्धम्
॥/०	२	वेघ्र	विघ्नः
॥৶०	५	र्धम्	र्धोऽ
।॥०	३	थि	ति
।॥०	१७	वा	.बः
१॥৶०	२३	र्धं	र्धः
१॥৶०	२४	मे	ए
१।॥৵०	९	वा	बी
१।॥৵०	९	या	यो
२।०	१६	या	यी
२।॥৶०	११	या	यी
६७	१५	स्वं	सं

সংস্কৃতসোপান

(প্রথম শিক্ষা সংস্কৃত ব্যাকরণ)

শ্রীগোবিন্দনাথ গুহ, এম্ এ প্রণীত

চতুর্থ সংস্করণ।

Short Rules in simple Sanskrit thoroughly explained and illustrated. Ample materials for exercises in composition and translation. Indexes to *sutras*, declension and conjugation. For the middle and higher classes of High Schools.

Approved by the Government of Bengal for use as a Text-Book in the upper classes of High Schools and by the late Government of Eastern Bengal and Assam as a Text book for Class VII and VIII.

OPINIONS.

Rai Rajendra Chandra Sastri Bahadur, M. A., *Premchand Roychand Scholar, Member of the Central Text-Book Committee in Bengal, Fellow, Member of the Board of Studies in Sanskrit and Senior Examiner in Sanskrit, Calcutta University.* "I have carefully examined the elementary Sanskrit grammar entitled Sanskrita Sopan by Babu Govindanath Guha, M. A. It is written on approved principles and is **admirably suited to the needs of Entrance candidates**. The rules are given in easy Sanskrit and as such they are easily committed to memory and applied in practice. The method and arrangement followed in the work are excellent and I have no hesitation in recommending its adoption as a text-book in Sanskrit grammar in our schools."

Prof. Kaliprasanna Bhattacharyya, M. A., *Offg. Principal, Sanskrit College, Calcutta, and Senior Examiner in Sanskrit, Calcutta University.* — "The easy Sanskrit *Sutras* with their explanations in Bengali, are, I think, best suited to the capacities of the students of the High Schools."

Prof. Asutosh Sastri, M. A. *Senior Professor of Sanskrit Presidency College, Calcutta, and Senior Examiner in Sanskrit, Calcutta University.* "The book * * treats in a very lucid manner the elements of Sanskrit Grammar. One of the most commendable features of the book is the statement of rules in easy Sanskrit *Sutras* explained in Bengali. The book is **admirably suited** to the needs and capacities of young students reading Sanskrit in the middle forms of our High Schools as well as those who read Sanskrit **for the Matriculation Examination.** The author has been, to a great extent, successful in discouraging cramming. This book seems to be **the best elementary Sanskrit Grammar I have ever seen.**

Prof. Nilmani Chakravarti, M. A, *Professor of Sanskrit, Pali and Bengali, Presidency College, Calcutta* :—"*** The practice of learning by rote the grammatical forms without knowing the principles which is very common among the Sanskrit students of our University will be removed by the introduction of elementary works like this."

Babu Pramathanath Sarkar, *Head Master, Islampur High School (Murshidabad)* :—"This *(Sanskrita-Sopan)* is just the book we were in want of. The *sutras* given in your book are clearly and lucidly explained and I have not the least doubt that the book is well suited to meet the wants of students preparing for the Matriculation Examination of the Calcutta University."

উপাধ্যায় শ্রীগৌরগোবিন্দ রায় (কলিকাতা), যোগী, ধর্ম্মাচার্য্য, দার্শনিক ও বৈয়াকরণ—"প্রথম হইতে পাণিনির সূত্র ছাত্রগণকে শিক্ষা দেওয়া হয়, যদিও এই মত আমি বহুদিন হইতে রক্ষা করিয়া আসিয়াছি, তথাপি আপনার সংস্কৃতসোপানের সূত্রগুলি পাঠ করিয়া আমার মতের কথঞ্চিৎ পরিবর্ত্তন হইল। * * * এরূপ পন্থাবলম্বন ভালই হইয়াছে। * * * সূত্রগুলি সরল হইয়াছে।"

শ্রীচন্দ্রধর ভট্টাচার্য্য, বিশারদ, কাব্য-সাংখ্য-বেদান্ততীর্থ (কাশী)—"আপনি সরল সংস্কৃত দ্বারা ব্যাকরণপ্রতিপাদ্য মুখ্য বিষয়গুলি উপন্যস্ত করিয়া সংস্কৃত ভাষা শিক্ষার সুগমতা সম্পাদন করিয়াছেন। সূত্রগুলির গঠনপ্রণালীতে, বিশেষতঃ সন্ধির সূত্রগুলি প্রতিপাদনে নূতনত্ব ও নৈপুণ্য দর্শনে আমরা বিশেষ পুলকিত হইয়াছি।"

শ্রীবনমালি ভট্টাচার্য্য, কাব্য-ব্যাকরণতীর্থ ; প্রধান পণ্ডিত, সিরাজগঞ্জ ভিক্টোরিয়া হাই ই স্কুল—"সরল-সংস্কৃত-সূত্রোপনিবন্ধমিদমকারীতি গ্রন্থকৃতা বিশ্ববিদ্যালয়স্থাধস্তনশিক্ষার্থিনাং মহান্ অভাবো নিরাকৃতঃ। এতেনৈব চাসাধারণ্যেন ইংরেজীবিদ্যালয়নিবহপ্রচলিতান্ ইতরান্ ব্যাকরণনিচয়ান্ ইদমতিশেতে। নিখিলা এব গ্রন্থার্থাঃ সূত্রাসূত্রাতাঃ সুখাভ্যসনীয়া ভবন্তীতি কিমু বক্তব্যম্।"

শ্রীচন্দ্রকুমার মুখোপাধ্যায়, হেড্ পণ্ডিত, বজ্রযোগিনী হাই স্কুল্ (ঢাকা)—"আপনি সংস্কৃত ভাষা শিক্ষার জন্য সংস্কৃত সূত্রের ব্যবস্থা করিয়া ভালই করিয়াছেন। ইহাতে বালকগণের পক্ষে বিষয়গুলি স্মরণ রাখিতে বিশেষ সুবিধা হইবে।"

শ্রীভুবনমোহন কাব্যতীর্থ, প্রধান পণ্ডিত, পালপালাপুর এস্ এম্ ইন্স্টি-টিউশন্ (ফরিদপুর)—"আপনি সরল সংস্কৃত ভাষায় ব্যাকরণের সূত্র নিবদ্ধ করিয়া চিরাগত অভাব দূর করিয়াছেন। এখন হইতে যাহারা ইংরাজী স্কুল কলেজে সংস্কৃত পড়ে তাহাদিগের সংস্কৃত শিক্ষা স্থায়ী ফল প্রদান করিবে। আপ-নার এই কার্য্যে সংস্কৃত অধ্যাপকনিচয় আনন্দিত হইবেন।"

লঘু রামায়ণম্

বাল্মীকীয়ম্

আদি-কাব্য-বর্ত্মনৈঃ শ্রীগোবিন্দ নাথ গুহ-এম্. এ.-প্রোক্তম্ ।

মহর্ষি বাল্মীকি ভারতবর্ষের আদি কবি। তাঁহার রামায়ণ নিজ গুণেই কাব্য, ইতিহাস ও শাস্ত্র বলিয়া সর্ব্বত্র সম্মানিত হইয়াছে। কিন্তু বহু-কবি-কৃত রচনার প্রক্ষেপে এই গ্রন্থ পুনরুক্তি, অতি-রঞ্জন ও অবান্তরতায় এরূপ বিস্তৃত, বি-রূপ ও প্রতি-হত-গতি হইয়া পড়িয়াছে যে এখন আর বিশেষ-জ্ঞ (specialist) ব্যতীত কেহ ইহা সমগ্র সম্যক্ পাঠ করেন না। কাল-প্রভাবে রামায়ণ প্রাচী, প্রতীচী, উদীচী ও অবাচী এই চারি মহা-শাখায় পরিণত হইয়াছে। তন্মধ্যে প্রাচী বা বঙ্গীয়া শাখা সর্ব্বাপেক্ষা মৌলিক, কিন্তু বিলুপ্ত-প্রায়। এই শাখার তিন হাজার শ্লোকে মূল রামায়ণটি বিশদ-বৃত্তি, বৃত্তি-সূচী ও আলোচন-সহিত প্রকাশিত হইল। যাঁহারা কেবল দুই তিন বৎসর সংস্কৃত পড়িয়াছেন, ইচ্ছা থাকিলে তাঁহারাও পাদ-টীকার সাহায্যে এই অ-পূর্ব্ব গ্রন্থ অনায়াসে পড়িতে, বুঝিতে ও উপভোগ করিতে পারিবেন।

সংস্কৃত পরীক্ষা-বোর্ড্ এক-মত হইয়া নির্দ্দেশ করিয়াছেন যে ১৯১৭ খ্রীষ্টাব্দ হইতে যাঁহারা কাব্যের প্রথম পরীক্ষায় উপস্থিত হইবেন, তাঁহা-দিগকে লঘু রামায়ণের আদি-কাণ্ড ও অযোধ্যা-কাণ্ড পড়িতে হইবে।

মূল্য ২৷৷০ (কেবল কাগজে মোড়া, ২৲)। রাজ-সংস্করণ ২০৲।

Maha'mahopa'dhya'ya Haraprasa'd Shastri, C.I.E., M.A , F.A.S.B. (*Principal Retired, Sanskrit College*) :—"It goes without saying that Valmiki's **Ra'ma'yana** has profoundly influenced life throughout the length and breadth of India for many thousand years. It has been translated into all the Vernaculars of India and several times into many of them. But in these days it is impossible to study either the original or the translations in entirety. It is therefore with the greatest pleasure that we welcome the abridged edition entitled **Laghu Ra'ma'yana** by Govindanath Guha.

It will now be possible even for the busiest men to read the **Ra'ma'yana** in Valmiki's own words within a very short time. The author has not changed the language of Valmiki. He has done another great service to the students of the great epic. He has given an up-to-date account of all the researches on the subject in easy and idiomatic Sanskrit. The book may be safely recommended to the public as a very valuable contribution to Literature."

Maha'mahopa'dhya'ya Satish Chandra Vidya'bhushan, M. A., Ph. D., F. A. S B. (*Principal, Sanskrit College*) :— While preserving the spirit and form of the original, the learned Professor has succeeded in presenting the salient points of the story of *Rámáyana* in a form which will be found pleasant and interesting both by the student and the teacher. The masterly Introduction, written in simple and idiomatic Sanskrit, embodies the results of all the up-to-date researches on the subject, and the value of the book is further enhanced by the Index appended at the end "

The Indian Daily News :—"Sanskrit can not be a dead language if scholars like Mr. Govindanath Guha, M.A., cultivate it in the way he has done in the book under notice Mr Guha's book will rank as an able and successful essay at Sanskrit composition "

The Bengalee :—"*The Rámáyana* has been divided into four fundamental recensions ** of which the Eastern or Bengal recension is the most original but rarely met with. This is the first time that the Bengal recension has been published in India, though in an abridged form But in this form, it has lost none of its charms On the contrary, being depleted of its repetitions and exaggerations, the poem seems to be restored to its pristine purity, in which the master-hand of the "Adi-Kavi" is seen almost in a mirror To compress a mass of unconnected materials of fifty thousand lines into a connected treatise of three thousand verses without impairing the brilliance of the story is a marvellous intellectual feat which Babu Govindanath has achieved ** He has introduced English punctuation into the body of the poem to the great relief of the beginners, and with the help of the annotations, even the Matriculates will have an easy access into this great epic. The Introduction is verily a most important contribution to the researches occasionally made into the place, origin, antiquity, subject-matter and the historicity of the *Rámáyana* It is difficult to convey to the readers an idea of the amount of learning, scholarship, research, logical acumen, power of sifting evidence and of comparing and collecting facts that Babu Govindanath has brought to bear upon the issues—some of them are very intricate —that he has raised and solved ** The author has traced the pre-Buddhistic origin of the "Ramayana". ** Our boys and girls ought now to be able to come into direct contact with the great personality of Valmiki. Their parents and teachers and the University ought to see that they receive the full advantage of Babu Govindanath Guha's scholarly and devoted labours.

The Indian Messenger :—He (Mr. Guha) has handled the materials at his disposal with as remarkable an ease as if Sanskrit were his mother tongue. It has been truly said that so long as such learned scholars exist among us, the Sanskrit language cannot be called a dead language. The differences between the Rámáyana and the Iliad have been most lucidly and elaborately discussed in

the Introduction to the infinitely great advantage of the Hindu poem. One thing however is most prominent. The motive of the belligerents in the Rámáyana is of a far lower character than that of the heroes in the Greek poem.

The Hindus owe the good features in their national character more to the *Rámáyana* and the *Mahábhárata* than to any other works in their national literature. But the very bulk of these epics has prevented most people from reading them in the original Sanskrit. It can not however be said that the main story and the really important episodes of the *Rámáyana* with which we are at present concerned make an unmanageably long poem. Babu Govindanath Guha has really rendered a national service by omitting all interpolations and repetitions, everything in fact which is not indispensably necessary for understanding the mind and heart of Valmiki and for coming under his inspiring and elevating influence. **

He (Mr. Guha) has done a great service by rediscovering Valmiki from beneath the ant-hill under which he was buried by the trammels of many inferior hands and which all but hid the *Kavi-guru's* merits from the readers of the great poem.

প্রবাসী মাঘ, ১৩২১, বিবিধ কথা,—ভারতের মানুষকে রামায়ণ যেমন করিয়া গড়িয়াছে, আর কোন একখানি বহি বোধ হয় তেমন করিয়া গড়ে নাই। অথচ মূল বাল্মীকির রামায়ণ সমগ্র পড়া অনেকেরই ভাগ্যে ঘটিয়া উঠে না। ** বাবু গোবিন্দনাথ গুহ অবান্তর কথা পুনরুক্তি আদি বাদ দিয়া মহর্ষি বাল্মীকিরই রচিত তিন হাজার শ্লোকে গ্রথিত রামায়ণের মূল আখ্যায়িকাটি লঘু রামায়ণ নাম দিয়া প্রকাশ করিয়াছেন। ইহার মধ্যে একটি বর্ণও তাঁহার স্বরচিত নহে। এখন মূল রামায়ণের আনন্দ উপভোগ ও তাহা হইতে উপকার লাভ সুসাধ্য হইল। শিক্ষা বিভাগ ও বিশ্ববিদ্যালয় কর্ত্তৃক এই গ্রন্থ বিশেষভাবে আদৃত হওয়া উচিত। গোবিন্দবাবু সংস্কৃতেই একটি ভূমিকা লিখিয়াছেন। ইহাতে বাল্মীকির কাল, অধুনা প্রচলিত রামায়ণে প্রক্ষিপ্ত কিছু আছে কি না, রামায়ণের সহিত হোমরের ইলিয়ডের তুলনা প্রভৃতি অতিশয় পাণ্ডিত্য সহকারে বিন্যস্ত হইয়াছে। কিছু টীকাও আছে। গোবিন্দবাবু এই গ্রন্থ প্রকাশ করিয়া ভারতবাসীদের কৃতজ্ঞতা-ভাজন হইয়াছেন।

The Modern Review (February, 1915) :— Babu Govindanath Guha has done an invaluable service to the cause of Sanskrit Literature by publishing this abridged edition in three-thousand slokas of the original Rámáyana of Valmiki. Within these three thousand slokas, all in the sweet, simple language of Valmiki himself, every main incident of the Rámáyana has been narrated. The Rámáyana has furnished many poets—Kalidas, Bhababhuti, Bhatti and others—with themes for their works, but many of them took only episodes of the Rámáyana as their subject matter. Even those who like the authors of the *Rámáyana-kathámanjari*, the *Bála-rámáyanam*, the *Champu-rámáyanam*,

tried to deal with the whole of the Rámáyana, did this in their own language. But the present work is unique in that its editor has given the whole of the epic, though within a short compass, without using even a single syllable that is not of the 'Adi-kavi'. In this book, the editor has followed the text of the Bengal recension of the *Rámáyana* having compared it with all the three other recensions. ** But the special feature of the book is the learned Introduction at the beginning covering more than forty pages, bristling with references and quotations, and what is more, written in Sanskrit. ** In the Introduction many important points have been discussed : the claim of Valmiki to the title of the *Adi-Kavi* or first poet, what the Rámáyana is, the social and religious condition of the country described in it, its origin, date of its composition, its comparison with the Iliad. While going through the Introduction, one is sure to be delighted with the respectful tone of the criticism ; and the flow and grandeur of the style will in many places remind the reader of that of Bána-bhatta. In fact the style as used therein is in no way inferior to that of well-known prose-writers in Sanskrit whereas it has this advantage over all, that while the style of even the best prose-works in Sanskrit is cumbrous on account of long-drawn-out compounds and too frequent use of figures of speech, very often impeding the clear understanding of the meaning of passages in which they occur, that of the Introduction of the *Laghu Rámáyana* is simple, charming and full of life ; compounds there are in it, but they only add to the vigour of the style.

The passages in which the editor has established the priority of the 'Rámáyana' to the 'Dasaratha-Játaka' and also where he has refuted the theory of Prof. Weber placing the date of the composition of the 'Rámáyana' at the commencement of the Christian era, at an epoch when the operation of Greek influence had already set in, by adducing numerous proofs, internal and external both from the Rámáyana and the Iliad, in a manner that would do credit to any antiquarian, show how Sanskrit may be used in literary and historical criticism.

All Greek names ** have been rendered into Sanskrit. In some cases new words have been coined to translate Greek words and expressions conveying ideas unknown in Sanskrit. ** This is probably the first attempt in this direction, and if there be many writers to enrich Sanskrit with words and phrases expressing the new ideas and thoughts evolving with the progress of time, who can say Sanskrit may not be as good as a living language again ? In fact this Introduction is in many points unique and unprecedented both as a literary work in Sanskrit as well as a critical study of the great epic.